

तन्त्र सिद्धान्त और साधना

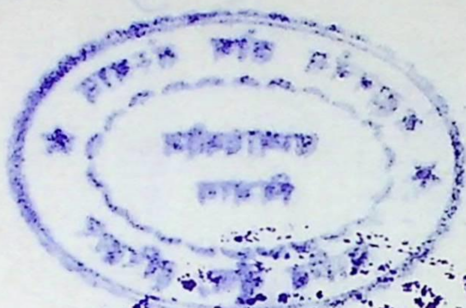
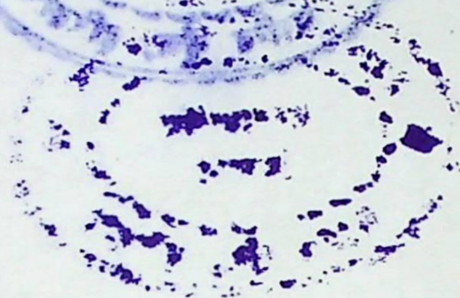




आचार्य पं० कन्हैयालाल टाटावत एम०ए०

आयुर्वेदाचार्य साहित्यायुर्वेदरत्न



तन्त्र सिद्धान्त और साधना

(संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)



पं० देवदत्त शास्त्री

प्रकाशक :

ज्ञान गौरव पब्लिकेशन

१२४. शहरारा बाग, इलाहाबाद

एकमात्र वितरकः
ए० टू० जेड पब्लिकेशन
२२५, चक, जीरोरोड इलाहाबाद-३

संस्करण : २०००
मूल्य :
पेपर बैक : १२५/- : २२५/-सजिल्द
पुस्तकालय, संस्करण

मुद्रक :
अजय प्रिटिंग प्रेस
२२५, चक, जीरोरोड इलाहाबाद-३



विषय सूची

	पृष्ठ
पाठकों से	५-७
भूमिका	८-२४
अध्याय १ : तन्त्र विद्या	१-५
अध्याय २ : तंत्र का आविर्भाव और विकास	६-१९
अध्याय ३ : तंत्रशास्त्र में वैश्विक सिद्धान्त	२०-३३
अध्याय ४ : तंत्र का चरम लक्ष्य : अद्वैत सिद्धि	३४-५९
अध्याय ५ : तन्त्र-साधना के सोपान	६०-८३
अध्याय ६ : दशमहाविद्या का रहस्य-विज्ञान	८४-१०३
अध्याय ७ : अव्यक्त शक्ति के चमत्कार	१०४-११६
अध्याय ८ : वैदिक और पौराणिक वाड्मय में तंत्र विद्या	११७-१६०
अध्याय ९ : जैन और बौद्ध तन्त्र	१६१-१७०
अध्याय १० : शक्ति-साधना	१७१-२०१
अध्याय ११ : श्री गणपति मन्त्र साधना	२०२-२२१
अध्याय १२ : सूर्यादि नवग्रह-साधना मन्त्र	२२२-२३३
अध्याय १३ : विविध मन्त्र साधना	२३४-२६२
अध्याय १४ : आथर्वण तन्त्र	२६३-२८२
अध्याय १५ : शाबर मन्त्र-साधना	२८३-२९५
अध्याय १६ : लोक-जीवन में तन्त्र की अभिव्यप्ति	२९६-३०२

अध्याय १७ : यंत्र-साधना ३०३-३२७

सर्वजनोपयोगी यन्त्र-सर्वाभीष्ट फलप्रद सूर्य यन्त्र। बन्ध्या-पुत्रपद यन्त्र। गर्भस्तम्भन यन्त्र। लज्जा बीज यन्त्र। सर्वार्थ सिद्धिदायक यन्त्र। शत्रुशमनकारी पंचदंशी यन्त्र, न्यायालय में विजयार्थ पंचदंशी यन्त्र। चतुर्वर्णात्मक पंचदशी यन्त्र (ब्राह्मण-खाकी), (क्षत्रिय-वादी), (वैश्य-आवी), (शूद्र-आसती), षट्कर्मों में पंचदशी यन्त्र-विधान, अन्य विधान, पंचदशी मन्त्र। सर्वसिद्धि प्रद यन्त्र। सर्वरोहर यन्त्र। अजीविका प्राप्ति के लिये यन्त्र। सन्तानदायक यन्त्र। मानसिक रोग निवारण यन्त्र। मुकदमे में विजय प्रदायक यन्त्र। सम्मोहन यन्त्र। वशीकरण यन्त्र। अर्श (बवासीर नाशक यन्त्र)। बालकों का सूखा रोग नाशक यन्त्र। पीनस रोग नाशक यन्त्र। मूकता, मूढ़ता निवारक यन्त्र। नक्सीर नाशक यन्त्र। संग्रहणी, अतिसार नाशक यन्त्र। गुल्म, यकृत, प्लीहा रोग निवारण यन्त्र। आकर्ष यन्त्र। शक्ति यन्त्र। सरस्वती यन्त्र। माया यन्त्र। प्रेत बाधा निवारण यन्त्र। अभ्युदय यन्त्र।

पाठकों से

'तन्त्र सिद्धान्त और साधना' ग्रन्थ का प्रथम संस्करण प्रकाशित होने के बाद दो वर्ष के अन्तर्गत मेरे पास पाठकों के चौदह सौ पत्र आये, जिनमें से कुछ लोगों ने पुस्तक के आधार पर की गयी मन्त्र-सिद्धियों की सफलतायें प्रकट की थीं, और कुछ लोगों ने अपनी असफलताएं व्यक्त की थीं और मुझसे मार्ग-दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा प्रकट की थी। मन्त्र-साधकों के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे, जिन्होंने पुस्तक पढ़कर मुझे व्यावसायिक तान्त्रिक या ओझा समझकर सीधे मेरे पास आये और अपनी समस्याओं का समाधान अथवा कष्टों के निवारण के लिएं मुझसे तान्त्रिक अनुष्ठान करने का अनुरोध किया।

मैंने प्रथम संस्करण की भूमिका में स्पष्ट लिखा था कि ''यह ग्रंथ पाण्डित्य-प्रदर्शन अथवा सिद्धि-साधक का गौरव प्राप्त करने के लिए नहीं लिखा गया है। यह ग्रंथ उन लोगों की भ्रान्ति दूर करने के लिए लिखा गया है, जो तन्त्रविद्या को जादूगरी-बाजीगरी मात्र समझते है और उन जिज्ञासुओं की जिज्ञासा का समाधान करना उद्देश्य है जो तन्त्र-विद्या में आस्थ-अनास्थ का भाव रखते है, दुविधा-ग्रस्त हैं। यह यह ग्रन्थ उन लोगों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है, जो शास्त्र और साधना के विराट व्यूह में न फंसकर बिनी किसी भय, आशंका के अल्प-प्रयास और साधना कर अपना अभीष्ट पूरा करने की आकांक्षा रखते हैं।''

इस संस्करण के पाठकों से मेरा अनुरोध है, कि यदि वे किसी यंत्र या मंत्र की साधना करना चाहते हैं अथवा कोई पुरश्चरण करना चाहें तो एक बार आदि से अन्त तक पुस्तक अवश्य पढ़ें और 'तन्त्र का चरम-लक्ष्य अद्वैत सिद्धि' एवं 'तन्त्र-साधना के सोपान' इन दो अध्यायों में बताये गये नियम, आचार, विधि-विधानों को भली-भांति हृदयङ्गम कर लें।

प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर शक्तियां विद्यमान रहती हैं, जिन्हें साधना द्वारा जागृत किया जा सकता है। तन्त्र-साधना में जाति, धर्म का भेदभाव नहीं है। किसी भी देश का, किसी भी वर्ण या धर्म का व्यक्ति तन्त्र-साधना करने का अधिकारी होता है।

किसी भी देवी-देवता के मूलमन्त्र की साधना करने से एक सार्वभौम परिणाम यही मिलती है 'आत्मसंकल्प-शक्ति' और 'अतीन्द्रिय अभिज्ञान'। इन्हीं दो शक्तियों के साधक सिद्ध बन जाता है और प्रत्यक्ष-परोक्षज्ञान प्राप्त करता है। वह साधना द्वारा प्राप्त पराभौतिक शक्ति से अपना शक्तिसामर्थ्य विकसित कर लेता है। भविष्यत् का, अतीन्द्रिय जगत् का उसे बोध प्राप्त हो जाता है। साधना द्वारा प्राप्त अतीन्द्रिय अभिज्ञान से वह अपनी तथा दूसरों की इच्छाओं की पूर्ति सहज कर सकता है। किन्तु

साधना की पहली शर्त है आस्थ और विश्वास। आस्था और विश्वास दृढ़ होने पर मन अचचंल और एकनिष्ट बन जाता है। एकाग्र मन से की गयी साधना से पहले पराभौतिक इन्द्रिय-चेतना जागृत होतीा है, फिर शरीर की नसों-नाड़ियों में विद्युत-चुम्बकीय शक्ति का प्रवाह प्रवाहित होने लगता है।

साधकों को मन्त्र सिद्धि से पूर्व अथवा इष्ट-साक्षात्कार की प्रबल कामना कीपूर्ति का उपाय करने से पूर्व अपने मन के स्वरूप और कई स्तरों पर की जानेवाली उसकी क्रियाओं का स्तर समझ लेना चाहिए। आगमशात्रों में मन के मुख्यतया सात स्तर बताये गये हैं-

१. चेतना–इस स्तर में चेतन मन सक्रिय रहता है।

२. स्मृति–इस स्तर मे अवचेतन मन रहता है, जो ग्रहणशील होता है, और विषय-वस्तु को संचित रखता है।

३. अवचेतन शरीर पर नियन्त्रण–इस स्तर में प्रज्ञा रहती है।

४. सर्जनात्मक शक्ति–इस स्तर में विद्युत् चुम्बकीय शक्ति निहित रहती है।

५. जीवन-शक्ति स्तर–इस स्तर में जिजीविषा शक्ति निहित रहती है।

६. अन्तः प्रेरणा शवित स्तर–इसीसे अतीन्द्रिय अभिज्ञान छठी इन्द्रिय की क्रियाशीलता से उत्पन्न होता है।

७. और सातवाँ सर्वोपरि स्तर अन्तरिक्ष चैतन्य है। इससे साधक का पराभौति वस्तुओं से सम्बन्ध जुड़ता है। इस ग्रन्थ में प्रमाणपूर्वक बताया गया है कि योग और तन्त्र का समवाय संबंध है। बिना योग-साधना के तन्त्र-साधना नहीं और तन्त्र के बिना योग-साधना की सिद्धि सम्भव नहीं है। योग क्या है? मानसिक चित्तवृत्तियों का निरोध। जब तक चित्त एकाग्र नहीं, स्थिर नहीं, तब तक कोई साधना सफल नहीं हो सकती है। शाबर-मन्त्रों को लोग बहुत सरल और सहज समझते हैं, किन्तु उनमें भी निष्ठा और एकाग्रता अनिवार्य होती है।

मन्त्रों और यन्त्रों के सहस्रों, लाखों भेदोपभेद हैं। हमारा उद्देश्य तन्त्र विज्ञान की यथार्थता, उपयोगिता सिद्ध करना है, न कि 'मन्त्र-महोदधि' लिखना। अतएव कुछ वही उपयोगी मन्त्र और यन्त्र इस ग्रन्थ में दिये गये हैं, जो सर्वसाधारण के लिए उपयोगी एवं साध्य हों। इतना निश्चित है कि इस ग्रन्थ में प्रस्तुत सभी मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र अनुभूत हैं।

२५८/२७, नई बस्ती सोहबतिया बाग — **देवदत्त शास्त्री**

इलाहाबाद-२११००६

भूमिका

तन्त्रविद्या

तन्त्र और मन्त्र मात्र अभिधान से पृथक् प्रतीत होते हैं, किन्तु हैं दोनों एक ही। इन्हें युग्म रूप या जुड़वाँ कह सकते हैं। वस्तुतः तन्त्र एक प्रक्रिया है। तन्त्र-प्रक्रिया द्वारा बाह्य तन्त्रों से निकलते हुए श्वास का अवरोध कर उस पर अधिकार किया जाता है। आगम शास्त्र के अनुसार अनिच्छा और इच्छा रूप जो दो नाड़ियाँ हैं, वही निगम और आगम हैं। जब अनिच्छा रूप नाड़ी पर अधिकार प्राप्त कर लिया जाता है तो उस स्थिति का नाम योग है और अनिच्छा तथा इच्छा का जो सम्मिलित रूप होता है, उसे तन्त्र कहा जाता है।

मन्त्र के माध्यम से साधना, उपासना द्वारा अपने इष्ट का साक्षात्कार करना अथवा उससे तादात्म्य संबंध जोड़ना मन्त्रयोग है। मन्त्रयोग की साधना से सिद्धि प्राप्त होती है। मन्त्र या तन्त्र साधना का योग से समवाय संबंध है। योग मुख्यतया चार प्रकार का है–१. हठ योग, २. मन्त्र योग, ३. लय योग, ४. राजयोग। तन्त्र-साधना में योग का पूरा सहकार रहता है। योग-विहीन साधना से सिद्धि नहीं मिलती है। अधिकतर लोग यही जानते हैं कि तन्त्रविद्या वही है, जिस में मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और वशीकरण प्रयोग रहते हैं और जिसकी साधना में मद्य, मांस, मैथुन, मत्स्य, मुद्रा - पंचमकार का सेवन किया जाता है। ऐसा सोचना - समझना उन लोगों के लिए स्वाभाविक है, जिन्होंने स्वयं तन्त्रविद्या का अध्ययन नहीं किया है और न किसी तन्त्रविद् से समाधान या बोध प्राप्त किया है। तन्त्रविद्या महज जादूगरी चमत्कार की विद्या है–यह मानने वाले भी दोषी नहीं कहे जा सकते। क्योंकि तन्त्रविद्या लुप्त होती जा रही है। उसके गुह्य रहस्य गुहा-निहित ही हैं, तंन्त्र-यन्त्र के नाम पर व्यवसाय चल पड़ा है। चमत्कार को ही सिद्धि बतलाकर भ्रान्ति उत्पन्न की जा रही है।

यद्यपि तन्त्र-विदों, रहस्य-विद्या के ज्ञाताओं और सिद्ध पुरुषों, महात्माओं की कमी नहीं है, किन्तु देश-काल के अनुसार वस्तुतत्त्वविवेक के प्रचार-प्रसार की कमी है।

आगम विद्या के डामर, यामल और आगम तीन भेद हैं। डामर तन्त्र में मारण, मोहन, वशीकरण आदि प्रयोग हैं, जिनका परिगणन साधना के अन्तर्गत नहीं किया जाता है। यामल और आगम योग-शक्ति और मन्त्र शक्ति प्रधान हैं। इनमें साधना ही मुख्य है। योग और मन्त्रबल द्वारा साधक कुण्डलिनी जाग्रत कर जीवन्मुक्त बन जाता है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत यामल और आगम के ही प्रयोग तथा साधना का

विवेचन किया गया है, डामर का नहीं

मन्त्र-साधना के दो उद्देश्य हैं - १. विश्व-विज्ञान और २. सांसारिक बन्धनों से मुक्ति - **मननात् विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात्।** मन्त्र शब्द की निरुक्ति करते हुए मनन से विश्व-विज्ञान का अर्थ और त्र से सांसारिक बन्धनों से त्राण का अर्थ-बोध कराया गया है। तात्पर्य यह कि जो विश्व-विज्ञान कराये और सांसारिक बन्धनों से छुटकारा दिलाये वह 'मन्त्र' है।

प्रणव, बीज, कूट, अक्षर, पल्लव आदि मन्त्र के अंग हैं। मन्त्र में इनका संयोजन किया जाता है और मन्त्र-साधना में जो विशिष्ट प्रकार के ध्यान किये जाते हैं और शक्ति, गति, क्रियाशीलता उत्पन्न करने के लिए जो न्यासादि कर्म किये जाते हैं वे मन्त्र के सूक्ष्म तत्तव हैं। मन्त्र - साधना का एक व्यवस्थित विधान है। उस विधान में आलस्य, उपेक्षा, नियम-भंग, स्वेच्छाचारिता का कोई स्थान नहीं है। मन्त्र-साधना तभी सिद्धि प्राप्त करती है, जब साधक संयम, नियम, अनुशासन, सदाचार-सम्पन्न होकर साधना करता है। प्रायः यह देखा जाता है कि लोग जीवनभर साधना-रत रहते हैं, किन्तु उन्हें अभीष्ट सिद्धि नहीं मिलती है, इसका कारण साधना में संयम-नियम का अभाव और मन की चंचलता ही मुख्य है।

सिद्धि का साक्षात्कार न होने का एक और कारण जन्मान्तर के संस्कार भी हैं। पूर्वजन्म के दोषों का निराकरण किये बिना यदि साधना की जाती है, सिद्धि खण्डित वा विफल बनती है। सुना जाता है कि अखण्ड विद्वान्, अशेष शास्त्र निष्णात, परमसिद्ध स्वामी भास्करानन्द सरस्वती गृहस्थ जीवन में कानपुर जिले के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। विद्वान् और संयमी, अयाच्य बाह्मण थे वे, किन्तु संपत्ति विहीन दरिद्र थे। दरिद्रता दूर करने के लिए उन्होंने गायत्री का पुरश्चरण प्रारम्भ किया। बड़े संयम - नियम से चौबीस लक्ष गायत्री का पुरश्चरण उन्होंने किया, किन्तु कोई उपलब्धि न हुई तो पुनः चौबीस लक्ष का जप संकल्प किया। इसी बीच उनकी एकमात्र कन्या का देहान्त हो गया और पत्नी भी चल बसीं। उन्हें बड़ी ग्लानि हुई, जब कोई रह ही न गया तो फिर घर में रहने से क्या लाभ? उन्होंने गंगा-तट पर जाकर स्वतः 'प्रैष्य मन्त्र' का उच्चारण कर संन्यास ले लिया। संन्यास लेते ही भगवती गायत्री साक्षात् प्रकट होकर बोलीं - **''वरं ब्रूहि !''** स्वामी जी ने कहा - ''भगवति, जब मुझे कामना थी, तब आप प्रकट नहीं हुई और अब संन्यास लेने के बाद मुझमें कोई कामना-वासना नहीं रही, तो फिर मैं वरदान लेकर क्या करूँगा; मुझे कुछ न चाहिए।'' भगवती बोलीं - ''पूर्वजन्म के दोषों के कारण यदि तुम जीवन भर मेरी साधना करते तब भी मैं प्रकट न होती, किन्तु संन्यास लेने पर तुम्हारे पूर्वजन्म के दोषों के क्षय हो जाने के कारण जो तुमने साधना की है, वह फलवती

हुई। तुम्हारे न चाहने पर भी तुम्हें सिद्धि प्राप्त हुई, उसका उपयोग तुम परमार्थ में करो।''

इसीलिए तन्त्र-साधना में **क्रम-दीक्षा** का विधान रखा गया है। क्रम-दीक्षा-पूर्वक साधना करने से सिद्धियों के द्वार खुल जाते हैं।

मन्त्र विद्या के उत्स आगम और निगम

जितने भी तन्त्र-मन्त्र हैं, सबके मूल उत्स-आगम और निगम हैं। आगम और निगम का अभेद सम्बन्ध है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रमाणपूर्वक बताया गया है और यह भी बताया गया है कि पंचमवक्त्र भगवान् शिव ने अपने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊर्ध्वमुख से जिन मन्त्रों का उपदेश उनके उपासना - कर्मों के साथ दिया है, वे पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय और ऊर्ध्वाम्नाय कहे जाते हैं। आगम का दूसरा नाम आम्नाय है, पंचमवक्त्र शिव के अधोमुख से जो मन्त्रोपदेश प्राप्त हुआ वह 'अधराम्नाय' कहा जाता है। इस प्रकार मन्त्र विद्या के मूल स्रोत ये छह आम्नाय हैं। इन्हें **'आम्नायषट्क'** कहा जाता है। आम्नायषट्क में से पूर्वाम्नाय और दक्षिणाम्नाय के योग से **आग्नेयाम्नाय**, दक्षिणाम्नाय और पश्चिमाम्नाय के योग से **'नैर्ऋताम्नाय'**, पश्चिमाम्नाय और उत्तराम्नाय के योग से **'वायव्याम्नाय'** और उत्तराम्नाय और पूर्वाम्नाय के योग से **'ऐशानाम्नाय'** का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार तन्त्र-विद्या के दस आम्नाय प्रसिद्ध हैं। इन्हीं आम्नायों में सभी प्रकार के मन्त्रों की साधना का विस्तृत विधान मिलता है।

जिस प्रकार वेद अपौरुषेय हैं, उसी प्रकार आगम भी अपौरुषेय हैं। 'आगमों का उपदेश भगवान् शिव ने दिया है - यह प्रतीकात्मक कथन है, जैसे, मन्द्रजिह्व परमात्मा से उच्चरित वैदिक ऋचाएँ समस्त ब्रह्माण्ड में गूँजती रहती हैं, उसी प्रकार आगम ऋचाएँ भी गूँजती रहती हैं, जिन्हें ध्यानावस्थित ऋषियों ने प्रकट किया - प्राप्त किया। ऋषियों ने वेदों, - आगमों का साक्षात्कार किस प्रकार किया - यह एक संप्रश्न है। इसके समाधान में यही कहना है कि ऋषियों ने ऋचाओं को सुनने के लिए **'श्रवणदिव्यता'** प्राप्त की थी। आगमशास्त्रीय प्रमाणों से विदित है कि स्रोतों में दिव्यता का आविर्भाव **बहिर्वृत्तिजन्य** और अन्तर्वृत्तिन्य- इन दो साधनों से होता है। बहिर्वृत्तिजन्य आधार नादब्रह्म की उपासना है। निरन्तर नादब्रह्म की उपासना - आराधना करते रहने से इन्द्रियों की वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं- **सदा नादानुसन्धानात् संक्षीणा वासना भवेत्।**

नाद का तात्पर्य अव्यक्त ध्वनि है। वर्णात्मक व्यक्त वाणी से अव्यक्त ध्वनि में महती शक्ति रहती है। इस सिद्धान्त का खुलासा हमें अथर्ववेद (१०/७/२१) के इस

कथन से मिलता है, जो स्तम्भरूप ब्रह्म की असत् और सत् - इन दो शाखाओं का निरूपण करता है। अथर्ववेद असत् शाखा की परमशाखा मानता है, जिससे बृहन्त नाम देव पैदा होते हैं (अथर्व० १०/७/२५)। और दूसरी सत् शाखा अवर शाखा है। आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में असत् शक्ति (इनर्जी) है और सत् निष्क्रिय तत्तव (मैटर) है। एक गति को सूचित करता है, दूसरा स्थिति को, सारांश यह कि असत् निराकार है, अव्यक्त है, शक्ति है और सत् मैटर है, साकार रूप में व्यक्त है, रूप वाला है किन्तु निष्क्रिय है।

आगम - मन्त्रों को ऋषियों ने श्रवणदिव्यता प्राप्त कर श्रवण किया और वह मन्त्र उनके हृदय में प्रकट हुए। वस्तुतः श्रोत्र का सम्बन्ध आत्मा से होता है। प्राण-वायु और वाणी का मेल, चक्षु और मन का मेल तथा श्रोत्र और आत्मा का मेल होता है-

प्राणञ्च तद्वाचञ्च विहरति, चक्षुश्च तन्मनश्च विहरति,

श्रोत्राञ्च तदात्मानञ्च विहरति। (ऐतरेय ब्राह्मण ६।२४)

इससे स्पष्ट है कि आत्मा का सम्बन्ध हृदय से रहता है, इसलिए श्रोत का ।म्बन्ध हृदय से होता है।

श्रोत्रेन्द्रिय में एकाग्रता लाकर ऋषियों ने अनवरत दिव्यता प्राप्त की थी। श्रोत्रेन्द्रिय को एकाग्र करने की विधि तन्त्र-विद्या में इस प्रकार है- 'ध्वनि तरंगें ज्यों-ज्यों आकाश में दूर होती जाती हैं, त्यों - त्यों वह मन्द्र, मन्द्रतर रूप धारण करती हैं। ६ ़ीमी, मन्द होती ध्वनि तरगों को देर तक ग्रहण करने या सुनने में मन एकाग्र और केन्द्रित होता जाता है तथा श्रोत्र की प्रसुप्त शक्ति उत्तेजित और जाग्रत होने लगती है। श्रोत्र में मन जब एकाग्र हो जाता है तो अपादान क्रिया निर्बाध गति से प्रारम्भ होती है। अपादान क्रिया जब सुचारु रूप से क्रियाशील होती है तो श्रोत्र के सूक्ष्म से मल विनष्ट हो जाते हैं, श्रोत का आवरण नष्ट हो जाता है, जिससे एकाग्रता और संयम की सिद्धि होती है। श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में जब एकाग्रता और संयम आ जाता है तब उससे दिव्य श्रोत्र की उत्पत्ति होती है-

श्रोत्रकाशयोः सम्बन्धसंयमाद् दिव्यश्रोत्रम्।

- योगदर्शन, विभूतिपाद

तन्त्रशास्त्र में प्राणविद्या ओर आथर्वण प्रयोग

अमृतत्व की प्राप्ति के लिए प्राणविद्या की साधना का विधान तन्त्रशास्त्र में मिलता है। अथर्ववेद से ज्ञात है कि प्राचीन ऋषिगण सोम, मधु तथा दुग्ध पान करके ब्रह्मवर्चस्व तथा अमृत्व की प्राप्ति किया करते थे। वे प्राणविद्या की सतत उपासना में निरत रहते थे। सनातन योगविद्या का ही दूसरा नाम प्राणविद्या है। प्राण के रहस्यों

का ज्ञान प्राप्त करना ही योग सम्प्राप्ति है। प्राणायाम के द्वारा दीर्घायुष्य प्राप्त करने की विधि को अथर्ववेद दैवी चिकित्सा कहता है। प्राण और अपान इन दो अश्विकुमारों को भली-भांति रोक रखने से पुनः सुस्वास्थ्य, दीर्घ जीवन, पुनयौवन प्राप्त किया जा सकता है। प्राणायाम से शरीरस्थ रस पुनः यविष्ठ बनते हैं। प्राण विद्या का रहस्य बोध प्राप्त करने के पश्चात् ऋषियों ने योगविद्या का आविष्कार किया जो अमृत्व प्रदान करती है।

मणि-मन्त्र औषधि-तन्त्र प्रधान अथर्ववेद में उल्लिखित मन्त्रविद्या का यदि वर्गीकरण किया जाए तो वह पांच प्रकार की होती है–

(१) **संकल्प, आवेश।**

(२) **अभिमर्श और मार्जन।**

(३) **आदेश।**

(४) **मणिबन्धन।**

(५) **कृत्या और अभिचार प्रयोग।**

(१) दुःस्वपन, दुरित, पाप और द्रष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए संकल्प अथवा आवेशमन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इसका मन्त्र यह है–

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षा वनानि गृहेषु मे मनः।। ६।४५।१

यह दुःस्वप्न-नाशक सूक्त का पहला मन्त्र है। इस सूक्त में तीन मन्त्र हैं। दुःस्वप्न-नाशन सूक्त के तीनों मन्त्रों को पढ़ते हुये कायिक, वाचिक, मानसिक पाप-जन्य व्याधियों को दूर करने के लिए रोगी के सिर पर दाहिना हाथ रखकर उसके नीरोग होने का संकल्प मन में करके प्रयोग करने से रोगी व्याधिमुक्त हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति निरन्तर श्रम-साधना करने के बावजूद अपने कार्य-व्यापार में सफलता नहीं प्राप्त करता है, अथवा ठगों, धूर्तों, दुष्टों द्वारा उसका बना-बनाया काम बिगाड़ दिया जाता है तो सफलता प्राप्त करने के लिए अथर्ववेद के केवल इस मन्त्रांश को पढ़ते हुए दृढ़ निश्चय रखकर कार्यारम्भ किया जाये तो निश्चित सफलता मिलती है–

कृतम् मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।

अनेक प्रकार के मानसिक रोगों को दूर करने के लिए अथर्ववेद का निम्नांकित एक ही मन्त्र पर्याप्त है–

अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम पुरश्चर।

परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवितो मन'–२०।९६।२४

इस मन्त्र को पढ़ते हुए रोगी पर शक्तिसंपात किया जाये अथवा उसके नीरोग होने का संकल्प रखकर मन्त्र पढ़ते हुए रोगी के शरीर पर हाथ फेरा जाये तो निश्चय ही रोग दूरहोते हैं। यदि यह दोनों क्रियाएं करने वाला कोई व्यक्ति न मिले तो फिर विधिवत् संकल्प कराकर इस मन्त्र का २१०००. जप कराने से रोग दूर हो जाता है।

जो व्यक्ति कायर, कुटिल, कामी, कमजोर दिल हो, उसे वर्चस्वी बनाने के लिए अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के २२वें सूक्त के छह मन्त्रों का जप संकल्पपूर्वक करना चाहिए।

(२) अभिमर्श का तात्पर्य शरीर-संस्पर्श है। अभिमर्श द्वारा समस्त शरीरिक, मानसिक रोग दूर होते हैं। अभिमर्श एक विद्या है, जिसके मूल मन्त्र ये हैं–

अयं मे हस्तो भगवान् अयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः।
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचा पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां स्वाभिमृशामसि।

हस्ताभिमर्श द्वारा शारीरिक और मानसिक रोग दूर करने की और भी आथर्वण विधियं है। जैसे–पुरश्चरण करना, कपिला गाय की पूंछ या चंवरी गाय की चंवर अथवा मोर पंख से मन्त्र पढ़ते हुए झाड़ना, जल से छींटे मारना।

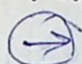
(३) आदेश मन्त्रों का प्रयोग मस्तिष्क विकार और मानसिक रोग दूर करने के लिए किया जाता है। आदेश मन्त्र का दूसरा नाम **संवशीकरण** भी है। विकारों को दूर करने के लिए मन्त्रों को पढ़ते हुए भावना की जाती है।

मन्त्र-

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।
तद् आवर्तयामसि मयि वो रमतां मनः॥

जिनकी चित्तवृत्तियाँ चंचल होती है। किसी एक काम में मन न लगाकार दूसरा, तीसरा, चौथे काम प्रारम्भ करते ओर बन्द करते रहते हैं, जिन्दगी के प्रति जो लापरवाह होते हैं, बिना सोचे-समझे हानिकर काम कर बैठते हैं, किसी को सुझाव न मानकर मनमानी करते हैं, उद्दण्ड, दुर्विनीत, असमीक्ष्यकारी तथा उन्मत्त, पागल व्यक्तियों पर निम्नांकित मन्त्र का प्रयोग करने से तुरन्त लाभ होता है।

मन्त्र- .✗. सम्मोहन का अमोघ मन्त्र



***अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनुचित्तेभिरेत।**
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मनि एत।

—३।८।६

इस मन्त्र को पढ़ते हुये प्रयोक्त रोगी को आदेश दे।

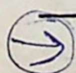
मन्त्र का भाव यह हैं—मैं तुम्हारे मन और चित्त को अपने मन और चित्त के साथ मिलता हूं। तुम्हारे हृदय को मैं अपने वश में करता हूं, जिससे तुम मेरे आज्ञाकारी, अनुयायी बनकर रहो।

इस प्रकार मन्त्र द्वारा आदेश देते हुए प्रयोक्त उन्मादी (पागल), उद्दण्ड, डाकू, अनाचारी, आयतायी, हत्यारे, आलसी, चिन्तातुर और ईर्ष्यालू को अपना अनुगत बना ले जब वह निम्नांकित मन्त्र का प्रयोग उस पर करे—

अग्निष्ट निशमयनु यदि ते मन उद्युतम्।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसि।

इसकी प्रयोग विधि यह है - आम की लकड़ियों में अग्नि को प्रज्वलित कर कपूर, चन्दन और तुलसी के बीच से उपर्युक्त मन्त्र को पढ़ते हुए १०८ आहुति देनी चाहिए। रोगी को सामने बैठा लेना चाहिए। हवन के बाद हवन के धुआं से रोगी का अभिमर्शन मन्त्र पढ़ते हुए करना चाहिए। यह बहुत ही सफल और अमोघ प्रयोग है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद में और भी अनेक मन्त्र आदेश विद्या के मिलते हैं-जीर्णज्वर, मन्थर ज्वर, एकान्तरा, तिजारी और चौथिया ज्वर तथा राजयक्ष्मा, आंत्रिक क्षय, स्नोफीलिया, स्नायुदौर्बल्य, लकवा, हृदय रोग, यकृत रोग दूर करने के लिए अथर्ववेद (५।३०।८-९) के मन्त्रों को विधिवत् प्रयोग किया जाये। रोगों को दूर करने के अलावा उन्नतशीनल जीवन, यशस्वी जीवन, पदोन्नति आदि ऐश्वर्य, समृद्धि सम्बन्धी प्रयोजनों के लिए अथर्ववेद (८।१।६) के आदेश मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

(४) मणि बन्धन का प्रयोग रोगों के निवारण के अतिरिक्त प्रत्येक प्रयोजनों की सिद्धि के लिए किया जाता है। अथर्ववेद के मुख्यतया मणि का तात्पर्य ताबीज है, जिसमें मन्त्र सिद्ध औषधियां भरी जाती है। इनके अतिरिक्त शिलाजन्य-हीरा, पन्ना मणिक, पुखराज, चन्द्रकान्त, सूत्रमणि आदि रत्नों और मणियों का प्रयोग अथर्ववेदीय



*इस मन्त्र का प्रयोग मैंने सम्मोहन कर्म में किया है। पूरी सफलता मिलती है। मेरे अनुभव में सम्मोहन का यह अमोद्य मन्त्र हैं।-लेखक

मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर धारण करने से लाभ पहुंचने का अनुभव किया जा चुका है।

अथर्ववेद में उल्लिखित मुख्य मणियां ये हैं–

अस्तृतमणि (१९।४६), औदुम्बर मणि (१९-३१), जगिड्मणि (१९/३५-३६), दर्भमणि (१९/२८-२९-३०), प्रतिसरोमणि (८।५) शतवार मणि (१९।३६), शंखमणि (४।१०), वरणमणि (१०।३) इत्यादि।

अथर्ववेद शंखमणि समुद्री सीपी से उत्पन्न होती है–यह एक प्रकार का मोती है। इसके धारण करने से मानसिक विकार, मानसिक चिन्ता, मस्तिष्क और बुद्धि सम्बन्धी विकार दूर होते हैं।

जगिंड मणि–जगिंड एक वृक्ष का नाम है। ब्लूम फील्ड कीथ, स्मिथ, वेबर जैसे पश्चात वेदविदों तथा उन्हीं के अनुयायी भारतीय विद्वानों का कहना है कि वेद में कुछ ऐसे है। जो विदेशी है और उनका अर्थ नही प्रकट हो सका है। ऐसे शब्दों की सूची में पहला नाम जगिंड का रखा गया है। वस्तुतः यह भारतीय शब्द हैं। जगिंड का दूसरा नाम अर्जुन वृक्ष है। इसे बुन्देलखण्ड में कौहा और ब्रज प्रदेश में कौळ कहा जाता है। अर्जुन वृक्ष का मणि धारण करने से ह्रदय रोग, मानसिक रोग और जलीय तत्व सम्बन्धी विकार, त्रिदोषजन्य विकार, स्नायुदौर्बल्य ज्वर, नेत्र विकार दूर होते है। इसी तरह सभी मणियाँ अपनी-अपनी विशिष्टता, उपयोगिता और महत्ता रखती हैं।

(५) कृत्यादूषण और अभिचार कर्म के प्रभाव को दूर करने के लिए अथर्ववेद (१०।१।१।३२) के ३२ मन्त्रों द्वार। हवन, अनुष्ठान किया जाता है। इसके विधान शौनकीय शाखा और कौशिक सूत्र में विस्तार से मिलते हैं। कृत्या परिहरण के लिए अथर्ववेद (५।१४) के १३ मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है।

कर्मज व्याधियों के निवारण के लिए अथर्ववेदीय शान्ति पुष्टि कर्म

क्षेत्रीय रोग–वंश परम्परागत व्याधियां, भूतावेश, मानसिक रोग का परिगणन कर्मज व्याधियों के अंतर्गत किया गय है। इन व्याधियों से ग्रस्त मनुष्य दीन-हीन, जर्जन, असफल बनकर जीवन भर हताश और निराश रहता है। कर्मज व्याधियों के निवारण के लिए और समृद्धि-प्राप्त के लिए अथर्ववेद में मणि-मन्त्र-ओषधि-तन्त्र के विविध विधान मिलते हैं। रक्षाकरण्ड (गण्डा), मणि (यन्त्र-ताबीज), मणि बन्धन प्रयोग के अंतर्गत है। अथर्ववेदीय मन्त्रों द्वारा अभिषेक, अभिमर्षण, मार्जन, भूत शुद्धि, तत्व शुद्धि, पुरश्चरण आदि मन्त्र विधान के अंतर्गत है और विविध प्रकार के टोटका तन्त्र-विधा के अन्तर्गत है। भूतावेश एक प्रकार का कीटाणुजन्यरोग है। भूत कीटाणुओं का प्रवेश जिस व्यक्ति से होता है, उसका मन-मस्तिष्क विकृत हो जाता है, वह वैसी ही हरकतें करता है, वैसे ही बात करता है जैसे भूत-प्रेत बाधा ग्रस्त

व्यक्ति करता है, प्रायः भूतरोग ग्रस्त व्यक्ति के रोग का उचित निदान न कर पाने के कारण उसका औषधोपचार न कर भूतप्रेत बाधा निवारण के उपाय किये जाते हैं। ऐसे लक्ष्ण होने पर किसी आथर्वणिक व्यक्ति से निदान कराकर उपचार कराना उचित है।

यहाँ पर कुछ प्रमुख रोगों के निवारण के लिए अथर्ववेद के उन मन्त्रोंका निर्देश किया जा रहा है। जिनके प्रयोग से रोग समूल नष्ट होते है।–

तक्म (ज्वर) नाश के लिए अथर्ववेद के मन्त्र–१, २५; ५-४' ६-२०; ७-११, १९-३९

जलोदर रोग के लिए अथर्ववेद के मन्त्र–१-१०; ६-२४; ७-८३

आस्राव दूर करने के लिए अथर्ववेद के मन्त्र–१-२; २-३; ६-४४

क्षेत्रीय रोग दूर करने के लिए अथर्ववेद के मन्त्र–२-८, १०; ३-७

विष दूर करने के लिए अथर्ववेद के मन्त्र–५-१३, १६; ६-१२; ७-५६, ८८

कृमि दूर करने के लिए अथर्ववेद के मन्त्र-२-३१, ३२; ५-३३

उन्माद रोग दूर करने के लिए अथर्ववेद के मन्त्र–६-१११

व्रण दूर करने के लिए अथर्ववेद के मन्त्र–४-१३; ५-५

अस्थि टूटी हुई हड्डियाँ जोड़ने के लिए अथर्ववेद के मन्त्र–४-१२; ५-५

कहीं-कहीं सभी प्रकार की व्याधियाँ दूर करने के लिए जल और वनस्पतियों द्वारा मन्त्रोपचार बतलायें गये हैं। अथर्ववेद (६-२५, ६-९१, ६-९५) के मन्त्रों में वरण (बन्ना) वृक्ष और अश्वत्थ (पीपल) के वृक्ष द्वारा और अभिमन्त्रित जल से आचमन और अभिषेक द्वारा रोगों को दूर करने के उपाय बताये गये हैं। शौनकीय शाखा में इन औषधियों के प्रयोग, देवताओं के आवाह्न, स्तवन, हवनपूर्वक किये जाने वाले पुरश्चरणों का विस्तृत विधान मिलता है।

आरोग्य लाभ तथा अपमृत्यु के निवारण के लिए अथर्ववेद में रक्षाकाण्डों का बड़ा महत्व है। ये रक्षा सूत्र सोने के तारों, रेशमी धागों से बनाये जाते हैं। रक्षा काण्ड के अंतर्गत यन्त्र भी आते हैं, जिन्हें मणि कहा गया है, वे मणियाँ वृक्षों, वनस्पतियों और औषधियों के पत्रों, पुष्पों, मूलों, छालों को भरकर मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित कर धारण की जाती है, मोती अथवा उसकी शुक्ति (सीप) को भी धारण करने का विपधान अथर्ववेद (४-१०) में मिलता है। रक्षा सूत्रों को अथर्ववेद (१-२५) के मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित कर और अंजनमणि को अथर्ववेद (४-९, १९, ४४-४५) के मन्त्रों से अभिषिक्त, अभिमन्त्रित कर धारण किया जाता है। भूतों, प्रेतों, राक्षसों, ब्रह्मराक्षसों को बाधा दूर करने के लिए तथा अभिचार कर्म, कृत्या-प्रतिहार कर्म के लिए अथर्ववेद में बहुत ही अमोघ मन्त्र हैं, इन प्रयोगों के मन्त्रों का वर्गीकरण कर निम्न प्रकार से

विभक्त किया जा सकता है–

(१) भूत-प्रेत, पिशाच बाधा निवारण मन्त्र

(२) राजकर्म सिद्धिदाता मन्त्र

(३) शत्रु निवारण मन्त्र

(४) स्त्री सम्प्राप्ति-मन्त्र

(५) उच्चपद प्राप्ति मन्त्र

अर्थवेद के अभिचार मन्त्रों द्वारा भूतों, प्रेतों और शत्रुओं के संहार के लिए देवताओं का आवाहन किया जाता है। इन अभिचार कर्मों में गण्डा, ताबीज अथर्ववेद (२-१४, ३९; ५-७-८-२७-२९; ६-२-३-४; ७-११०) के मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित कर धारण कराते ही तुरन्त लाभ होता है। वनस्पतियों द्वारा निर्मित मणियों (ताबीजों) का उल्लेख अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर मिलताहै। अपामार्ग (४, १७-१९, पलाश (६-१५), वरण (१०, ३) खदिर (१०, ६) और दर्भ (१९, २८-३०) के मन्त्र-प्रयोग मेलते हैं।

स्त्रियों को वश में करने के उपाय अथर्ववेद में अनेक प्रकार के हैं। स्त्री कर्माणि में स्त्रियों का सम्मोहित करने के प्रयोग दो प्रकार के हैं-एक तो विवाह या गर्भ धारण अथवा सुख प्रसाव से सम्बन्धित हैं और दूसरा स्त्रियों को वश में करने, सोतों को मार डालने तथा प्रेमी और प्रेमिता में आसक्ति पैदा करने से सम्बन्धित प्रयोग हैं, इससे अन्य ऐसे भी प्रयोग हैं, जिनके द्वारा पुरुषों को नपुंसक बना दिया जाये और स्त्रियों को बन्ध्या बना दिया जाये (६-१३८, ७-९० तथा १-१४)।

विवाह गर्भधारण आदि प्रयोजनों के लिये अथर्ववेद (३-२३, ६-११-१७-८१; २,१४,३,१८, ७, ३५, ११३, ११४, तथा १-३४; २-३०; ३-२५, ६-८, ९, ८९, १०२, १२९, १३०, १३९, ७-३८) के मन्त्र बहुत ही सफल सिद्ध हैं।

सौमनस्य–आपसी सद्भाव, आत्मीयता लोकप्रियता बढ़ाने के लिए तथा सामाजिक प्रतिष्ठा और सफलता प्राप्त करने के लिएअथर्ववेद के सौमनस्य सूक्त के मन्त्र अव्यर्थ प्रमाणिक हुए हैं। इस सूक्त के मन्त्रों के प्रयोग से पारिवारिक एकता और सौहार्द बढ़ता है। परस्पर कलह, फूट, मतभेद दूर होते हैं

क्रोध शमन-के लि अथर्ववेद (३-३०) के मन्त्रों का प्रयोग और दुर्भाव नष्ट करने के लिए अथर्ववेद (६-४२-४३; ६४, ७३, ७४ तथा ७, ५२) के मन्त्रों के प्रयोग करने चाहिए।

वर्चस्व कायम करने के लिए, शास्त्रार्थ सभा में विजय प्राप्त करने के लिए अथर्ववेद के (२-२७) और किसी भी इच्छा को अपने अनुकूल बनाने के लिए

अथर्ववेद (६-९४) में प्रयुक्त मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

राजकर्म—प्रशासन, राजनीति से सम्बद्ध क्रियाओं को, विधियों को अथर्ववेद में **राजकर्माणि** कहा गया है। राजकर्म के अन्तर्गत राज्य, सत्ता प्राप्त करना, पदारूढ़ होना, सर्वोच्च पद के लिए निर्वाचित होना, निर्वासित राष्ट्राध्यक्ष को पुनः सत्तारूढ़ करना, दूसरे देशों के राष्ट्राध्यक्षों को अपने अनुकूल बनाना, उन पर प्रभाव कायम करना तथा शासन-सत्ता की सुदृढ़ बनाना है। इनके अतिरिक्त ओज, प्रभाव, सश और विजय प्राप्त करने के विषय भी राजकर्म के अन्तर्गत है। इन प्रयोजनों की सिद्धि के लिए अथर्ववेद के निम्नांकित मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए-

पदाभिषिक्त होने के लिए ४-८

राष्ट्राध्यक्ष निर्वाचित होने के लिए ३-४

पदच्युत राष्ट्राध्यक्ष को पुनः सत्तारूढ कराने क लिए ३-३

दूसरे देशों के राष्ट्राध्यक्षों को अपने प्रभाव में लाने के लिए ४-२२

शासन-सत्ता को सुदृढ़ बनाने के लिए ३-५

ओज और प्रभाव कायम करने के लिए ६-३८

यश प्राप्त करने करने के लिए ६-३९

संग्राम में विजयी होने के लिए १-१९, ३-१, ३-२, ५-२०-२१, ६-९७-९९, ८८, ११, ९, १०।

ऐश्वर्य-प्राप्ति, सन्तति-लाभ, पशु-प्राप्ति, गृह-निर्माण, क्षेत्र प्राप्ति, व्यापार वृद्धि, सर्पभय, निवारण तथा बाधाओं, विपत्तियों के निवारण के लिए क्रम से अथर्ववेद के १-१३, ३-१२, १३-१५, १६, १७, २४, ४, ३, ३८; ६-५५, ५६, ९२, १०६, १२८, ७, ९, ५०, १०, ४ सूत्रों और मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

जिन पुराकृत अपराधों से कर्मज व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, विपत्तियां और दरिद्रता घेरे रहती हैं। हर उपाय और प्रयास विफल हो जाया करते हैं, शरीर व्याधिग्रस्त रहता है, मिथ्यां कलंक लगाते हैं, दुःस्वप्न होते हैं, चिन्ता, शोक, भय, व्याधि व्याप्त रहते हैं, उन सबके निवारण के लिए प्रायश्चित विधान अभर्ववेद (६-११४, ४५, ११५, २६, २७, २९, ११२, ४६ और ७-११५) के सूक्तों और मन्त्रों में हैं।

उपर्युक्त सभी विधान शन्ति और पुष्टि कर्म के अन्तर्गत आते हैं

यहां यह स्पष्ट कर देना उचित है कि वैदिक मन्त्र स्वतः सिद्ध हैं। इन्हें सिद्ध करके जगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अथर्ववेद के मन्त्रों की प्रयोग विधि शोनकीय शाखा और कौशिक सूत्र में विस्तारपूर्वक मिलती हैं। उन्हीं के आधार पर कुछ स्वानुभूत प्रयोग यहां सर्वसाधारण के लाभ के लिए दिये जा रहे हैं—

समृद्धि की प्राप्ति के लिए

धन, पद ऐश्वर्य और यश की प्राप्ति के लिए उदुम्बर (गुलर) की जड़ को रवि-पुष्य योग में लाकर सोने की ताबीज में भरकर गंगा जल से ताबीज को अभिषिक्त करने के बाद नीचे लिखे अथर्ववेदीय मन्त्रों से १०८ बार हवन करें

मन्त्र –

ॐ पुष्टिरसि पुष्ट्य मा समङ्धि गृहमेघी गृहपतिं मा कृणु।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः
सर्ववीरं नियच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्जे अहं त्वाम्।।

१०८ आहुतियां देने के बाद लाल रंग के शुद्ध रेशमी धागे में पिरोयी हुई उदुम्बर मणि (ताबीज) के हवन के धुएं से धूपित कर ऊपर लिखे हुए मन्त्रों को पढ़ते हुए ताबीज को दाहिनी भुजा में बांधना चाहिए।

हवन-सामग्री

लाल चन्दन का बुरादा, सुफेद चन्दन का बुरादा, अगर का बुरादा, तगर का बुरादा काले तिल, जौ, छड़, छड़ीसला, सुगन्धबाला, कपूर, गूगुल, केसर, नागरमोथा, घी, शक्कर, चावल और पंच मेवा तथा आम की लकड़ी।

पारिवारिक सुख-सौहार्द-शान्ति एकता के लिए

जिस परिवार में अपसी कलह, मतभेद और विघटन की स्थिति हो, उस परिवार में सुख, सौहार्द, एकता, परस्पर, विश्वास, प्रेम पैदा करने के लिए श्रावणी पूर्णिमा से लेकर आषाढ़ी पूर्णिमा तक एक वर्ष पर्यन्त गृहपति नीचे लिखे मन्त्रों से १०८ हवन नित्य-प्रति करो। स्वयं न कर सके तो सुयोग्य वैदिक विद्वान् से करायें।

मन्त्र–

स हृदयं सौमनस्यमविद्वेष्यं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यतवत्सं जातमिवाध्न्या।।
अनुब्रतः पितः पुत्रो मात्रा भवतु समनाः।
जाया पत्ये मधुमर्ती वाचम् वदतु शान्तिवाम्।

उपर्युक्त हवन-सामग्री से हवन करना चाहिए। यदि पारिवारिक कलह-विद्वेष पीढ़ियों का न हो, नयार ही हो तो केवल ४१ दिन तक ही हवन करने से पारिवारिक सुख-शन्ति प्राप्त होती है।

क्रोध शान्ति

किसी व्यक्ति-विशेष्ज्ञ के क्रोध से परिवार बिगड़ता हो अथवा किसी और के क्रोध को शान्त करने से अपना हित साधन होता हो तो २१ दिन तक नीचे लिखे मन्त्रों में उपर्युक्त हवन-सामग्री द्वारा हवन करने से क्रोध का अपसारण होकर परस्पर सौहार्द, मित्रता, आत्मीयता का भाव बढ़ता है।

मन्त्र–

अव ज्वामिव धन्वनो मन्यु तनोमि ते हृदः।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायावि सचावहै।।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामिस यो गुरुः।
अभितिष्ठामि ते मन्यु पार्ष्ण्या प्रपदेन य।
यथावशो न वादिष्यो मम चित्तमुपायसि।

असाध्य रोगापशमन

कैंसर, कारबंगल, नासूर, भगन्दर, एड्स आदि असाध्य रोगों को दूर करने के लिए अथर्ववेद के रण सूक्त के मन्त्र अमोघ सिद्ध हैं। रोग शमन करना हो तो रोगी के जिस अंग में रोग या घाव हो, उस अंग पर नयी मूँज की रस्सी से बाँधकर अपामार्ग (चिचिड़ा) की जड़ से रोगी का शरीर संस्पर्श कराते हुए नीचे लिखे सूक्त-मत्राों को पढ़ना चाहिए। २१ दिन तक प्रतिदिन यह क्रिया करने के बाद प्रतिदिन रोगी को एक किलो दही में काली तुलसी की ३६ पत्तियाँ मथकर पिलाना चाहिए अथवा भिलावाँ के बीजों को दो तोला चूर्ण पज्ञतः काल जल से सेवन कराया जाये।

सूक्त–

ॐ विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्षसम्।
ज्या के परिणोनमश्मानं तन्वं कृधि
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्यां कृधि।।
वृक्षं यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्तयृभुम्।
शरुमस्मद्यावयदिद्युमन्द्रि
यथा द्यां चव पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम्।
एवं रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत

यदि कोई व्यक्ति ज्वंरातिसार अथवा मूत्रातिसार रोग से पीड़ित हो तो उसकी कमर में मूँज बांधकर गंगा जी की रेणुका अथव बाँबी की मिट्टी घोलकर उपर्युक्त सूक्त से अभिमन्त्रित कर पिला दिया जाये और रोगी के पेट, पेडू में घी मल दिया जाये। शीघ्र रोग मुक्त हो जायेगा।

गलित कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ निवारण मन्त्र

यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार के कुष्ठ रोग से पीड़ित हो तो उसे प्रारम्भ में सात दिन तक पंचगव्य पान कराया जाए और कुछ भी भोजन न दिया जाये। सात दिन तक गोमय और गोमूत्र को शरीर भर में मलकर स्नान कराया जाय। सात दिन बाद प्रतिदिर सांयकाल रोगी अमरबेल को पैरों तले तब तक कुचलता रहे। जब तक अमरबेल के रस से पैर भीग नजायें। पंचगव्य पान कराते समय तथा अमरबेल को कुचलते समय चिचिड़ा की जड़ को जल में डुबोकर नीचे लिखे मन्त्रों से रोगी के शरीर में मार्जन करते रहना चाहिए।

मार्जन मन्त्र

ॐ नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्निच।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्।।
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
अत त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानिपातय।।
असतिं ते प्रलय नामास्थानमसितं तव
असिक्न्यम्योषधे निरितो नाशया पृषत्।
अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य य यत्वचि।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेत मनीनशम्।।

६४ दिनों तक यह प्रयोग लगातार करते रहने से हर प्रकार के कुष्ठ रोग समूल नष्ट होते हैं।

अथर्ववेदीय प्रतीकात्मक प्रयोग

अथर्ववेद के प्रतीकात्मक प्रयोगों की बहुलता है। ऐसे प्रयोग सरल और साध्य होने के साथ कर्मज व्याधियों को समूल नष्ट करने में समर्थ होते हैं। जैसे–

(१) जिस शमी वृक्ष पर पीपल उगा हो उस वृक्ष के नीचे जाकर पति और पत्नी अपनी मनोकामना व्यक्त करते हुए वृक्ष को स्पर्श कर अपने मन में यह संकल्प करें कि गर्भाधान होने के बाद पुंसवन संस्कार करके गर्भ पुष्ट होकर जब पुत्र पैदा होगा तो उस बालक का मुण्डन संस्कार यहीं पर आपकी छाया में करायेंगे। मात्र इतना

करने से ही वन्ध्या पुत्रवती होती है।

(२) पलाश (ढाक) के पांच कोमल पत्ते स्त्री के दूध में पीसकर सन्तानहीन स्त्री यदि मासिक धर्म के चौथे दिन स्नान के बाद पिये तो निश्चय ही पुत्रवती होती है।

(३) कार्तिक पूर्णिमा के दिन अपामार्ग के बीच चार आना भर लेकर रगड़ कर साफ कर लिया जाये फिर उन्हें गाय के पाव भर दूध में औंटाकर खीर बनाकर रात भर ओस में रख दिया जाये। प्रातः सूर्योदय से पूर्व उस खीर को खाने से पुराने-से पुराना दमा रोग दूर होता है।

(४) अशोक वृक्ष की ३ कोमल पत्तियां प्रातः काल चबाने से चिन्ता और शोक दूर होते हैं। अशोक वृक्ष की जड़ पास रखने से धनागम होता है। अशोक के फूल पीसकर शहद के साथ चाटने से दुःख दरिद्रय दूर होते हैं।

(५) मधुला जयेष्ठामधु-मुलेठह घिसकर भोजन से पूर्व नित्य चाटने से समस्त उदर विकार दूर होते हैं।

(६) जिस स्त्री को बार-बार गर्भपात होता हो, वह गर्भवती होने पर पलाश के सात कोमल पत्ते प्रति मास के क्रम से गाय के दूध के साथ सेवन करे तो गर्भपात नहीं होता है, क्रम इस प्रकार है-पहले मास सात पत्ते, दूसरे मास छह पत्ते, तीसरे मास पांच पत्ते, चौथे मास चार पत्ते इसी क्रम से हर महीना, एक-एक पत्ता घटाता जाये।

(७) शनिवार के दिन पीपल के वृक्ष का स्पर्श कर ॐ हौं जूं सः इस मन्त्र का १०८ बार जप २१ दिन तक करने से आधि-व्याधि दूर होती है।

(८) स्नान के बाद खड़े होकर सूर्य को अर्ध्य देकर एक सहस्र संजीवन मन्त्र जपने से ४१ दिन में समस्त असाध्य रोग दूर होते हैं।

(९) बरगद की लकड़ी से संजीवन मन्त्र द्वारा एक सहस्र घी की आहुतियां २१ दिन तक देने से समृद्धि-प्राप्ति होती है।

संकल्प शक्ति द्वारा रोग निवारण

अथर्ववेद ने क्षय, कुष्ठ, अर्श आदि वंश-परम्परागत होने वाले रोगों को क्षेत्रीय रोग कहकर इन्हें बहुत भयंकर बताया है। अधिकतर दैव बल का सहारा लेकर रोग-दोष दूर करने के प्रयोग अथर्ववेद में हैं। जो प्रयोग दैव बल पर आधारित होते हैं, उनमें हवन, जप आदि मन्त्रों के प्रयोग होते हैं किन्तु अनेक उपचार केवल संकल्प-शक्ति पर ही आधारित है। असाध्य से असाध्य रोग को दूर करने के लिए ऋषि अपनी संकल्प शक्ति का उपयोग करता है। वह जो कुछ संकल्प व्यक्त करता है, उसकी संकल्पवाणी मन्त्र बन गयी। जैसे-

(१) असाध्य क्षेत्रीय रोग से त्रस्त रोगी के समक्ष हरिण श्रृङ्ग लेकर जल से रोगी

को रोग से मुक्त करने की प्रार्थना करता है और संकल्प-शक्ति प्रधान मन्त्र को पढ़ते हुए जल को अभिमन्त्रित करता है–

अपवासे नक्षत्रणामपवास उषसामुत।
आपात् सर्वा दुर्भतमप क्षेत्रिमुच्छतु।

यह मन्त्र पढ़कर ऋषि हरिण श्रृंग को जल में डुबा देता है और फिर उस जल को रोगी को पिला देता है। इसके बाद हरिण श्रृंग की ताबीज बांध देता है। हरिण मणि को सिद्ध करने का मन्त्र यह है -

हरिणस्य रघुष्यदोऽपि शीर्षाणि भेषजम्।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत्।।
अनुत्वा हरिणो वऊषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत्।
विषाणे विष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि।।
अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छतिः।।
तेना ते सर्व क्षेत्रियमगेंभ्यो नाशयामसि।।
अमू ये दिवि सुभगे विचऊतो नामतारके।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशुमत्तामम्।
आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुंचता क्षेत्रियात्।।
यदासुतेः: क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वां व्यानशे।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रिय नाशयामि त्वत्।
अपवासे नक्षात्रणामपवास उषसामुत।
अपास्मांत्सर्व दूर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु।।

इन मन्त्रों से १०८ बार हवन कर हरिण मणि को सिद्ध किया जाता है।

(२) दमा, कास, श्वास रोग को दूर करने के लिए अथर्ववेद का ज्ञाता। न देव बल का सहारा लेताहै और न ओषधि का। वह अपनी संकल्प-शक्ति से ही दमा को यह मन्त्र पढ़ते हुए दूर कर देता है*–

---

*मनोबल द्वारा दमा, कास, श्वास रोग को दूर करने का यह अमोघ प्रयोग स्वामी कृष्णा नन्द सरस्वती ने सैकड़ों रोगियों पर प्रयुक्त कर दीर्घकालीन कास-दमा रोग से उन्हें मुक्ति दिलायी है। यदि रोगी उपर्युक्त मन्त्रों को स्वयं पढ़े तो प्रातः सांय एकाग्र मनसे इन मन्त्रों को पढ़ते हुए मन-ही मन भावना भी करे कि जैसे मन के विचार तीव्र वेग से उड़ा करते हैं, तैसे धनुष से छूटा हुआ बाण तीव्र वेग से जाता है, जैसे सूर्य की किरणें तीव्र वेग से उड़ती है उसी प्रकार दमा रोग मेरे अन्दर से तीव्र वेग से निकल रहा है। मैं नीरोग हो रहा हूं-लेखक।

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत मनसोऽनु प्रवाय्यम।।
यथा बाणः सुशंसितः परापतत्याशुमत्।
एवं त्वां कासे प्रपतत्पथिव्या अनुसंवऊतम्।।
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।
एव कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम्।।

(३) अथर्ववेद के नवें काण्ड का आठवां सूत्र पागलपन, मृगी, मूर्च्छा, भूतावेश, चक्षुविकार, कर्णविकार, ह्रदयरोग, उदररोग, भगन्दर, बवासीर, यक्ष्मा आदि भयंकर असाध्य रोगों को दूर करने में अमोघ सिद्ध हुआ है।

प्रस्तुत गंथ– 'तन्त्र सिद्धान्त ओर साधना' तीन खण्डों में विभक्त है- सिद्धान्त, सिद्धि और साधना। सिद्धान्त खण्ड में तन्त्र-विषयक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। सिद्धि खण्ड में सिद्धियों के स्वरूप, उनकी उपलब्धियों और उनके भेदों-प्रभेदों का विवेचन है और साधना खण्ड में तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र की साधना बतायी गयी है।

तन्त्र और योग का समवाय सम्बन्ध है, हर तांत्रिक साधना में योग की आवश्यकता पड़ती है, बिना योग के सिद्धि नहीं मिलती है। यह ग्रन्थ तांत्रिक तत्त्व-प्रदर्शन अथवा सिद्धि-साधक को गौरव-पद प्राप्त करने के लिए नहीं लिखा गया है। सच तो यह है कि अर्थ (कौटलीय अर्थशास्त्र-अनुशीलन) धर्म (स्मृतिकार-अनुशीलन) काम(कामसूत्र-अनुशीलन) और मोक्ष (उपनिषद्-चिन्तन) चारों प्रकार में ग्रन्थ लिखने का संकल्प पूरा हो जाने से बाद में तन्त्र विषयक लिखना ही नहीं चाहिए था। कारण केवल यही रहा है कि एक तो यह गुह्य विद्या है, दूसरे तन्त्रशास्त्र अकूल पारावार है। इस विषय को जो उपलब्ध साहित्य है, उसे ही यदि पढ़ा जाये तो एक जीवन मेंभी वह पूरा नहीं हो सकता और फिर साधना की बात तो सोची नहीं जा सकती है। जीवन भरएक साधना करते रहने पर भी वह अपूर्ण रहती है। बहुत कम साधकों को अपने जीवन में साधना का चरम लक्ष्य प्राप्त होता है, जिन्हें प्राप्त है, वे संसार के लायक नहीं है। वह सत्, चिद् आनन्द के प्रकाश सागर में ही डूबे रहते हैं हाँ, जिन्हें लोग सिद्ध कहते हैं, जिनकी साधना भी है वे चमत्कारों का चकाचौंध उत्पन्न करने में ही अपनी साधना का अपव्यय करते हैं। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि सिद्धि प्राप्त कर उसे अपनी जेब में रख लिया जाये और लोकोपकार न किया जाये। मैं तो सिद्धि-साधना का व्यावसायिक रूप देने का विरोधी हूं, किन्तु मेरा विरोध मेरी असहमति व्यक्तिगत ही है, निजी भावना मात्र है, इसे मैंने विवाद, आक्षेप का रूप कभी नहीं दिया है।

तन्त्र विद्या में मैंने उल्टी गति से ग्रहण किया है। सामान्य नियम यह है कि कोई

शास्त्र पहले पढ़ा जाता है, उसे पढ़कर हृदयंगम किया जाता है, तदनन्तर विशेषज्ञों के समीप जाकर उसका अभ्यास क्रियात्मक प्रयोग किया जाता है। वर्षों तक अपने यायावर जीवन-काल में मुझे हर प्रकार के व्यक्तियों, सिद्धों सन्तों, तथा अव्यक्त शक्तियों का साक्षात्कार एवं सान्निध्य प्राप्त हुआ। मैंने ने न किसी सम्प्रदाय को ग्रहण किया और न किसी से दीक्षा प्राप्त की है। मुझे जैसे सम्प्रदाय-विहीन, अदीक्षित व्यक्ति को सबका अनुग्रह मिलता रहा और उनसे यक्तिचित, प्राप्त भी हुआ, वही मेरी आध्यात्मिक पूंजी बनी। इसके बाद मैंने अध्ययन प्रारम्भ किया तांत्रिक गुरु से नहीं, अपने आप।

ग्रन्थ का नाम तन्त्र-सिद्धान्त और साधना व्यापक अर्थ का बोधक है, किन्तु है यह सीमित, अतिसीमित है। फिर भी उन लोगों के लिए यह अवश्य उपयोगी होगा जो तन्त्रशास्त्र का जादूगरी, बाजीगरी मात्र समझते हैं, उनके लिए इस ग्रंथ का सिद्धान्त खण्ड अवश्य ही हितकर या भ्रम-विच्छेरकारक सिद्ध होगा।

सिद्धि खण्ड उन जिज्ञासुओं की जिज्ञासाओं का समाधान करेगा, जो सिद्धियों के विषय में आस्थ-अनास्थ का भाव रखते है। अथवा दुविधाग्रस्त हैं। साधना खण्ड उन व्यक्तियों के लिए उपयोगी होगा जो शास्त्र और साधना के विराट् व्यूह में न फंसकर बिना किसी भय, आशंका के और अल्प प्रयास के साधनाकर अपना अभीष्ट पूरा करने की अभिलाष रखते हैं। आज हमारा देश भाग्य-निर्णायक महत्वपूर्ण समय से गुजर रहा है जबकि हमारा समाज मार्गहीन गहन बन गया है। हमें अपने पूर्वजों के स्वरों के साथ-साथ इन ध्वनियें को भी सुनना चाहिए। हमारा देश स्वाधीन है, ह म लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत जी रहे हैं। इसीलिए हमें यह भी बोध होना चाहिए कि स्वतन्त्रता केवल, जीवितों की ही वस्तु है, स्वतन्त्रता की भावना अतीत का निराकरण नहीं करती, बल्कि अपने वायदों को पूरा करती है, जो कुछ सर्वोत्तम है, उसे स्वतन्त्रता अवश्य कर देती है। साधना क्या है? साधना-पथ आरुढ़ होकर उन्नति करते-करते भगवान् के स्वरूप में पहुंच जाने की महत्वाकांक्षा है। साधना हमें आत्मा की गइराई के साथ जीवन बिताने में सहायता देने के लिए है। ध्यान और उपासना ऐसे साधन हैं, जिनके द्वार मन, चित्त हृदय, और जीवन परिष्कृत होते हैं। ईश्वर या ब्रह्म आदिशक्ति नहीं मानी में वर्णनातीत है, वह इन्द्रियातीत है, किन्तु ध्यान और उपासना द्वारा आदि शक्ति का साक्षात्कार किया जा सकता है।

२५८/२७, नई बस्ती सोहबतिया बाग — **देवदत्त शास्त्री**
इलाहाबाद-२११००६



१ / तन्त्रविद्या

तन्त्र और मन्त्र मात्र अभिधान से पृथक् प्रतीत होते हैं, किन्तु हैं दोनों एक ही। इन्हें युग्म रूप या जुड़वाँ कह सकते हैं। वस्तुतः तन्त्र एक प्रक्रिया है। तन्त्र-प्रक्रिया द्वारा बाह्य तन्त्रों से निकलते हुए श्वास का अवरोध कर उस पर अधिकार किया जाता है। आगमशास्त्र के अनुसार अनिच्छा और इच्छा रूप जो दो नाड़ियाँ हैं, वही निगम और आगम हैं। जब अनिच्छा रूप नाड़ी पर अधिकार प्राप्त कर लिया जाता है तो उस स्थिति का नाम योग है और अनिच्छा तथा इच्छा का जो सम्मिलित रूप होता है, उसे तन्त्र कहा जाता है।

मन्त्र के माध्यम से साधना, उपासना द्वारा अपने इष्ट का साक्षात्कार करना अथवा उससे तादात्म्य संबंध जोड़ना मन्त्रयोग है। मन्त्रयोग की साधना से सिद्धि प्राप्त होती है। मन्त्र या तन्त्र साधना का योग से समवाय संबंध है। योग मुख्यतया चार प्रकार का है–१. हठ योग, २. मन्त्र योग, ३. लय योग, ४. राजयोग। तन्त्र-साधना में योग का पूरा सहकार रहता है। योग-विहीन साधना से सिद्धि नहीं मिलती है। अधिकतर लोग यही जानते हैं कि तन्त्रविद्या वही है, जिस में मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और वशीकरण प्रयोग रहते हैं और जिसकी साधना में मद्य, मांस, मैथुन, मत्स्य, मुद्रा - पंचमकार का सेवन किया जाता है। ऐसा सोचना - समझना उन लोगों के लिए स्वाभाविक है, जिन्होंने स्वयं तन्त्रविद्या का अध्ययन नहीं किया है और न किसी तन्त्रविद् से समाधान या बोध प्राप्त किया है। तन्त्रविद्या महज जादूगरी चमत्कार की विद्या है, यह मानने वाले भी दोषी नहीं कहे जा सकते। क्योंकि तन्त्रविद्या लुप्त होती जा रही है। उसके गुह्य रहस्य गुहा-निहित ही हैं, तन्त्र-मन्त्र के नाम पर व्यवसाय चल पड़ा है। चमत्कार को ही सिद्धि बतलाकर भ्रान्ति उत्पन्न की जा रही है।

यद्यपि तन्त्रविदों, रहस्यविदों के ज्ञाताओं, सिद्ध पुरुषों और महात्माओं की कमी नहीं है, किन्तु देश-काल के अनुसार वस्तुतत्त्वविवेक के प्रचार-प्रसार की कमी है।

आगम विद्या के डामर, यामल और आगम तीन भेद हैं। डामर तन्त्र में मारण,

मोहन, वशीकरण आदि प्रयोग हैं, जिनका परिगणन साधना के अन्तर्गत नहीं किया जाता है। यामल और आगम योग-शक्ति और मन्त्र शक्ति प्रधान हैं। इनमें साधना ही मुख्य है। योग और मन्त्रबल द्वारा साधक कुण्डलिनी जाग्रत कर जीवन्मुक्त बन जाता है।

मन्त्र-साधना के दो उद्‌देश्य हैं - १. विश्व-विज्ञान और २. सांसारिक बन्धनों से मुक्ति - **मननात् विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात्।** मन्त्र शब्द की निरुक्ति करते हुए मनन से विश्व-विज्ञान का अर्थ और त्र से सांसारिक बन्धनों से त्राण का अर्थ-बोध कराया गया है। तात्पर्य यह कि जो विश्व का विज्ञान कराये और सांसारिक बन्धनों से छुटकारा दिलाये वह 'मन्त्र' है।

प्रणव, बीज, कूट, अक्षर, पल्लव आदि मन्त्र के अंग हैं। मन्त्र में इनका संयोजन किया जाता है और मन्त्र-साधना में जो विशिष्ट प्रकार के ध्यान किये जाते हैं एवं शक्ति, गति, क्रियाशीलता उत्पन्न करने के लिए जो न्यासादि कर्म किये जाते हैं, वे मन्त्र के सूक्ष्म तत्त्व हैं। मन्त्र - साधना का एक व्यवस्थित विधान है। उस विधान में आलस्य, उपेक्षा, नियम-भंग, स्वेच्छाचारिता का कोई स्थान नहीं है। मन्त्र-साधना तभी सिद्धि प्राप्त करती है, जब साधक संयम, नियम, अनुशासन, सदाचार-सम्पन्न होकर साधना करता है। प्रायः यह देखा जाता है कि लोग जीवनभर साधना-रत रहते हैं, किन्तु उन्हें अभीष्ट सिद्धि नहीं मिलती है, इसका कारण साधना में संयम-नियम का अभाव और मन की चंचलता ही मुख्य है।

सिद्धि का साक्षात्कार न होने का एक और कारण जन्मान्तर के संस्कार भी हैं। पूर्वजन्म के दोषों का निराकरण किये बिना यदि साधना की जाती है, तो सिद्धि खण्डित वा विफल बनती है। सुना जाता है कि अखण्ड विद्वान् अशेष शास्त्र निष्णात, परमसिद्ध स्वामी भास्करानन्द सरस्वती गृहस्थ-जीवन में कानपुर जिले के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। विद्वान् और संयमी, अयाच्य ब्राह्मण थे वे, किन्तु संपत्ति-विहीन थे। निर्धनता दूर करने के लिए उन्होंने गायत्री का पुरश्चरण प्रारम्भ किया। बड़े संयम - नियम से चौबीस लक्ष गायत्री का पुरश्चरण पूरा किया, किन्तु कोई उपलब्धि न हुई तो पुनः चौबीस लक्ष का संकल्प किया। इसी बीच उनकी एकमात्र कन्या का देहान्त हो गया और पत्नी भी चल बसीं। उन्हें बड़ी ग्लानि हुई, जब कोई रह ही न गया तो फिर घर में रहने से क्या लाभ? उन्होंने गंगा-तट पर जाकर स्वतः 'प्रैष्य मन्त्र' का उच्चारण कर संन्यास ले लिया। संन्यास लेते ही भगवती गायत्री साक्षात् प्रकट होकर बोलीं - "वरं ब्रूहि !" स्वामी जी ने कहा - "भगवति, जब मुझे कामना थी, तब आप प्रकट नहीं हुईं और अब संन्यास लेने के बाद मुझमें कोई कामना-वासना नहीं रही, तो फिर मैं वरदान लेकर क्या

करूँगा; मुझे कुछ न चाहिए।'' भगवती बोलीं - ''पूर्वजन्म के दोषों के कारण यदि तुम जीवन भर मेरी साधना करते तब भी मैं प्रकट न होती, किन्तु संन्यास लेने पर तुम्हारे पूर्वजन्म के दोषों के क्षय हो जाने के कारण जो तुमने साधना की है, वह फलवती हुई। तुम्हारे न चाहने पर भी तुम्हें सिद्धि प्राप्त हुई, उसका उपयोग तुम परमार्थ में करो।''

इसीलिए तन्त्र-साधना में **क्रम-दीक्षा** का विधान रखा गया है। क्रम-दीक्षा-पूर्वक साधना करने से सिद्धियों के द्वार खुल जाते हैं।

मन्त्रविद्या के मूल स्रोत आम्नाय

जितने भी तन्त्र-मन्त्र हैं, सबके मूल उत्स-आगम **और** निगम हैं। आगम और निगम का अभेद सम्बन्ध है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रमाणपूर्वक बताया गया है और यह भी बताया गया है कि पंचमवक्त्र भगवान् शिव ने अपने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊर्ध्वमुख से जिन मन्त्रों का उपदेश उनके उपासना - कर्मों के साथ दिया है, वे पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय और ऊर्ध्वाम्नाय कहे जाते हैं। आगम का दूसरा नाम आम्नाय है, पंचमवक्त्र शिव के अधोमुख से जो मन्त्रोपदेश प्राप्त हुआ वह 'अधराम्नाय' कहा जाता है। इस प्रकार मन्त्रविद्या के मूल स्रोत ये छह आम्नाय हैं। इन्हें **'आम्नायषट्क'** कहा जाता है। आम्नायषट्क में से पूर्वाम्नाय और दक्षिणाम्नाय के योग से **आग्नेयाम्नाय**, दक्षिणाम्नाय और पश्चिमाम्नाय के योग से **'नैर्ऋताम्नाय'**, पश्चिमाम्नाय और उत्तराम्नाय के योग से **'वायव्याम्नाय'** और उत्तराम्नाय तथा पूर्वाम्नाय के योग से **'ऐशानाम्नाय'** का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार तन्त्र-विद्या के दस आम्नाय प्रसिद्ध हैं। इन्हीं आम्नायों में सभी प्रकार के मन्त्रों की साधना का विस्तृत विधान मिलता है।

जिस प्रकार वेद अपौरुषेय हैं, उसी प्रकार आगम शास्त्र भी अपौरुषेय हैं। 'आगमों का उपदेश भगवान् शिव ने दिया है - यह प्रतीकात्मक कथन है, जैसे, मन्द्रजिह्व परमात्मा से उच्चरित वैदिक ऋचाएँ समस्त ब्रह्माण्ड में गूँजती रहती हैं, उसी प्रकार आगम ऋचाएँ भी गूँजती रहती हैं जिन्हें ध्यानावस्थित ऋषियों ने प्रकट किया - प्राप्त किया। ऋषियों ने वेदों - आगमों का साक्षात्कार किस प्रकार किया - यह एक संप्रश्न है। इसके समाधान में यही कहना है कि ऋषियों ने ऋचाओं को सुनने के लिए **'श्रवणदिव्यता'** प्राप्त की थी। आगमशास्त्रीय प्रमाणों से विदित है कि स्रोतों में दिव्यता का आविर्भाव **बहिर्वृत्तिजन्य** और अन्तर्वृत्तिन्य-इन दो साधनों से होता है। बहिर्वृत्तिजन्य आधार नादब्रह्म की उपासना है। निरन्तर नादब्रह्म की उपासना - आराधना करते रहने से इन्द्रियों की वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं- **सदा नादानुसन्धानात् संक्षीणा वासना भवेत्।**

नाद का तात्पर्य अव्यक्त ध्वनि है। वर्णात्मक व्यक्त वाणी से अव्यक्त ध्वनि में

महती शक्ति रहती है। इस सिद्धान्त का खुलासा हमें अथर्ववेद (१०/७/२१) के इस कथन से मिलता है, जो स्तम्भरूप ब्रह्म की असत् और सत् - इन दो शाखाओं का निरूपण करता है। अथर्ववेद असत् शाखा की परमशाखा मानता है, जिससे बृहन्त नाम देव पैदा होते हैं (अथर्व० १०/७/२५)। और दूसरी सत् शाखा अवर शाखा है। आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में असत् शक्ति (इनर्जी) है और सत् निष्क्रिय तत्त्व (मैटर) है। एक गति को सूचित करता है, दूसरा स्थिति को, सारांश यह कि असत् निराकार है, अव्यक्त है, शक्ति है और सत् मैटर है, साकार रूप में व्यक्त है, रूप वाला है किन्तु निष्क्रिय है।

आगम - मन्त्रों को ऋषियों ने श्रवणदिव्यता प्राप्त कर श्रवण किया और वे मन्त्र उनके हृदय में प्रकट हुए। वस्तुतः श्रोत्र का सम्बन्ध आत्मा से होता है। प्राण-वायु और वाणी का मेल, चक्षु और मन का मेल तथा श्रोत्र और आत्मा का मेल होता है-

प्राणञ्च तद्वाचञ्च विहरति, चक्षुश्च तन्मनश्च विहरति,
श्रोत्रञच तदात्मानञच विहरति। (ऐतरेय ब्राह्मण ६।२४)

इससे स्पष्ट है कि आत्मा का सम्बन्ध हृदय से रहता है, इसलिए श्रोत का सम्बन्ध हृदय से होता है।

श्रोत्रेन्द्रिय में एकाग्रता लाकर ऋषियों ने अनवरत दिव्यता प्राप्त की थी। श्रोत्रेन्द्रिय को एकाग्र करने की विधि तन्त्र-विद्या में इस प्रकार है- 'ध्वनि तरंगें ज्यों-ज्यों आकाश में दूर होती जाती हैं त्यों - त्यों वह मन्द्र, मन्द्रतर रूप धारण करती हैं। ६ ाीमी, मन्द होती ध्वनि तरगों को देर तक ग्रहण करने या सुनने में मन एकाग्र और केन्द्रित होता जाता है तथा श्रोत्र की प्रसुप्त शक्ति उत्तेजित और जाग्रत होने लगती है। श्रोत्र में मन जब एकाग्र हो जाता है तो अपादान क्रिया निर्बाध गति से प्रारम्भ होती है। अपादान क्रिया जब सुचारु रूप से क्रियाशील होती है तो श्रोत्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म मल विनष्ट हो जाते हैं, श्रोत का आवरण नष्ट हो जाता है जिससे एकाग्रता और संयम की सिद्धि होती है। श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में जब एकाग्रता और संयम आ जाता है जब उससे दिव्य श्रोत्र की उत्पत्ति होती है-

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद् दिव्यश्रोत्रम्।

- योगदर्शन, विभूतिपाद

तन्त्र - साधना निराकार और साकार दोनों रूपों में की जाती है। ध्यान और उपासना में साकार भावना बहुत शीघ्र फलवती होती देखी गई है। सामान्य जनों के लिए साकार उपासना ही उपयोगी है। भगवान् से सम्बन्ध में हमारा विचार मूर्तियों एवं चित्रों द्वारा बनता है। बिरले ही ऐसे लोग हैं जो परमात्मा में गम्भीर विश्वास रखते हैं और अपनी श्रद्धा के लिए कोई प्रतीक नहीं खोजते हैं। जिनका मानसिक स्तर ऊँचा नहीं है, जो सत्य को ग्रहरण करने के लिए उत्सुक रहते हैं,

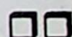
उन्हें प्रतीकों का सहारा लेना चाहिए। प्रतीक है क्या? असीम का ससीम में दर्शन।

मूर्ति - पूजा के विरोध में कहा जाता है कि जो व्यक्ति मूर्ति से प्रार्थना करता है वह पत्थर की दीवार से बकझक करता है। किन्तु ऐसे लोगों को यह भी सोचना चाहिए कि हम पत्थर से बकझक नहीं करते, उससे प्रार्थना नहीं करते हैं, बल्कि उस पत्थर में जिसकी आकृति उत्कीर्ण है, उसकी शक्ति से, उसकी मनोवैज्ञानिक विद्यमानता से, विश्वशक्ति से प्रार्थना करते हैं।

साधना द्वारा हम जीवन की तुच्छताओं से ऊपर उठकर शाश्वत के सान्निध्य तक पहुँच जाते हैं। किन्तु शर्त यह है कि साधना में पूर्ण ईमानदारी होनी चाहिए। हम चाहे किसी भी देवी-देवता की साधना करें, वह भगवान् के ही अभिन्न रूप हैं। अथर्ववेद में गणपति अथर्वशीर्ष हैं, उसमें गणेश जी की प्रार्थना में कहा गया है - ''हे गणपति, मैं तुझे नमस्कार करता हूँ, तू ही सृष्टिकर्त्ता है, तू ही धर्त्ता है, तू ही संहारकर्त्ता है, तू ही निश्चयपूर्वक ब्रह्मा है।'' ब्रह्मत्व ब्रह्म का, माता के रूप में निहित कर दिया गया है यही तन्त्रशास्त्र की सर्वोच्च सिद्धि है, यही उसका सर्वोच्च दर्शन है, सिद्धान्त है।

कोई भी व्यक्ति चाहे जिस वर्ण, धर्म या सम्प्रदाय का हो, निराकारवादी या साकारवादी हो, वह अपने चुने हुए आदर्श के अनुसार भगवान् की उपासना करता है। जगद्‌गुरु शंकराचार्य अद्वैतवादी थे, परन्तु वे शक्ति के परम उपासक भी थे। ब्रह्मसूत्रभाष्य (३-४-७५) में वे लिखते हैं कि ''विधुरों के लिए और अविवाहितों के लिये भी देवताओं की प्रार्थना और प्रसादन- जैसे विशिष्ट धार्मिक कृत्यों द्वारा ज्ञान प्राप्त कर पाना संभव है।'' आगे चलकर वे फिर लिखते हैं - ''व्यक्ति को अपने लिए उपासना और ध्यान का कोई - सा रूप चुन लेना चाहिए और उस पर तब तक दृढ़ रहना चाहिए जब तक उपासना के विषय के साक्षात्कार द्वारा उपासना का फल प्राप्त न हो जाए।'' (३-३-५९)। कदाचित् इसीलिए आचार्य शंकर ने अपनी साधना के लिए शक्ति का रूप चुना था और भगवती महाशक्ति की स्तुति में बड़े मर्मस्पर्शी स्तोत्रों की रचना की थी। मधुसूदन सरस्वती तथा उड़िया बाबा अद्वैतवादी, दण्डी, संन्यासी और परमसिद्ध महात्मा थे; किन्तु दोनों भगवान् कृष्ण के उपासक थे।

चाणक्य ने चाणक्यनीति (७-१२) में लिखा है - ''देवता न लकड़ी में हैं, न पत्थर में हैं और न मिट्‌टी में हैं। देवता तो रहस्यमय भाव में हैं, इसलिए यह रहस्यमय भाव ही कारण है।'' तन्त्र-विद्या रहस्य-विद्या है। यह रहस्यमय भावों को उद्‌घाटित करती है। यन्त्र, मन्त्र और तन्त्र इस रहस्य-विद्या की साधना के प्रतीक हैं।



२ / तन्त्र का आविर्भाव और विकास

आदिकाल से गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा आगत ग्रन्थ-सन्दर्भ 'आगम' शास्त्र हैं। आङ् उपसर्गक गम् धातु से आगम शब्द निष्पन्न होता है। आगमशास्त्र से तन्त्र शास्त्र की उत्पत्ति हुई है। जिस तरह गुरु-शिष्य परम्परा से आगत आगम है, उसी प्रकार वेद भी अनादि काल से गुरु-शिष्य परम्परा से प्राप्त हैं। गुरुमुख से शिष्यों द्वारा सुने जाने के कारण जिस प्रकार वेदों को 'श्रुति' कहा जाता है, उसी प्रकार श्रवण द्वारा उपलब्ध होने के कारण आगम भी श्रुति कहलाते हैं। हारीत धर्मशास्त्र में कहा गया है कि ''धर्म को श्रुतियाँ प्रमाणित करती हैं और श्रुतियाँ वैदिकी और तान्त्रिकी भेद से दो प्रकार की हैं।''[1] यही कारण है कि तन्त्र (आगम) को भी श्रुति कहा जाता है।

तन्त्र का आविर्भाव

कणाद ने धर्म की परिभाषा बतलाते हुए कहा है कि ''जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस् की सिद्धि होती है वह धर्म है।''[2] जिस प्रकार वेदों में प्रवृत्ति और निवृत्तिपरक दो प्रकार के धर्म का व्याख्यान मिलता है, उसी प्रकार का धर्म-व्याख्यान तन्त्रों से भी मिलता है। शैवागम में प्रवृत्ति-परक और निवृत्ति-परक धर्म को पशु-धर्म और पति-धर्म कहा गया है। यहीं दोनों प्रकार के धर्म अभ्युदय और निःश्रेयस् के लिए भुक्ति और मुक्ति नामान्तर से तन्त्रशास्त्र में व्यवहृत हुए हैं। शैव - सिद्धान्त - परिभाषा में सूर्यभट्ट ने कहा है कि ''वेद और आगम में परस्पर कोई विरोध नहीं है।''[3] किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से धर्म-साधन-मार्ग में जो लोग वेद और आगम में भेद देखते हैं, वस्तुतः उनका यह दृष्टिकोण वस्तु-तत्त्व विवेकरहित है।

---

१. अथातो धर्म व्याख्यास्यामः । श्रुतिप्रमाणको धर्मः। श्रुतिश्च द्विविधा-वैदिकी-तान्त्रिकी च।

२. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः।

३. नहि वेदागमयोरत्यन्तं विरोधं पश्यामः। परकर्त्तृत्वाविशेषात्।

शैव, वैष्णव, शाक्त और जैन आदि भेद से आगम भिन्न-भिन्न हैं और फिर उनके भी अनेक भेद - प्रभेद हैं। वैष्णव, 'आगम', वैखानस और पाञ्चरात्र-भेद से दो प्रकार के मिलते हैं। वैखानस आगम का उपदेश विखानस ऋषि ने भृगु, अत्रि, मरीच्यादि ऋषियों को देकर उनके द्वारा प्रचारित कराया। पाञ्चरात्र आगम के दो भेद हैं-**दिव्य** और **अदिव्य**। भगवान् नारायण द्वारा उपदिष्ट पौष्कर-जयादि संहिता दिव्य आगम है। अदिव्य आगम दो प्रकार के माने गये हैं– एक तो वह जो ऋषि प्रोक्त हैं और दूसरे, जो आचार्यों द्वारा कहे गये हैं। वैष्णव आगमों के सभी भेद-प्रभेदों की संख्या मिलकर दो सौ पच्चीस तक है।

शैवागम

शैव, पाशुपत, सोम, लाकुल भेद से चार प्रकार के शैवागम हैं, फिर यही वाम, दक्षिण और सिद्धान्त - भेद से तीन भागों में विभक्त हो जाते हैं। वामभेद के अन्तर्गत **कापाल, कालामुख, अघोर** आदि प्रभेद हैं। कश्मीर शैवागम **'त्रिक्'** इस अपरनाम से दक्षिण भेद के अन्तर्गत परिगणित हुआ है और सिद्धान्त भेद के अंतर्गत कामिकादि अट्ठाइस शैवागम आते हैं। अत्यन्त आप्तभूत होकर परमशिव ने इन आगमों का उपदेश किया है, इसलिए ये 'सिद्धान्त' कहे जाते हैं।

अट्ठाइस सिद्धान्त शैवागमों में से शिव के दस और रुद्र के अठारह हैं। सदा-शिवस्वरूप भगवान् शिव ने लोकों के अज्ञान को दूर कर उन्हें तत्त्व-बोध कराने के लिए सर्वप्रथम आदि दश शिवों का उपदेश दिया तो **कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, अजित, दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमान** और **सुप्रभेद** ये दस शिवभेद प्रसिद्ध हुए। इसके बाद अनादि रुद्र ने अठारह रुद्रों को जब उपदेश दिया जो **विजय, निःश्वास, स्वायम्भुव, अनल, वीर, रौरव, मुकुट, विमल, चन्द्रज्ञान, मुखबिम्ब, प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, शर्वोक्त, पारमेश्वर, किरण** और **वातुल** ये अठारह रौद्रभेद प्रसिद्ध हुए।

मृगेन्द्र आगम के विद्यापाद अध्याय में लिखा है कि "सृष्टि के प्रारम्भ में परमशिव ने अपने मन्त्रमय पाँच मुखों में विमल ज्ञानस्वरूप दिव्यागमों को अभिव्यक्त किया।"[१]

भगवान् सदाशिव के मन्त्रमय पाँच मुख हैं- **सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष** और **ईशान**। इन्हीं पञ्चस्रोतों से विमल ज्ञान प्रस्फुटित हुआ है। इसका रहस्य इस प्रकार समझा जा सकता है–

---

१. सृष्टिकाले महेशानः पुरुषार्थ प्रसिद्धये।
विधत्ते विमलं ज्ञानं पञ्चस्रोतोऽभिलक्षितम्।।

परमकारणभूत व्योमकार शिवतत्त्व में सभी शब्दों के परमकारणभूत अत्यन्त सूक्ष्मनाद अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है। यह सूक्ष्मनाद जब अव्यक्त अवस्था में रहता है, **तब उसे परनाद** कहा जाता है और जब परनाद अभिव्यक्त होता है तो वह स्फोट कहा जाता है। शिवतत्त्व से जब शक्तितत्त्व का आविर्भाव होता है, उसी समय 'स्फोट' का भी आविर्भाव होता है। स्फोट सर्वशब्दात्मक है, अथवा यही वर्ण है। स्फोट के साथ आविर्भूत शक्तितत्त्व का नाम 'परबिन्दु' है। इसके बाद मूलवर्ण-भूत स्फोट शक्तित्त्व से सदाशिवरूप के आविर्भाव के समय स्थूल रूप को प्राप्त कर अभिव्यक्त और अनुभववेद्य होता है। यह अवस्था **'अपरनाद'** इस नाम से व्यवहृत होती है। इस सदाशिवरूप के साथ आविर्भूतवर्ण समूहात्मक अक्षर बिन्दु अपरबिन्दु नाम से व्यवहृत होता है। अपरबिन्दु के सान्निद्ध्य से ही ईश्वरतत्त्वाश्रयी सूक्ष्म वर्ण और शुद्ध विद्यातत्त्वाश्रयी स्थूल आविर्भूत हुए। इस प्रकार शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या नाम के कार्यतत्त्वचतुष्टय के आश्रित चार प्रकार के शब्द क्रमशः **परा, पश्यन्ती, मध्यमा** और **वैखरी** अभिव्यक्त होकर अर्थवाचक बनते हैं।

आमग सिद्धान्त के अनुसार परनाद की अभिव्यक्ति ही 'स्फोट' है और वह र्ण-रूप है; किन्तु वैयाकरण स्फोट को वर्ण से अतिरिक्त मानते हैं। सिद्धान्त आगम के अनुसार स्फोट वर्ण से अतिरिक्त नहीं है। शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में शब्द को ही वर्ण माना है।[१] रामकण्ठाचार्य ने नादकारिका में वर्ण को ही स्फोट माना है।[२] यह स्फोट ही मूलवर्णभूत प्रणव (ॐ) है और उस प्रणव का ही विस्तार अकार से लकार पर्यन्त पचास वर्ण हैं। प्रमाणप्रमातृप्रमेयरूप विश्वप्रपञ्च विलास में प्रवृत्त सृष्टि-रचना के लिए उद्यत परमशिव की इच्छाशक्ति से संक्षोभित बिन्दु ही प्रणव (ॐ) कहा जाता है। प्रणव द्वारा प्रसृत ककारादि से लकारान्त पर्यन्त वर्णों के साथ सोलह स्वर वर्णों का आत्मवत् सम्बन्ध है। व्यंजन वर्णों और अनुस्वार वर्णों के संयोग से 'पद' की उत्पत्ति होती है और पदों के समुदाय से मन्त्रों की उत्पत्ति होती है। ऐसे वर्णों, पदों और मन्त्रों से 'तन्त्र' का आविर्भाव हुआ है- इस अर्थ की विस्तृत व्याख्या आगमों द्वारा की गयी है—

नादरूपतया पूर्व शिवेनाविष्कृतः पुनः।
सदाशिवादिरूपेण तेनैवासौ पृथक् पृथक्।।
कामिकादिप्रभेदेन शिष्येभ्यः संप्रकाशितः
अष्टाविंशति संख्योऽसौ सिद्धान्त इति संज्ञितः।।

---

१. वर्ण एव च शब्दः

२. वर्ण एवं स्फोटः ।

तान्त्रिक विकास - क्रम

तान्त्रिक - विकास का मूल आधार तान्त्रिक संस्कृति है। तान्त्रिक-संस्कृति ऐसा कहने से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि वैदिक - संस्कृति से भिन्न कोई तान्त्रिक-संस्कृति भी है। वस्तुतः वेद, विशेषतया अथर्ववेद ही समस्त तान्त्रिक प्रक्रिया-वितान-वैभव का बीज है। अनेक प्रकार के अंगों की संहति को तन्त्र कहा जाता है। कर्काचार्य ने **'कर्मणां युगपदभावस्तन्त्रम्'** कह कर स्पष्ट घोषित किया है कि कर्मों के युगपद् भाव को 'तन्त्र' कहते हैं। यजुर्वेद के **'तन्त्रायिणे नमः'** की निरुक्ति करते हुए भाष्यकार महीधर ने लिखा है कि **''एषवै तन्त्रायी य एष तपति, एष हीमांल्लोकांस्तन्त्रमिवानुसञ्चरति''**। तात्पर्य यह है कि आदित्य (सूर्य) तन्त्रायी है, वही तान्त्रिक ज्ञान का प्रसारक है। पञ्चवक्त्र शिव आदित्य ही हैं– इसमें कोई विवाद नहीं है। तन्त्र-शास्त्र शिव के मुख से निर्गत होकर शक्ति में समा गया। **''आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजानने।''**

जितने भी आथर्वण कर्म हैं, वे सब **पाकतन्त्र** कहे जाते हैं। **आज्यतन्त्र** और **पाकतन्त्र**- इन दो भेदों में आथर्वण कर्म विभक्त हैं। हविष्य प्रधान कर्म आज्यतन्त्र कहलाते हैं और चरु पुरोडाश प्रधान कर्म पाकतन्त्र हैं। यद्यपि यहाँ पर तन्त्र शब्द से आज्यप्रधानता और पाकप्रधानता ही अभीष्ट है, किन्तु अथर्ववेद के कौशिक सूत्र से **'नदर्वि होमे न हस्तहोमे न पूर्ण होमे तन्त्रं क्रियेत्येके'** की टीका करते हुए दारिल-केशव ने स्पष्ट कर दिया है कि तान्त्रिक, वैदिक सभी अनुष्ठान कर्मों में स्रुव से आज्याहुति देनी चाहिए। किन्तु कहीं-कहीं तान्त्रिक होम हाथ से भी किया जाता है-

'सर्वत्र स्रुवहोमे नित्यं तन्त्रं हस्त होमे विकल्पेन तन्त्रम् ।' (कं० ६)

इसके अतिरिक्त कौशिक सूत्र में और भी ऐसे अनेकानेक प्रमाण हैं, जिनसे तन्त्र - संस्कृति और तान्त्रिक कर्मों का बोध होता है। अथर्ववेद में कृत्यादूषण के निवारण के लिए **'निशाकर्म'** नाम की तान्त्रिक क्रिया की जाती है—'

'येषु निशाकर्मसु तन्त्रं तेष्वयं धर्मः ।' (कण्डिका ८)

सांग्रामिकाणां के कर्म के लिए तान्त्रिक क्रिया-विधान का वर्णन अथर्ववेद में हैः-

'सांग्रामिकाणां कर्मणां तन्त्रं वक्ष्यामः' (कौशिक सूत्र मं० १४)

व्याधियों, आधियों, भूतावेशों के निवारण के लिए अथर्ववेद में मणि-बन्धन का तन्त्र किया जाता है। मणि का तात्पर्य यहाँ नीलम, पन्ना, पुखराज नहीं है, मणि अथर्ववेदीय पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ वृक्षों की जड़ों, पत्तियों, छाल, फूल आदि व्याधियों के अनुसार तान्त्रिक विधि से पहनाकर रोग-निवारण किया जाता है।

'तन्त्रं कृत्वा वरणो वारयता इति तृचेनवरण वृक्षमणिं व्रघ्नाति।'

यहाँ वरण (वरना) वृक्ष की मणि पहनाने का उल्लेख है। संहिता में बाईस प्रकार के 'सावयज्ञ' बताए गए हैं। इन यज्ञों को स्वर्गोदन तन्त्र से अथवा ब्रह्मदेव तन्त्र से करने का निर्देश किया गया है।

अथर्ववेद में जो शान्ति-पुष्टि कर्म बताए गए हैं, उन सब का विधान तान्त्रिक ही है। अथर्ववेद के शान्ति कल्प के **'शं त आपो हैमवतीः'** इस मन्त्र का भाष्य करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है–

'शं त आप इति सूक्तेन तन्त्रभूतमहाशान्तौ नद्यादि समाहृतं जलमभिमन्त्रयेत्।''

अर्थात 'शं त आपः' इस सूक्त से तन्त्रभूतमहाशान्तिकर्म में सरिता-सरोवरों के जल से अभिमन्त्रित करना चाहिए।

इसके बाद सायण लिखते हैं–

'तथा तन्त्रं कृत्वा अनेन सूक्तेन गौञ्जान पाशान् सम्पात्याभिमंत्र्य सेनाक्रमेषुवपति तन्त्रं च।'

अथर्ववेद में शान्ति, पुष्टि, अभिचार, अद्‌भुत आदि से सम्बन्धित जितने कर्म बताए गए हैं, उन सब की अनुष्ठान - पद्धति तान्त्रिक है। जिस प्रकार तन्त्रशास्त्र में यन्त्र और मन्त्र का विशद वर्णन है, उसी प्रकार वेदों में भी मन्त्रों का उल्लेख मिलता है। जिस प्रकार तन्त्रशास्त्र के मन्त्र सर्वथा साधक होते हैं, उसी प्रकार वेदों के मन्त्र भी सर्वसिद्धिदायक होते हैं। तन्त्र और वेद दोनों के मन्त्रों के अधिष्ठातृ देवता होते हैं। मन्त्रों में बीजरूप से स्थित तन्त्र-संस्कृति ब्राह्मण ग्रन्थों, कल्पसूत्रों से अंकुरित होकर पुराणों और तन्त्र-ग्रन्थों तक पहुँचकर शाखाओं-प्रशाखाओं, फलों-पुष्पों से सम्पन्न होकर महाविटप बन गई।

जब मन्त्रों के अधिष्ठातृ देवताओं की स्थापना की गई, तो देवता के गुण, स्वरूप आदि का चिन्तन कर मन्त्रों के उद्धार का क्रम प्रारम्भ हुआ। फिर उन मन्त्रों को यन्त्रों में संयोजित किया गया। तदनन्तर मन्त्रों के अधिष्ठातृ देवताओं के ध्यान और उपासना के पाँच अंग - **पटल, पद्धति, कवच, नामसहस्र** और **स्तोत्र** प्रदर्शित किए गए। जिन ग्रन्थों में इस प्रकार के चिन्तन को स्थान दिया गया, उन्हें 'तन्त्र ग्रन्थ' या ' तन्त्रशास्त्र' कहा गया। वाराही संहिता के अनुसार जिन ग्रन्थों में **सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, शवसाधना, पुनश्चरण, षट्कर्म-साधना** तथा **ध्यान योग** - ये सात लक्षण हों, वे आगमशास्त्र हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रधान कर्मों के अनुसार आगमशास्त्र तीन भागों में विभक्त हुए। सतोगुण प्रधान आगम 'तन्त्र' कहे जाते हैं। रजोगुण प्रधान आगम **'यामल'** और तमोगुण प्रधान

आगम 'डामर' कहलाते हैं। पञ्चवक्त्र शिव के मुख से निःसृत होने के कारण आगमों में पाँच आम्नाय माने गए हैं- **पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय** और **ऊर्ध्वाम्नाय**। इन पाँचों आम्नाओं का विशद वर्णन 'कुलार्णव' तन्त्र में मिलता है। पूर्वाम्नाय सृष्टि रूप है। इसे **मन्त्रयोग** भी कहा जाता है। दक्षिणाम्नाय स्थिति रूप है, इसे भक्तियोग भी कहा जाता है। पश्चिमाम्नाय संहार रूप है, इसे कर्मयोग भी कहा जाता है। उत्तराम्नाय अनुग्रह रूप है, इसे **ज्ञानयोग** भी कहा जाता है।

तान्त्रिक-विकास के इस क्रम में तन्त्रशास्त्र का विभाजन भौगोलिक दृष्टि से भी किया गया है। यह भूमि-विभाजन भारत-भूमि की सीमा के अन्तर्गत तीन खण्डों में हुआ है। विन्ध्यपर्वत से चटगाँव (बंग्लादेश) तक का पूर्वोत्तर क्षेत्र 'विष्णुकान्त इसका उत्तर - पश्चिमी भाग 'रथक्रान्त', विन्ध्य से दक्षिण समुद्रपर्यन्त भूभाग 'अश्वक्रान्त' कहा गया है। ये तीनों क्रान्त जिस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से अलग-अलग स्थापित हुए, उसी प्रकार आगमिक दृष्टि से तीनों क्रान्तों के लिए चौंसठ-चौंसठ तन्त्र भी अलग-अलग निर्दिष्ट हैं। तन्त्राभिधान में उक्त चौंसठ तन्त्रों के नाम गिनाए गए हैं, किन्तु अनेक तन्त्र अब उपलब्ध नहीं है, केवल नाम शेष हैं। क्रान्त के आधार पर तन्त्र का निर्धारण देश-काल का ध्यान रखकर किया गया है। जिस क्रान्त के लिए जो तन्त्र निर्धारित है, उस क्रान्त में उस तन्त्र की साधना करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

क्रान्तत्रय का एक प्रयोजन शाक्तों की चक्रपूजा से भी सम्बन्ध रखती है। शाक्त लोग चक्र-पूजा के निमित्त जो यन्त्र बनाते हैं, उस यन्त्र में तीनों क्रान्तों की स्थापना करके उनकी पूजा करते हैं। यन्त्र में तीनों क्रान्तों की स्थिति का निर्धारण 'सारतत्त्वदर्शन' में बताया गया है-

भूपूरं चाश्वक्रान्तं च, दल चक्रं रथस्मृतम्।

यन्त्रकेन्द्र त्रिकोणञ्च, विष्णुक्रान्तमथोच्यते।।

यहाँ यह लिख देना अनुचित न होगा कि आगमशास्त्रों ने जो भौगोलिक विभाजन विष्णुक्रान्त, रथक्रान्त और अश्वक्रान्त से किया है, उनकी सीमाएँ अधिकांश टीकाकारों ने गलत निर्धारित की हैं। इसे यदि हम भारतीय ज्योतिष और खगोल-विज्ञान से समझने की चेष्टा करें, तो भूल पकड़ में आ जाती है।

क्रान्त (ट्रॉपिकल जोन), **कर्करेखा** (ट्रॉपिक ऑफ कैंसर) और **मकररेखा** (ट्रॉपिक ऑफ कैप्रीकार्न) इन तीनों के मध्य भूमध्यरेखा है। कर्करेखा कराची के

पास से दिल्ली के दक्षिण से जाती है और मकररेखा मेडेगास्कर के दक्षिण में है। भारतवर्ष का समस्त भूभाग भूमध्य रेखा के ऊपर है। इस विवेचन को नीलतन्त्र के निम्नांकित कथन से मिलाने पर स्पष्ट बोध हो जाता है—

रेवायाः दक्षिणेभागे, हयक्रान्तं महावनं।
याम्ये देवनदीतीरे, भागीरथरथं स्मृतं।।
ऊर्ध्वे विष्णुपदी भागे, विष्णुक्रान्तं तपोवनम्।
मर्यादा स्कन्ददेवस्य, पूजा चक्रेविधीयते।।

तन्त्र में भाव और आचार

तन्त्र में भाव बहुत ही गुरुत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द है। कौलावली तन्त्र के ग्यारहवें उल्लास में बताया गया है कि '**भावपदार्थ**' मन का धर्म विशेष है। वह शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल दिङ्मात्र होता है। जिस तरह गुड़ की मिठास जिह्वा से जानी जाती है, वाणी से नहीं, उसी प्रकार भाव का विभाव केवल मन से ही अनुभव करने योग्य होता है, शब्दों द्वारा नहीं।[1]

महाभाव उपाधि-भेद और विषय-भेद से अनेक प्रकार का होता है। भाव अपनी प्रगाढ़ावस्था में जब होता है, तो उससे उत्पन्न समस्त भेद महाभाव में विलीन हो जाते हैं। वस्तुतः भाव ही आनन्दघन-सन्दोह प्रभु है। भाव ही प्रकृति का रूप धारण करता है, भाव ही रसरूपी आत्मा है। भाव ही परम महान् है।[2]

तन्त्र-मन्त्र की सिद्धि में भाव ही कारण होता है। लाखों-कराड़ों की संख्या में जप किया जाए, होम किया जाए, शारीरिक कष्ट भोग कर साधना की जाए, किन्तु, विना भाव के तन्त्र-मन्त्र की सिद्धि फलप्रद नहीं होती है।[3] ज्ञान की विशेष

---

१. भावस्तु मानसोधर्मः स हि शब्दः कथं भवेत्।
तस्मात् भावो न वक्तव्यो दिङ्मात्रं समुदाहृतम्।।
यथेक्षुगुडमाधुर्यं जिह्वाया ज्ञायते सदा।
तस्माद् भावो विभावस्तु मनसा परिभाव्यते।।

२. एक एव महाभावो नानात्वं भजते यतः।
उपाधिभेदभावेन भावभेदो भविष्यति।।
आन्नदघनसन्दोहः प्रभुः प्रकृतिरूपधृक्।
रसरूपः स एवात्मा स प्रभुः परमोमहान्।

३. बहु जपात् तथा होमात् कायक्लेशात्तुविस्तरै।
न भावेन विना चैव तन्त्र-मन्त्राः फलप्रदाः।।

अवस्था ही भाव है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण भेद से भाव या ज्ञानावस्था क्रमशः दिव्य, वीर और पशु–तीन प्रकार की होती है। इसी को उत्तम, मध्यम और अधम भी कहा जाता है। मनुष्य के स्वभाव तथा चरित्र के अनुसार साधक के उपर्युक्त भाव तीन प्रकार के माने जाते हैं। जैसी जिस साधक की प्रवृत्ति होती है, वैसे ही उसकी साधना भी उत्तम, मध्यम, अधम होती है। यदि साधक तमोगुणी स्वभाव का हो और वह दिव्य या वीर भाव की साधना करता है तो उसकी साधना निष्फल होती है। साधना का नियम यह है कि साधक पहले पशुभाव से साधना करके सिद्धि प्राप्त कर वीरभाव में प्रवेश करे। वीरभाव के बाद वह साधना द्वारा दिव्यभाव की प्राप्ति करे तथा दिव्यभाव प्राप्त होने पर साधना द्वारा भावातीत अवस्था को प्राप्त करे। तन्त्रशास्त्र का तर्कप्रधान मत है कि सामान्यतया मनुष्य सोलह वर्ष की अवस्था तक मनोवृत्ति को ज्ञानावस्था के कारण पशुभाव प्रधान रहता है। सत्रह वर्ष की अवस्था से लेकर पचास वर्ष की अवस्था तक उत्तेजित मनोवृत्ति के कारण उसमें वीरभाव रहता है और इक्यावन वर्ष की अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक उसकी परिपक्व ज्ञान स्थिति होने से वह दिव्यभाव सम्पन्न होता है।[1]

तीनों प्रकार के भावों की स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार समझी जाती है–

पशुभाव–जिन मनुष्यों मे अविद्या का आवरण होने से परिपूर्ण अद्वैत ज्ञान का उदय नहीं होता है, उनकी मानसिक अवस्था तमोगुणी होने के कारण उनमें पशुभाव रहता है। वे पशुओं की तरह अज्ञानान्धकार से आवृत्त संसार से बँधे रहते हैं।

उत्तम और अधम भेद से पशुभाव दो प्रकार का होता है। संसार के मोहजाल में फँसा हुआ जीव **अधम पशु** है और सत्कर्मपरायण भगवद्विश्वासी जीव **उत्तम पशु** है। अधम और उत्तम दोनों प्रकार के पशुभावों से सम्पन्न प्राणी द्वैतबुद्धि रखने के कारण दोनों पशु ही माने जाते हैं। '**पशु**' एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका तात्पर्य है–अज्ञानी। भगवान् शिव जीवों के पशुभाव (अज्ञान) को दूर करते हैं, इसलिए वह 'पशुपति' कहे जाते हैं। यजुर्वेद में '**पशूनां पतये नमः**' कह कर पशुपति भगवान् शिव की स्तुति की गई है। वेदसार शिवस्तोत्र में भी भगवान् शिव को पापनाशक पशुपति कह कर उनकी स्तुति की गई है- '**पशूनां पतिं पापनाशं परेशम्**'।

---

१. सर्वे च पशवः सन्ति तलवत् भूतले नराः।
तेषां ज्ञानं प्रकाशाय वीरभावः प्रकाशितः।।
वीरभावं सदा प्राप्य क्रमेण देवता भवेत्। –रुद्रयामलतन्त्र

वीरभाव—जो साधक अद्वैत ज्ञानामृत से परिपूर्ण सरोवर के एक बूँद का भी आस्वादन कर लेता है, वह वीर पुरुष की भाँति अज्ञान रज्जु को तोड़ने में सफल होता है और अमृत सरोवर का सन्धान करने के लिए तत्पर हो जाता है। तब वह वीरभाव-सम्पन्न साधक बन जाता है। वीरभाव-सम्पन्न साधक की मनोवृत्ति रजोगुण प्रधान होती है। वह समस्त जागतिक पदार्थों को शिव और शक्ति की विभूति मानकर धारण करने का प्रयत्न करता है। इस वीरभाव की अवस्था में साधक द्वैतभावना से ऊपर अद्वैतभावना की ओर बढ़ता है।

दिव्य-भाव—जब साधक वीरभाव से परिपुष्ट होकर द्वैतभाव को निरस्त कर अपने उपास्य देवता से तादात्म्यभाव रखने से समर्थ हो जाता है, अद्वैतानन्द अमृतपाननिरत ब्रह्ममय हो जाता है, तब वह दिव्य कहा जाने लगता है। उसकी मानसिक अवस्था पूर्णतया सात्विक हो जाती है। उसमें दिव्यभाव का उदय हो जाता है। दिव्यभाव साधक ब्रह्मज्ञानी परमहंस पद प्राप्त करता है।

इन तीनों भावों से आविष्ट तन्त्र-साधकों के सात आचार होते हैं-

सात आचार

वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और **कौलाचार**। ये आचार क्रमशः एक के बाद एक उत्तम माने गए हैं। अन्तिम सातवाँ कौलाचार सर्वोत्तम आचार माना जाता है।

प्रारम्भ से चार क्रमशः वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार और दक्षिणाचार उत्तम पशुभाव साधक से सम्बन्घ रखते हैं। वीर साधक से वामाचार और सिद्धान्ताचार सम्बद्ध होते हैं और दिव्यभाव साधक का सम्बन्ध कुलाचार से होता है। सनातन हिन्दू जाति के धर्म-ज्ञान, भक्ति, देव-देवी, शास्त्र, साधना, साध्य और जाति आचारमूलक मानी गई है। तन्त्रशास्त्रों में सातों आचारों के स्वरूपों का विशद वर्णन मिलता है।

समयाचार तन्त्र में वेदाचार—वैदिक विधि से संकल्पपूर्वक देवार्चन करना, मद्य-मांस का सेवन न करना, ब्रह्मचर्य पालन करना, लोभ-मोह से दूर रहना, एकान्त, शान्त पुण्यक्षेत्र में रहकर शुद्धभाव से ध्यान-साधना में निरत रहना, काम-क्रोध रहित रहना, त्रिकाल सन्ध्या और जप करना, रात में माला और मन्त्र का स्पर्श न करना और गुरु निन्दा न करना- यही वेदाचार है।

नित्यतन्त्र में वैष्णवाचार—वेदाचार की ही भाँति संयम-नियम का पालन करते हुए ब्रह्मचर्यरत रहना, हिंसा, निन्दा, कुटिलता से दूर रहना, भगवान् विष्णु की अर्चना करना और सभी कर्मों को उन्हें समर्पित कर देना तथा सम्पूर्ण जगत् को

विष्णुमय समझना - वैष्णवाचार है।

नित्यतन्त्र में शैवाचार—वेदाचार की भाँति शिव और शक्ति की आराधना करना शैवाचार है। इसमें एक विशेषता यह है कि बलिदान भी किया जाता है।

नित्यतन्त्र में दक्षिणाचार—दक्षिणामूर्ति का आश्रयण करने से इसे दक्षिणाचार कहा गया है। यह आचार वीरभाव और दिव्यभाव सम्पन्न साधकों के लिए प्रवर्तित किया गया है। भगवती परमेश्वरी की पूजा वेदाचार क्रम से की जाती है। विजया दशमी की रात में इस आचार को ग्रहण कर अनन्यधी होकर मूलमन्त्र का जप किया जाता है।

भावरहस्य में वामाचार—वीरभाव में स्थित साधक के लिए दक्षिणाचार और वामाचार दोनों विधियों से साधना का विधान है। स्वधर्म निरत साधक पञ्चतत्त्वों (पञ्च मकारों) से भगवती पर देवता की अर्चना करे। अष्टपाशों से रहित साधक साक्षात् शिव बनकर परम प्रकृति भगवती शक्ति की आराधना करे। सदा तन-मन से पवित्र रहकर महामन्त्र की साधना करे, वीरभाव से दिव्यभाव में प्रविष्ट होने पर साधक सिद्धान्ताचार में तत्पर हो और फिर कौलाचार को ग्रहण करे। अपने को देवता मानकर सूक्ष्मतत्त्व की भावना से मानसिक पूजा करे।

भावरहस्य में सिद्धान्ताचार—शम, दम युक्त होकर योगमुक्त साधक, अपने में परमात्मभाव रखकर, योगभाव से जब साधना करता है तो उसकी यह साधना-पद्धति सिद्धान्ताचार कहलाती है।

भावरहस्य में कुलाचार—जिस प्रकार शिशु सभी कर्मों को भूलकर माता के स्तनों का पान करता है, उसी प्रकार साधक ज्ञानमार्ग में प्रविष्ट होकर सतोगुण से समन्वित होकर, आचारविहीन होने पर भी ब्रह्मभाव में निरत रहता है, तब पूर्णानन्दपरायण की वह साधना-पद्धति कौलाचार कहलाती है।

कुल, कौल, कौलाचार का रहस्य—कौलार्चन दीपिका में कौल रहस्य को अन्यन्त गोपनीय बताया गया है। यह शाम्भवी विद्या कुलवधू के समान छिपी रहती है। श्यामा रहस्य में कौल का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि ''अन्दर से शाक्त, बाहर से शैव और सभा-समाज में वैष्णव की भाँति आचरण करने वाला नाना वेषधारी साधक 'कौल' है।

भावचूड़ामणि में कौल का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि ''कीचड़ और चन्दन में, पुत्र और शत्रु में, श्मशान और देवगृह में, कंचन और कंकड़ में जो समान भाव रखता है, वह कौल है।''

तन्त्रशास्त्र की भाषा सांकेतिक होने के कारण सर्वसाधारण के लिए उसका

अर्थबोध दुरूह होता है। वस्तुतः 'कुल' शब्द का अर्थ शरीर स्थित षट्चक्रों में से एक चक्र मूलाधार है। कुल में से 'कु' शब्द पृथिवी तत्त्व का बोधक है। पृथिवी तत्त्व में लीन होना 'कुल' है। कुल शब्द आधार मूल चक्र है। कुल का त्रिकोण या योनि समझना चाहिए। वह योनि ही मातृका है और वर्णात्मिका परावाक् अधिष्ठित शक्ति-**मातृयोनि** है। यह शब्द पारिभाषिक है। जो साधक इस मातृयोनि से कुण्डलिनी शक्ति को मणिपुर चक्र से ऊपर उठाता हुआ उत्तरोत्तर सहस्रारचक्र तक उठा कर प्रत्येक चक्र में कुण्डलिनी के साथ जीवात्मा की समरसता स्थापित कर आनन्द का उपभोग करता है, वही साधक कौल है और उसकी पद्धति कौलाचार है।

तन्त्रशास्त्र के एक समुदाय में वामाचार को ही कुलाचार कहा जाता है। वाममार्गी अपनी बाह्य पूजा में पञ्चतत्त्व–मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन का प्रयोग करते हैं। वे इस प्रकार लौकिक एवं स्थूल पूजा द्रव्य अपने इष्टदेव को समर्पित कर परम अमृत पद पाने का विश्वास रखते हैं। देवी भागवत में इस प्रकार के कुलाचार को वेद - विरुद्ध मानकर द्विजातियों के लिए उसका निषेध किया गया है–

सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजोभवेत्।
वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान्।।
कौलमिवापथौ हेयौ नित्यं गौरि द्विजातिभिः।

समयाचार और कौलाचार में भेद–निगमागम द्वारा निःसृत भारतीय साधना और संस्कृति की महती विशेषता यह है कि जन-जन की भिन्न-भिन्न रुचियों और प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए हर व्यक्ति की रुचि के अनुसर श्रेय और प्रेय प्राप्त करने वाली अनेक रूप-साधना-पद्धतियाँ आविष्कृत की गई हैं। तन्त्रशास्त्र में उन विभिन्न पद्धतियों को 'आचार' कहा गया है। ज्ञानार्णव तन्त्र में शक्ति की साधना करने वाले साधकों के लिए **'कुलाचार'**, **'मिश्राचार'** और **'समयाचार'** तीन आचार बताए गये हैं। यहाँ पर समय शब्द की तात्विक व्याख्या कर देनी आवश्यक है। 'समय' शब्द अनेकार्थवाची है। ललिता सहस्रनाम-भाष्य में श्री भास्कराचार्य ने समयाचार की व्याख्या में लिखा है–

''दहराकाश में चक्र-भावना से जो पूजा की जाती है वह **'समयपदवाच्य'** है।' समयाचार का प्रतिपादन वशिष्ठ, शुक, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार द्वारा विरचित 'पञ्चशुभागम संहिता' ग्रंथों में किया गया है। सर्वप्रथम **'समय'** यह अभिधान इन्हीं ग्रंथों में प्रयुक्त हुआ है। इसका पर्यायवाची 'साम्य' शब्द भी है। तदनुसार शक्ति और शिव का साम्य ही 'समय' है। तात्पर्य यह कि **'समया'** श्री भगवती हैं

और 'समयः' श्री शिव हैं।''

साम्य के पाँच भेद—१. अधिष्ठान—चक्रादि की पूजा, पूजाधिकरण; २. अनुष्ठान—सृष्टि आदि कार्य; ३. अवस्थान—नृत्यादि क्रियाएँ; ४. नामसाम्य—भैरव आदि और ५. रूपसाम्य—आरुणि आदि।

महावेध संस्कार करते समय शरीर के अन्तर्गत षट्चक्रों का अनुसन्धान किया जाता है। मूलाधार से षट्चक्रों का भेदन कर कुण्डलिनी को जब सहस्रदल कमल तक पहुँचाकर पुनः मूलाधार चक्र में स्थापित किया जाता है तो उस क्रिया को **'समय-पद'** कहा जाता है। 'ललितात्रिंशति तन्त्र' में जिस सनकादिमुनिध्येय का उल्लेख है, उससे समयाचार ही गृहीत होता है। ''कुलकुण्डालया कौलमार्गतत्पर सेविता'' की व्याख्या में भास्कराचार्य ने यह आशय व्यक्त किया है - ''श्रीविद्या की उपासना में समयाचार, कौलाचार, मिश्राचार तीन आचार मान्य हैं। वशिष्ठ - शुक आदि द्वारा प्रतिपाद्य शुभागम में बताया गया है कि ''वैदिक मार्गानुसारी जो आचार है वही समयाचार है और चन्द्रकुलादि अष्टतन्त्रों में प्रतिपादित आचार मिथ्याचार है।''

'समय' शब्द के अनेक अर्थ हैं। 'समयाचार' नाम का एक तन्त्र ग्रन्थ है, जिसमें पूजा-संकेत को ही 'समय' कहा गया है। 'समय' के अनेकानेक अर्थों में से पञ्चशुभागम में जो अर्थ बताया गया है, वही आचार प्रधान होने के कारण आचार्यों द्वारा गृहीत हुआ है। सनकादि मुनियों द्वारा उपदिष्ट 'पञ्चशुभागम' अनुपलब्ध है, केवल उसके उद्धरण यत्र-तत्र मिलते हैं। सौन्दर्यलहरी की टीका में लक्ष्मीधर ने पञ्चशुभागम के अनेक प्रमाण उद्धृत किए हैं। इस समय लक्ष्मीधरी टीका ही 'समयाचार' का आधार बनी हुई है। वेदान्त सूत्र के प्रथम अध्याय के शाक्तभाष्य में समयाचार का जो निरूपण किया गया है, वह लक्ष्मीधरी टीका पर ही आधारित है। श्री शंकराचार्य द्वारा विरचित **'सौन्दर्यलहरी'**, श्री गौडपादाचार्य द्वारा रचित **'सुभगोदय'** नाम के आठवों श्लोक की टीका में समयाचार का विवेचन विशद रूप से किया गया है।

श्री चक्र का पूजन बाह्याकाश और दहराकाश भेद से दो प्रकार का होता है। भोजपत्र या स्वर्णपत्र में यन्त्र बनाकर उस पर आवरण सहित परदेवता का यजन बाह्याकाश पद से गृहीत है। यही कौलाचार है। हृत्-कमल में चक्रपूजा ही समयाचार है। वह सहस्रदल में विशेष रूप से होता है। विभिन्न कामनाएँ रखकर साधकगण अन्य चक्रों में भी समयाचार का अवल बन कर पूजन करते हैं। 'क' से लेकर 'ठ' अक्षर पर्यन्त युक्त कमल में समाराधिता श्री सुन्दरी अपने भक्तों के सभी अभीष्ट पूर्ण करती है। इस पूजन-पद्धति में होम और तर्पण का भी विधान है। हृदयाकाश की पूजा से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है।

कौलाचार मत में श्री चक्र के अन्तर्गत त्रिकोण के मध्य में स्थित बिन्दु में पराशक्ति का पूजन होता है। यही 'पूर्व कौलाचार' है और उत्तर कौलाचार मत के अनुयायी प्रत्यक्ष सुन्दरी शक्ति की योनि-पूजा करते हैं। इस प्रकार श्रीचक्रयजन और प्रत्यक्ष सुन्दरी पूजन-भेद से कौल-पूजा दो प्रकार की होती है।

वाममार्ग : दक्षिण मार्ग

आधार चक्र के बाह्य और अभ्यन्तर स्थित कुलकुण्डलिनी का समाराधन 'मिश्र' कौलपूजन है। यहाँ पर कौल शब्द रूढ़ है। मिश्र कौलपूजकों द्वारा पूजित भगवती भी 'कौलिनी' कहलाती है। इस पूजन में पञ्च मकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मैथुन, मुद्रा) को प्रत्यक्ष रूप में ग्रहण किया जाता है और समयाचार पूजन-पद्धति में पञ्च मकारों को मानसिक रूप से ग्रहण किया जाता है। कौलमत में मद्य, मांस, मैथुन आदि को भौतिक रूप में ग्रहण किया जाता है। किन्तु समयाचार मत में मद्य से मदिरा का ग्रहण न कर सहस्र दल कमल से निर्गत अमृत बिन्दु माना गया है, उसी का पान मद्यपान है। कौलमत की भाँति पशु का वध कर उसका मांस समयमत में स्वीकार नहीं है। वहाँ पशु से तात्पर्य काम, क्रोध आदि लिया जाता है और इन पशुओं का ज्ञान की तलवार से बाँधकर उनका मांस भक्षण किया जाता है। समयमत से इन्द्रियों का निरोध मत्स्य है, आशा तृष्णा आदि मुद्राएँ हैं। मन और सुषुम्णा का मिलन ही मैथुन है।

दक्षिणमार्ग में पञ्च मकार का स्वरूप इस प्रकार स्वीकृत है - **मनन, मन्त्र, मन, मौन** और **मुद्रा**। चाहे समयाचार हो या वामाचार अथवा दक्षिणाचार - सभी मार्गों में पञ्चमकार स्वीकार किया गया है और पञ्चमकारों के लक्षण, स्वरूप एवं उनकी व्याख्या अपने-अपने ढंग से की गई है। कुछ भी हो, पराशक्ति की पूजा में पञ्च मकार अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं और साधक जिस मार्ग का अवलम्बन कर महाशक्ति का पूजन करता है, उसमें वह सफलता सिद्धि प्राप्त करता है।

पञ्चमकार पूजा सर्वथा गोपनीय ढंग से की जाती है। कुछ विद्वान् पञ्चमकार पूजन को वेद बाह्य मानकर उसकी निन्दा करते हैं। श्री लक्ष्मीधर ने भी सौन्दर्य - लहरी की टीका में पञ्चमकार के मद्य-मांस आदि की अत्यधिक आलोचना की है। कौलों के पञ्चमकार की यह निन्दा बहुत पुरानी है। ऋग्वेद में भी इसके संकेत मिलते हैं –

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः।।

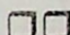
-ऋग्वेद ७/२१/५

इस मन्त्र में शिश्नदेव यह पद कौलाचार को संकेतिक करता है। शैव और वैष्णवों के आपसी कलह में यही शिश्नदेव ही बीज रूप से विद्यमान है।

पञ्चमकार के लौकिक द्रव्यों द्वारा (मद्य, मांस, मैथुन, मत्स्य) पूजन करने वालों का तर्क है कि ''लोगों की आसक्ति मद्य, मांस, मैथुन, मत्स्य में स्वाभाविकतया रहती है। ये वस्तुएँ मानव-जीवन के लिए अपरिहार्य हैं। मद्य, मांस, मैथुन आदि पाँच मकार ही संसार बन्धन के हेतु हैं। कामनाएँ, इच्छाएँ, रजोगुण प्रधान होती हैं, जीव इनसे विमुक्त नहीं होता है। पञ्चमकारों—भोग-वासनाओं का परित्याग सहज साध्य नहीं होता। भगवती महाशक्ति अपने अन्तर्यामी रूप से सभी प्राणियों में निवास करती हैं। जिस साधक को जो भोग प्रिय होता है, वही भोग उसके इष्ट देवता को भी प्रिय होता है। इसके प्रमाण में लोग गीता का यह श्लोक भी प्रस्तुत किया करते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसिं कौन्तेय तत्कुरुष्वमदर्पणम्।।

सकाम साधना करने वाले साधकों के लिए शक्ति तन्त्रों में यह विधान मिलता है कि ''सकामी साधक अपने प्रिय द्रव्य से ही अपने इष्टदेव का पूजन करें। देव - प्रसन्नार्थ आत्मसमर्पण बुद्धि से पूजन में परमाशक्ति विषयीभूत पदार्थों के प्रयोग मद्य, मैथुन, पशुबलि आदि से कोई दोष या पाप नहीं होता है। इस प्रकार के पूजन से साध ाक आत्मसंयमी बनता है। वह भगवती की भक्ति प्राप्त करता है और अनवरत भगवत्-स्फुरण से बाह्य ज्ञान शून्य होकर वह साधक शिवत्व प्राप्त करता है।''



३/ तन्त्रशास्त्र में वैश्विक सिद्धान्त

आगमों और तन्त्रशास्त्रों का कथन है कि तन्त्र का साधना करने वाले साधक की साधना की चरम परिणति पूर्णता की प्राप्ति है। पूर्णता-प्राप्ति तभी संभव है जब साधक को वैश्विक बोध प्राप्त होता है।

चराचर सृष्टि के मूल में एक बोध-समुद्र है जो अकूल है, जिसका वार-पार कुछ भी नहीं है। उस अकूल बोध-समुद्र में उठती हुई तरंगों का उन्मेष 'अनुग्रह' नाम से अभिहित है। जो साधक पूर्णता प्राप्त करना चाहता है उसे सर्वप्रथम 'अनुग्रह' प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। अनुग्रह प्राप्त होने पर सोई हुई 'चित्शक्ति' जाग उठती है। उस चित्शक्ति के जागते ही साधक के जीवन में ाध्यात्मिक शक्तियों का उदय होता है उसका जीवन ही बदल जाता है। जब तक ़नुष्य में बोध नहीं उत्पन्न होता तब तक वह दृश्यमान विश्व को केवल बाह्य स्थित ही समझता है। बोध प्राप्त होने पर उसे समस्त चराचरात्मक विश्व अपने ही अन्दर स्थित दीख पड़ता है। यह अनुभव उसे तभी प्राप्त होता है जब चित्शक्ति जाग्रत होती है और जब तक मनुष्य माया के जाल में फँसा रहता है, तब तक वह विश्व को बाह्य स्थित ही समझता है।

'माहेश्वर आगम' का कथन है कि - ''अनादि काल से जीव काल - समुद्र में गोते खाता आ रहा है। वह अपने पूर्णस्वरूप से च्युत होकर काल की धारा में बह रहा है, अनेक विकल्प-जालों में बँधा हुआ जीव अपने अन्दर समाए हुए विश्व को अपने से बाहर समझता है। ये विकल्प-जाल 'अनुग्रह' प्राप्त होने पर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। जाग्रत चित्शक्ति काल को ग्रस लेती है। उस समय जीव को अपने ही अन्दर समस्त विश्व समाया हुआ जान पड़ता है उसे आत्मस्वरूप का बोध हो जाता है। समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड दर्पण में दिखाई देने वाली नगरी की तरह अपने अन्दर प्रतिभासित होता है।''

विश्व का सर्जन विसर्ग से हुआ था। जाग्रत चित्शक्ति जब काल को, विश्व को अपना ग्रास बनाकर उन्हें निगल जाती है, तो उस प्रक्रिया को 'बिन्दु' कहा जाता है। चित्शक्ति बिन्दु की प्रक्रिया से समस्त विश्व - ब्रह्माण्ड को साधक के हृदय

में स्थापित कर देती है। इसके बाद जीव का वास्तविक भोग सम्पन्न होता है। आचार्यों का कहना है कि साधारण जीव भोग करना नहीं जानता है। जो लोग अनुग्रह प्राप्त कर चित्शक्ति को जाग्रत कर लेते हैं, वही वास्तविक भोग करना जानते हैं। पशु अर्थात् माया से ग्रस्त जीव जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में रहता है और इन तीनों अवस्थाओं में अलग-अलग भोक्ता के रूप में उसका भोग सम्पन्न होता है। तुरीयावस्था में उन तीनों अवस्थाओं कें एक ही भोक्ता के रूप में उसका भोग सम्पन्न नहीं हो सकता है। जब साधक की चित्शक्ति जाग्रत हो जाती है, उसके प्रमेय शुद्ध हो जाते हैं, तब उसके विषयों की तथा विषयों के कारणभूत इन्द्रिय-समूह की शुद्धि हो जाती है। इन्द्रियों के शुद्ध होने पर अन्तःस्थित विषयों का ग्रहण चक्षु आदि इन्द्रियाँ करने लगती हैं। यह विषय-ग्रहण या विषय-भोग ही भगवान् की सच्ची आराधना है, अर्चना है। वस्तुतः यही तन्तशास्त्र द्वारा प्रतिपादित वीरभाव है। पूर्णता प्राप्त करने की यह पहली स्थिति है। इस स्थिति में विषय-भोगों की आकांक्षा का लय हो जाता है। केवल श्वास - प्रश्वास की क्रिया चलती रहती है। **परासंविद्** स्थिति को **परप्रमातृभाव** भी कहा जाता है। परप्रमातृभाव का उदय होने पर वह देवी अपने तेज से मितप्रमातृभाव को ग्रस कर निज रूप में स्थित हो जाती है। वह साधक के प्राण तथा अपान के संघर्ष को तथा प्रमाण और प्रमेय के क्षोभ को दूर करती है और साधक निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त होता है। इस निर्विकल्प अवस्था को आचार्यों ने 'आध्यात्मिक शिवरात्रि' कहा है, इसलिए कि उस समय चन्द्र (प्राण) और सूर्य (अपान) दोनों अस्त हो जाते हैं।

निर्विकल्प स्थिति के बाद साधक में विशिष्ट स्थिति का उदय होता है। यह अवस्था साधकों - योगियों के लिए कठिन परीक्षा की घड़ी मानी गई है। इस अवस्था में दो भाग दिखाई पड़ते हैं— एक बाह्य, दूसरा अभ्यन्तर। बाह्य स्थिति में स्वरूप का आच्छादन होता है और अभ्यन्तर स्थिति में स्वरूप का उन्मीलन होता है। इस अवस्था में योगी की प्राणक्रिया रुक जाती है और प्रमाण - प्रमेयों के संघर्ष से उत्पन्न क्षोभ लुप्त हो जाता है। इस अवस्था में रोगी सतत आत्मानुसन्धान में रत रहता है। आत्मानुसन्धान जाग्रत रहने पर स्वरूप का विकास होता है। स्वरूप के इस विकास की अवस्था को तन्त्रशास्त्र में 'गत व्योम' कहा गया है। यह ऐसा व्योम है जहाँ चन्द्र (प्राण) और सूर्य (अपान) निष्क्रिय हो जाते हैं। प्रमाण और प्रमेय भी निष्क्रिय गतिहीन बन जाते हैं। इसी को योग और वेदान्त को भाषा में 'चिदाकाश' कहते हैं। इस स्थिति में साधक को यह अनुभव होता है कि आत्मा चराचरात्मक विश्व को निगल रहा है। आत्मा द्वारा विश्व को निगलते हुए अनुभव

कर साधक परम आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है और यह एक रसमय स्थिति को प्राप्त करता है।

कौलमतानुयायी योगियों का कहना है कि ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर साधक योगी के हृदय में इस प्रकार के विमर्श का उदय होता है—

"मैंने ही सब अभेद में भासित कर लिया है।"

"सब मैं ही हूँ।"

इस अवस्था में साधकयोगी में कदाचित् शंका या ग्लानि का उदय भी हो जाए तो उससे कोई विघ्न नहीं होता। क्योंकि प्रमेय इस स्थिति में पूरी तरह लीन रहता है किन्तु प्रमाणों में स्थित प्रमेय जीवन्त रहते हैं। प्रमेयों की इसी जीवन्त शक्ति को द्वादश इन्द्रिय रूप में वर्णित किया गया है। आगम इसे सूर्य का एक रूप मानता है।

इसके बाद द्वादश इन्द्रियात्मक सूर्य अहंकार रूप परमादिव्य में विलीन हो जाता है। माहेश्वर आगम इसे **'भर्ग शिखा'** कहता है। इस स्थिति में सारी कलाएँ विलीन हो जाती हैं। केवल परमाकला विद्यमान रहती है। तन्त्रशास्त्रों में परम कला को शिवकला तथा परप्रमातृरूपा कहा गया है।

परमादित्य के बाद अहं सत्ता का उदय होता है। तन्त्र की भाषा में इसे 'कालाग्नि' कहा गया है। यह रुद्रावस्था है। रुद्रावस्था के बाद भैरव अवस्था का उदय होता है। भैरव अवस्था का उदय होने पर भैरव का जो रूप साधक को प्रकाशित होता है उसका नाम 'महाकाल भैरव' है और परासंविद्शक्ति इस अवस्था में यहाँ पर महाकाली के रूप में प्रकाशित होती है। महाकाल भैरव स्वाधीन नहीं है, वह भगवती जगदम्बा की इच्छा से प्रेरित होकर यहाँ पर सृजित आदि पंचकृत्य का सम्पादन करते हैं। भैरव-अवस्था में सब प्रकार की अहन्ता विलीन हो जाती है। उस महान् अग्नि में दग्ध होकर विश्व के साथ अभिन्नमय पूर्ण अहन्ता विद्यमान रहती है। जब योगी इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह परमशिव के समान पञ्चकृत्य करता है। इस समय महाकाली स्वधाम में प्रविष्ट होने के लिए आकुल रहती है, इसलिए योगी की यह अवस्था काल द्वारा ग्रस्त नहीं होती है। यह वह अवस्था है, जिसमें योगी 'शमनाभूमि' में प्रविष्ट हो जाता है। इस अवस्था में काल की सत्ता नहीं रह जाती। अनन्तकाल क्षणमात्र प्रतीत होता है। इस स्थिति के बाद योगी की जिस अवस्था का विकास होता है वह चरम स्थिति है। यही परमशिव स्थिति है। इसी अवस्था में योगी को परासंविद् देवी का साक्षात्कार होता है। प्रकट होकर देवी जब अपने आश्रितगणों को प्रकट करती है, प्रमाण, प्रमाता आदि पदों का तथा सृष्टि आदि समस्त चक्रों का विकास करती है तब वह 'पूर्ण' है और जब वह

सब कुछ अपने में लीन कर लेती है तो केवल 'काल संकर्षिणी' नाम का एक चक्र शेष रहता है। यही जीव की पूर्णता प्राप्ति है।

तन्त्रशास्त्र और उसकी अभिव्याप्ति

तन्त्र शब्द बहुमुखी और व्यापक अर्थ का बोधक है। काशिकावृत्ति (७,२,९) में तन् विस्तारे धातु से विस्तार अर्थ में इसकी व्युत्पत्ति की गई है। वाचस्पति, आनन्दगिरि, गोविन्दानन्द के मत से तन्त्र शब्द ततृ या तंतृ धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ 'व्युत्पादन' है। पाणिनि के 'गणपाठ' में जो अर्थ 'तन्' धातु है, वही अर्थ 'तन्त्र' धातु का भी है। वस्तुतः तन् (विस्तार) और व्युत्पादन में अधिक अर्थ-भेद नहीं है। व्युत्पादन का भाव विस्तार ही है। विस्तार अर्थ ही सामान्यतया तान्त्रिक आचार्यों ने स्वीकार किया है–

तनोति विपुलानर्थान् तत्वमन्त्रसमन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते।।

-कामिकागम

जो तत्त्व और मन्त्र के विपुल अर्थ का विस्तार है और त्राण करता है, वह तन्त्र है। व्याकरण की दृष्टि से भी यही अर्थ सिद्ध है - **'तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्'।** 'त्र' प्रत्यय का अर्थ त्राण करना है।

तन्त्रशास्त्र को 'आगम' शास्त्र भी कहा गया है। सम्प्रदायानुसार आगम के तीन भेद हैं - शाक्त, शैव, वैष्णव। वैष्णव आगम को श्रीमद्भागवत में 'सात्वत तन्त्र' कहा गया है–

तेनोक्तं सात्वतं तन्त्रं यज्ज्ञात्वा मुक्तिभाग्भवेत्।
यत्र स्त्रीशूद्रदासान्नं संस्कारो वैष्णवः स्मृतः ।।

- १०-९-३४

कूर्मपुराण (१६-१) के अनुसर कपाल, लाकुल, वाम, भैरव, पूर्व, पश्चिम, पाञ्चरात्र, पाशुपत आदि अवैदिक आगम हैं। कूर्मपुराण पाशुपत आगम का परिगणन वैदिक और अवैदिक दोनों आगमों में करता है। सनत्कुमार संहिता शैवागम को दो प्रकार का मानती है - श्रौत और अश्रौत। श्रौत तो श्रुतिसारमय है, वह भी दो तरह का है- स्वतन्त्र और इतर। स्वतन्त्र दस प्रकार का है और इतर (सिद्धान्त) अठारह प्रकार का है। शैवसिद्धान्त आगम के २८ मूल आगम हैं और २०० उप- आगम हैं। यह शुद्धाद्वैत आगम कहा जाता है। इतर श्रुतिसार आगम के अनेक भेद हैं, उसकी गणना नहीं की जा सकी।

जिस प्रकार शैवागम के अनेकानेक भेद - प्रभेद हैं, उसी प्रकार शाक्त आगम के

९ आम्नाय, ४ सम्प्रदाय (केरल, कश्मीर, गौड़, विलास) हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय के बाह्य और अभ्यन्तर पूजन - भेद से दो - दो भेद हैं। उत्तरी शैव - सम्प्रदाय को कश्मीर का 'त्रिक' कहा जाता है। दक्षिणी शैव - सम्प्रदाय को 'शैव सिद्धान्त' कहा जाता है।

तन्त्रागम के अनुसार महाविष्णु और सदाशिव अभिन्न हैं। प्रकृति के विना विश्व-रचना नहीं हो सकती और पुरुष के विना ज्ञान नहीं मिल सकता। महाकाल पुरुष और महाकाली प्रकृति है। पराशक्ति के दो स्वरूप एक - दूसरे में प्रतिबिम्बित होते हैं। प्रतिबिम्ब ही माया है, जिससे लोक और लोकपाल उत्पन्न होते हैं। आद्या महाशक्ति कभी राम के रूप को तो कभी कृष्ण के रूप को धारण करती है। क्योंकि भैरव महाकाव्य से एकीभूता महाकाली में सभी स्वरूप विद्यमान हैं। महाकाल ही महाविष्णु हैं।

आगम शास्त्र का दर्शन ३६ तत्वों का सिद्धान्त मानता है। शैव और शाक्त दोनों का मत इस तत्व सिद्धान्त पर एक है। कश्मीर का शैवागम सम्प्रदाय अद्वैतवादी है। शैव सिद्धान्त शुद्धाद्वैतपरक है और पाञ्चरात्र (वैष्णव) विशिष्टाद्वैतपरक है। शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन सभी सम्प्रदायों के अपने-अपने तन्त्र हैं।

शाक्त मत के शाक्ततन्त्रशास्त्र के तीन मण्डल हैं—

१. चौंसठ तन्त्र वाले शाक्तशास्त्र (कौल)

३. आठ तन्त्र वाले (मिश्र)

३. समय शास्त्र

यह विभाजन साधन के भिन्न-भिन्न उद्‌देश्यों पर आधारित है।

पाञ्चरात्र के अन्तर्गत १०८ तन्त्र ग्रंथ हैं। कश्मीर के त्रिक सम्प्रदाय के अनेक तन्त्र हैं, जिनमें मालिनी, विजय और स्वच्छन्द तन्त्र मुख्य हैं। शैव-सम्प्रदाय के २८ तन्त्र हैं और एक बड़ी संख्या उपागमों की है। उपागमों में तारक तन्त्र, वाम तन्त्र, मुख्य हैं। शाक्त-सम्प्रदाय के ६४ तन्त्रों, ३२७ उपतन्त्रों और यामलों, डामरों, संहिताओं का तथा शैव-सम्प्रदाय के ३२ तन्त्रों, २०५ उपतन्त्रों, यामलों, डामरों और संहिताओं का उल्लेख मिलता। इसके अतिरिक्त गाणपत्य, सौर, बौद्ध, जैन- सम्प्रदायों के सहस्रों का उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त गाणपत्य, सौर, बौद्ध, जैन - सम्प्रदायों के सहस्रों तन्त्र-ग्रंथों का विवरण मिलता है। इन स्वतन्त्र तन्त्र-ग्रंथों के अतिरिक्त पुराणों तथा उपपुराणों में अनेकानेक स्थलों पर तन्त्र-चर्चा मिलती है।

५०० से अधिक तन्त्रों, ८०० उपतन्त्रों, २२ आगामों का परिचय चीनागम और बौद्धागम में मिलता है। पाशुपत, कापालिक, भैरव, अघोर आदि सम्प्रदायों के हजारों तन्त्र-ग्रंथ उल्लिखित हैं।

जिस प्रकार आगम को तन्त्र कहा जाता है, उसी प्रकार तन्त्र को मन्त्र भी कहा जाता है। तन्त्रशास्त्र में ब्रह्म तथा प्रकृति तत्व पर बहुत ही गहन और विशद विवेचन किया गया है। जिस तरह वेद को 'श्रुति' कहा गया है, वैसे ही तन्त्र का नाम श्रुति है। महर्षि हारीत का कथन है- "धर्म क्या है, इस विषय को 'श्रुति' से समझा जा सकता है। श्रुति दो प्रकार की है- (१) वैदिकी, (२) तान्त्रिकी।"

अथातो धर्म व्याख्यास्यामः। श्रुतिप्रमाणको धर्मः।

श्रुतिरस्तु द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च।।

वेद तथा तन्त्र पराशक्ति की दो भुजाएँ हैं। इन दो भुजाओं से महाशक्ति चराचर, जगत् को धारण किए हुए है–

आगमश्चैव वेदश्च द्वौ बाहू मम शंकर।

ताभ्यामेव धृतं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।

वेदों के अध्ययन-अध्यापन का अधिकार स्त्री और शूद्र के लिए वर्जित बताया गया है, किन्तु आगम - तन्त्र श्रुति में ऐसी संकीर्ण भावना नहीं है। मनुष्य मात्र आगम-विद्या के अध्ययन-अध्यापन, साधना का अधिकारी है। सवर्ण-असवर्ण, नर-नारी, स्पृश्य-अस्पृश्य का भेद तान्त्रिक श्रुति में नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी भावना, निष्ठा और धार्मिक विश्वास के अनुसार तन्त्र की साधना कर भोग और मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

कादि, हादि, कहादि–तन्त्रराज में तीन खण्ड हैं – (१) कादि, (२) हादि, (३) कहादि। तन्त्रराज की प्रसिद्ध मनोरमा टीका के अनुसार 'कादि मत' के ९ तन्त्र - ग्रन्थ हैं – (१) सुन्दरीहृदय, (२) नित्यषोडशिकार्णव, (३) चन्द्रज्ञान, (४) मातृका, (५) सम्मोहन, (६) वामकेश्वर, (७) बहुरूपाष्टक, (८) प्रस्तार-चिन्तामणि और (९) मेरुप्रस्तार।

सम्मोहन तन्त्र में कादि, हादि और कहादि मत की परिभाषा बताते हुए कहा गया है कि–

जिसमें मन्त्र 'क' वर्ण से आरम्भ होते हैं, वह कादि मत है।

जिसमें मन्त्र 'ह' वर्ण से प्रारम्भ होते हैं, वह हादि मत है, और

'कादि' तथा 'हादि' के संयोग से 'कहादि' उत्पन्न होता है।

'क' काली का बीज है और 'ह' शिव का बीज है। बीजाभिधान में लिखा हुआ है–

'क' काली ब्रह्म 'रा' प्रोक्तं महामायार्थकश्च,

विश्वमात्रर्थको 'नादः' 'बिन्दुः' दुःखापहारकः।

तेनैव कालिकां देवीं पूजयेद् दुःखशान्तये।।

आदिशक्ति महाकाली का रूप त्रिकोण Δ है। त्रिकोण की बाईं लाल रेखा 'ब्रह्मा', दाहिनी श्वेत रेखा 'विष्णु' और नीचे की गहरी हरी रेखा 'रुद्र' है। ऊर्ध्व की श्वेत मात्रा 'सरस्वती' हैं। त्रिकोण का रिक्त मध्य स्थान श्वेत 'सुदर्शन' है। दाहिनी ओर का 'क' का पूँछदार भाग विद्युत् रंग की 'कुण्डलिनी' का द्योतक है। मध्यस्थित सुदर्शन असंख्य चन्द्रमाओं की प्रभा में विद्योतित है, उसी के साथ कैवल्य-दायिनी काली विद्योतित है।

त्रिकोण के तीन कोणों में क्रमशः 'ज्येष्ठा', 'वामा' और 'रौद्री' शक्तियाँ हैं। यह त्रिकोण-मण्डल 'त्रिपुरा' का आसन है। चार कलाओं से युक्त 'त्रिपुरा' ज्ञानात्मिका है। ज्ञान, इच्छा और क्रिया का समन्वय होने से यह मूर्तिमान प्रकृति है। यह अविनाशी शक्ति है।

इच्छा, ज्ञान और क्रिया— इन तीनों के समन्वय का नाम है - 'शक्तितत्व'। अथर्ववेद में शक्तितत्व को 'आकूति' कहा गया है। आकूति सूक्त में चार मन्त्र हैं। 'आकूति' का शब्दार्थ है- इच्छाशक्ति। समस्त विश्व इच्छाशक्ति-आकूति का विलास है। ज्ञान-क्रिया का दूसरा नाम शिव-शक्ति है। शिव और शक्ति इच्छाशक्ति से ही स्वरूप धारण करते हैं। इच्छाशक्ति ही समस्त संसार के व्यवहारों का मूल है। तन्त्रों और उपनिषदों में तथा शिव-सूत्र में इच्छाशक्ति को ही 'कुमारी उमा' कहा गया है जो अज्ञान का नाश करती है। इसी शक्ति का विशद वर्णन अथर्ववेद के उन्नीसवें 'काण्ड के आकूति सूक्त' में किया गया है। शक्ति में 'कादि', 'हादि' और 'सादि' इस त्रिकूट को रहस्य रूप से आकूति सूक्त में बताया गया है। आकूति सूक्त के प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ मन्त्र में क्रमशः 'ऐं', 'सौः', 'क्लीं' - इन तीनों बीजाक्षरों का उद्धार होता है। तन्त्रशास्त्र की भाँति आकूति सूक्त भी 'काली तत्त्व' को सर्वप्रथम आद्यातत्त्व स्वीकार करता है।

शाक्त - सिद्धान्त में प्रतिपादित पराशक्ति के 'कादि', 'हादि' ओर 'सादि' इस त्रिकूट का रहस्य 'आकूति-सूक्त' द्वारा उद्घाटित होता है।

तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र और आधुनिक विज्ञान

तन्त्र शब्द का पारिभाषिक अर्थ विज्ञान है। तन्त्र विज्ञान है और विज्ञान तन्त्र है। जिस तरह ज्ञान-विज्ञान का अन्त नहीं है, उसी प्रकार तन्त्र भी असंख्य हैं। जैसे वेद और वेदशास्त्र में, योग और योगशास्त्र में भेद होता है, उसी प्रकार तन्त्र और तन्त्रशास्त्र में भी भेद है। **मन्त्र-शक्ति और मन्त्र-शक्ति से कार्य करने की युक्ति तन्त्र है और तन्त्र की पद्धतियाँ बताने वाला शास्त्र तन्त्रशास्त्र है।**

ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक प्रत्यक्ष, दूसरा परोक्ष (काल्पनिक)। प्रत्यक्ष ज्ञान

से यथार्थ का बोध होता है, किन्तु काल्पनिक ज्ञान पूर्णरूप से अथवा आंशिक रूप से सत्य भी हो सकता है और असत्य भी।

प्रत्यक्ष ज्ञान का आधार काल्पनिक ज्ञान होता है। आधुनिक जीव-विज्ञान, रसायन-विज्ञान, भूत-विज्ञान (फिजिक्स) आदि इसके उदाहरण हैं। जैसे फिजिक्स का ज्ञान इस विषय को समझता है कि किस प्रकार विज्ञान के प्रत्येक विभाग में तत् तात्कालिक ज्ञान से कल्पना कर अनुसन्धान द्वारा अनुमान को सिद्धान्त बना लिया गया है।

तन्त्र का मत है कि एक 'बिन्दु' से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। इसी का समर्थन अब आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान भी करने लगा है। बेलजियम के एक कास्मोलाजिस्ट श्री आवेलेन ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि ''एक महत् आदिबिन्दु फटने से यह विश्व बना है, जैसा कि हम देखते हैं।'' इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए अमेरिका के वैज्ञानिक 'जार्ज गामो' ने कहा है कि ''किस प्रकार विश्व-रचना से पूर्व अवर्णनीय परमाणुओं का भी पता नहीं था, केवल एक प्रकार के स्वच्छन्द विद्युत्कण (न्यूट्रोन) की धारा का प्रवाह था।''

तन्त्र के अनुसार 'गामो' द्वारा प्रतिपादित महाज्वाला की तुलना हमारे वर्तमान ब्रह्माण्ड के सौरमण्डल की अन्तर्ज्वाला से नहीं की जा सकती। क्योंकि हमारे सूर्य की अन्तर्ज्वाला का तापमान केवल चार करोड़ डिग्री है और विश्व-रचना से पूर्व के ताप का तो अनुमान ही नहीं किया जा सकता है, जिसकी गर्मी करोड़ों - लाखों वर्षों बाद जब कुछ शान्त हुई तब सूर्य और नक्षत्र बने। तन्त्र में उस कल्पनातीत महाज्वाला को 'कोटिसूर्यप्रकाशा आद्याशक्ति' कहा गया है। उस समय यह आद्याशक्ति अकेली थी। दिशाएँ, दिक्शक्ति और सदाशिव प्रेत हो रहे थे और कालशक्ति एवं महाकाल स्तब्ध पड़े हुए थे—

अवष्टभ्य पद्भ्यां शिवं भैरवं च। तन्त्र के इस कथन का निरूपण आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली से इस प्रकार किया जा सकता है—

आद्याशक्ति ...... इनर्जी क्वान्टा

आदि अवस्था (महाप्रलय) .... मैक्सिमम एण्ट्रोपी

आदि अवस्था की दो प्रधान शक्तियाँ-

-सदाशिव ...... ग्रेमिटेशन या पावर ऑफ

-महाकाल ...... कालफिगरेशन एलेक्ट्रोमेग्नेटिज्म

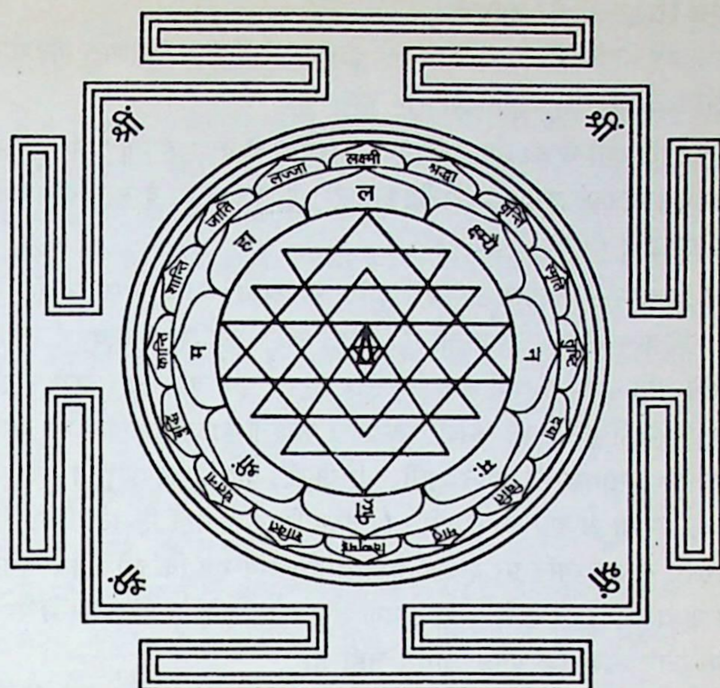
तन्त्र में सदाशिव और महाकाल दोनों वस्तुतः एक हैं; जो तान्त्रिक भेदाभेद का एक सिद्धान्त है। अपनी मृत्यु से लगभग दस वर्ष पूर्व एन्स्टाइन ने सर्वप्रथम इस तान्त्रिक भेदाभेद को समझ कर अपनी नवीनतम रचना 'जेनरल रिलेटिविटी प्रिंसिपल' में इनकी मूल एकता सिद्ध की है।

तन्त्र में आद्या मूलाशक्ति काली का वर्ण काला बताया गया है। 'इनर्जी क्वान्टा' की इस विशिष्ट अवस्था में विश्व घोर अन्धकार में व्याप्त रहता है। प्रकाश शक्ति उस समय निष्क्रिय रहती है। एक लाख छियासी हजार दो सौ चौरासी मील प्रति सेकेण्ड गतिवाली प्रकाश-शक्ति उस समय सिकुड़ी-सिमटी रहती है। सूर्य - चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्रों का कुछ अता-पता नहीं रहता है।

इस क्वान्टा इनर्जी का प्रतीक जिस प्रकार तन्त्र में 'बिन्दु' माना गया है, उसी प्रकार अब पाश्चात्य आधुनिक विज्ञान भी मानने लगा है। बिन्दु केन्द्र का प्रतीक है, इससे अधिक आधुनिक विज्ञान इसके सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं जान पाया है। बिन्दु अपने रूप में अलक्ष्य है, इसलिए अव्यवहार्य होने के कारण अव्यक्त कहा जाता है। अव्यक्त बिन्दु की अभिव्यक्ति का जो क्रम आधुनिक विज्ञान बताता है, बिल्कुल वही क्रम तन्त्रों में भी बताया गया है—

बिन्दु की पहली व्यक्तावस्था है त्रिकोण Δ। इस त्रिकोण में 'दिक्' (स्पेस) के तीन 'डाइमेन्शन' और एक काल 'डाइमेन्शन' परस्पर नित्य सम्बद्ध हैं। एक ही त्रिकोण Δ नहीं बनता, बल्कि अनेक त्रिकोण इसलिए बनते हैं कि सभी प्रकार की गति-शक्तियों का मूल 'एलेक्ट्रोमेग्नेटिज्म' विविध प्रकार की गति लेता है। उसकी विभिन्न प्रकार की गतियों के ग्रहण से विविध त्रिकोण बनते हैं। विश्वरूपिणी षोडशी के 'श्रीयंत्र' में यही सिद्धान्त दृष्टिगत है। आद्या के यन्त्र में केवल पाँच (वेपर) ही दिक् (स्पेस) में था, इसके बाद वायु हुआ। वायु ने अपनी एक प्रकार की गति से अग्नि तत्व (गर्मी) उत्पन्न किया, अग्नि तत्व ने जल तत्व या द्रव (लिक्विड) तत्त्व उत्पन्न किया। जल तत्व की गर्मी पर्याप्त मात्रा में कम होने पर पृथिवी या ठोस पदार्थ बना। करोड़ों - अरबों वर्षों तक वह दशा रहने के बाद दिक् (स्पेस) अर्थात् सदाशिव की ग्रेमिटेशन शक्ति और महाकाल (एलेक्ट्रोमेग्नेटिज्म) ने अनेकानेक तत्वों (ऐलीमेण्ट्स) की सृष्टि की है। इसी सिद्धान्त के उदाहरण श्रीयन्त्र के इतने त्रिकोण हैं।

त्रिकोण के बाहर या पश्चात् जो वृत्त है, वह शक्ति की 'रेडिएशन' का द्योतक है। इस वृत पर जो दल हैं, वे शक्ति के विभागों (सेक्शन्स) के द्योतक हैं।



सब के पश्चात् 'भूपुर' विश्व की सीमा होने से शक्ति गति-क्षेत्र (फील्ड ऑफ फोर्स) है। अभी तक पाश्चात्य विज्ञान विश्व को असीम मानता था किन्तु एन्स्टाइन ने गणित द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि 'स्पेस्' सीमित है, पर घिरा हुआ नहीं।

तन्त्र का यह कथन कि ''स्वयं वही (अनादि-अनन्त महाशक्ति) अपने को जानती है, दूसरा कोई उसे नहीं जान सकता।''

आधुनिक विज्ञान भी यह कहता कि ''ज्यों-ज्यों गणित के साधन बढ़ते हैं, वैसे-वैसे ज्ञेय दूर होता जा रहा है। सत्य पदार्थ का ज्ञान तो होता नहीं, केवल क्यों होता है, किस प्रकार होता है, इसी का आंशिक ज्ञान प्राप्त होता है। वर्तमान भौतिक या आधिदैविक (हैटा-फिजिकल या स्पिरिच्युअल) क्षेत्र में जाने की आवश्यकता का अनुभव करने लगा है।

तन्त्र के 'चेतना-सिद्धान्त' को अब तक आधुनिक विज्ञान नहीं मानता था। विश्व का मूल 'चेतना' या 'चिति' शक्ति है- यह तान्त्रिक सिद्धान्त है। आधुनिक विज्ञान चेतना (कॉन्शस्) को आदि मानकर मेकेनिकल या केमिकल संयोग से उत्पन्न मानता आया है। यही कारण है कि वह सत्य पदार्थ उसके लिए अज्ञात रहा किन्तु अब थोड़े ही दिनों से मूर्धन्य वैज्ञानिकों को चिति शक्ति का आभास होने लगा है। आधुनिकतम सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक एन्स्टाइन ने अपने जीवन के उत्तर काल

में अनुभव कर लिखा है - ''अचिंत्य की धारणा से ही सत्य विज्ञान की शक्ति है, प्रगाढ़ सुन्दरता का हृदयग्राही अनुभव होता है।''

इस पर टिप्पणी करते हुए वैज्ञानिक 'वारनेट' ने कहा है कि ''संसार समझता है कि डॉ० एन्स्टाइन एथीस्ट (अनीश्वरवादी) हैं; पर नहीं, वे महाचिति को विश्व का मूल समझते हैं।''

मन्त्र विज्ञान– तन्त्रशास्त्र की दृष्टि से श्रव्य ध्वनि निम्न कोटि की है। आधुनिक विज्ञान के मत से मन्त्रों में निहित ध्वनि इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि श्रव्य ध्वनि यदि डेढ़ सौ वर्षों तक निरन्तर उत्पन्न की जाए तो उससे केवल एक प्याला गरम पानी करने की ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है। तन्त्रविज्ञान का मत है कि सबसे अधिक प्रभावशाली ध्वनि सुनी नहीं जाती, वह केवल अनुभवगम्य होती है। मानसिक जप या अजपाजप में ज़ीभ-ओंठ आदि कुछ नहीं हिलते, फिर भी जपते समय साँसों में यह ध्वनि प्रस्फुटित होती है। निष्कर्ष यह कि जो हमें अनुभव होता है, उस शब्द के लिए 'स्फोट' आवश्यक होता है। आधुनिक विज्ञान में स्फोट को नापने के लिए अब तक कोई साधन नहीं है।

कर्णातीत तरंगें उत्पन्न करने के लिए हमारे शरीर में ऐसा कोई अवयव नहीं है, किन्तु मन्त्रों का जप करते समय जो 'स्फोट' होता है, वह उन कर्णातीत तरंगों से कम प्रभावशाली नहीं होता है। तन्त्र विज्ञान शब्द को आदिशक्ति - परम शिवब्रह्म मानता है। उसके मत से शब्द में केवल एक 'तन्मात्रा' है। शेष तत्त्वों में तन्मात्राओं का भार बढ़ता जाता है। मन्त्रशास्त्र में आकाश तत्व की साधना की जाती है और योगशास्त्र में वायु तत्व की। योगी प्राण वायु द्वारा जिस कुण्डलिनी को जाग्रत करता है, मन्त्र-साधक उसका जागरण मन्त्र-जप से उत्पन्न 'स्फोट' से करता है। योग-साधना द्वारा योगी जिस अगम्य स्थिति को प्राप्त करता है, मन्त्रसाधक उसी स्थिति को आकाश की उपासना से सहज ही प्राप्त कर लेता है।

मन्त्र-विज्ञान केवन ध्वनि-विज्ञान ही नहीं है- भावना-विज्ञान भी है। ध्वनि तो गुणित करने की शक्ति है। किन्तु मन्त्र की भावना क्रियाशील रहती है। ध्वनि की तरंगें क्रमशः गमन करती हैं और भावनाओं तथा विचारों की चुम्बकीय (~~~~) शक्ति रूप में गमन करती हैं। **वैदिक ऋचाओं की स्वर - प्रक्रिया में यही चुम्बकीय शक्ति रहती है।**

संगीत शास्त्र में ध्वनि रहती है। मेघ-मल्हार राग गाने से पानी बरसने लगता है। दीपक राग गाने से बुझे हुए दीपक जल उठते हैं। आजकल यूरोप में संगीत द्वारा गायों से अधिक दूध दुहा जाता है, पेड़-पौधों को बढ़ाया जाता है और वृक्षों में फल-फूल उत्पन्न किए जाते हैं।

ध्वनि से अधिक शक्तिशाली और प्रसन्नसाध्य बैखरी वृत्ति का स्फोट होता है। इस दृष्टि से मन्त्र का फार्मूला बनता है—

शब्द + भावना = शक्ति। ध्वनि अपने आप में एक वातावरण है। देवार्चन के समय घंटा घड़ियाल तथा शंख की ध्वनि भक्ति-भावना पैदा करती है और युद्ध - क्षेत्र के रणवाद्यों की ध्वनि कायरों में भी वीर रस का उद्रेक उत्पन्न करती है। मृत्यु-संगीत, शोक-संगीत शोक उत्पन्न करता है। ध्वनि का यह प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय साम्य रखता है।

शब्द की शक्ति अपरिमेय होती है। पृथिवी पर होने वाले अनेक परिवर्तन शब्द द्वारा किए जाते हैं। शब्द शक्ति के स्रोतों का एक स्रोत है। तन्त्र-विज्ञान का मत है कि जो पिंड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। किसी भी इन्द्रिय को प्रबल और विशुद्ध बना लेने पर इन्द्रिय प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होती है।

विचारों में हर समय चुम्बकीय प्रवाह रहता है, उसका अनुभव भी हमें हुआ करता है। जैसे श्मशान में जाकर मनुष्य के हृदय में भय और वैराग्य उत्पन्न होता है। हिंसक जन्तुओं से आकीर्ण जंगल में पहुँचकार दिल धड़कने लगता है भावनाओं और विचारों के पवित्र प्रवाह से ऋषि-आश्रमों में सिंह और मृग एक साथ साधु-भाव से रहा करते थे। किसी कुत्ते को जब हम प्यार से पुचकारते हैं तो वह भूँकना बंद कर पूँछ हिलाने लगता है और क्रोध प्रकट करने पर वही गुर्राता है, भूँकता है, आक्रमण भी कर बैठता है। इन सब में भावनाओं की विद्युत्-शक्ति का ही प्रभाव प्रभावी होता है।

निष्कर्ष यह कि शब्द और भावना दोनों में एक प्रबल शक्ति रहती है। और मन्त्रों में इन दोनों शक्तियों का समावेश रहता है।

यन्त्र-विज्ञान—'यं' धातु से 'यन्त्र' निष्पन्न होता है। संयमित करना, केन्द्रित करना इसका शब्दार्थ है। यन्त्र द्वारा मन केन्द्रित होकर यन्त्राधिष्ठित देवता या मन्त्राधिष्ठित देवता से साधक का तादात्म्य स्थापित होता है। शरीर के भिन्न-भिन्न स्थान शक्ति के केन्द्र हैं। अभीष्ट-सिद्धि के लिए अधिष्ठातृ देवता की शक्ति पर ध्यान केन्द्रित करने में यन्त्र सहायक होता है। ध्यान और बीज मन्त्र के जप तथा हवन के द्वारा इष्ट देवता की शक्ति यन्त्र में समाविष्ट होकर यन्त्र को 'चैतन्य' बना देती है। यही कारण है कि यन्त्र-पूजन करने से तथा शरीर में यन्त्र को धारण करने से कार्य-सिद्धि होती है। यन्त्र मूल रूप में विभिन्न शक्ति-केन्द्रों के मानचित्र के समान है, जिन्हें धारण करने से अथवा उनकी पूजा करने से साधक की अभीष्ट शक्ति उद्‌बुद्ध हुआ करती है।

यन्त्र लिखने की भी एक विशेष विधि होती है, जिसमें रेखाओं, बिन्दुओं, बीजांकों या बीजाक्षरों का संयोजन विधिविशेष से किया जाता है। यों ही मनमाना ढंग से रेखाएँ खींचकर उनके कोष्ठों में अंक या बीज मन्त्र भर देना अज्ञता को प्रमाणित करता है और ऐसे यन्त्र कथमपि सिद्धिप्रद नहीं होते हैं। यन्त्र की रचना-विधि साधना-विधि के मूल में निहित जो तत्त्ववाद है, वही यन्त्र के चैतन्य के जागरण में सहायक होता है। यन्त्र शरीरस्थ शक्ति को मन्त्र-शक्ति के सहकार से उद्‌बुद्ध करता है और तन्त्र उद्‌बुद्ध-शक्ति को सम्पूर्ण देह के विभिन्न केन्द्रों में प्रसारित करता है।

यन्त्र बनाते समय शुद्ध भाव के अवलम्बन से रखाओं को खींचा जाता है। यन्त्र की वे रेखाएँ अन्तःकरण की शक्तियों को आन्दोलित - स्पन्दित कर उन्हें उद्‌बुद्ध करती हैं; उस समय मन और चित्त के संयोग से आसक्ति उत्पन्न होती है और अहंकार तथा बुद्धि के संयोग से भावतत्व का उदय होता है तो अन्तःकरण विशुद्ध, निर्मल बन जाता है और साधक की कामना सिद्ध होती है।

जो यन्त्र स्वतः दैवी शक्तिसम्पन्न होते हैं, उन्हें दिव्य यन्त्र कहा जाता है। ये यन्त्र स्वतः सिद्ध माने जाते हैं। बीसायन्त्र, श्रीयन्त्र, पंचदशीयन्त्र दिव्ययन्त्रों के वर्ग में परिगणित हैं। मन्त्रों की भाँति यन्त्र बहुविध और बहुसंख्यक हैं और उनका रचना-विज्ञान भी प्रयोजन के अनुसार कई प्रकार का होता है। यन्त्रों को सिद्ध करने के लिए प्रयोजन के अनुसार दिन, तिथि, नक्षत्र, मास आदि काल निर्धारित हैं। लिखने की स्याही, लेखनी और पत्र भी प्रयोजन के अनुसार भिन्न होते हैं।

यन्त्र में तीन विभाग हैं- 'कादि', 'हादि' और 'साहादि'। 'कादि' आद्याशक्ति का बोधक है। 'हादि' श्रीविद्या का बोधक है और 'सहादि', सरस्वती शक्ति का बोधक है। इनके यन्त्र भी इसी आशय को प्रकट करते हैं। 'कादि' का यन्त्र केवल शक्ति-त्रिकोणों से बनता है। 'हादि' का यंत्र शिव और शक्ति के सम्मिलित त्रिकोणों से बनता है और सहादि यन्त्र उभयात्मक है।

बीजमन्त्र-विज्ञान

महाप्रकृति पराविद्या अविद्या क्रिया के अलग-अलग देवता होते हैं। प्रत्येक विद्या दैवत की शक्ति में सूक्ष्मतम तत्त्व निहित रहते हैं। तत्वयुक्त विद्या दैवत की क्रिया के अनुसार ध्यान भी पृथक् प्रकल्पित हैं। ध्यान के अनुकूल ही महाविद्या के नाम भी भिन्न-भिन्न रखे गये हैं। प्रत्येक महाविद्या की क्रिया के मूलभाव-बीजाक्षरनाद (मूलबीज) में योगियों, सिद्धों के प्रत्येक महाविद्या के बीज संयुक्त किए हैं। उस दिव्य 'नादब्रह्म' को ही क्रियाशक्ति के 'बीजमन्त्र' के नाम से जाना जाता है।

बीजमन्त्र का सतत मनन करने से वह बीज साधक के मन और उसकी जीवनी शक्ति के सम्पुट में दबकर प्रस्फुटित होता है। इस प्रस्फुटन को आधुनिक विज्ञान की भाषा में 'ब्रेकिंग ऑफ कारिमक एम्ब्रायों एण्ड जनिसिस ऑफ एलेक्ट्रान्स एण्ड एटम्स' कहा जाता है। इस क्रिया से बीज में निहित अन्तःशक्ति साधक के 'चित्' मन पर प्रभाव डालती है और साधक के 'चित्' अस्तित्व में एक विचित्र प्रकार की महाशक्ति उत्पन्न करती है, जिसे तन्त्रशास्त्र अणिमा, महिमा, गरिमा आदि आठ सिद्धियाँ कहता है। इन सिद्धि-शक्तियों में जो साधक फँस जाता है, वह अपनी इष्ट साधना का लक्ष्य नहीं प्राप्त कर पाता है।

इस प्रकार के बीजमन्त्र जब भिन्न-भिन्न महाविद्या दैवत शक्ति के भिन्न-भिन्न नाम से जपे जाते हैं, जब साधक को विशेष दैवी सहायता प्राप्त होती है और वह सिद्धि प्राप्त करता है। उस नाम और दैवत के ध्यान युक्त 'नाद' को मन्त्र कहा जाता है। बीजमन्त्रों में बनाये गये मन्त्र पञ्चाक्षरी से लेकर सहस्राक्षरी तक होते हैं। मूल बीज का उपदेश दीक्षाकाल में कायशोधन के लिए दिया जाता है। बीज सहित पूरे मन्त्र का जप साधक को सिद्धि प्रदान करता है।

४ / तन्त्र का चरम लक्ष्य : अद्वैत सिद्धि

तन्त्रशास्त्र का मत है कि जो कुछ विश्व-ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ता है और जो विविध रूप है, वह अनेकधा होने पर भी वस्तुतः एक है। इस एक को अनेक बनाने वाली दो सत्ताएँ हैं। उनमें से जो दूसरी सत्ता है वह दो अवस्थाओं में प्रकट होती है। एक के साथ अभिन्न रूप में जुड़ी हुई प्रथम अवस्था है और एक से भिन्न रूप में प्रकाशमान किन्तु अभिन्न रूप में जुड़ी हुई जो सत्ता है उसे 'यामल सत्ता' कहते हैं। इन्हीं दो सत्ताओं के मिलन (योग से) से सृष्टि का सर्जन होता है। एक ओर दो जहाँ युग्म रूप से प्रकाशमान हैं, वहाँ दोनों के मिलन से परम अद्वैत सत्ता का प्रकाश होता है और जहाँ पहली और दूसरी सत्ताएँ पृथक् रूप में स्थित हैं, वहाँ दोनों के मिलन से भेदमय बाह्य जगत् का प्रकाश होता है। प्रथम स्थिति को अन्तरंगाशक्ति और दूसरी स्थिति को बहिरंगाशक्ति कहा जाता है। आगमशास्त्रों में रेखाओं द्वारा इस तत्त्व को समझाया गया है।

तान्त्रिक आचार्यगण जिसे परमसत्ता कहते हैं, वही निष्कलपरमपद है। उसी को परमशिव कहा जाता है और उसी का वर्णन पराशक्ति या महाशक्ति के रूप में किया जाता है। यह महाशक्ति चिद् रूप और अखण्ड प्रकाश रूप है। वही सत् रूप है, वही चित् रूप है। वह निरपेक्ष स्वभाव रखने के कारण आनन्दमय है। वह स्वतन्त्र शक्ति रखती है, इसलिए अद्वैत होते हुए भी द्वैत हो सकती है। वह निःस्पदन होते हुए भी स्पन्दनशील हो सकती है। यही कारण है कि तन्त्रशास्त्र मे शिव तथा शक्ति में कोई भेद नहीं माना जाता है। दोनों अभिन्न हैं, शक्ति के बिना शिव इच्छाहीन, क्रियाहीन हैं और स्पन्दन में भी असमर्थ हैं, शिव और शक्ति की यह अभिन्नता ही सामरस्य है।

तन्त्रशास्त्र का मत है कि 'सृष्टि' के मूल में बिन्दु है। परमशक्ति के स्वातंत्र्य से जब स्पन्दन इस बिन्दु को स्पर्श करता है तो बिन्दु रखा बन जाती है। जो सबसे छोटी रेखा है वह दो बिन्दुओं से बनती है। इसकी परवर्ती सृष्टि बिन्दु से नहीं, तीन रेखाओं से होती है। इन तीनों रेखाओं से जो त्रिकोण Δ बनता है वही सृष्टि का मूल है, जिसे योनि कहा जाता है। वेदान्त सूत्र भी यह मानता है कि

'योनेः शरीरम्' अर्थात् योनि के आश्रय से ही शरीर उत्पन्न होता है।

सृष्टि के मूल में एक ही परम सत्ता है, जिसे परमाशक्ति, महाशक्ति, मातृका या विश्वजननी कहा जाता है। यह अनेक रूपों में प्रकाशमान होती है। सृष्टि के मूल में जो मातृका है, वह मूलतः एक है, अभिन्न है। यही अक्षर ब्रह्म की क्षरात्मक स्वरूप-भूताशक्ति है। प्राचीन आगमों में इसे परावाक् कहा गया है। वैदिक साहित्य का शब्द ब्रह्म यही परमातृका विश्वजननी है। यह नित्य प्रकाशमान है, स्वयंसिद्ध है और परिपूर्ण है। इसके बाहर कुछ भी नहीं और न रह ही सकता है। यही पूर्ण अहं, परब्रह्म परमात्मा है।

यह पूर्ण अहं चैतन्य स्वरूप है। इसमें केवल अहंता ही है। इसकी इदंता का जब स्फुरण होता है तो सर्वप्रथम रूप परमाकाश का आविर्भाव होता है, फिर उसी के आश्रय से अनन्त अहं द्वितीय रूप में प्रकट होता है। इसी का नाम इदं सृष्टि है, जिसे महासृष्टि कहते हैं।

महाकाल

इदं सृष्टि महासमष्टि रूप है जो लोक-लोकान्तर हैं और आगे होंगे वे सब नित्य वर्तमान रूप में उसी महासमष्टि रूप महासृष्टि में विद्यमान हैं। काल परिमाण का साधक है इसलिए उस महासृष्टि में काल नहीं है—वहाँ भूत, भविष्य, वर्तमान की कोई स्थिति नहीं है। इसलिए तन्त्रशास्त्र इसे 'महाकाल' कहता है। आदि-अन्तरहित महासृष्टि के उच्छिन्न होने, अवसान होने की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। क्योंकि वहाँ काल नहीं है, किन्तु जब पूर्ण अहंता ता बोध हो जाता है तब आद्यन्त ही महासृष्टि का भी अवसान होता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि पूर्ण अहंता क्या है? जो वस्तु पूर्ण है, अखण्ड है, महाप्रकाश है तथा इन सबको मिलाकर जो पराशक्ति का सम्मूर्च्छित रूप है वहीं पूर्ण अहंता है। अहं से अहंकार नहीं समझना चाहिए, क्योंकि पूर्ण स्थिति में अहंकार संभव ही नहीं है। सांख्य की भाषा में अहंकार ग्राहक भूमि में होता है, चाहे वह ईश्वर-सम्बन्धी हो या जीवसम्बन्धी। पूर्ण अहं कभी भी ग्राहक पद वाच्य नहीं हो सकता। ग्राहक अहं में देहात्मबोध रहता है, इसमें प्राणों की क्रियाएँ होती हैं। बाह्य जगत् का आभास रहता है। जब दृश्य में बाह्य जगत् का आभास हट जाता है तब ग्राहक अहं पूर्ण अहं के रूप में प्रकाशित होने लगता है।

कामकला

तन्त्रशास्त्र का मत है कि सृष्टि रचना के मूल में जो एक अखण्ड सत्ता वर्तमान है, उसमें शिव और शक्ति का सामरस्य है। यह सामरस्य निर्विकार है,

इसका ह्रास-विकास नहीं होता है। यह अनादि, अनन्तस्वप्रकाश तथा चिदानन्दमय है। तान्त्रिकों ने इसी सामरस्य से पीठ रचना प्रारम्भ की है। उनका कहना है कि शिव-शक्ति का जो सामरस्य है, वही **परमबिन्दु** है। तान्त्रिक परिभाषा में इसे सूर्य और **कामाख्यरवि** कहा जाता है। शिव और शक्ति के रूप में जो बिन्दु आत्मप्रकाश करते हैं, उनमें से एक को **अग्नि** कहा जाता है और दूसरे बिन्दु को **चन्द्र**। पूर्ण बिन्दु सूर्य रूप में ऊर्ध्व की ओर मध्य स्थान में रहता है। अग्नि तथा सोम रूप दो बिन्दु दो स्तनों के रूप में उससे निम्न देश में दोनों ओर रहते हैं। यही त्रिबिन्दु का अधिष्ठान है। त्रिबिन्दु के नीचे जो एक विचित्र शक्ति हार्द्धकला के नाम से रहती है, वही **कामकला** है। इसी से पूर्ण स्वरूप के अन्तर्गत भगवद्धाम निर्मित होता है।

प्राचीन आगमशास्त्रों के आचार्यों ने विश्वसृष्टि के मूल में कामकला की क्रिया में विद्यमानता का अनुभव किया। उन्होंने अनुभव द्वारा यह सिद्ध किया है कि विश्व सृष्टि की रचना तीन स्तरों पर हुआ करती है-

(१) विश्व का स्थूल रूप, उसका सूक्ष्म रूप तत्त्वात्मक है और कामकला का जो सूक्ष्म रूप है वही कला रूप है। यही कला **चित्कला** नाम से जानी जाती है।

(२) शिव चित्स्वरूप है। शक्ति उसका कलास्वरूप है। जहाँ इन दोनों का सामरस्य होता है वहीं कामरूप बिन्दु है। इस बिन्दु का एक बहिःनिस्सरण है, जो **हार्द्धकला** रूप में आत्मप्रकाश करता है।

(३) हार्द्धकला अनेक ढंग से तरंगायित होकर तत्त्वों की सृष्टि करती है। चाहे पाँच तत्त्व हों या छत्तीस तत्त्व हों अथवा विशिष्ट तत्त्व ही क्यों न हों, उनके मूल में हार्द्धकला रहती है। हार्द्धकला की सृष्टि शिवशक्ति रहस्यमूलक है और आनन्दमयी है। जब तक निष्कल परमशिव स्थिति प्राप्त नहीं होती तब तक काम-बिन्दु का अभाव रहता है। काम-बिन्दु के अभाव के कारण हार्द्धकला का आन्नदमयी सृष्टि का अनुभव नहीं किया जा सकता है। इसलिए तन्त्र-क्षेत्र में कामकला का विशेष महत्त्व है।

तन्त्रयोग

तन्त्र अपने आप में एक पूर्ण योग है। तान्त्रिक सिद्धियों के लिए योगाभ्यास अनिवार्य है। ध्यान, धारणा, आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि के अतिरिक्त राजयोग, भक्तियोग, सहजयोग, हठयोग, लययोग, मन्त्रयोग, सुरत शब्दयोग आदि नानाविध योगों का समावेश तन्त्र साधना में पाया जाता है।

योगशास्त्र **'योगिश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** कहकर चित्तवृत्तियों के नियन्त्रण को ही

योग मानता है, किन्तु तन्त्रशास्त्र **'योगमेकत्वमिच्छन्ति वस्तुनोऽन्येन वस्तुना,** कहकर एक वस्तु को दूसरी वस्तु से मिला देना ही योग मानता है, इन्द्रियों, चित्तवृत्तियों के निरोध की भर्त्सना करते हुए अभिनवगुप्त ने 'मालिनी विजयवार्तिक में लिखा है-

अनादरविरक्त्यैव गलतीन्द्रियवृत्तयः।
यावत्तु विनियम्यन्ते तावत्तवद्विकुर्वते।। २।११२।

''यदि मनुष्य गार्हस्थ्य जीवन बिताते हुए लौकिक सुखों का अनुभव करते हुए शास्त्र-विधि से भोग-वासनाओं को तृप्त करते हुए माहेश्वर आगम द्वारा बताए गए योग का अभ्यास करे तो वह आत्मानन्द कला का रसास्वादन करता है। उस पर वह निर्भर रहकर अभ्यास करता रहे तो सभी सांसारिक भोगों से उसे विरक्ति हो जाती है। उसके मन में यह विचार पैदा हो जाता है कि **'किमेतैः क्षणिकैर्भोगैः'**- इन क्षणिक भोग-सुखों में क्या धरा है। इस प्रकार का निरादर भाव उत्पन्न होने पर साधक इन्द्रियों के कार्य-व्यापार, विषय-भोगों की तृष्णा से विरत हो जाता है।''

तन्त्रशास्त्र का मत है कि ''बलात् इन्द्रिय-निग्रह करने से अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं और कभी इस प्रकार का व्यक्ति महामोहमय विषमगर्त्त में गिरता है।''

समावेशयोग

शैवागमों में बलात् इन्द्रिय निग्रह को अप्रशस्त माना गया है। वह सुखपूर्वक योगसाधना का उपदेश देता है। शैवागम योग पातञ्जल आदि योगों से विशिष्ट और प्रमुख महत्तव रखता है। शैवागम 'समावेशयोग' का उपदेश देता है। यह 'समावेश' दृढ़तर भावनावश सिद्ध होता है अथवा दृढ़तर इच्छा शक्ति के प्रयोग से सिद्ध होता है। 'समावेश' की साधना करने से पूर्व साधक को यह अभ्यास करना चाहिए कि ''सर्वत्र मैं हूँ, सब में मैं हूँ, मुझसे ही सब कुछ है, मेरा ही सब कुछ है, मेरी शक्ति का सर्वत्र विस्तार है, यह विश्व मेरी ही शक्ति से प्रसारित और प्रचलित है।''

ऐसी भावना और विकल्प ज्ञान-रूप से ज्ञानाभ्यास में क्रियांश एवं इच्छांश के गुणीभूत होने से इसका नाम **ज्ञानयोग** पड़ा है। इसी का आगमशास्त्रों के आचार्य गण **शाक्तोपाय** कहते हैं। तन्त्रशास्त्र का मत है कि शाक्तोपाय के अभ्यास की प्रक्रिया सद्गुरु से सीखनी चाहिए। अन्यत्र यह भी कहा गया है कि गुरु के वाक्य से या शास्त्र के वचन से अपने स्वभाव का वास्तविक ज्ञान करके तीव्रतर इच्छा-शक्ति के प्रयोगाभ्यास का बल पाए भावनाभ्यास के बिना भी शिवभाव का

समावेश प्राप्त हो जाता है। सद्यः समावेश अभ्यास ही **'शाम्भवोपाय'** कहा जाता है। माहेश्वर आगम इसे **'इच्छोपाय'** अथवा **'इच्छायोग'** भी कहता है। इस योग की साधना में जो परिपक्वता है, उसमें तो इच्छाशक्ति प्रयोग के बिना और प्रारम्भिक चित्त सम्बोध के बिना भी किसी परिपूर्ण शिवभाव-समावेश सम्पन्न योगी के दर्शन, स्पर्शन मात्र से ही साधक में शिवता का समावेश हो जाता है। अत्यल्प उपाय प्रधान होने से स्वल्प अर्थ में 'नञ्' का उपयोग होने से इस योग का 'अनुपाययोग' भी कहा जाता है।

शम्भवयोग तो 'उपाय' और 'अनुपाय' प्राप्त करता हुआ साक्षात् शिवता प्रत्यभिज्ञा का 'उपाय' कहा जाता है। 'शाम्भव उपाय योग' निर्विकल्प होता है और 'शाक्तोपाययोग' शुद्ध विकल्पात्मक होता है। शाक्तसाधकगण तो अपने लिये ही विकल्प बुद्धि का अवलम्बन करते हैं, उनका कोई और प्रमेय नहीं रहता है। जो भी प्रमेयांश यहाँ पर अपने लिए प्रयुक्त होते हैं वे सामान्यतया यही सब कुछ है इसी भाव से न कि विशेषतः इस स्थण्डिल या प्रतीक के लिए जिस उपाययोग में बाह्य विशेष प्रमेयों का उपयोग होता है उसे माहेशवर आगम **'आणवोपाय'** कहता है। इस आणवोपाय में ६ यातृध्येयध्यान संघट्ट को, प्राणोच्चार को, प्राणोच्चार ध्वनि को, प्राणवायु को, देह को लिङ्गादि को कलातत्त्व भुवनों को, मन्त्र के वर्णों और पदों को विकल्प आलम्बन एवं दृढ़तर भावना बल से अपने आपको भगवती परमाशक्ति में लय करके उस परमाशक्ति को साधक प्राप्त कर लेता है। वह साधक तत्काल परिपूर्ण शिवभाव समावेश प्राप्त कर लेता है।

मायातन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा के मिलन को 'योग' कहा गया है। योग को समाधि का साधन माना गया है। शिव और आत्मा की एकता के ज्ञान को भी 'योग' कहा जाता है। आगनशास्त्र **'शक्त्यात्मकं ज्ञानं'** कहकर शक्ति के ज्ञान को योग कहता है। प्रकृतिवादी शिव और शक्ति के मिलन को योग कहते हैं। योग की इन विभिन्न परिभाषाओं में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। सभी में जीवात्मा और परमात्मा की एकता को योग बताया है।

भावनायोग—तन्त्रशास्त्र की साधना-पद्धति में मानसिक वृत्तियों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मन और बुद्धि के आपसी संघर्ष को मिटाकर उन्हें साधक भावनायोग द्वारा एक ही लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करता है। भावनायोग की साधना से साधक का व्यक्तित्व शक्तिशाली बन जाता है। जिस विचार या विश्वास को लेकर साधक भावना करता है, वह वही बन जाता है। भावनायोग के अभ्यास और विकास से शक्ति, ज्ञान और आनन्द के स्रोत उमड़ने लगते हैं। भावना न केवल मानसिक संस्कार करती है, बल्कि इससे शरीरगत असाध्य से असाध्य रोग भी दूर हो जोया

करते हैं। शरीर की शुद्धि के लिए, चित्त की शुद्धि के लिए भावनायोग सर्वोत्तम माना गया है।

तन्त्रयोग का सिद्धान्त है कि ''स्थूल शरीर की अपेक्षा इन्द्रियों का अधिक महत्त्व है, इन्द्रियों की अपेक्षा मन का, मन की अपेक्षा बुद्धि का और बुद्धि की अपेक्षा आत्मा का अधिक महत्त्व है।'' तान्त्रिक योग-साधना का प्रधान लक्ष्य आत्मिक विकास है। अभ्यन्तर शुद्धि के लिए बाह्य शुद्धि आवश्यक मानी गई है।

कुलकुण्डलिनी

शक्ति, ईश्वरी, कुटिलाङ्गी, भुजङ्गी, अरुन्धती आदि अनेक नाम कुण्डलिनी के हैं। तन्त्रशास्त्र में इसे मानव-शरीर की सर्वोच्चशक्ति कहा गया है। सभी शक्तियाँ केन्द्रीभूत होकर कुण्डलिनी में निवास करती हैं और विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ करती हैं। कामशक्ति कुण्डलिनी की एक महती शक्ति है, जो व्यक्ति मैथुन-संभोगरत रहते हैं, ब्रह्मचर्य की साधना से विरत रहते हैं, उनकी कुण्डलिनी क्षीण हो जाती है। ब्रह्मचर्य व्रत रखने से कुण्डलिनी जाग्रत होकर ऊर्ध्वगमन करती है। जाग्रत कुण्डलिनी आध्यात्मिक उत्थान करती है और प्राणों के साथ शिव में मिल जाती है।

तन्त्रशास्त्र और योगशास्त्र दोनों के मत से कुण्डलिनी का स्थान मनुष्य शरीर में गुदा से दो अंगुल ऊपर और शिश्न से दो अंगुल नीचे माना गया है। यही स्थान मूलाधार चक्र का भी है। कुण्डलिनी नागिन की तरह साढ़े तीन वलय बनाकर कुण्डली मारकर मूलाधार चक्र में सोयी रहती है, वह सुषुम्णा का द्वार बन्द रखती है।

तन्त्रशास्त्र में कुलकुण्डलिनी एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ शब्दब्रह्म अथवा परावाग्शक्ति है। सभी मन्त्रदेवता कुण्डलिनी की अभिव्यक्ति हैं। मन्त्रों की रचना करने वाले अक्षर मातृका कहलाते हैं। मातृका से ही विश्व की रचना होती है। कुण्डलिनी महाशक्ति परमेश्वरी है, वही नाद-शक्ति है, वही सर्वशक्तिसम्पन्न कला है। निर्गुण ब्रह्म से प्रस्रवित होने वाला अमृतस्रोत कुण्डलिनी ही है। कुण्डलिनी ही नित्य चेतना को जाग्रत करती है।

षट्चक्र निरूपण में बताया गया है कि ''विश्व माया है, कुण्डलिनी विद्युत् के समान भास्वर है। वही समस्त शब्दों का मूल है। उसकी ध्वनि मधुमक्खियों के गुञ्जन की तरह है। श्वास-प्रश्वास के द्वारा कुण्डलिनी ही समस्त प्राणियों को जीवन देती है। मूलाधार पद्म में स्थित कुण्डलिनी आलोकमण्डल के समान प्रकाशित होती है। कुलकुण्डलिनी वर्गमातृका शब्दों की जननी है। वही मन्त्रों को जन्म देती है। मन्त्रों की सिद्धि कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए की जाती है।

कुलार्णव तन्त्र का कहना है कि ''कुलकुण्डलिनी प्रत्येक जीव के मूलाधार में सोयी रहती है। जब वह जाग्रत होकर षट्चक्रों का भेदन करती है, तभी अपने शब्द रूप में प्रस्फुटित होती है। समस्त वेद तन्त्र और तत्त्व उसी के रूपान्तर हैं। यह शब्द ब्रह्म है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि के रूप में तीन शक्तियों का मूल कारण है। मानव शरीर में सबसे प्रबल सर्जन-शक्ति कुलकुण्डलिनी है।''

आसन, प्राणायाम, बन्ध और **मुद्राओं** के अभ्यास द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत किया जाता है। इस अभ्यास से प्राण इड़ा और पिंगला से निकल कर सुषुम्णा में प्रविष्ट हो जाते हैं, तब कुण्डलिनी ऊपर की ओर उठती है। ऊर्ध्वगमन करती हुई कुण्डलिनी जब ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है, तब योगी शुद्ध अवस्था को प्राप्त करता है, फिर उसके लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता है। कुण्डलिनी को जाग्रत कर सहस्रार तक पहुँचने के लिए अनेक वर्षों का समय लग जाता है, किन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं कि पूर्व जन्म के संस्कारों से अथवा सुयोग्य योगी गुरु की कृपा से अल्पकालीन प्रयास से ही कुण्डलिनी जाग्रत होकर सहस्रार चक्र तक पहुँच जाती है। प्रारम्भ में कुण्डलिनी उठकर निश्चित बिन्दु पर ठहरती है, फिर धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ती है। जिस चक्र पर कुण्डलिनी पहुँचती है उस चक्र के अनुसार साधक को विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है। जब कुण्डलिनी सहस्रार चक्र तक पहुँच जाती है तो योगी को उस समय मोक्ष का-सा आनन्द प्राप्त होता है।

आसन, प्राणायाम, बन्ध और मुद्राओं के अभ्यास से प्राण जब सुषुम्णा में प्रवेश करता है तो सुषुम्णा काल को निगल जाती है, उस समय न दिन रहता है, न रात। प्राणों को सुषुम्णा में प्रवेश कराने के लिए अनेक उपाय तन्त्रशास्त्र और योग-शास्त्र में बताए गए हैं। अपानवायु को ऊपर की ओर और प्राणवायु को नीचे की ओर खींचने से प्राण सुषुम्णा में प्रवेश करते हैं। जालन्धर और मूलबन्ध के द्वारा प्राण जब सुषुम्णा से मिलते हैं तो अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। अग्नि की उष्णता सोई हुई कुण्डलिनी को जगा देती है। वह आवाज करती हुई कुण्डली त्याग कर सीधी हो जाती है और सुषुम्णा में प्रविष्ट हो जाती है। फिर प्रयत्न द्वारा एक के बाद एक चक्र में क्रमशः उसे ले जाया जाता है। इसी को **षट्चक्र भेदन** कहते हैं।

मुद्राओं और बन्धों द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का द्वार खुल जाता है। योगशास्त्र और तन्त्रशास्त्र में अनेक मुद्राओं का वर्णन है किन्तु कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने में केवल मुद्राएँ उपयोगी बतायी गई हैं और उन दस में खेचरी मुद्रा मुख्य हैं।

कुण्डलिनी जागरण-प्रक्रिया

योग-क्रियासिद्धि से पूर्व मलशुद्धि की जाती है। कुण्डलिनीशक्ति को जाग्रत करने के लिए पहले **अश्विनी मुद्रा** का प्रयोग किया जाता है। बार-बार गुदा को संकुचित और प्रसारित करना **अश्विनी मुद्रा** है। इस मुद्रा का उपयोग षट्चक्र भेदन में अपानवायु के अवरोध के रूप में किया जाता है।

अश्विनी मुद्रा के बाद **शक्तिचालन मुद्रा** की जाती है। इस मुद्रा में उदर को दायें और बायें हिलाया जाता है। इसके द्वारा प्राणवायु को सुषुम्णा में प्रविष्ट कराया जाता है। इस मुद्रा के साथ सिद्धासन में बैठकर पूरक प्राणायाम किया जाता है और प्राण तथा अपान को मिला दिया जाता है।

शक्तिचालन मुद्रा के साथ **योनिमुद्रा** की जाती है। योनिमुद्रा सिद्धासन में बैठकर की जाती है। दोनों हाथ में अँगुलियों से आँख, कान, नाक और मुँह को बन्द कर लिया जाता है। इनके बन्द करने से इन इन्द्रियों पर बाह्य प्रभाव नहीं पड़ता है। सिद्धासन में बैठने का भी यही तात्पर्य है। इस आसन में गुदाद्वार को दोनों पैरों की एँड़ियों से दबा दिया जाता है और लिंगेन्द्रिय को दोनों पैरों के बीच दबा दिया जाता है। योनिमुद्रा करके योगी **काकिनी मुद्रा** द्वारा प्राणवायु को खींचता है और उसे अपानवायु से जोड़ देता है।

इसके बाद वह षट्चक्र को क्रमशः ध्यान करता है और **'हं हंसः'** बीज-मन्त्र का अजपाजप करते हुए कुलकुण्डलिनी को जाग्रत करता है। कुलकुण्डलिनी जाग्रत करने के लिए खेचरी मुद्रा की जाती है, इससे ध्यान परिपक्व होता है। महामुद्रा तथा महाबेध का अभ्यास महाबंध के साथ किया जाता है। इसमें साधक बायें पैर की एँड़ी को मूलाधार पर जमाकर दायें पैर को फैलाकर दोनों हाथों से पकड़ लेता है। इसके बाद जलंधर बंध लगाकर फैले हुए पैर के घुटने पर सिर को दबा दिया जाता है। इससे प्राण सुषुम्णा में प्रवेश कर कुण्डलिनी को जाग्रत करते हैं।

षट्चक्र

तन्त्रसाधना में साधना को दृष्टिगत रखते हुए शरीर को दो भागों में बाँट दिया गया है— १. कमर से ऊपर का हिस्सा; २. कमर के नीचे का हिस्सा। इन दोनों भागों के मध्य में शरीर का केन्द्र है। शरीर का ऊपरी भाग मेरुदण्ड पर अवलिम्बत है और मेरुदण्ड पूरे शरीर से सम्बन्ध रखता है। पीठ की रीढ़ को मेरुदण्ड कहा जाता है। जैसे मेरु पर्वत को पृथ्वी की धुरी माना गया है, उसी प्रकार मेरुदण्ड पूरे शरीर की धुरी है। कमर और गर्दन के बीच का हिस्सा धड़ कहलाता है। यह भाग मस्तिष्क पर अवलम्बित रहता है। रीढ़ में श्वेत और रक्तवर्ण के तत्त्व हैं और

मूर्धा तथा धड़ में श्वेत-रक्त शिराएँ हैं। मस्तक तथा मेरुदण्ड में श्वेत एवं रक्तवर्ण की शिराएँ हैं, किन्तु परस्पर एक-दूसरे से विपरीत रहती हैं।

तन्त्रशास्त्र का सिद्धान्त है कि **'यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'** जो शरीर के अन्दर है, वही ब्रह्माण्ड के अन्दर है। तदनुसार कमर से नीचे के भाग में सात लोकों की स्थिति की कल्पना की गई है। शरीरगत ये सात लोक विश्व की शक्तियों पर आधारित हैं। कमर से ऊपर का जो भाग है उसमें मस्तिष्क और मेरुदण्ड के द्वारा चेतना प्रवाहित रहती है। उस ऊपरी भाग में भूः, भुवः, स्वः, तपः, जनः, महः, और सत्यं- ये सात चक्र हैं, जिन्हें सात लोक कहते हैं। इनमें प्रथम पाँच चक्र (लोक) मेरुदण्ड में स्थित हैं, छठा मस्तिष्क के नीचे के हिस्से में और सातवाँ मस्तिष्क के ऊपर स्थित है। इसी सातवें लोक पर शिव और शक्ति का निवास है। शिव-शक्ति की साधना कर शिवत्व प्राप्त करने के लिए साधक षट्चक्रों की साधना उनका भेदन करके करता है।

षट्चक्रों के स्वरूप और स्थान

१. **मूलाधार**—यह मेरुदण्ड के मूल में स्थित है। इसका स्थान गुदा और लिङ के मध्य का स्थान है।

२. **स्वाधिष्ठान**—इसका स्थान लिंग के ऊपर है।

३. **मणिपुर चक्र**—इसका स्थान नाभि है।

४. **अनाहत चक्र**—इसका स्थान हृदय है।

५. **विशुद्धि चक्र**—इसका स्थान कण्ठ के मूल में है।

६. **आज्ञा चक्र**—इसका स्थान दोनों भौंहों के मध्य में है।

इन छह चक्रों को छह लोक कहा गया है, इन सबमें ऊपर मस्तिष्क के ऊपरी भाग में **सहस्रार चक्र** है, जिसे सातवाँ लोक कहा जाता है। चेतना की सर्वोच्च अभिव्यक्ति का केन्द्र सहस्रार चक्र है। यहीं पर परमशिव और शक्ति का निवास है। सभी चक्र पद्म (कमल) की तरह हैं। चक्रों के स्थान, दल और वर्ण इस प्रकार हैं—

क्रम	**चक्र**	**स्थान**	**दल**	**वर्ण**
१.	मूलाधार	गुदा	चार	व, श, ष, स
२.	स्वाधिष्ठान	लिंग	छह	ब, भ, म, य, र, ल
३.	मणिपूर	नाभि	दस	ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ
४.	अनाहत	हृदय	बारह	क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ड

५. विशुद्धि	कण्ठ	सोलह	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः,
६. आज्ञा चक्र	भ्रूमध्य	दो	ह, क्ष

मूलाधर से लेकर आज्ञा चक्र तक ४ + ६ + १० + १२ + १६ + २ वर्णों को जोड़ने से उनका कुल योग ५० होता है। संस्कृत वर्णमाला के उन पचास वर्णों को श्रेणी विभाजन कर इन्हें छह भागों में बाँट दिया गया है। साधना में चक्रों के इन्हीं वर्णों का ध्यान किया जाता है।

चक्रों और उन पर विन्यस्त अक्षरों का सम्बन्ध है। जिस चक्र के अक्षर का उच्चारण किया जाता है, उस अक्षर के चक्र में एक प्रकार का स्पन्दन होता है, फिर वहीं से उस प्रकार की प्रथम स्फूर्ति होती है।

अकार आदि हर वर्ण के कण्ठ, तालु आदि उच्चारण-स्थान हैं। षट्चक्रों में वर्णों का जो विभाजन है, उसका आधार वर्णों के वे उच्चारण-स्थान हैं जो ध्वनि को विभिन्न रूपों में परिणत करते हैं, इस परिणति से पहले ध्वनि अपने आधारभूत चक्र को स्पर्श करती है और उसके संकेत पर बाह्य रूप लेती है। जिस चक्र के जिस वर्ण का उच्चारण किया जाता है, उस चक्र के उच्चारण करते समय हलचल होती है।

तन्त्रशास्त्र में कहा गया है कि "कुण्डलिनी सगुण ब्रह्म रूप है, वह मूलाधार चक्र में सोई हुई है। उसे कुण्डलिनी योग के द्वारा जगाया जाता है। जागने पर वह ऊपर की ओर उठती है। जब कुण्डलिनी ऊपर उठती है तो प्रत्येक चक्र से सम्बद्ध तन्मात्रा और उससे बनी हुई इन्द्रिय उत्तरोत्तर अपने से ऊपर वाले केन्द्र में लय हो जाती है। जैसे मूलाधार चक्र पृथिवी तत्त्व से बना हुआ है। वहाँ से जाग्रत होकर कुण्डलिनी जल तत्त्व से बने हुए स्वाधिष्ठान चक्र में प्रवेश करती है तो पृथ्वी महाभूत, उसकी तन्मात्रा तथा उससे बनी हुई घ्राण इन्द्रिय जलतत्त्व से बनी हुई रूप इन्द्रिय में विलीन हो जाती है। स्वाधिष्ठान चक्र से ऊपर मणिपूर चक्र है। यह नाभि-स्थान में है और अग्नि तत्त्व से बना है। जब कुण्डलिनी मणिपूर चक्र में पहुँचती है तो स्वाधिष्ठान चक्र के जल तत्त्व मणिपूर चक्र के अग्नि तत्त्व में विलीन हो जाता है और रसना इन्द्रिय चक्षु इन्द्रिय में विलीन हो जाती है। मणिपूर चक्र के ऊपर हृदय में स्थित अनाहत चक्र तत्त्व का बना हुआ है। जाग्रत कुण्डलिनी जब अनाहत चक्र में पहुँचती है तो मणिपुर चक्र के अग्नि तत्त्व अनाहत चक्र के वायु तत्त्व में विलीन हो जाता है। जब कुण्डलिनी कण्ठस्थ विशुद्धि चक्र में पहुँचती है तो आकाश तत्त्व से बने हुए विशुद्धि चक्र के आकाश तत्त्व में अनाहत चक्र का

वायु तत्त्व में विलीन हो जाता है। जब कुण्डलिनी कण्ठस्थ विशुद्धि चक्र में पहुँचती है तो आकाश तत्त्व से बने हुए विशुद्धि चक्र के आकाश तत्त्व में अनाहत चक्र का वायु तत्त्व विलीन हो जाता है। भ्रूमध्य स्थित आज्ञा चक्र में कुण्डलिनी के पहुँचने पर सभी चक्रों के तत्त्व प्राण में विलीन हो जाते हैं। मस्तिष्क के तालु-स्थान में स्थित सहस्रार चक्र पर जब कुण्डलिनी पहुँचती है तो प्राणतत्त्व प्रकृति में विलीन हो जाता है तभी ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। सहस्रार चक्र में पहुँचने पर शिव और शक्ति का संगम हो जाता है।''

पिण्ड और ब्रह्माण्ड

ब्रह्माण्ड की तुलना शरीरस्थ ब्रह्माण्ड से करते हुए तन्त्रशास्त्र में बताया गया है कि ''ब्रह्माण्ड के मध्य मेरुदण्ड है जो ऊपर से लेकर नीचे तक फैला हुआ है। सबसे ऊपर **सत्यलोक** है और सबसे नीचे **अवीचि** नाम का नरक है। सत्यलोक और नरकलोक के बीच छह ऊर्ध्वलोक और छह अधोलोक हैं। इस तरह सब मिलकार चौदह भुवन या लोक हैं। मेरु में विश्व का संचालन करने वाली महाशक्तियाँ निवास करती हैं।'' इन महाशक्तियों के केन्द्रस्थल इस प्रकार हैं—

१. मूलाधर चक्र—इसे **ब्रह्मपद्म** भी कहा जाता है। यह ऊर्ध्वलोक और ाधोलोक के मध्य स्थित है। इसमें पृथ्वी तत्त्व है। यहीं पर स्वयंभूलिंग और ुल-कुण्डलिनी का निवास है। स्वयंभूलिंग पुरुष है और कुलकुण्डलिनी स्त्री है। पृथ्वी तत्त्व में विश्व की सृष्टि करने वाला ब्रह्म रहता है। ब्रह्म की सहचरी सावित्री है। इसे **'कारणभूलोक'** कहा जाता है। यहाँ पर आध्यात्मिक सूर्य का निवास है।

२. स्वाधिष्ठान चक्र—इसे **भीमपद्म** भी कहा जाता है। यह सूक्ष्म भुवर्लोक है, जहाँ बैकुण्ठ नामक स्वर्ग है। इस स्वर्ग के अधिष्ठातृ देवता विष्णु हैं। बैकुण्ठ के दक्षिण में गोलोक है, जहाँ पर दो भुजाधारी भगवान् विष्णु का निवास है। इन्हें कृष्ण भी कहते हैं, इनके हाथ में बाँसुरी है और इनकी शक्ति राधा हैं।

३. मणिपूर चक्र—यह **कारण स्वर्गलोक** है। यहाँ भगवान् रुद्र और उनकी शक्ति भ्रदकाली का निवास है।

४. अनाहत चक्र—यह **कारण महर्लोक** है। नीचे के तीनों लोकों का यह स्वामी है। तीनों लोकों के लोकपाल ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इसके अधीन रहते हैं। यहाँ पर ईश्वर अपनी भुवनेश्वरी शक्ति के साथ निवास करते हैं।

५. विशुद्धि चक्र—इसे **कारण जनलोक** कहा जाता है। यहाँ अर्द्धनारी-नटेश्वर भगवान् सदाशिव अपनी शक्ति गौरी के साथ निवास करते हैं। उनका वाहन आधा सिंह और आधा वृषभ है।

६. आज्ञा चक्र—यह **कारण तपोलोक** है। यहाँ कोई भूत नहीं है। इसका बीज

समष्टि मन है। यहाँ आध्यात्मिक चन्द्र का निवास है। इस लोक के अधिष्ठातृ देवता परमशिव और सिद्धकाली हैं।

७. सहस्रार चक्र—यह **सत्यलोक** है। यहाँ मूल प्रकृति का निवास है। शिव और शक्ति इस लोक के अधिष्ठातृ देवता हैं।

ये सातों लोक शरीरस्थ मेरुदण्ड में स्थित हैं। मेरुदण्ड अन्दर से खोखला है। इसी में सारे लोक और लोकपालों का निवास रहता है। शरीरस्थ लोकों और लोक-पालों का ध्यान सर्वप्रथम अपने शरीर में करना चाहिए इसके बाद ब्रह्माण्ड के मध्य-स्तम्भ के रूप में ध्यान करना चाहिए।

पिण्डस्थ ध्यान की प्रक्रिया

भूलोक (मूलाधार चक्र) में स्थित कुलकुण्डलिनी प्रकृति को वहन करती है, इसलिए उसे प्रकृति का वाहन कहा जाता है। वह प्रकृति- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार - इन आठ भागों में विभक्त है। कुण्डलिनी का स्वरूप बताते हुए तन्त्रशास्त्र कहता है कि ''कुण्डलिनी के दो रूप हैं। नीचे से कुल-कुण्डलिनी संचालन करती है जो भूलोक में स्थित है और ऊपर से सत्यलोक में स्थित ब्रह्माण्ड कुण्डलिनी या महाकुण्डलिनी, जो मूल प्रकृति का वाहन है, संचालन करती है।'' दो रूपोंवाली कुण्डलिनी ने मूलाधार और सहस्रार दोनों स्थानों पर अपने फन द्वारा पुरुष-शक्ति को स्तम्भित कर रखा है। समस्त विश्व को लपेटे हुए है और पूँछ और मुँह के अन्दर दबाए हुए है। कुण्डलिनी के घेरे में अधोमुख त्रिकोण है। यह त्रिकोण अर्धनारीश्वर का प्रतीक है। इसी त्रिकोण का प्रतीक रूप में योगी अरविन्द ने तथा थिओसिफिकल सोसाइटी ने अपनी साधना के लिए स्वीकार किया है।

मूलाधार और सहस्रार चक्र के बीच शरीर में समस्त नाड़ी चक्र हैं। यही नाड़ी चक्र शरीर का संचालन करते हैं। कुछ नाड़ियाँ बाहर के भोज्य पदार्थों को ग्रहण कर उनका रस बनाकर समस्त शरीर में उस रस का संचार करती हैं और कुछ नाड़ियाँ मल-मूत्र जैसे अनावश्यक पदार्थों को बाहर निकालती हैं। मूलाधार और सहस्रार चक्र के मध्य में मेरुदण्ड है। मेरुदण्ड के दोनों ओर श्वेत तथा रक्त शिराएँ हैं। यही शिरा नाड़ियों को अनुप्राणित करती है। मेरुदण्ड के अन्दर समस्त पद्मों और देवताओं का निवास है। पद्मों को लोक कहा जाता है। यही लोक चेतना को भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट करते हैं। मूलाधार चक्र (भूलोक) सबसे नीचे है, उसे मातृशक्ति कहते हैं, इसलिए कि यह पृथ्वी तत्त्व को उत्पन्न करता है, जहाँ सभी पदार्थ पैदा होते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र कामशक्ति का केन्द्र है। इस चक्र से स्पन्दन पैदा होता है।

मणिपूर चक्र पाचन-शक्ति का केन्द्र है। मूलाधर चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र और मणिपूर-चक्र ये तीनों भौतिक अस्तित्व बनाए रखते हैं और ये सहस्रार चक्र की चेतना शक्ति से सम्बद्ध रहते हैं।

पिण्डस्थ ध्यान अथवा षट्चक्र की साधना से चौदह नाड़ियाँ सम्बन्ध रखती हैं। उन चौदह नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा—ये तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं। इन नाड़ियों का मूल योनिस्थान मूलाधार चक्र है जिसे मूलधाार पद्म भी कहा जाता है। मेरुदण्ड के बीचोंबीच सुषुम्णा नाड़ी है, जो मूलाधार से सहस्रार चक्र तक फैली हुई है। सुषुम्णा नाड़ी ज्ञान-शक्ति है और यही चेतना-शक्ति का केन्द्र है। सुषुम्णा के बाएँ और दाएँ और इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ हैं। इड़ा बायें अण्डकोष से प्रारम्भ होती है और पिंगला दाहिने अण्डकोष से।

सुषुम्णा को घेरे हुए इड़ा और पिंडला का संगम शरीर के योनि, लिंगमूल, नाभि, हृदय और कण्ठ—इन पाँच स्थानों में होता है, पिंगला कण्ठ के मध्य से उठकर भ्रूमध्य को घेरती हुई दक्षिण नासिका तक पहुँचती है और इसी तरह का घेरा बनाती हुई वामनासिका में प्रवेश करती है। नाक के ऊपर दोनों भौंहों के बीच में **आज्ञा चक्र** है। इड़ा और पिंगला दोनों नाड़ियाँ जब आज्ञा चक्र पर घेरा डालती हैं तो इन दोनों का मिलन छह स्थानों में होता है। आज्ञा चक्र के ऊपर और सहस्रार के नीचे दो पद्म हैं। इस प्रकार कुल नौ पद्म हैं—

१. सहस्रार पद्म, २. नाद पद्म, ३. बिन्दु पद्म, ४. आज्ञा पद्म, ५. विशुद्धि पद्म, ६. अनाहत पद्म, ७. स्वाधिष्ठान पद्म, ८. मणिपूर पद्म और ९. मूलाधार पद्म।

इन ९ पद्मों को तीन भागों में बाँटा गया है। प्रथम वर्ग में पहले से तीन पद्म हैं, जो ज्ञानशक्ति और चेतनाशक्ति के केन्द्र हैं।

द्वितीय वर्ग के तीन पद्मों में क्रिया-शक्ति निवास करती है। इस वर्ग में चित्त साकार हो जाता है। इसके घटक हैं— पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन।

तीसरे वर्ग के तीनों पद्मों में इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति का निवास है। यह वर्ग पहले के दो वर्गों के अधीन रहता है। इस वर्ग में स्थित इच्छाशक्ति का सम्बन्ध विश्व की सृष्टि के साथ रहता है। क्रियाशक्ति विश्व के पालन से सम्बन्ध रखती है और ज्ञानशक्ति सृष्टि से संहार से सम्बन्ध रखती है।

सहस्रार चक्र सबसे ऊपर और मूलाधार चक्र सबसे नीचे है। मूलाधार चक्र में कुलकुण्डलिनी रहती है और सहस्रार चक्र में महाकुण्डलिनी। सहस्रार को महासूर्य कहा जाता है। इस महासूर्य के दिव्य प्रकाश में महाशिव और महाकाली सदा निवास करते हैं। साधना के क्षेत्र में इसी को **वाचकशक्ति** कहते हैं।

भारतीय दर्शनशास्त्र, योगशास्त्र और तंत्रशास्त्र सभी का मत है कि "कुल-कुण्डलिनी महाशक्ति है, जो हंस पर आरूढ़ होकर विश्व की रचना करती है।" हंस का अर्थ है– विश्व की प्राणशक्ति। प्राणशक्ति से जो ध्वनि निकलती रहती है, उसी का नाम **हंस** है। हंस अर्थात् शब्द से अर्थ या रूप की सृष्टि होती है। यह विविध प्रकार के विश्वों का रूप ग्रहण करता है। हंस अर्थात् प्राणशक्ति में पुरुष-शक्ति और स्त्री-शक्ति दोनों तत्त्व मिले हुए हैं। पुरुष तत्त्व का कार्य प्रसार और स्त्री-तत्त्व का कार्य संकोच है। प्रत्येक शरीर में साँस ऊपर-नीचे जाती-आती रहती है। यही प्रश्वास और निःश्वास है, इन्हीं प्रश्वास-निःश्वासों से प्राणशक्ति प्रकट होती रहती है। यही प्राणशक्ति जीवन का आधार है। हर स्वाभाविक साँस से सुनाई न पड़ने वाली जो ध्वनि हर समय निकलती रहती है, साधना-क्षेत्र में उसे **अजपा मन्त्र** कहा गया है। मालूम न होते हुए हर व्यक्ति अजपा जप किया करता है। विश्व की प्राण-शक्ति में इसी प्रकार का **अजपा जप** चलता रहता है।

तत्त्वचिन्तन-विधि

पञ्चतत्त्वों की साधना के बिना कोई भी लौकिक या पारलौकिक सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। शुद्ध, शान्त, एकान्त स्थान में वज्रासन (दोनों पैरों को पीछे मोड़कर) लगाकर और दोनों हाथों को उल्टा कर घुटनों पर इस प्रकार रखें कि अँगुलियों के पोर शरीर की ओर रहें, फिर नासाग्र में दृष्टि जमा कर तत्त्व-चिन्तन करे।

१. पृथिवीतत्त्व का चिन्तन

पृथिवीतत्त्व का स्थान मूलाधार चक्र में है। मूलाधार चक्र गुदा से दो अंगुल ऊपर तथा लिंग से दो अंगुल नीचे सुषुम्णा के साथ संलग्न है। यहीं से सुषुम्णा नाड़ी प्रारम्भ होती है। मूलाधार चक्र चतुर्दल युक्त कमल के समान है। इसी में पृथ्वीतत्त्व का वास है। पृथिवीतत्त्व भूःलोक का प्रतिनिधि है। इसका रंग हरताल के रंग के समान पीला है। इसकी आकृति चतुष्कोण है। वज्रलांछित यह पृथिवी आधारमंडल में स्थित है। जिस पर सात सूँड़ों वाले हाथी पर सवार 'ल' बीज है। इसके अधिष्ठातृ देवता इन्द्र हैं, ऋषि ब्रह्मा हैं और छन्द गायत्री है। पृथिवीतत्त्व का गुण गन्ध है और तदर्थ ज्ञानेन्द्रिय नासिका एवं कर्मेन्द्रिय गुदा है। इस तत्त्व के विकृत होने पर भय उत्पन्न होता है और पाण्डुरोग-जैसे विकार उत्पन्न होते हैं। मूलाधार चक्र में ध्यान कराने से पृथिवीतत्त्व के विकार से उत्पन्न होने वाले सब रोग दूर हो जाते हैं।

'लं' बीज वाली पृथ्वी का ध्यान करने से नासिका सुगन्धि से भर जाती है। शरीर में स्वर्ण-सी कान्ति उत्पन्न होती है। ध्यान करते समय निरन्तर 'लं' बीज का जप करते रहना चाहिए।

२. जलतत्त्व का चिन्तन

जलतत्त्व स्वाधिष्ठान चक्र में रहता है। यह चक्र लिंग के मूल भाग में है। इसकी आकृति षड्दल कमल के समान है। इसके अधिष्ठातृ देवता विष्णु हैं। यह तत्त्व भुवः लोक का प्रतिनिधि है। जलतत्त्व का रंग कपूर की तरह अथवा मोगरे के फूल के समान धवल होता है। इसकी आकृति अर्धचन्द्रकार है। जलतत्त्व का गुण 'रस' है। सभी प्रकार के रसों का आस्वादन इसी से किया जाता है। जलतत्त्व की ज्ञानेन्द्रिय जिह्वा है, कर्मेन्द्रिय लिंग है। इसी चक्र में मकर पर सवार वरुण बीज 'वं' है। इसके ऋषि हिरण्यगर्भ हैं, देवता हंस तथा छन्द त्रिष्टुप् है। जलतत्त्व का चिन्तन करते समय 'वं' बीज का जप करते रहना चाहिए।

३. अग्नितत्त्व (तेज) का चिन्तन

इस तत्त्व का निवास मणिपूर चक्र है। यह चक्र नाभि-स्थान में स्थित है। इसकी आकृति दशदल युक्त कमल की-सी है। इसके अधिष्ठातृ देवता वृषभ आरूढ़ त्रिनेत्रधारी शंकर हैं। यह स्वः लोक का प्रतिनिधि है। इसकी आकृति त्रिकोण है, रंग रक्त वर्ण का है। इसका गुण रूप है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय आँखें और कर्मेन्द्रिय पैर हैं। शरीर में सूजन, क्रोध आदि विकार इस तत्त्व के विकृत हो जाने पर उत्पन्न होते हैं। इस तत्त्व के चिन्तन से कुण्डलिनी को जाग्रत करने में सरलता होती है। इसी चक्र में मेष (भेड़) पर सवार अग्नि बीज 'रं' है। इसके ऋषि कश्यप, देवता अग्नि और छन्द त्रिष्टुप् है। इस तत्त्व का चिन्तन करते समय 'रं', बीज को जपते रहना चाहिए। इस तत्त्व का ध्यान-चिन्तन करने से अग्नि उद्दीपन होता है। पाचन शक्ति बढ़ती है। धूप, अग्नि, बिजली आदि तेजस् पदार्थों से कोई भय नहीं रहता है।

४. वायुतत्त्व का चिन्तन

यह तत्त्व अनाहत चक्र में रहता है। अनाहत हृदय-प्रदेश में स्थित है। इसकी आकृति द्वादश दल कमल की-सी है। इसके अधिष्ठातृ देवता त्रिनेत्रधारी ईश हैं। जो एक हाथ में वर, दूसरे हाथ में अभयमुद्रा धारण किए रहते हैं। इसी चक्र में वायुतत्त्व का निवास रहता है। यह महः लोक का प्रतिनिधि है। इसकी आकृति षट्कोण तथा रंग अग्निपुञ्ज की भाँति है। इसका गुण स्पर्श है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय चर्म और कर्मेन्द्रिय हाथ है। इस तत्त्व के विकृत होने पर शरीर में वायु-विकार, दमा, श्वास, आदि विकार उत्पन्न होते हैं। इस चक्र में हरिण पर सवार 'यं' बीज है। इसकी ध्वजाएँ सदा हिलती रहती हैं और धूँ-धूँ शब्द होता रहता है। इसके ऋषि किष्किन्ध हैं, देवता वायु है और छन्द जगती है। वायुतत्त्व का ध्यान करते समय 'यं' बीज का जप करते

रहना चाहिए। इस तत्त्व की सिद्धि मिल जाने पर साधक आकाश - गमन करने में समर्थ होता है। वह पक्षियों की तरह उड़ सकता है।

५. आकाशतत्त्व का चिन्तन

यह तत्त्व विशुद्धि चक्र में स्थित है। पञ्चभूतों के ध्यान और धारणा में आकाशमण्डल भ्रूमध्य से लेकर मूर्द्धापर्यन्त माना जाता है। इस चक्र की आकृति सोलह दलों वाले कमल के समान है। इसके अधिष्ठातृ देवता सिंहारूढ़ पञ्चमुख सदाशिव हैं। उनके दस हाथ हैं। इसी में आकाशतत्त्व है। यह जनः लोक का प्रतिनिधि है। इसकी आकृति वृत्ताकार है। रंग समुद्र जल की तरह नीला है। इसका गुण शब्द है। ज्ञानेन्द्रिय कान है और कर्मेन्द्रिय वाणी है। इस चक्र में ऐरावत पर सवार आकाश बीज 'हं' है। इस तत्त्व का चिन्तन करते समय 'हं' बीज का जप करते रहना चाहिए। यह तत्त्व सिद्ध हो जाने पर खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाती है। परकाय-प्रवेश करने की क्षमता प्राप्त होती है। साधक त्रिकालज्ञ बन जाता है, उसे अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। आकाशतत्त्व का विलय अहंकार में किया जाता है।

पञ्चतत्त्वों के ध्यान और धारणा का क्रम—पहले पृथ्वीतत्त्व का ध्यान कर उसे जलतत्त्व में विलीन करना चाहिए फिर जलतत्त्व को अग्नितत्त्व में, अग्नि तत्त्व को वायुतत्त्व में, वायुतत्त्व को आकाशतत्त्व में विलीन कर दे। एक मण्डल को दूसरे मण्डल में विलीन करने में उक्त मंडल का चिन्तन करते समय प्रणव (ॐ) के द्वारा तीन प्राणायाम करके नीचे लिखे मन्त्र से मण्डल कारण में होम करे।

मन्त्र—ॐ अमुक (मण्डल का नाम) मण्डलं अमुक (मण्डल का नाम) मण्डले जुहोमि स्वाहा। अमुक शब्द के स्थान पर उन-उन मण्डलों के नाम लेना चाहिए। भिन्न-भिन्न मण्डलों के विलीनीकरण मन्त्र इस प्रकार हैं—

पृथ्वीतत्त्व का चिन्तन करते हुए नीचे लिखे मन्त्र से उसे जलतत्त्व में विलीन करें—

ॐ ह्रां ब्रह्माणे पृथिवी व्याधिपतये निवृत्ति कलात्मने हुं फट् स्वाहा।

जलतत्त्व को अग्नितत्त्व में विलीन करने का मन्त्र—

ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठा कलात्मने हुं फट् स्वाहा।

अग्नितत्त्व को वायुतत्त्व में विलीन करने का मन्त्र—

ॐ हूँ रुद्राय तेजोधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा।

वायुतत्त्व को आकाशमण्डल में विलीन करने का मन्त्र—

ॐ हैं ईशानाय वाय्वाधिपतये शान्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा।

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए आकाशमण्डल को कुण्डलिनी के द्वारा अहंकार में विलीन कर दें–

ॐ ह्रौं सदाशिवाय आकाशाधिपतये
शान्त्यातीत कलात्मने हुं फट् स्वाहा।

इसके बाद अहंकार को महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व को शब्दरूपा प्रकृति में और प्रकृति को स्वयं प्रकाश, परमकारण, आनन्द और ज्योतिस्वरूप ब्रह्म-परमात्मा- परमशिव में विलीन कर दें। इसी से मानव-जीवन की पूर्णता है; सिद्धि और जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त होता है।

षट्चक्रों में अक्षर-विन्यास का रहस्य

छह कमल के आकार के छह चक्र हैं, जिनको भेदकर कुण्डलिनी सातवें चक्र सहस्रार में पहुँचती है। इन छह पद्मचक्रों के पचास दल हैं और प्रत्येक पर वर्णमाला का एक-एक अक्षर है। इन चक्रों के बीजाक्षर स्थूल नहीं हैं, सूक्ष्म हैं। तान्त्रिक भाषा में इन अक्षरों को **'मातृका'** कहते हैं। प्रत्येक चक्र में अलग-अलग तत्त्व और उनके बीज मन्त्र होते हैं- यह बताया जा चुका है। ये बीज मन्त्र वस्तुतः तत्त्वों के बीज हैं। तन्त्रशास्त्र में कहा गया है कि तत्त्व बीजों से उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जो बीज-मातृका स्थूल रूप में उच्चरित होता है, उसके सूक्ष्म रूप को, जो शक्ति उत्पन्न और संचालित करती है, वही उन तत्त्वों का हेतु है; जैसे - मणिपूर चक्र का तत्त्व अग्नि है और बीज मन्त्र 'रं' है। इसका रहस्य बोध इस प्रकार समझा जा सकता है–

''अग्नि जिन विभिन्न शक्तियों का सम्मिलित बाह्य रूप है, उन्हीं शक्तियों से जो सूक्ष्म शब्द बनता है, उसी का स्थूल (बैखरी) शब्द-रूप यह 'रं' है। तात्पर्य यह कि 'रं' नामक बैखरी शब्द ध्वनि के सहारे उस चित्शक्ति का स्थूलकाय है, जो मन्त्र-साधक को अग्नि को वश में कर लेने की शक्ति देता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि साधक शब्द के सूक्ष्म रूप के साथ महाशक्ति के विश्वव्यापी रूप की चेतना ले आता है, वही मन्त्र को क्रियाशील बना सकता है। समस्त विश्व ब्रह्माण्ड परमशिव- ब्रह्म की रचनात्मक शक्ति का विकास है। शिव की रचनात्मक शक्ति ही समस्त विचारों का उत्स है।''

तन्त्रशास्त्र का यह अनुभूत कथन है कि हर व्यक्ति शिव रूप है, और जितनी मात्रा में वह शिवभाव की अनुभूति करेगा उतनी मात्रा में वह शिवशक्ति को प्राप्त

करेगा। जितने भी देवी-देवता हैं - सब शिव की विभिन्न शक्तियों के रूप हैं। मन्त्र के द्वारा इन देवताओं को जाग्रत किया जाता है। उनका साक्षात्कार किया जा सकता है। तन्त्रशास्त्र का कथन है कि जिस देवता के मन्त्र का जप किया जाता है, वह मन्त्र उस देवता के नाम का वाचक होता है, अतः नाम शब्द है और देवता अर्थ है। जप द्वारा सोयी हुई शक्ति जाग्रत हो जाती है। तन्त्रशास्त्र प्रतीक द्वारा समझाता है कि मन्त्र और देवता की उत्पत्ति जप के द्वारा ओष्ठ से होती है। साधक का अधरोष्ठ शक्ति है और उत्तरोष्ठ शिव है। शिव और शक्ति के संयोग से मिथुन - संघर्ष से मन्त्र देवता की उत्पत्ति होती है।

मन्त्रयोग

मन्त्र शब्द का व्यवहार व्यापक परिवेश में किया जाता है। वैदिक ऋचाओं के हर छन्द को मन्त्र कहा जाता है। देवी-देवताओं की स्तुतियाँ, यज्ञ, हवन आदि के लिए रचे गये वाक्यों तथा शब्द-प्रतीकों को भी मन्त्र कहा जाता है, किन्तु तन्त्र-शास्त्र में मन्त्र शब्द भिन्न अर्थ रखता है। प्रत्येक अक्षर या पद अथवा पद-समूह को तन्त्रशास्त्र मन्त्र के अर्थ में नहीं स्वीकार करता है। जिस अक्षर का पद अथवा पद-समूह में किसी देवता का शक्ति की अभिव्यक्ति की जा चुकी है, वही अक्षर या पद अथवा पद-समूह उस देवता या शक्ति को प्रकट करने का सामर्थ्य रखता है। इसलिए जो शब्द, पद या समूह जिस देवता या शक्ति को प्रकट करता है वह उस देवता या मन्त्र रूप का मन्त्र माना जाता है।

मन्त्रों में जो स्वर, व्यंजन, नाद, बिन्दु का विन्यास किया जाता है, वह देवता के विभिन्न रूपों को अभिव्यक्त करता है। यद्यपि अन्य शास्त्रों की भाँति तन्त्रशास्त्र भी शब्द का ब्रह्म मानता है किन्तु साथ ही वह ब्रह्म की विभिन्न कलाओं या शक्तियों को प्रकट करने के लिए विशिष्ट वर्ण-समूह की आवश्यकता का भी अनुभव करता है। इसे इस प्रकार सहज ढंग से समझा जा सकता है—

जैसे सभी मनुष्य चेतन-स्वरूप हैं, तथापि व्यक्ति विशेष को प्रकट करने के लिए एक विशेष संकेत अथवा नाम की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार दैवी शक्तियों को प्रकट करने के लिए संकेत और नाम निर्धारित हुए हैं। भिन्न-भिन्न दैवी शक्तियों के भिन्न-भिन्न नामों को ही मन्त्र कहा जाता है। मन्त्राक्षरों में नाद, बिन्दु दैवी शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए लगाये जाते हैं।

सुनाई पड़ने वाली स्थूल ध्वनि को 'बैखरी' और उसके सूक्ष्म रूप को 'पश्यन्ती' कहा जाता है। पश्यन्ती में विचारों का प्रथम उन्मेष होता है। पश्यन्ती के ऊपर भी एक **'परावाक्'** है जो सब का कारण है। बैखरी शब्द या बाह्यध्वनि

प्राणशक्ति का एक रूप है। इसका मूल स्रोत कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी में गूँजती हुई एक ध्वनि निकलती रहती है जिसका वर्णात्मक या शब्दात्मक रूप नहीं होता है, उस ध्वनि को 'अनाहत नाद' कहा गया है। वह अनाहत ध्वनि जब कण्ठ, तालु आदि स्थानों से टकराती हुई बाहर निकलती है तो वही वर्णात्मक ध्वनि बन जाती है। आहत का अर्थ है - **'ठोकर खाई हुई'**। जब कुण्डलिनी में गूँजती हुई अनाहत ध्वनि कण्ठ, तालु आदि स्थानों से टकराती है जो वह आहत ध्वनि कहलाती है। जैसे बाह्य आकाश में वायु का स्पन्दन प्राप्त कर जो तरंगें उठती हैं वे विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ बन जाती हैं, उसी प्रकार शरीरस्थ आकाश में प्राण-वायु के हलचल से ध्वनियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं।

तन्त्रशास्त्र का मत है कि ''कुण्डलिनी ब्रह्म है, उसी में सभी अक्षर प्रतिष्ठित हैं। कुण्डलिनी चित्शक्ति है जो वर्ण और शब्दों के रूप में प्रकट होती है। वर्णमाला के अक्षर शाश्वत् ब्रह्म के यन्त्र हैं। अक्षरों की शक्ति जब मन्त्रशक्ति से मिल जाती तब साधक को साधना द्वारा उसका साक्षात्कार होता है। शक्ति का सूक्ष्म रूप कुण्डलिनी है। जब वह स्थूल रूप में प्रकट होती है तो विभिन्न देवताओं का आकार ग्रहण करती है। कुण्डलिनी का यह स्थूल रूप ही मन्त्र का अधिष्ठातृ देवता कहा जाता है। मन्त्र और देवता ब्रह्म के दो रूप हैं। तन्त्र में इन्हें ही शिव और शक्ति कहते हैं। स्तुतियों, प्रार्थनाओं में उपासक अपनी कामना अपने इष्टदेव के समक्ष प्रस्तुत करता है। स्तुति और प्रार्थना को मन्त्र नहीं कहा जा सकता है। इसलिए कि मन्त्र कामनारहित होते हैं, उनकी भाषा प्रार्थनाओं की भाषा की भाँति साधक की निजी भाषा नहीं होती है। मन्त्रों की भाषा स्थिर और शाश्वत होती है। स्तुति, प्रार्थना में दास्यभाव रखता है, उनमें दिव्यभाव नहीं रहता है, किन्तु मन्त्र स्वयमेव देवता होता है। उसके अक्षर-विन्यास का निश्चित क्रम होता है। मन्त्रों का उच्चारण वर्ण और स्वर के अनुसार होता है, उनका अनुवाद कर दिया जाए तो मन्त्रत्व और दिव्यत्व समाप्त हो जाता है।

तान्त्रिक साधकों ने बताया है कि ''शब्द (बैखरी) चित्शक्ति के स्थूलकाय हैं, जो साधक को नाना प्रकार की सिद्धियाँ देते हैं। इस समस्त सृष्टि के मूल में परमात्मा का शब्द है। जैसे विशाल ब्रह्माण्ड शब्द शक्तियों के रूप में उद्बुद्ध हो रहा है, उसी प्रकार वह स्थूल छोटे-छोटे पिण्डों में भी प्रकट हो रहा है। शब्द के इस सूक्ष्म रूप के साथ साधक जब विश्वव्यापी रूप की चेतना ले आता है, तभी वह मन्त्र को क्रियाशील बना सकता है। ईश्वर (अपर शिव) की यह रचनात्मक शक्ति ही समस्त विचारों का उत्स है। विभिन्न देवता शिव की विभिन्न शक्तियों के ही रूप हैं। मन्त्र के द्वारा इन देवताओं को जाग्रत किया जा सकता है।''

बृहद्गान्धर्व तन्त्र का कहना है कि ''विधिपूर्वक मन्त्रों का बार-बार उच्चारण करने से वही संस्कार बन जाता है और अन्य सब ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं। अन्य ध्वनियों के संस्कार लुप्त हो जाने पर आत्मा से देवता का भेद करने वाले आवरण हट जाते हैं और मन्त्र-साधक स्वयं देवता रूप हो जाता है।''.

मन्त्र की सिद्धि का तात्पर्य है मन्त्र को सशक्त, जाग्रत बनाना। जाग्रत मन्त्र साधक को अभीष्ट फल प्रदान करता है। 'प्राणतोषिणी' में बताया गया है कि मन्त्र-साधक जो भी चाहता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होता है।''

मन्त्रों में बीजाक्षर और नाद के प्रयोग

मनुष्य चेतनस्वरूप है किन्तु व्यक्ति की पहचान के लिए उसका एक संकेत रख दिया जाता है जिसे नाम कहते हैं। इसी प्रकार मन्त्रों में उनके अधिष्ठातृ देवता का एक संकेत रहता है जिसे बीज कहते हैं। जैसे ह्रीं, श्रीं, क्रीं, ऐं ये बीजाक्षर क्रम से माया बीज, लक्ष्मी बीज, काली बीज और सरस्वती बीज कहे जाते हैं। ये बीजाक्षर मन्त्रों के आदि में लगाए जाते हैं। मन्त्रों के अन्त में हम् कूर्च बीज, हुम् वर्म बीज, फट् अस्त्र बीज लगाए जाते हैं। ये सब संकेत हैं। इन बीजों या संकेतों का प्रयोग मन्त्र की सिद्धि या देवपूजन में किया जाता है। कुछ बीज देवता के नाम के प्रथम अक्षर से बनाए जाते हैं, जैसे - राम से रां, गणेश से गं, हनुमान से हं, दुर्गा से दुं। अधिकांश मन्त्रों के आदि में ॐ (प्रणव) लगाया जाता है। यह परमात्मशक्ति का संकेत है। इसके द्वारा सृष्टि, स्थिति और संहार तीनों कार्यों की अभिव्यक्ति होती है। जैन, बौद्ध जैसे अनीश्वरवादी मतों के मन्त्रों में भी ॐ लगाया जाता है। उक्त मतावलम्बी इसे अपने-अपने अभीष्ट देवता का संकेत मानते हैं।

प्रत्येक बीजाक्षर में अनुस्वार (ं) या चन्द्रबिन्दु (ँ) लगाया जाता है। इसे 'नाद' कहा जाता है। नाद से अक्षर का शक्तितत्त्व प्रकट होता है। तात्पर्य यह कि ईश्वर की जो शक्तियाँ बाह्य जगत् की दृष्टि से पहले अप्रकट रहती हैं, उन शक्तियों को नाद द्वारा प्रकट किया जाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि नाद अभिव्यक्त देवता के भिन्न-भिन्न रूप हैं। उदाहरण के लिए 'ह्री' बीज को लीजिए। यह भुवनेश्वरी देवी का माया बीज है। वरदा तन्त्र का कहना है कि 'ह्रीं = में ह् = शिव है; र् = प्रकृति या शक्ति है, ई = महामाया है, म् (नाद - बिन्दु) सृजन शक्ति है।

यह बीजाक्षर तुरीयावस्था में नाद या बिन्दु है और अभिव्यक्त अवस्था में शिव और शक्ति है। मतान्तर से ह् = स्थूल शरीर, र् = सूक्ष्म शरीर, ई = कारण

शरीर, म् (नाद और बिन्दु) = तुरीयावस्था है। ह्रीं बीज का जप करने वाला साधक तुरीया और कारण-शक्ति का आवाहन करता है; इसी शक्ति से अन्य सभी रूप प्रकट हुए हैं।

मूल मन्त्र और उसके भेद

देवता के मुख्य मन्त्र को मूल मन्त्र कहते हैं। यह सौर और सौम्य दो भागों में विभक्त किया जाता है। सौर मन्त्र पुंल्लिंग होते हैं और सौम्यमन्त्र स्त्रीलिंग। इनके अतिरिक्त कुछ मन्त्र नपुंसक लिंग भी होते हैं। मन्त्रों में इस प्रकार का लिंगभेद उनकी उग्रता तथा उनके भावों के आधार पर किया जाता है। जिस मन्त्र के अन्त में 'हुँ' और 'फट्' लगते हैं, वे पुंल्लिंग होते हैं तथा 'स्वाहा' स्त्रीलिंग मन्त्रों में और 'नमः' नपुंसक लिंग मन्त्रों में लगते हैं। स्त्रीलिंग मन्त्रों को प्रायः विद्या कहा जाता है।

नित्यातन्त्र में अक्षरों की संख्या के आधार पर मन्त्रों के नामकरण किए गए हैं। एक अक्षर का बीजमन्त्र होता है। इसके बाद क्रमशः अक्षरों की संख्या-वृद्धि के अनुसार 'पिण्ड', 'कर्त्तरी', 'मन्त्र', 'माला' आदि नाम मन्त्रों के होते हैं।

नाद और बिन्दु की व्याख्या

नाद और बिन्दु का आविर्भाव बतलाते हुए शारदा तन्त्र में कहा गया है कि परमात्मा सत्-चित्-आनन्द रूप है, उससे शक्ति का आविर्भाव हुआ और उस परमात्म-शक्ति से नाद और नाद से बिन्दु का आविर्भाव हुआ।

सच्चिदानन्द विभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दु-समुद्भवः।।

यहाँ पर सकलात् परमेश्वरात् पद से शिव तत्त्व का बोध है। शक्ति दूसरा तत्त्व है। यह तीन भागों में विभक्त है- **समनी**, **व्यापिनी** और **अंजनी**। मन्त्र की प्रथम अभिव्यक्ति नाद के रूप में होती है। नाद शब्द का सूक्ष्म रूप है, इसी से मन्त्र उत्पन्न होता है। नाद के तीन भेद हैं–

१. **महानाद**–शब्द ब्रह्म का स्फुरण।

२. **नादान्त**–समस्त विश्व का नाद से व्याप्त होना।

३. **निरोधिनी**–अव्याकृत ध्वनि।

नाद के ये तीनों रूप शब्द-तत्त्व में निहित रहते हैं। उसका वाच्य प्रकट करने के लिए प्रथम स्फुरण अर्द्धचन्द्र (ँ) कहा जाता है। अर्द्धचन्द्र बिन्दु में रहता है। नाद और बिन्दु दोनों का निवास शिव-तत्त्व में रहता है।

कैवल्य प्राप्त आत्मा तीन भागों में विभक्त होने के कारण कैवल्य भी तीन

प्रकार का माना गया है—१. प्रकृति कैवल्य, २. माया कैवल्य, ३. महामाया कैवल्य। अचित् (जड़) जब स्थूलभावापन्न रहता है तब उसे त्रिगुणत्मिका प्रकृति कहा जाता है और जब वही प्रकृति सूक्ष्म भावापन्न होती है तो उसको माया कहा जाता है। जहाँ तक माया का बिस्तार है, वही संसार है। माया प्रकृति से शुद्ध है किन्तु संसार अशुद्ध है। माया के ऊर्ध्व देश में महामाया विद्यमान है। जड़ होने पर भी वह शुद्ध है। इसी को **'बिन्दु'** कहते हैं। शुद्ध तत्त्वमय कार्यात्मक शुद्ध सिद्धान्त के अनुसार 'शिव, शक्ति और बिन्दु' रत्नत्रय हैं। शिव चित्स्वरूप है, शक्ति चिद्रूपिणी है किन्तु बिन्दु चित्स्वरूप नहीं है, वह शुद्ध मायारूपी है और शिव की परिग्रह शक्ति अर्थात् अचित् तत्त्व है। शिव की शक्ति होने पर भी वह उपादान शक्ति है। शिव और शक्ति दोनों चिद्रूप हैं, किन्तु शिव निष्क्रिय है और शक्ति क्रियात्मिका है। शिव में जब शक्ति की अभिव्यक्ति होती है, तब वह इच्छा का रूप ग्रहण करती है अर्थात् शिव की जो इच्छा है, वही शक्ति का स्वरूप है। बिन्दु का उपादन जड़ है, इसीलिए शिव में इच्छा का उदय होने पर इस इच्छा रूप शक्ति के आघात से बिन्दु में क्षोभ उत्पन्न होता है, क्षोभ उत्पन्न होने के कारण बिन्दु इच्छा के अनुरूप रूप धारण करता है। उसी का नाम महामाया की कृपा है।

कामकला तत्त्व

शाक्तमत का कथन है कि ''समग्र विश्व रचना के मूल में जो अखण्ड सत्ता विद्यमान है, उसे परिपूर्ण अहं सत्ता के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। जब वह परिपूर्ण अहं सत्ता आत्म-प्रकाश करना चाहती है तब शिव-शक्ति का सामरस्य घटित होता है। यह सामरस्य निर्विकार है, इसमें न ह्रास है न वृद्धि है। वह अनादि, अनन्त, चिदानन्दमय है।''

आचार्यों और योगियों ने कहा है कि ''शिव-शक्ति का जो सामरस्य है, वही परमबिन्दु है।' तन्त्रशास्त्र में इसी का पारिभाषिक नाम सूर्य या कामाख्यरवि है। शिव और शक्ति के रूप में जो दो बिन्दु आत्म-प्रकाश करते हैं, उनमें से एक को अग्नि और दूसरे को चन्द्र कहा जाता है। पूर्ण बिन्दु सूर्य के रूप में ऊर्ध्व की ओर मध्य स्थान में रहता है और अग्नि तथा चन्द्र रूप दो बिन्दु दो स्तनों के रूप में निम्न देश में दोनों ओर रहते हैं। यही त्रिबिन्दु का अवस्थान है। इसी को श्री शंकराचार्य ने सौन्दर्य लहरी में स्पष्ट किया है—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो।
हरार्द्धं ध्यायेद् यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।।

इसी त्रिबिन्दु के नीचे हार्द्धकला के रूप में एक विचित्र शक्ति का निवास है—

यही 'कामकला' है। इसी से पूर्णस्वरूप के अन्तर्गत भगवद्धाम का निर्माण होता है। कामकला का प्रधान बिन्दु सूर्य है। विश्व-सृष्टि के मूल में कामकला की क्रिया विद्यमान रहती है। इसे सरलतापूर्वक इस प्रकार समझा जा सकता है—

कामकला के रूप में महाबिन्दु तीन प्रकार का होता है—

१. अव्याकृत शब्द और अर्थ का भेद होने से पहली अवस्था।

२. अव्याकृत चेतना, जिसे शब्द ब्रह्म कहा जाता है।

३. इच्छा - शक्ति, क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति के रूप में ब्रह्म की अभिव्यक्ति।

उपर्युक्त तीन शक्तियों के रूप में अभिव्यक्त ब्रह्म से सतोगुण, रजोगुण, तमोगगुण - तीन गुण एवं सूर्य, चन्द्र और अग्नि के रूप में तीन बिन्दु या कार्य, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा के रूप में तीन देवता प्रकट होते हैं। इन सब की उत्पत्ति प्रकाश और विमर्श के संगम से होती है। ईश्वरीय इच्छा के इन तीन रूपों को 'कामकला' कहा जाता है। कामकला का अर्थ है - सृष्टि करने की इच्छा और तत्संबंधी चेष्टाएँ।

कामकला का ध्यान

कला - क = आकाश, ला = पृथिवी अर्थात् पृथिवी, से आकाशपर्यन्त दिखाई देने वाला सब कुछ ब्रह्म है - **'सर्व खल्विदं ब्रह्म'**। सब कुछ मैं ही हूँ - **'सोऽहं'**- यह चिन्तन करना ही कामकला विमर्श या कामकला ध्यान कहलाता है। कामकला शिव और शक्ति का सामरस्य अथवा वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म और जीव की एकता है। इसका निरूपण दो प्रकार से किए जाने के कारण इसका ध्यान भी दो प्रकार का है। कामकला के दो स्वरूपों में से एक स्वरूप दो अक्षरों के 'अहं', पद से व्यक्त होता है - **'अहमाकाराख्य सिद्ध कामकलाम्'** इति।' तात्पर्य यह कि कामकला 'अहं' स्वरूप वाली है। इसका समर्थन सांख्यशास्त्र भी करता है—

अहमित्येकद्वैतं, यत्प्रकाशात्मविभ्रमः ।
अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।।
हकारोऽन्त्यः कलारूपो, विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः।
अनयोः सामरस्यं यत् परस्मिन्नहनि स्फुटम्।।

'अहं' यह एक अपूर्वभाव है, इसमें द्वितीय नहीं है। अकार वर्णमाला का पहला अक्षर है और प्रकाशरूप परशिव - काम का वाचक है। 'ह' वर्णमाला का अन्तिम वर्ण है और यह विमर्श रूप चित्शक्ति अथवा कला का सूचक है। अतः 'अ' और 'ह' इन दो वर्णों का समरस्य 'अहं' पद समस्त विश्व का विमर्श करता है।

विमर्शात्मक (प्रकाश - अ, विमर्श - ह) अहन्ता का ध्यान कामकला के दो प्रकार के ध्यानों में सूक्ष्म ध्यान है। इस ध्यानसूक्ष्म में यह भावना की जाती है कि 'यह आत्मा ब्रह्म है और समस्त विश्व इस आत्मा से ही उत्पन्न हुआ है, इसी में उपस्थित है और इसी में लय हो जाता है।'

कैवल्योपनिषद् भी यही कहता है कि 'मुझसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, मुझ पर ही सब कुछ अवस्थित है और मुझमें ही सब लीन होता है। मैं ही अद्वैत ब्रह्म हूँ।'

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्।।

निष्कर्ष यह कि 'मैं पूर्ण हूँ' यह चिन्तन करना ही कामकला का ध्यान है। अहं सः = हंसः = सः अहं सोऽहं। हंसः और सोहम् का चिन्तन ही अद्वैतावस्था है, जो पूर्णता का द्योतक है- यही कामकला का सूक्ष्म ध्यान है।

साधकों के हित के लिए कुछ आचार्यों ने कामकला (अहम्) का निरूपण 'ईं' इस एक अक्षर से किया है। वैदिक समाम्नाय 'ईं' इस एकाक्षर को प्रणव का समानार्थक सिद्ध करता है। जिस प्रकार ॐ में चार अवयव होते हैं उसी प्रकार 'ईं' में भी रक्त बिन्दु, शुक्र, मिश्र बिन्दु और संवित् (हार्द्धकला) - ये चार अवयव हैं—

ईकारोर्ध्वगतो बिन्दुः मुखं भानुरधोगतौ।
स्तनौ वह्निः सितांशुर्योऽनिर्हार्द्धकला भवेत्।।

जिस प्रकार व्याकरण में अक्, इक्, अच् आदि प्रत्याहार बनते हैं उसी प्रकार प्रत्याहारन्याय से काम, अग्नि, सोम और कला (हार्द्धकला) इन चार शब्दों में से मध्य के अग्नि और सोम शब्दों का लोप करने से 'कामकला' शब्द शेष रह जाता है।

जिस प्रकार शरीर के ऊर्ध्वभाग, मध्यभाग और अधोभाग तीन खण्ड हैं, उसी प्रकार कामकला अक्षर 'ईं' भी तीन भागों में विभक्त है। ये तीनों भाग रक्त, शुक्ल, मिश्र बिन्दुओं और संवित् से बने हुए हैं। देवी त्रिपुरसुन्दरी के शरीर के तीनों भागों का ध्यान और रक्त, शुक्ल, मिश्र बिन्दुओं तथा संवित् से बने 'ईं' का ध्यान एक ही है। दोनों में कोई भेद नहीं है।

मन्त्र संस्कार

मंत्रमहोदधि का भत है कि सभी मंत्र छिन्नादि उनचास दोषों से युक्त हैं, इसलिए जप, हवन, न्यास आदि करने पर वे पूरा फल नहीं देते हैं। पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए मन्त्रों के दस संस्कार पहले कर लिए जाएँ तब उन्हें सिद्ध किया जाए।

दस संस्कार निम्नलिखित हैं—

१. जनन, २. जीवन, ३. ताडन, ४. बोधन, ५. अभिषेक, ६. विमलीकरण, ७. आप्यायन, ८. तर्पण, ९. दीपन और १०. गुप्ति।

मन्त्रों की संस्कार विधि इस प्रकार है—

भोजपत्र पर अष्ट गन्ध से त्रिकोण यन्त्र बनाया जाए। फिर वरुण कोण से आरम्भ कर उसे सात भागों में विभक्त करे। इसी प्रकार ईशान और अग्निकोण से विभाजन करने पर ४९ योनियाँ (त्रिकोण) बन जाएँगी। उन योनियों में क्रम से ४९ मातृकाएँ अकार से हकार तक अंकित करें, फिर मातृका देवी का आवाहन कर गन्ध, अक्षत, पुष्प से पूजन करे, तदनन्तर मंत्र का उद्धार कर जनन आदि संस्कार इस प्रकार करे—

१. जनन—एक-एक मातृका के ऊपर अपने इष्ट मन्त्र से मार्जन कर लिखे।

२. दीपन—'**हंसः मूलं सोऽहं**' का एक सहस्र जप करे।

३. बोधन—'**हूं मूलं हूं**' का पाँच सहस्र जप करे।

४. ताड़न—'**फट् मूलं फट्**' का एक सहस्र जप करे।

५. अभिसेचन—'ऐं हं सः ॐ मूलं' के एक सहस्र से अभिमन्त्रित जल द्वारा ताडपत्र पर लिखित मन्त्र का अभिषेक करे।

६. विमलीकरण—'**ॐ त्रों वषट् मूलं ॐ वषट् त्रों**' का सात सहस्र जप करे।

७. जीवन—'**स्वधा वषट् मूलं वषट् स्वधा**' का एक सहस्र जप करे।

८. तर्पण—दूध, घी, जल से मूल मन्त्र द्वारा अभिषेक करे।

९. गोपल—'**ह्रं मूलं ह्रं**' का एक सहस्र जप करे।

१०. आप्यायन—'**ह् सौ मूलं ह्रं सौं**' का एक सहस्र जप करें।

इनके अतिरिक्त १. भ्रामण, २. बोधन, ३. वश्य, ४. पीडन, ५. पोषण, ६. शोषण और ७. दहन, इन सात अन्य उपायों द्वारा भी मन्त्रों का संस्कार कर उन्हें सिद्ध किया जाता है। विधि इस प्रकार है—

१. भ्रामण संस्कार —जिस मंत्र को सिद्ध करना हो उसके आदि और अन्त में 'यं' बीज लगाकर भोजपत्र पर कपूर और चन्दन से लिखकर पूजन, जप और हवन करना चाहिए। इससे मंत्र का संस्कार हो जाता है और वह जपने से सिद्ध हो जाता है किसी त्रुटिवश यदि भ्रामण संस्कार करने पर मन्त्र सिद्ध न हो तो बोधन संस्कार करना चाहिए।

२. बोधन संस्कार—मूल मन्त्र के आदि-अन्त में 'ऐं' बीज लिखकर उसका जप

करना चाहिए।

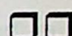
३. **वश्य संस्कार**—बोधन से भी सिद्ध न हो सके तो अलक्तक, चन्दन, कुष्ठ (कूट), हरिद्रा और मदनशिला (मैनसिल) की स्याही बनाकर अनार की कलम से भोजपत्र पर मन्त्र लिखकर गले में बाँधने से वश्य संस्कार हो जाता है।

४. **पीडन संस्कार**—अधरोत्तर योग से पैरों तक जप कर अधारोत्तररूपिणी देवी का ध्यान करे। सफेद अर्क (आक) के दूध से भोजपत्र पर अनार की कलम से मन्त्र को लिखकर प्रति दिन १०८ बार हवन करें तो वह मन्त्र पीड़ित होकर सिद्ध हो जाता है।

५. **पोषण**—जिस मन्त्र को सिद्ध करना हो उसके आदि और अन्त में **'ऐं क्लीं सौः'** इन तीन बीजाक्षरों का सम्पुट लगा कर जप करे और गाय के दूध तथा मधु से मन्त्र को अपने हाथ पर लिखे। इससे मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

६. **दहन**—अग्नि बीज (रं) को मन्त्र के एक अक्षर के आगे और पीछे तथा उसके ऊपर और नीचे ब्रह्म[1] वृक्ष के तेल से लिखे फिर उसे यन्त्र बनाकर गले में पहनने से सिद्ध हो जाता है।

ये सात उपाय बहुत गोपनीय हैं, गुरु-परम्परा से साधकों को प्राप्त होते हैं। सातों संस्कार एक साथ नहीं किए जाते हैं। एक ही संस्कार से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। यदि एक से सिद्ध न हो तो दूसरा, उससे न हो तो तीसरा और उससे भी न हो तौ चौथा इसी तरह न सिद्ध होने पर अंतिम सातवाँ संस्कार किया जाता है। ये उपाय सर्व साधारण के लिए उपयोगी नहीं होते हैं, जरा भी भूल से उग्र बन कर हानि पहुँचा देते हैं।



---

१. ब्रह्मदण्ड < ऊँट कटोरा < ब्रह्मदण्डी

५ / तन्त्र-साधना के सोपान

दीक्षा और अभिषेक

तान्त्रिक साधना में दीक्षा एवं अभिषेक एक रहस्यमय क्रिया होती है। शक्ति-साधना सम्बन्धी तन्त्रशास्त्रों में शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक, क्रमदीक्षा, साम्राज्यदीक्षा आदि गहन साधना तथा क्रियाओं का वर्णन मिलता है। दीक्षा और अभिषेक के विचित्र और विविध भेद मिलते हैं। पहले दीक्षा होती है, फिर शाक्ताभिषेक तथा पूर्णाभिषेक किया जाता है। दीक्षा और अभिषेक में मन्त्र की प्रधानता और विशेषता रहती है। पूर्णाभिषेक और क्रमदीक्षाभिषेक में गंभीर और रहस्यमय क्रिया व्यापार रहता है। साधक का जब शाक्ताभिषेक हो जाता है तो उसके लिए शक्ति का मार्ग-प्रशस्त बन जाता है। शाक्ताभिषेक के बाद पूर्णाभिषेक का अनुष्ठान प्रारम्भ होता है। शाक्तसाधना में दशमहाविद्याओं का क्रम प्रचलित है। दश महाविद्याओं में प्रथम तीन विद्याएँ त्रिशक्ति नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हें काली, तारा और षोडशी नाम से जाना जाता है। साधनों के लिए इन तीन महाविद्याओं की उपासना परम तत्त्व की दृष्टि से हर प्रकार से 'काम्य' मानी गई है। साधक साधना-पथ पर आरूढ़ होकर स्थूल देह तथा स्थूल जगत् का भेदन कर अन्तर्मुख एवं ऊर्ध्वमुख होकर आगे बढ़ता है। उसका एकमात्र लक्ष्य होता है - आत्म साक्षात्कार। वह लक्ष्य - प्राप्ति के लिए पहले भाव-जगत् के ऊर्ध्व में स्थित महाशून्य का साक्षात्कार कर उसका भेदन करता है। महाशून्य के भेदन करने के लिए क्रमदीक्षा के विभिन्न स्तरों से साधक गुजरता हुआ पूर्णत्वलाभ का पथ खोजता है। पूर्णत्व के पथ पर पहुँचने के लिए महाशून्य का भेदन एकान्त, शान्त होकर करना पड़ता है। महाशून्य का भेदन करने के लिए चित्-शक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। इसीलिए पूर्ण-दीक्षा के बाद क्रमदीक्षा का विधान बनाया गया है। शाक्ताभिषेक हो जाने के बाद ही पूर्णाभिषेक होता है। इसकी क्रिया मन्त्रप्रधान होती है और इसकी उपास्यदेवी काली है। तन्त्रशास्त्र में महाकाली का स्वरूप बताया गया है कि महाप्रलय और अतिमहाप्रलय में जो शक्ति भासमान रहती है वह महाकाली है।

महाप्रलयकाल में विश्व घोर अन्धकार से आच्छन्न होकर महाश्मशान बन

जाता है। क्रमदीक्षाभिषेक के बाद तारिणी अथवा तारा देवी उपास्य होती हैं। इस प्रकार की अभिषेक-क्रिया के संपन्न होने के बाद दक्षिणाचार सिद्धान्ताचार में परिणत हो जाता है। यह परिणति 'त्रिपाद साधना' के अन्तर्गत होती है, साथ ही मन्त्र की साधना चलती रहती है। क्रमदीक्षाभिषेक हो जाने पर काली और तारा दोनों उपास्य देवियों के अपने-अपने कार्य सम्पन्न हो जाया करते हैं। तदनन्तर साम्राज्य - दीक्षाभिषेक का समय आता है। इस अवसर की उपास्य देवी भगवती त्रिपुरसुन्दरी का आविर्भाव होता है। यह पराप्रकृति की उपासना होती है। इस समय साधक में इच्छा और क्रिया के बाद ज्ञानाभास का उदय होता है। यही अवसर है जब साधक को पंचकूट दीक्षा की आवश्यकता पड़ती है। यह दीक्षा साम्राज्यदीक्षा के ही स्तर की होती है। इसके बाद महासाम्राज्यभिषेक होता है। इस अभिषेक का लक्ष्य अर्धनारीश्वर होता है। इस स्थिति पर पहुँचकर साधक को अर्धनारीनटेश्वर का साक्षात्कार होता है। यहाँ पहुँचकर मन्त्र प्रधानता समाप्त हो जाती है। केवल लय की प्रधान होती है। इसके बाद पूर्णदीक्षाभिषेक होता है। यहाँ योग की पूर्णता हो जाती है और अन्त में जब महापूर्णदीक्षा होती है तब कुछ शेष नहीं रहता है। मन्त्रयोग से महाभाव का उदय होता है और महाभाव के बाद महालय तदनन्तर योग की प्रतिष्ठा होती है।

दीक्षा-मन्त्र

सामान्यतया साधक को दीक्षा देते समय जो मन्त्र दिया जाता है, उसे 'बीज मन्त्र' कहा जाता है। जप, साधना द्वारा वही मन्त्र विकसित और सशक्त होकर साधक के समस्त व्यक्तित्व को अभिभूत कर लेता है। नित्य नियमानुसार जप, हवन करने से मन्त्र विकसित होता है। सन्ध्या, न्यास, पूजा, हवन साधना के अंग हैं।

मन्त्र-साधना के अनेकानेक विधान तन्त्र ग्रन्थों में हैं। सभी प्रकार के विधानों का एकमात्र उद्देश्य है साधक की संकल्प-शक्ति को सुदृढ़ करना। मन्त्र-साधना के समय अनेक विघ्न-बाधाएँ और दोष उत्पन्न हो जाने का भय बना रहता है। उनके निवारण के लिए साधक को गुरु के बताए हुए उपायों के प्रति सजग रहना चाहिए। तन्त्रशास्त्र में मन्त्र साधना के 'कुल्लुका', 'निर्वाण', 'सेतु', 'निद्राभंग', 'मन्त्र चैतन्य', 'मन्त्रार्थ-भावना', 'दीपनी', 'योनिमुद्रा' आदि अनेक अंग बताए गए हैं।

साधक के मन्त्र देने से पूर्व दीक्षा-गुरु चक्रों के आधार पर गणित करके मन्त्रों का वर्गीकरण करता है और साधक जिस स्वभाव या प्रवृत्ति का होता है तदनुकूल मन्त्र उसे देता है अन्यथा उसकी मन्त्र-साधना निष्फल हो जाए।

मंत्रों का वर्गीकरण

सामान्यतया मन्त्रों का वर्गीकरण चार श्रेणियों में किया गया है—

१. सिद्ध मन्त्र—जो साधक के लिए मित्रवत् हितकर होते हैं।

२. साध्य मन्त्र—जो साधक के लिए सेवक के रूप में होते हैं।

३. सुसिद्ध मन्त्र—जो सहायक के लिए रक्षक बनते हैं।

४. अरि मन्त्र—जो साधक के लिए शत्रुवत् होते हैं।

मन्त्र वाचक शक्ति है। उसके द्वारा वाच्य शक्ति को प्राप्त किया जाता है। मन्त्र-साधना द्वारा मन्त्रात्मिका सगुण शक्ति जाग्रत होती है। वह जागकर साधक के आवरणों को हटा देती है तब वाच्य-शक्ति फिर इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है।

जप-रहस्य

किसी एक शब्द का बार-बार उच्चारण करना जप है। जप करने से साधक की प्रसुप्त-चेतना का जागरण होता है। यदि साधक की सोई हुई चेतना कुछ दिन के जप से जाग्रत नहीं होती है, तो निराश न होकर तन्मय होकर मन्त्र-जप करते रहना चाहिए, चेतना अवश्य जागेगी। जाग्रत-चेतना ही साधक को इष्ट का साक्षात्कार कराती है। मन्त्र चेतना स्वरूप होते हैं, उनका बार-बार उच्चारण करने पर वे साधक के संस्कार बन जाते हैं और शुद्ध चेतना होने पर वह मन्त्र साकार बन जाते हैं अथवा अर्थ के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं जप द्वारा साधक के विचार केन्द्रित होते हैं। चित्तवृत्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं।

सामान्यतः जप तीन प्रकार का होता है—

१. वाचिक—जो मन्त्र उच्चारण किया जाए, जपते समय वह सुनाई पड़े, मन्त्र का बाह्य उच्चारण वाचिक जप है।

२. उपांशु—इसमें मन्त्र के शब्द बाहर नहीं निकलते, केवल जीभ और ओठ हिला करते हैं। वह वाचिक की तुलना में श्रेष्ठ है।

३. मानस—जब मन-ही-मन में मन्त्र का जप किया जाता है। इसमें न नाद होता है और न श्वास। जीभ, ओंठ आदि नहीं हिलते । मन में मन्त्र के इष्टदेव का ध्यान करते हुए मन-ही-मन जपने से यह मानस जप कहा जाता है! यह जप सर्वश्रेष्ठ और शीघ्र फल देनेवाला माना गया है।

शब्द विचारों के आकार होते हैं, जप विचार साकार बनते हैं, जप-सम्बन्धी विधि पर अनेक मत हैं। किसी का कहना है कि केवल मन्त्रों के वर्णों का उच्चारण

करना ही जप है। एक दूसरे आचार्य का कहना है कि मन्त्र के रहस्यार्थ का चिन्तन करते हुए अपने गुरु, मन्त्र के देवता और मन्त्र के वर्णों के साथ आत्मभाव, एकीभाव रखकर जप करना चाहिए।

किन्तु तन्त्र वाङ्मय में सबका निष्कर्ष देते हुए बताया गया है कि इन्द्रियों को संयमित, नियंत्रित कर अन्दर ही अन्दर मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। वस्तुतः आन्तरिक जप ही जप है, बाह्य जप जप नहीं है—

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं प्रोच्चरेन्नादमन्तरम्।
स एव जपः प्रोक्तो न तु बाह्यजपो जपः।।

बाह्य और अभ्यन्तर भेद से जप दो प्रकार का है। बाह्य जप बेखरी नाद का विलास है और अभ्यन्तर जप मध्यमा नाद का विलास है। बाह्य जप की अपेक्षा अभ्यन्तर जप श्रेष्ठ है। अभ्यन्तर जप सूक्ष्म स्वरूप से, कण्ठ जप-स्वरूप से बैखरी जप से उद्भावित होकर मध्यमा भूमि में प्रकट होता है। अभ्यन्तर जप के अभ्यास से मन्त्रों के वर्णों का गुंजन अनायास अन्दर ही होने लगता है। नादरूप में परिणत महाशक्ति का परिस्फुरण साधक के हृदय में होने लगता है, फिर वह परिस्फुरण प्रकाश बन जाता है। इसके बाद शक्ति का साक्षात्कार होता है। इसी प्रकाश का साक्षात्कार करने के लिए तांत्रिक साधक तन्त्र मार्ग का, योगी योगशास्त्रोपदिष्ट मार्ग का, वेदान्ती उपनिषद् उपदिष्ट मार्ग का आश्रयण करते हैं और निरन्तर शब्द ब्रह्म का ध्यान करते हैं।

तन्त्रशास्त्र-रहस्यवेत्ताओं के मत से जपकाल में जपे जाने वाले मन्त्र के अवयवों में पाँच अवस्थाओं, छह शून्यों और सात विषुवों का चिन्तन आवश्यक है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा स्वविषय ग्रहण व्यापार जागरावस्था है, इसे प्रकाश रूप में चिन्तन करना चाहिए। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूप चार प्रकार के अन्तःकरण के व्यवहार को स्वप्नावस्था कहा जाता है। इस अवस्था का चिन्तन साधक को अनाहत चक्र में करना चाहिए। आत्म सुख अज्ञान विषयक अविद्या में लीन जीव का ज्ञान सुषुप्तावस्था है, इसका चिन्तन जप काल में ललाट स्थित तृतीय बिन्दु में करना चाहिए। चित् अभिव्यंजक नाद का वेदन तुरीयावस्था है। इस अवस्था का चिन्तन जप-काल में प्रकाश अर्धचन्द्र-रोधिनी नादात्मक मन्त्र के अवयवों से करना चाहिए। आनन्दैकघनस्वरूप मनुष्यवाग्गोचरा तुर्य्यातीत अवस्था का चिन्तन नादान्त-शक्ति व्यापिनी के रूप में मन ही मन करना चाहिए। इससे ऊपर अब कोई अवस्था नहीं होती है।

अजपा जप

व्याकरण की दृष्टि से अजपा का अर्थ है—जिसका उच्चारण मुख से न कर श्वास-प्रश्वास की गति के साथ जपना है। किन्तु तांत्रिकों के मत से अजपा जप का अर्थ यह है—

अज + पा = अज = ब्रह्म, उससे अभिन्न जीवात्मा की जो श्वास-प्रश्वास के गमनागमन द्वारा पातिरक्षा करता है, वह अजपा जप है। हंसात्मिका भगवती ही अजपा है, उसका जप अजपा जप है। कुलार्णवतन्त्र का कथन है—

हंसात्मिका भगवती जीवो जपति सर्वदा।
अस्याः स्मरण मात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।।

अजपा जप का मन्त्र है—'हंसः'। इस द्व्यक्षर मन्त्र का स्वरूप तन्त्रशास्त्र में इस प्रकार बताया गया है—

वियदर्धेन्दुलसितस्तदादिः सर्ग संयुतः।
अजपाख्यो मनुः प्रोक्तो द्व्यक्षरः सुरपादपः।।

अर्थात् सुरपादप के सदृश अभीष्ट पूरा करने का अजपा नाम का द्व्यक्षर मन्त्र हंसः है। इस मन्त्र के देवता चन्द्रचूडत्रिनेत्र शिव हैं—

उद्यद्भानुस्फुरित तडिदाकारमूर्धाम्बिकेशम्।
पाशामीतिं वरदपरशुं सन्दधानं कराब्जैः।।
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः शोभितं विश्वमूलम्।
सौम्याग्नेयं वपुरवतुनश्चन्द्रचूडं त्रिनेत्रम्।।

तन्त्रसार के अनुसार इस मन्त्र के ऋषि हंस हैं और देवता परमहंस हैं। इससे कोई विरोध नहीं समझना चाहिए। अर्धनारीश्वर का भी रूप हंस और परम-हंस है।

मन्त्र का विनियोग

अस्य अजपाजपस्य परमहंसो देवता, ऋषि हंसः, छन्दो गायत्री, हं बीजम्, अः शक्तिः, सोऽहं कीलकम्, 'प्रणवस्तत्त्वम्, उदात्तः स्वरो जपे विनियोगः सिद्धः।

सुरेन्द्र संहिता का कथन है—

ऋषिर्हं सोऽव्यक्तपूर्वा गायत्री छन्द उच्यते।
देवतापरमादिस्तु हंसो बीजमुच्यते।
अः शक्तिः कीलकः सोऽहं प्रणवस्तत्त्वमेव च।
उदात्तः स्वर इत्येवं मनोरस्य प्रकीर्तितः।

मोक्षार्थे विनियोगः स्यादेवं कुर्याद् सदानरः।।

अर्थात् अजपा जप मन्त्र का ऋषि हंस, देवता परमहंस, छन्द गायत्री, शक्ति अः, कीलक सोऽहं, बीज हं, तत्त्व प्रणव और स्वर उदात्त है। मोक्ष-कामना के लिए इसका विनियोग किया जाता है।

अजपा जप के आदि में मुख, करसम्पुट आदि षडंगमुद्रा प्रदर्शित करने के बाद जप प्रारम्भ करना चाहिए। जप करते समय मूलाधार चक्र से लेकर सहस्रार चक्र तक मूल मन्त्र का ध्यान करना चाहिए। षट्चक्र स्थित गणेश, ब्रह्मा, विष्णु आदि को प्रणाम करके तीन प्राणायाम मूल मन्त्र से करके जप प्रारम्भ करना चाहिए। देवताओं का ध्यान-मन्त्र यह है—

गणेशब्रह्मविष्णूंश्च शिव जीव परेश्वरान्।
षट्चक्र देवतां नौमि मूर्ध्नि श्रीगुरवेनमः।

मनुष्य २१६०० संख्यक साँस लिया करता है। अजपा जप की संख्या श्वास-प्रश्वास की संख्या के अनुसार २१६०० होती है। इसका जप-नियम बहुत जटिल और नियमित है। किस समय, कितने समय तक किस चक्र में ध्यान स्थिर कर मूल मन्त्र का अजपा जप किए जाएँ, इसकी सारिणी निम्नांकित है—

सूर्य-उदय	मि०	से०	घं०	मि०	से०	देवता	चक्र	संख्या
६	४०	४०	०	४०	४०	गणपति	मूलाधार	६००
१	२०	२०	६	४०	०	ब्रह्मा	स्वाधिष्ठान	६०००
८	८	०	६	४०	०	विष्णु	मणिपूर	६०००
२	४०	४०	६	४०	०	रुद्र	अनाहत	६०००
३	४६	४०	१	६	४०	जीवात्मा	विशुद्ध	१०००
४	५३	२०	१	६	४०	परमात्मा	आज्ञा	१०००
६	०	०	१	६	४०	गुरु	सहस्रार	१०००
							योग =	२१६००

प्राण-विद्या

तान्त्रिक साधना में मन, मस्तिष्क को सुस्थिर बनाने तथा शरीर को निर्विकार, पवित्र बनाए रखने के लिए प्राणविद्या की साधना का बहुत बड़ा महत्त्व है। इसमें आसन और मुद्राओं के रूप में पहले शारीरिक संशोधन किया जाता है, तत्पश्चात् प्राणायाम द्वारा मन को एकाग्र किया जाता है। शरीर का शोधन सात प्रकार से किया जाता है—

१. **शोधन**–षट्कर्मों द्वारा शरीर की शुद्धि करना।

२. **दृढ़ता**–आसनों द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाना।

३. **स्थिरता**–मुद्राओं द्वारा शरीर को स्थिर रखना।

४. **धैर्य**–इन्द्रियनिग्रह द्वारा मन को स्थिर रखना।

५. **लाघव**–प्राणायाम द्वारा शरीर को हल्का बनाना।

६. **प्रत्यक्ष**–ध्यान द्वारा मूल मन्त्र का जप कर इष्टदेव का साक्षात्कार करना।

७. **निर्लिप्तता**–एकाग्र, समाधिस्थ होकर समस्त विषय-वासनाओं से निर्लिप्त हो जाना।

इनमें शोधन क्रिया का मुख्य प्रयोजन वात, पित्त, कफ-जन्य विकारों को दूर करना है। तीनों धातुओं से संबंधित विकार दूर हो जाने पर प्राणायाम की सिद्धि सहज हो जाती है। जिनका शरीर नीरोग हो, उन्हें षट्कर्म (धौति, बस्ति, नेति, लौलिक, त्राटक, कपालभूमि) करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

आसन

आसन तो बहुत बताए गए हैं। ८४ लाख योनियों की संख्या के आधार पर आसनों की संख्या ८४ लाख है, उनमें १६०० उत्तम माने गए हैं। किन्तु तांत्रिक-साधना में पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन, शवासन, चितासन और मुंडासन मुख्य माने गए हैं।

कुण्डलिनी जाग्रत करने के लिए सिद्धासन तथा ऐसी मुद्राएँ लगाई जाती हैं, जिनमें एक पैर की एँड़ी गुदाद्वार को दबाती है और दूसरे पैर की एँड़ी लिंगेन्द्रिय को दबाती है। योनिमुद्रा द्वारा कान, नाक, आँख और मुख के छिद्र अंगुलियों से ढँक दिए जाते हैं। दाहिने पैर की एँड़ी गुदाद्वार पर जमा दी जाती है और बाएँ पैर की एँड़ी लिंगेन्द्रिय पर जमा दी जाती है। लिंगेन्द्रिय को संकुचित करके दोनों के बीच इस प्रकार दबाया जाता है कि वह दिखाई न पड़े। साथ ही खेचरी मुद्रा द्वारा जीभ को उलट कर कण्ठद्वार रोक दिया जाता है।

मुण्डासन, चितासन, शवासन क्षुद्र भौतिक इच्छाओं की पूर्ति में सहायक साधना में प्रयुक्त होते हैं। मुण्डासन में नरमुण्डों पर बैठकर अभ्यास किया जाता है। चितासन में चिताभूमि पर बैठकर और शवासन में मृत शरीर पर बैठकर अभ्यास किया जाता है। यद्यपि मुण्डासन, चितासन आदि आसनों का लक्ष्य सांसारिक कामनाओं की पूर्ति है, किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में भी इनका महत्त्व कम नहीं है। इन आसनों द्वारा की गई साधना से साधक भय और घृणा से मुक्त हो जाता है, इसमें समत्व बुद्धि का विकास होता है और शव को शिव बनाने की क्षमता प्राप्त करता है।

तान्त्रिक - साधना का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करना है। इसलिए साधना के लिए एकान्त गुफा, पर्वत, शिखर, सुनसान-वीरान स्थान, श्मशान, नदी तट आदि स्थान उपयुक्त माने गए हैं—तान्त्रिक-साधना में श्मशान दो तरह के हैं— १. बाह्य श्मशान, २. अभ्यन्तर श्मशान। बाह्य श्मशान वह है, जहाँ मुरदे जलाए जाते हैं और अभ्यन्तर श्मशान हृदय में है जहाँ पर समस्त कामनाओं, वासनाओं, विषयों का दहन किया जाता है।

जिस अवस्था में स्थिरतापूर्वक, सुखपूर्वक बैठा जा सके, वह 'आसन' है। विचारों को विशुद्ध बनाए रखने के लिए आसन की स्थिरता आवश्यक होती है। यदि किसी ऐसे आसन को लगाया जाए कि शरीर स्थिर न हो पाए, हिलना, डुलना बना रहे तो शारीरिक अस्थिरता और उसकी हलचल से मन डावाँडोल, चंचल हो जाता है, ध्यान भंग हो जाता है। इसलिए साधक को यह स्वयं निर्णय करना चाहिए कि उसके लिए कौन-सा आसन सुखकर और स्थिरता लाने वाला होगा। यदि कोई व्यक्ति स्थूलकाय है तो उसके लिए वज्रासन में क्षण भर बैठना तो दूर रहा, वह उस आसन को लगा ही नहीं सकता। इसी तरह पद्मासन भी उसके लिए विपत्ति बन जाता है, फिर भला उसे सिद्धि कहाँ से प्राप्त हो सकती है। आसनों का अभ्यास करने पर कुछ दिनों बाद वे सहज बन जाते हैं, फिर प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जब साधक का आसन स्थिर हो जाता है तो रजोगुण से उत्पन्न होने वाली मानसिक चंचलता दूर हो जाती है। मन, मस्तिष्क और शरीर सब में संतुलन आ जाता है।

आसनों की सिद्धि में मुद्राएँ और बन्ध अभेद सम्बन्ध रखते हैं। कुछ आसन ऐसे होते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध प्राणवायु से रहता है। वह आसन प्राणायाम की सिद्धि में सहायक होते हैं। ऐसे आसनों में सिद्धासन बहुत ही उत्कृष्ट आसन है। हठयोग-प्रदीपिका में कहा गया है कि "जैसे यमों में अहिंसा, नियमों में मिताहार मुख्य है, वैसे ही आसनों में सिद्धासन मुख्य है। इसका अभ्यास करने से कुछ ही दिनों में 'उन्मनी' अवस्था प्राप्त हो जाती है और तीन बन्ध अपने आप लगते हैं।"

मुद्राएँ

मुद्राएँ प्रदर्शित करने में साधक पाप-निवृत्त होकर इष्टदेवता का सान्निध्य प्राप्त करता है। मुद्राओं के स्वरूप को समझने के साथ ही उसकी पारिभाषिक शब्दावली को भी समझना आवश्यक है।

दोनों हाथ की अँगुलियों और मुट्ठियों को जोड़ने और खोलने से सारी मुद्राएँ बनती हैं। इसलिए हाथ, अँगुली और मुट्ठी की भेद-संज्ञा को इस प्रकार जाना जाए—

मणिबन्ध (हाथ की कलाई) से कनिष्ठा (छिंगुरी) तक का अंग हाथ है। हाथ का अग्रभाग पंचशाख, शय और पाणि कहलाता है। इसमें जो अंगुलियाँ हैं। वे करपल्लव या करशाख कहलाती हैं। अँगुलियाँ पाँच होती हैं- १. अंगुष्ठ (अँगूठा) इसे जेष्ठा, वृद्धा और भ्रूपूजक कहते हैं। दूसरी अँगुली को तर्जनी, प्रदर्शिनी, प्रदेशिका, पितृपूजिका कहते हैं। बीच की तीसरी अँगुली को मध्या, मध्यमा और जपकरणी कहते हैं। चौथी अँगुली को अनामा, अनामिका और प्रान्तवासिनी कहते हैं। पाँचवीं कनिष्ठा को अन्त्यमा, लध्वी, स्वल्पा, रत्नी और अनत्यजा कहते हैं। इन पाँचों अँगुलियों को बन्द कर लेने से मुष्टि (मुट्ठी) बनती है और खोल देने से करतल बनता है।

मुष्टि दो प्रकार की होती है, जिसमें रत्नी (कनिष्ठा अँगुली) शामिल रहती है, वह मुष्टि (मुट्ठी) और जिसमें रत्नी न हो, वह अरत्नी कहलाती है।

हाथ में स्थित तीन देवता और चार तीर्थ

हाथ के आरम्भ के अँगूठे के नीचे आत्मतीर्थ, हाथ के अन्त में अँगुलियों के ऊपर परमार्थ तीर्थ, हाथ के उत्तर भाग कनिष्ठा से कुछ नीचे देवतीर्थ और हाथ के दक्षिण भाग तर्जनी अँगूठा के बीच में पितृतीर्थ रहता है। स्नान, दान, संकल्प, तर्पण आदि कर्मों और उन-उन कर्मों के स्थानीय तीर्थ के ऊपर होकर जल-अक्षत तिल आदि त्यागने से महाफल होता है। हाथ के मूल में ब्रह्मा, हाथ के मध्य में विष्णु और हाथ के अग्रभाग में शिव का वास रहता है।

नित्य साधना में उपयोगी मुद्राएँ

प्रार्थना मुद्रा—दोनों हाथों की दसों अँगुलियों को आमने-सामने परस्पर मिला देने के बाद हृदय के समीप रखने से प्रार्थना मुद्रा बनती है।

स्नान-काल की अंकुश मुद्रा—दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँध कर तर्जनी को अंकुश के समान मोड़ने पर त्रैलोक्य को आकृष्ट करने वाली अंकुश मुद्रा बनती है।

कुन्त मुद्रा—मुट्ठी को खड़ी करके तर्जनी को सीधी करें और उसके अग्रभाग में अँगूठा लगाने से सर्वरक्षाकारी कुन्त मुद्रा बनती है, जो स्नान काल में प्रयुक्त होती है।

कुम्भ मुद्रा—दाहिने अँगूठे को बाएँ अँगूठे में लगाकर शेष अँगुलियों को मुट्ठी बाँध कर नीचे ऊपर लगा दे और मुट्ठी को पोली रखे तो स्नान काल की कुम्भ मुद्रा बनती है।

तत्त्व मुद्रा—अँगूठा और अनामिका के अग्रभाग को मिलाने से स्नान काल की तत्त्व मुद्रा बनती है।

सन्ध्याकाल की २४ मुद्राएँ—१. सम्मुखी, २. संपुटी, ३. वितत, ४. विस्तृत, ५. द्विमुखी, ६. त्रिमुखी, ७. चतुर्मखी, ८. पंचमुखी, ९. षड्मुखी, १०. अधोमुखी, ११. व्यापक, १२०. आंजलिक, १३. शकट, १४. यमपाश, १५. ग्रथित, १६. सम्मुखोन्मुख, १७. प्रलय, १८. मुष्टिक, १९. मत्स्य, २०. कूर्म, २१. वराह, २२. सिंहक्रान्त, २३. विक्रान्त और २४. मुद्‌गर - ये २४ मुद्राएँ संध्या समय की जाती है।

सन्ध्या समाप्ति-काल की आठ मुद्राएँ—१. सुरभि, धेनु, २. ज्ञान, ३. वैराग्य, ४. योनि, ५. शंख, ६. पंकज, ७. लिंग और निर्वाण- ये सन्ध्या काल बीतने पर की जाती हैं।

ध्यान-काल की वासुदेवी मुद्रा—दोनों हाथों में अंजली बाँधने पर वासुदेवी मुद्रा बनती है। जो ध्यान करने से पूर्व की जाती है।

जप मुद्रा—अँगूठा और मध्यमा के पोरों से मणियाँ चलाकर माला फेरने से जप मुद्रा बनती है। इसे 'करमाला' भी कहते हैं।

तीन प्रकार के जप और तीन प्रकार की माला साधना में प्रयुक्त होती है। अभीष्ट मन्त्र के पद, वर्ण और शब्दों का स्वाभाविक उच्चारण 'वाचिक जप' है।

धीरे-धीरे उच्चारण करने पर जीभ और ओठ जब हिलते रहें, दूसरों को मन्त्र का उच्चारण सुनाई न पड़े, वह 'उपांशु जप' है।

ओठ, जीभ न हिलें, मन्त्र शब्दों का अर्थ हृदयंगम होता रहे और मन्त्र का मन ही मन उच्चारण होता रहे तो वह 'मानस जप' है।

ये तीनों प्रकार के तप उत्तरोत्तर फल देने वाले हैं।

तीन प्रकार की मालाएँ—काठ, चन्दन, तुलसी, रुद्राक्ष, मोती, मणि, स्फटिक से बनी हुई माला लौकिकी माला है।

पाँचों अँगुलियों के चार-चार पोर की बीस संख्याएँ अथवा तीन-तीन से पन्द्रह या ग्यारह पोर की दस मालाओं से १०० संख्या बनती है। यह 'करमाला' कहलाती है।

तीसरी **मानस माला** है, जिसके प्रत्येक मन्त्र की जप-संख्या मन ही मन स्वतः चलती रहती है। तीनों मालाएँ उत्तरोत्तर अधिक फल देती हैं। यामलतन्त्र में वर्णमाला, मणिमाला और करमला—तीन प्रकार की मालाएँ बताई गई हैं। इनमें वर्णमाला को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

शक्तिसंगमतन्त्र, गौतमीयतन्त्र, ज्ञानार्णव, मेरुतन्त्र, पुरश्चरणार्णव आदि तन्त्र-ग्रन्थों में वर्णमाला का विशद वर्णन मिलता है।

वर्णमाला—तन्त्र ग्रंथों से ज्ञात है कि 'अ' से लेकर 'क्ष' अक्षर तक देवनागरी लिपि के ५० वर्णों की माला शब्दब्रह्मस्वरूपिणी है, इसी को अक्षमाला कहते हैं। यह माला सर्वदेवमयी है, सद्यः सिद्धिदात्री है। तान्त्रिकाचार्यों का विश्वास है कि सदाशिव इसी माला से जप साधना करते हैं। इस वर्णमाला से सभी देवताओं के मन्त्र जपे जा सकते हैं।

'अ' से 'क्ष' तक के पचास वर्णों में से अपने इष्ट मन्त्र को प्रत्येक वर्णों से संयुक्त कर 'वर्णमाला' के अनुलोम-विलोम से जपना चाहिए।

शक्तिसंगमतन्त्र के अनुसार 'वर्णमाला' तीन प्रकार की है—

(१) पचास वर्णों के अनुलोम-विलोम करने पर '**शतीमाला**' होती है।

(२) शतीमाला में अ-क-च-ट-त-प-य-श और जोड़ कर अष्टोत्तरशती माला बनती है।

(३) 'अ' से 'क्ष' तक के पचास वर्णों के साथ ह्रीं, ऐं, क्लीं, श्रीं- इन चार बीजाक्षरों को जोड़कर ५४ अक्षर बनते हैं। इन ५४ अक्षरों को अनुलोम-विलोम करके दूसरे प्रकार की अष्टोत्तरशती माला बनती है।

उपर्युक्त तीनों प्रकार की मालाओं में 'क्ष' वर्ण को वर्णमाला का सुमेरु समझना चाहिए।

पुरश्चरणार्णव में उद्धृत त्रिशक्तिरत्न के अनुसार उपर्युक्त शतीमाला में जहाँ 'क्ष' वर्ण आएगा, वहाँ 'ल' वर्ण का प्रयोग किया जाएगा क्योंकि 'क्ष' वर्ण मेरु है। इसका उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

मुण्डमालातन्त्र में अष्टोत्तरशती वर्णमाला का एक रूप यह बताया गया है कि वर्णमाला के आदि में 'ऋ', 'ॠ', 'ऌ', 'ॡ' इन क्लीवचतुष्टय को जोड़कर अनुलोक-विलोम करें; जैसे—

'राम' मन्त्र है। इस मन्त्र को यदि वर्णमाला से जपना है तो पहले 'क्ष' का उच्चारण करे। वह वर्णमाला का मेरु बन गया। इसके बाद 'राम' का उच्चारण किया जाए, फिर 'अं', फिर 'राम', फिर 'आं' फिर 'राम' इसी प्रकार 'क्षं' तक उच्चारण करने के बाद पुनः विलोम से 'राम' फिर 'हँ', फिर 'राम', फिर 'सँ', फिर 'राम, फिर 'षँ' उच्चारण करते हुए 'अ' तक पहुँचना चाहिए। यह शतीमाला हो गई। त्रिशक्तिरत्न के अनुसार माला के मध्य का 'क्षँ' को छोड़कर 'लँ' का उच्चारण करना चाहिए। 'क्ष' मेरु है, उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इसी क्रम से उपर्युक्त अष्टोत्तरशती माला भी बननी चाहिए।

तन्त्रशास्त्र में वर्णात्मक शरीर की वैज्ञानिक कल्पना की गई है। वर्णात्मक शरीर

सदाशिव का शब्द ब्रह्मस्वरूप है। इसीलिए जीव को 'शिव' कहा गया है। पाशबद्ध होने के कारण ही शिव में जीवत्व है। वह जीवत्व को छोड़ दे अथवा अपने शिवत्व का स्मरण रखे इसलिए उसे अपने शब्दब्रह्म स्वरूप शरीर का सर्वदा ध्यान करना चाहिए। पञ्चाशतवर्णमातृका ही उसका शरीर है। जीव को जीवत्व की सिद्धि के लिए 'वर्णमाला' का जप करना आवश्यक है। सदाशिव का शब्द ब्रह्म शरीर यही पञ्चाशतवर्णमातृका है। शिवपुराण में इस शरीर का वर्णन इस प्रकार है–

'लिंग' में हँसते हुए भगवान् शंकर दिव्य शब्दमय शरीर को धारण किए हुए हैं। 'अ' उनका शिर है। 'आ' ललाट है। 'इ' दक्षिण नेत्र है, 'ई' वाम नेत्र है। 'उ' दक्षिण कर्ण है, 'ऊ' वाम कर्ण है। 'ऋ-ॠ' कपोलद्वय हैं। 'अं' 'अः' तालुद्वय हैं। क वर्ग के पाँच अक्षर दक्षिण भुजा, च वर्ण के पाँच अक्षर वाम भुजा, ट वर्ग के पाँच अक्षर दक्षिणपाद, त वर्ग के पाँच अक्षर वामपाद, 'प' उदर है, 'फ' दक्षिण पार्श्व है, 'ब' वाम पार्श्व है। 'भ' स्कन्ध है। 'म' हृदय है। य-र-ल-व-श-ष-स सातवर्ण त्वक् असृक, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र- ये सात धातुएँ हैं। 'ह' उनकी नाभि है और 'क्ष' उनका भेद है।

भैरवतन्त्र और निरुत्तरतन्त्र में यही वर्णमाला कालिका की मुण्डमाला है। इन तन्त्रों में काली के ध्यान में नरमुंडमाला का नहीं बल्कि वर्णमुंडमाला का प्रयोग मिलता है–

पंचाशद्वर्णमुण्डालीगलाद्रुधिरचर्चिताम्।

राधातन्त्र और कर्पूरस्तवराज की विमलानन्ददायिनी टीका में इससे भी स्पष्ट व्याख्या मिलती है-

अकारादि क्षकारान्ता पंचाशन्मातृकाक्षरा।
अव्यया अपरिच्छिन्ना त्रिपुराकण्ठ संस्थिता।।

'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास वर्ण अव्यय, अपरिच्छिन्न, मातृकाक्षर भगवती त्रिपुरा के कंठ में स्थित हैं।

कामधेनुतंत्र के कालीध्यान में जो मुंडमाला बताई गई, वह वर्णमाला है–

'मम कण्ठे स्थितं बीजं पंचाशद् वर्णमद्भुतम्।'

यह वर्णमाला नामरूपात्मक विश्व का प्रतीक है। अक्षर अथवा वर्णमाला शब्द तथा अर्थ की मूर्ति है। जब भगवती महाशक्ति ने स्थूलप्रपंच का संहार कर उसे अपने में लय कर लिया तो नाम-रूपात्मक जगत् का उसमें लय हो जाना स्वाभाविक ही रहा। वही महाशक्ति में विलीन नामरूपात्मक विश्व जगदम्बा के कंठ की वर्णमाला बन गया। इसी का उल्लेख शक्तिसंगमतन्त्र में किया गया है–

ब्रह्ममाला मुण्डमाला तद्दधाना तु कालिका।

ब्रह्ममाला धारणात्तु ब्रह्मविद्या प्रकीर्तिता।।

× × ×

केवला मुण्डमाला तु सर्व सिद्धिपराम्बिका।

× × ×

मुण्डरूपाश्च मणयः सर्वसिद्धिमयाः स्मृताः

वर्णमाला जप की साधना से साधक को नामरूपात्मक जगत् से सहज ही वैराग्य हो जाता है।

मातृका न्यास

परमात्मा की दृष्टि-रचना की महती इच्छा से घनभाव को प्राप्त होकर जो जड़-चेतनात्मक सृष्टि होती है उसका प्रसार ब्रह्म की महती इच्छा-रूप आद्य स्फुरणात्मक शक्ति द्वारा हुआ करता है। ब्रह्म की महेच्छा ही विश्व जननी है, यही मातृकाओं का सूक्ष्म रूप है और यही मूल महाबिन्दु कहलाता है, इसी में चित् रूप शिव और चित्-अचित् के संघात रूप पुरुष एवं अचित् रूप प्रकृति-इन तीनों का क्रमशः बिन्दु, नाद और बीज रूप से समावेश है। काल-शक्ति की प्रेरणा से शिव जब प्रकृति की ओर उन्मुख होते हैं तो शब्दार्थरहित निरावृत चिन्मय परात्मक रव की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर इस पराशक्ति के द्वारा कालशक्ति की प्रेरणा से परा, पश्यन्ती, मध्यमा रूप शब्द सृष्टि और महत् से लेकर भूपर्यन्त तत्त्वरूप अर्थ-सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार वर्ण, पद, मन्त्र और कालभुवन तत्त्व रूप शब्दार्थमयी सकल सृष्टि की जननी पराशक्ति मातृका है।

शारदा (मातृका) रूप ब्रह्म का विराट देह वर्णों से ही बना है, अ वर्ग (सोलह स्वर) से मुख, क वर्ग से हाथ, च वर्ग से पैर, ट वर्ग से मध्य भाग, त वर्ग से त्वक्, अस्थि, मांस, मज्जा आदि सप्त धातुएँ, प वर्ग से हृदय अर्थात् ज्ञान क्रियात्मक प्राण एवं प्राणों की मूलभूत मायाशक्ति और य वर्ग (य, व, र, ल, श, ष, स, ह) से पुरुष आनन्दकन्द आत्मभूत परमात्मा बना है।

मातृकाओं के भेद और प्रयोजन

सृष्टिन्यास, स्थितिन्यास और संहारन्यास - ये तीन भेद मातृका-न्यास के हैं। इनमें से साधना के अनुकूल शरीर की उत्पत्ति के लिए सृष्टि-न्यास किया जाता है। उत्पन्न शरीर में देवता की तादात्म्य स्थिति के लिए स्थिति-न्यास किया जाता है और साधनाविरोधी मलावृत भौतिक शरीर की विलयन-भावना संहार-न्यास से की जाती है।

न्यास विधान

स्वर, व्यंजन तथा लिपिपरायण क्रम से जो न्यास किया जाता है, उसे सौस्थानिक न्यास कहा जाता है। यह शान्त और पूर्ण सावधान स्थिति में किया जाता है। व्यग्र दशा में अथवा उचित स्थान न रहने पर औत्थानिक न्यास किये जाते हैं। इस न्यासक्रम में अ, क, च, ट, त, प, य- इन सात वर्गों से क्रमशः मुख, दो हाथ, दो पाँव, नाभि और हृदय - इन सात अंगों में व्यापक रीति से न्यास किया जाता है। स्नान काल में अ, क, च आदि वर्गों में मुख, मध्यभाग और अधोभाग में व्यापक न्यास करना होता है। भोजन काल में समस्त मातृका द्वारा मस्तक से लेकर पैर तक न्यास करना चाहिए।

अन्तर्मातृकान्यास और बहिर्मातृकान्यास

दो और भेद मातृकान्यास के किए गए हैं। इन न्यासों को करने से पूर्व ऋष्यादि न्यास किए जाते हैं। ऋषि, छन्द, देवता के भेद से न्यासों के मन्त्रों और देवता के अनेक भेद होते हैं।

अन्तर्मातृका बहिर्मातृका न्यास के प्रयोग

ॐ अस्य श्री मातृका मन्त्रस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्रीच्छन्दो मातृका सरस्वती देवता व्यंजनानि बीजानि स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकम् लिपिन्यासे विनियोगः।

अंगन्यास

ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि। ॐ गायत्र्यै छन्दसे नमो मुखे। ॐ मातृकायै सरस्वती देवतायै नमो हृदि। ॐ हत्भ्यो बीजेभ्यो नमो गुह्ये। ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः पादयोः। ॐ अव्यक्ताय कीलकाय नमः सर्वांगे।

करन्यास

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यो नमः। ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ उं टं ठं डं ढं णं ॐ मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः हुम्। ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

हृदयादि न्यास

हृदयादि न्यास के मन्त्र करन्यास के ही समान हैं, केवल अंग अवयवों के नाम

परिवर्तित कर दिए जाते हैं जैसे अंगुष्ठाभ्यां आदि के स्थान पर हृदयाय नमः......। शिरसे स्वाहा......। शिखायै वषट्......। कवचाय हुम्......। नेत्र त्रयाय वौषट्......। अस्त्राय फट्। इस प्रकार चतुर्थ्यन्त हृदयादि अंगों का नाम निर्देश करते हुए नमः आदि का निर्देश किया जाता है।

इसके बाद निम्नांकित ध्यान किया जाता है–

शरत्पूर्णेन्दु शुभ्रां सकललिपिमयीं लोलरक्तत्रिनेत्रं,
शुक्लालंकारभासां शशिमुकुटजटाभारहारप्रदीप्तां।
विद्याग्रक्पूर्णकुम्भान् वरमपिदधतीं शुद्धपट्टाम्बराढ्यां,
वाग्देवीं पद्मवक्त्रं कुचभरनमितां चिन्तयेत् साधकेन्द्रः।

तदनन्तर पुष्पांजलि प्रदान कर अन्तर्मातृका का न्यास करें।

अन्तर्मातृका न्यास क्रम

ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः नमः इतिषोडशदले विशुद्धे कण्ठे। ॐ कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं नमः इति द्वादशारे अनाहतै हृदि। ॐ डं ढं णं तं थं थं दं धं नं पं फं नमः इति दशारे मणिपूरे नाभौ। ॐ वं भं मं यं रं लं नमः षडस्रे स्वाधिष्ठाने लिंगमध्ये। ॐ वं शं सं नमः चतुरस्रे स्वाधिष्ठाने गुद मध्ये। ॐ हं क्षं नमः द्विदले आज्ञाचक्रे भ्रूमध्ये।

इसके बाद बहिर्मातृकान्यास करना चाहिए। सम्प्रदायभेद से कहीं अन्तर्मातृकान्यास की भाँति इसमें भी ऋष्यादिन्यास, ध्यानान्त प्रयोग है और कहीं नहीं। इसकी प्रयोग विधि यह है–

मातृका अक्षर के पूर्व ॐ कार, मध्य के मूल मातृका और अन्त में नमः अथवा ॐ कार लगाकर अंगुलि-क्र से अंगों में न्यास करना। मातृका को बिन्दु सहित रखना चाहिए।

बहिर्मातृका न्यास क्रम

ॐ अं नमः शिरसि। ॐ आं नमः ललाटे। ॐ इं नमः दक्षिण नेत्रे। ॐ ईं नमः वामनेत्रे। ॐ उं नमः दक्षिण कर्णे। ॐ ऊं नमः वाम कर्णे। ॐ ऋं नमः दक्षिण नासापुटे। ॐ ॠं नमः वाम नासापुटे। ॐ लृं नमः दक्षिण कपोले। ॐ लॄं नमः वाम कपोले। ॐ एं नमः ऊर्ध्व ओष्ठे। ॐ ऐं नमः अधरोष्ठे। ॐ ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ। ॐ औं नमः अधोदन्तपंक्तौ। अं नमः मूर्ध्नि। ॐ अः नमः मुख वृत्ते। ॐ कं नमः दक्षिण हस्तमूले। ॐ खं नमः दक्ष कूर्परे। ॐ गं नमः दक्षिण मणिबन्धे। ॐ घं नमः

दक्षिण हस्ताङ्गुलिमले। ॐ ङं नमः दक्षिण हस्ताङ्गुलि अग्रे। ॐ चं नमः वामहस्तमूले। ॐ छं नमः वामहस्तकूर्परे। ॐ जं नमः वामहस्त मणिबन्धे। ॐ झं नमः वामहस्ताङ्गुलिमूले। ॐ ञं नमः वामहस्ताङ्गुलिअग्रे। ॐ टं नमः दक्षपाद भूले। ॐ ठं नमः दक्षजानुनि। ॐ डं नमः दक्षगुल्फे। ॐ ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले। ॐ णं नमः दक्षपादाङ्गुलिअग्रे। ॐ तं नमः वामपादमूले। ॐ थं नमः वामजानुनि। ॐ दं नमः वामगुल्फे। ॐ धं नमः वामपादाङ्गुलिमूदे। ॐ नं नमः वामपादाङ्गुलिअग्रे। ॐ पं नमः दक्ष पार्श्वे। ॐ फं नमः वाम पार्श्वे। ॐ बं नमः पृष्ठे। ॐ भं नमः नाभौ। ॐ मं नमः कुक्षौ। ॐ यं त्वगात्मने नमः। ॐ रं असृगात्मने नमः दक्षस्कन्धे। ॐ लं मांसात्मने नमः ककुदि (गल पृष्ठ भागे)। ॐ वं मेद आत्मनेनमः वामस्कंधे। ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्षहस्तांते। ॐ षं मज्जात्मने नमः हृदयादि वामहस्तान्ते। ॐ सं शक्रात्मने नमः हृदयादि वाम पादान्ते। ॐ लं जीवात्मने नमः हृदयादिमुखे।

अंगन्यास मुद्रा

तन्त्र के अनुसार तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से हृदय, मध्यमा और तर्जनी से शिरा, अँगूठा से शिखा, दसों अँगुलियों से कवच (दाहिने हाथ की ५ अंगुलियाँ बाईं भुजा पर और बाएँ हाथ की पाँच अँगुलियाँ दाहिनी भुजा पर लगाना) तर्जनी मध्यमा और अनामिका से नेत्र और तर्जनी तथा मध्यमा से अस्त्र अथवा अस्त्रायफट् करे।

अस्त्र मुद्रा

दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा से बाएँ हाथ की हथेली में शब्दयुक्त आघात करने से अस्त्र मुद्रा बनती है।

करन्यास मुद्रा

अँगूठा को अँगूठे से, तर्जनी को तर्जनी से, मध्यमा को मध्यमा से, अनामिका को अनामिका से, कनिष्ठा को कनिष्ठा से लगाकर कर को करतल करने से करन्यास मुद्रा बनती है।

जीवन्यास मुद्रा

जीवन्यास मुद्रा में १. बीज, २. लेलिहा, ३. त्रिखण्डा, ४. नाद, ५. बिन्दु और ६. सौभाग्यदायिनी—ये छह मुदाएँ की जाती हैं।

मुद्रा प्रकाश में इनके स्वरूप इस प्रकार हैं—

१. बीज—दोनों हाथों को अर्धचन्द्र के आकार में बदलकर दोनों तर्जनी और

दोनों अँगूठे आपस में मिलाकर उनके नीचे मध्यमा और कनिष्ठा को जोड़े और सब के नीचे अनामिका को लगाए तो बीज मुद्रा बनती है।

२. लेलिहा—तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को बराबर अधोमुखी करके अँगूठे को अनामिका से जोड़कर सीधी कर दें तो लेलिहा मुद्रा बनती है।

३. त्रिखण्डा—दोनों हाथों को पलट कर मिला दे और अँगूठा को सीधा रखे, दोनों तर्जनियों को टेढ़ी कर अनामिकाओं को पकड़े और कनिष्ठा से लगा दे तो त्रिखण्डा मुद्रा बनती है।

४. नाद—दाहिने हाथ की मुट्ठी को ऊँची करके अँगूठा को खड़ाकर देने से नाद मुद्रा बनती है।

५. बिन्दु—और इसी में तर्जनी तथा अँगूठा मिला दिये जाएँ तो बिन्दु मुद्रा बनती है।

६. सौभाग्यदायिनी—बाएँ हाथ की मुट्ठी बाँध कर तर्जनी सीधी करे और उनको कान के पास गोलाकार धुमाये तो सौभाग्यदायिनी मुद्रा बनती है।

मातृकान्यास मुद्रा

मध्यमा और अनामिका से ललाट, अँगूठा और अनामिका से नेत्र, हाथ की सम्पूर्ण संधियों से मस्तक, ओठ, मध्यमा से पार्श्व, अँगूठा से कान, कनिष्ठा और अँगूठा से नासा छिद्र, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से मुख और कपोल, अनामिका से दाँत और जीभ, कनिष्ठा और अनामिका से पीठ, अँगूठा, मध्यमा अनामिका और कनिष्ठा से नाभि से जठर और हथेली से हृदय का स्पर्श करने से मातृका मुदाएँ बनती हैं।

न्यास की विशेषता

प्रायः हाथ से स्पर्श से न्यास किया जाता है, किन्तु गौतम तन्त्र के मत से स्पर्श करने की अपेक्षा मन में ध्यान करना चाहिए अथवा पुष्प से, अँगूठा और अनामिका से अंगों से स्पर्श कर न्यास करना चाहिए।

देवोपासना मुद्रा

देवताओं की उपासना में आवाहन, संस्थापन, सन्निधापन आदि जो उपचार हैं, उन सब की अलग-अलग मुद्राएँ होती हैं; जैसे—

१. दोनों हाथों की अनामिका अँगुलियों के मूल में अँगूठा मिली हुई अंजलि को दो बार ऊँची करके नीचे लाने से **आवाहनी मुद्रा** बनती है।

२. और उस अंजलि को उलट देने से **स्थापनी मुद्रा** बनती है।

३. दोनों हाथ की मुट्ठी मिलाकर अँगूठा सीधा करने से **सन्निधापिनी मुद्रा** बनती है।

४. दोनों मुट्ठियों में अँगूठा दबाने से **सन्निरोधनी मुद्रा** बनती है।

५. दोनों मुट्ठियाँ ऊँची करने से **सम्मुखीकरण मुद्रा** बनती है।

६. बाएँ हाथ की तर्जनी को उलटी और दाएँ हाथ को तर्जनी को सीधी रखकर अधोमुख फिराने से **अवगुंठिनी मुद्रा** बनती है।

७. दोनों हथेलियों को मिलाकर दाहिनी अनामिका को बाईं कनिष्ठा से, बाईं अनामिका को दाहिनी कनिष्ठा से, दाहिनी मध्यमा को बाईं तर्जनी से, बाईं मध्यमा को दाहिनी तर्जनी से आक्रान्त (उलट-पुलट) करे तो **धेनु मुद्रा** बनती है।

तन्त्र साधना : पथ और उद्देश्य

तन्त्र-साधना तलवार की धार है। कुलार्णव-तन्त्र का कथन है कि ''कृपाण की तीक्ष्ण धार पर तो चला जा सकता है, व्याघ्र को गले लगाया जा सकता है, फणिधर नाग के फन पर हस्तक्षेप किया जा सकता है, किन्तु तन्त्र की साधना इन सबसे कठिन है–

कृपाणधारागमनाद् व्याघ्रकण्ठावलम्बनात्।
भुजङ्गधराणान्नूनमशक्यं कुलसाधनम्।।

फिर इतनी दुष्कर साधना की ओर प्रवृत्त होने में कौन-सा आकर्षण है, इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए रुद्रयामल तन्त्र कहता है कि ''तंत्र की साधना करने से साधक को भोग और मोक्ष दोनों करतलगत हो जाते हैं–**भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।''**

तांत्रिक-साधना में वैराग्य या संन्यास लेकर घर-गृहस्थी छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए साधक साधना का चरम लक्ष्य-मोक्ष प्राप्त कर सकता है। तांत्रिक-साधना का पथ बहुत ही अगम, दुरूह और कण्टकाकीर्ण होता है। इस अगम-पथ को सुगम बनाने के लिए ही तन्त्र-साधना में सद्गुरु की प्रधानता स्वीकार की गई है। तन्त्र की साधना अमृत का अनुसन्धान करती है। सद्गुरु साधक को अनुसन्धान की प्रक्रिया बताता है, उसका निर्देशन प्राप्त कर साधक स्वयं 'शिव' बन जाता है।

तांत्रिक-साधना में वर्णभेद, धर्मभेद आदि कुछ भी नहीं है। सभी मनुष्य एक परमशक्ति माँ की सन्तान है, न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा है। प्रत्येक व्यक्ति को

तन्त्रशास्त्र का अध्ययन करने और तांत्रिक-साधना करने की पूरी स्वतन्त्रता है। इतनी उदारता और इतना अधिकार प्राप्त होने पर भी तांत्रिक साधना में अधिकारी साधकों की बहुत कमी रहती है। इसका कारण गान्धर्व तन्त्रशास्त्र बतलाता है कि ''देवता बनकर देवता की उपासना करनी चाहिए अदेव बनकर नहीं।''

'देव एव यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्'

तात्पर्य यह है कि साधक को पहले अन्तर्बाह्य-शुद्धि करके दिव्य भाव, दिव्य गुण सम्पन्न बनना पड़ता है। यह सर्व साधारण के लिए सम्भव नहीं होता है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तान्त्रिकी साधना की अभिव्याप्ति है। तन्त्र-साधना का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि समाज, राष्ट्र और अखिल विश्व के लिए है। तांत्रिक साधना के अन्तर्गत रासायनिक क्रियाओं द्वारा धातुओं को बदल देने, नवीन कल्पित रत्नों के निर्माण करने, और अन्नवृद्धि-कारक, पुरुषार्थ वृद्धि कर आयु-वृद्धि के भी अनेक प्रयोग हैं। शत्रु-राष्ट्र पर विजय प्राप्त कराने तथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि, उत्पात, महामारी, महर्घता आदि के निवारण के लिए तान्त्रिक साधनाएँ अमोघ सिद्ध हुई हैं।

साधना के चार योग होते हैं—**मंत्रयोग, हठयोग, राजयोग** और **लययोग**। तान्त्रिक साधना में इन चारों योगों का उपयोग किया जाता है। मन्त्रयोग में किसी देव प्रतिमा का, हठयोग में ज्योति का, राजयोग में अद्वैत ब्रह्म का और लययोग में बिन्दु का ध्यान किया जाता है। अपने इष्टदेव में लीन हो जाना ही तान्त्रिक साधना का चरम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की सिद्धि उक्त चार योगों द्वारा की जा सकती है, किन्तु लययोग में सुगमतापूर्वक लक्ष्य सिद्धि प्राप्त होती है। राजयोग की कोई साधना नहीं होती है, वह एक अवस्था विशेष है। लययोग की साधना के द्वारा जब साधक अपने इष्टदेव में लय हो जाता है, तब वह अद्वैत ब्रह्म में रमण करता है। राजयोग की यही सिद्धावस्था है। साधक जिस देवता की साधना करता है, साधना सिद्ध होने पर वह उसी देवता का स्परूप बन जाता है।

शाक्त-तन्त्र दर्शन के अनुसार साधनावस्था को द्वैत और सिद्धावस्था को अद्वैत माना गया है। द्वैत (शिव और शक्ति) को अद्वैत रूप में अनुभव कर तद्रूप हो जाना ही तान्त्रिक साधना का उद्देश्य है।

तान्त्रिक साधना-पथ

तन्त्र मुख्यतया तीन भागों में विभक्त है—**कादि, हादि** और **कहादि**। इन्हें तान्त्रिक भाषा में कूटत्रय कहते हैं। जो तन्त्र आदि महाशक्ति आद्या-महाकाली के विषय का प्रतिपादन करता है वह **कादि** है, जो श्री विद्या के रहस्य का प्रतिपादन

करता है वह **हादि** है और जो तन्त्र द्वितीया महाविद्या तारा का रहस्य प्रतिपादित करता है वह **कहादि** है।

कादि, हादि और कहादि तन्त्र-साधना क्षेत्र में मत मान लिए गए हैं, तदनुसार कादिमत, हादिमत और कहादिमत के अलग-अलग मन्त्र और यन्त्र विभक्त कर दिए गए हैं। उन मन्त्रों और यन्त्रों की साधनाएँ भी अपने-अपने मत के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं। जैसे कादि मत (महाकाली) से सम्बन्धित यन्त्र केवल शक्ति-त्रिकोणों से बनते हैं, हादि मत (श्री विद्या) से सम्बन्धित यन्त्र शिव-शक्ति त्रिकोणों से बनते हैं और कहादि मत (तारा) से सम्बन्धित यन्त्र उभयात्मक होते हैं अर्थात् शक्ति-त्रिकोणों और शिव-शक्ति-त्रिकोणों का मिश्रण इन यन्त्रों की रचना में होता है।

सम्प्रदाय-भेद से तान्त्रिक साधना-'शिव', 'शाक्त', वैष्णव', 'सौर' और 'गाणपत्य' भेद से पाँच प्रकार की है। शिव की साधना करने वाला सम्प्रदाय शैव, शक्ति की साधना करने वाला सम्प्रदाय शाक्त, विष्णु की साधना करने वाला सम्प्रदाय वैष्णव, सूर्य की साधना करने वाला सम्प्रदाय सौर और गणपति की साधना करने वाला सम्प्रदाय गाणपत्य कहलाता है।

तन्त्रों में सम्प्रदाय-भेद, आम्नाय-भेद, महाविद्या-भेद होने से विभिन्न तन्त्रशास्त्र और विभिन्न तान्त्रिक साधनाएँ हैं। इन शास्त्रों-ग्रंथों की गणना संभव नहीं है। शाक्त सम्प्रदाय में ही ज्ञात ग्रंथ, उपलब्ध तान्त्रिक सामग्री सैकड़ों-हजारों की संख्या से अधिक हैं। कालपर्याय-मार्ग से शाक्त तन्त्र ६४ हैं, उपतन्त्र ३२१ हैं, संहिताएँ ३० हैं, चूड़ामणि १०० हैं, अर्णव ९ हैं, यामल ८ हैं। इनके अतिरिक्त डामरतन्त्र, उड्डामर तन्त्र, सूक्त तन्त्र, कामधेनु तन्त्र, सद्भाव तन्त्र, उज्ज्वलोड्डीश तन्त्र, रावण तन्त्र, कल्पानाद तन्त्र, कक्षपुटी तन्त्र, विभीषणी तन्त्र, उद्दालाप तन्त्र आदि हजारों-लाखों की संख्या में है। यदि यह कहा जाए कि तन्त्र शास्त्र किनारारहित सागर है जो अत्युक्ति न होगी।

विविध प्रकार के ये तन्त्र अधिकारी-भेद से भिन्न-भिन्न कोटि में नियोजित होते हैं। 'यान', 'काल' आदि भिन्न-भिन्न पर्यायों से इनकी गणना अलग-अलग है, इसलिए कोई भी यह कहने का दावा नहीं कर सकता कि तन्त्र विद्या केवल इतनी ही है।

तान्त्रिक-साधना में मन्त्र-यन्त्र, अन्तर्याग, बाह्य पूजन की तो साधनाएँ हैं, इन सबमें परस्पर विलक्षण सामंजस्य है। यह सामंजस्य तभी समझा जा सकता है जब तन्त्र के चारों महावाक्यों का पूर्णरूप से चिन्तन किया जाए। चारों महावाक्य निम्नांकित रूप से मन्त्र का सामंजस्य प्रकट करते हैं—

१. परा – पश्यन्ती – मध्यमा – बैखरी।

२. स्पन्दन – मात्रा – कम्प – अक्षर।

३. विश्व – तेजस् – प्राज्ञ – पुरुष।

४. जाग्रत – स्वप्न – सुषुप्ति – तुरीय।

५. चतुरस्र – वृत्त – त्रिकोण – बिन्दु

६. कामरूप – जालन्धर – पूर्णशैल – उड्याण।

७. स्थूल – सूक्ष्म – कारण – महाकरण।

८. अग्नि मण्डल – सूर्य – सोम – परतंत्त्व।

तान्त्रिक साधना में मुख्य रूप से उपर्युक्त यही भूमिकाएँ महत्त्व रखती हैं और इन भूमिकाओं का रहस्य समझने के लिए पूर्ण महादीक्षा के महावाक्य सहायक होते हैं। तान्त्रिक-साधना में दीक्षा की आवश्यकता साधक को विशुद्ध, अम्लान बनाने के लिए है। दीक्षारूपी अग्नि कुण्डलिनी के जाग्रत होने से साधक के आर्णवबल, मायामल विनष्ट हो जाते हैं, कर्ममल समाप्त हो जाता है और वह शिवतत्त्वमय बन जाता है। इसलिए तन्त्र-साधना में दीक्षा और अभिषेक अनिवार्य संस्कार माने गए हैं।

दीक्षा, अभिषेक, भूत शुद्धि, तत्त्व शुद्धि प्रत्येक तान्त्रिक साधना के प्रारम्भ का ऐसा विधान है, जो विज्ञान-सम्मत है। भावना और क्रिया द्वारा साधक का अन्त-बाह्य निर्मल हो जाना ही इन विधानों का मुख्य उद्देश्य है। निर्मलता प्राप्त होने पर साधक को सहज अवस्था प्राप्त होती है और सहज अवस्था प्राप्त होने पर शक्ति-बोध होता है। जो वेदान्तियों का परब्रह्म है, शैवों का शिव है, वैष्णवों का विष्णु है, इस्लाम का अल्लाह है, क्रिस्तान का स्वर्ग-पिता है, बौद्धों का निर्वाण है, जो सभी धर्म का सर्वशक्तिमान ईश्वर है, वही पराशक्ति महाशक्ति है, वही महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती है, वही दुर्गा है, त्रिपुरसुन्दरी है, ललिता है और वही मूल-प्रकृति, चित् शक्ति है।

तान्त्रिक-साधना अत्यधिक सिद्धियों को देने वाली है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। किन्तु यह साधना तभी सिद्धि, सफलता प्रदान करती है जब साधक पवित्रता, नम्रता, उदारता, श्रद्धा आदि गुणों से सम्पन्न होकर किसी गुरु के निर्देशन में अभ्यास करे। यदि ये गुण साधक में न हों तो वह प्राप्त सिद्धि, शक्ति का दुरुपयोग करता है। ऐन्द्रजालिक चमत्कार, जादूगरी तन्त्र-साधना के अन्तर्गत नहीं है। तन्त्र एक गुप्त विद्या है, जो पुस्तकें पढ़कर नहीं, आचार्यों और गुरुओं के समीप जाने पर प्राप्त होती है।

पंचभूतों की साधना

मन की दुर्बलता को मिटाकर उसे शिवसंकल्पमय बनाने तथा चिन्मयत्व प्राप्त करने के लिए पंचभूतों की साधना की जाती है। मन ही मनुष्य को वासनाओं से बाँधता है और मन ही उसे मुक्त कराता है, इसलिए किसी भी प्रकार की सिद्धि-साधना प्रारम्भ करने से पूर्व मन की दुर्बलता मिटाकर उसे सशक्त, संयमित बनाने की आवश्यकता अपेक्षित है। यदि मन दुर्बल रहा तो कोई भी साधना सफल नहीं हुआ करती है। मन जो चिन्मय है, जब तक अपने चिन्मयत्व का अनुभव नहीं कर लेता है, तब तक सुखी और शान्त नहीं हो सकता। इसलिए भावना की, अभ्यास की, और साधना की आवश्यकता होती है।

मन को शान्त, सुस्थिर, संयमित बनाने के लिए शास्त्रों ने, योगियों ने सन्तों ने अनेकों प्रकार की साधनाएँ बताई हैं, उनमें एक महत्त्वपूर्ण साधना पंचभूतों की धारणा है। इस साधना से मन की हीनता और अल्पता समाप्त होकर मन अपने असली चिन्मय स्वरूप को प्राप्त करता है। यह एक ऐसी साधना है कि इसके मार्ग में अनेक सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं।

पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंचभूत हैं, इन पंचभूतों की धारणा का अर्थ है—क्रमशः चित्त को इन्हीं में बाँधना। पंचभूतों की धारणा की साधना इस प्रकार की जाती है—

१. पृथिवी तत्त्व की धारणा—मनुष्य के शरीर में नीचे पैरों से लेकर जानु पर्यन्त पृथिवी-मण्डल है। उसका रंग हरताल की तरह पीला है और स्थिति चतुष्कोण है। उसके अधिष्ठातृदेव ब्रह्मा हैं और उसका बीज 'लं' है। साधक को चाहिए कि वह यह भावना करे कि पाँचों तत्त्व जो इन्द्रियों से बाहर दिखाई दे रहे हैं, वे सब-के-सब मेरे शरीर के अन्दर हैं। इस भावना को ही धारणा कहते हैं। ऐसी धारणा लगातार करते रहने से यह अनुभव होने लगता है कि मैं एक शरीर में बँधा हुआ नहीं हूँ बल्कि मैं सम्पूर्ण पृथिवी हूँ। समस्त नदी-नद मेरे शरीर की नस-नाड़ियाँ हैं और सम्पूर्ण जीवों के शरीर रोग अथवा आरोग्य के कीटाणु हैं। समस्त पार्थिव शरीर अपने ही अंग हैं। इस प्रकार पृथिवी तत्त्व की धारणा करने से शरीर निर्मल, आरोग्य बन जाता है। क़िसी प्रकार के रोग नहीं रह जाते हैं।

२. जल तत्त्व की धारणा—जानु से लेकर गुप्तेन्द्रिय पर्यन्त जल का स्थान है। जल-मण्डल शंख, कुन्द पुष्प या चन्द्रमा की भाँति श्वेत वर्ण है। इसका बीज अमृतमय 'वं' ह। इसके अधिष्ठातृदेव चतुर्भुजधारी भगवान् नारायण (विष्णु) हैं। जल-मण्डल के इस स्वरूप को चिन्तन करते हुए साधक प्राणों के साथ उसको

हृदय में ले आए और पाँच घड़ी तक चितन्न करता रहे। चिन्तन करते समय ऐसा अनुभव होता है कि मैं जल तत्त्व हूँ। पृथिवी का कण-कण मुझसे स्निग्ध हो रहा है। अमृत और विष दोनों मेरे ही स्वरूप हैं। पुष्पों की कोमलता और चट्टानों की दृढ़ता मेरे ही कारण है। पृथिवी मेरी परिणाम है, मैं ही पृथिवी के रूप में प्रकट हुआ हूँ। मुझमें ही नारायण का वास है। इस प्रकार जल तत्त्व का धारणा करने से अन्तःकरण के विकार दूर हो जाते हैं। अन्तःकरण स्वच्छ विशुद्ध बन जाता है और तीनों प्रकार के ताप्-सन्ताप मिट जाते हैं।

३. **अग्नि तत्त्व की धारणा**—गुप्त इन्द्रिय से लेकर हृदय पर्यन्त अग्नि-मण्डल है। यह त्रिकोण-आकार की है, वर्ण रक्त है। इसका मुख्य केन्द्र नाभि है और बीज 'रं' है। इसके अधिष्ठातृदेव रुद्र हैं। इस स्वरूप का चिन्तन करते हुए साधक अपने प्राणों को स्थिर करे, लगातार प्राणों के सहारे ऐसी धारणा करने से यह अनुभव होने लगता है कि मैं अग्नि हूँ। सम्पूर्ण पदार्थों का रंग-रूप, जो आँखों से देखा जाता है, वह मैं हूँ। जो भी चमक, दमक, सुन्दरता और आकर्षण है, वह सब मेरे ही कारण है। सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत के रूप में मैं ही प्रकाशित होता और चमकता हूँ। सबके नेत्रों में प्रकट होकर मैं ही देखता हूँ। समस्त देवताओं के शरीर मेरे द्वारा ही बने हैं। जब पाँच घड़ी तक अग्नि-धारणा का अभ्यास हो जाता है तो अग्नि तत्त्व सिद्ध होता है। इसकी साधना से अग्नि का भय नहीं रहता है। प्रदीप्त अग्नि में झोंक देने से ही वह साधक जलता नहीं है।

४. **वायु तत्त्व की धारणा**—हृदय से लेकर भौंहों तक वायु-मण्डल रहता है। इसका वर्ण काला है। यह अमूर्त्त तत्त्व शक्ति रूप है। इसका बीज 'यं' है। अधिष्ठातृ देव ईश्वर हैं। प्राणों को स्थिर कर हृदय में वायु तत्त्व की धारणा करे। इसकी धारणा जब पाँच घड़ी तक सध जाती है तो ऐसा अनुभव होने लगता है कि मैं वायु हूँ। अग्नि मेरा ही विकास है। अनन्त आकाश में जो भी ग्रह-नक्षत्र हैं उन सबको मैंने धारण कर रखा है। हर वस्तु में जो आकर्षण-विकर्षण-शक्ति है वह मैं ही हूँ। सब की गतियाँ मेरी कलाएँ हैं। श्वासोच्छ्वास बनकर मैं ही सब को जीवन देता हूँ। मेरी गति अबाध है। इस प्रकार धारणा करने से वायु तत्त्व की धारणा जब पाँच घड़ी तक होने लगती है तो साधक निर्द्वन्द्व भाव से आकाश में विचरण करने लगता है। वायुरहित स्थान में भी वह जीवित रह सकता है। वह न जल से गलता है, न आग से जलता है और न वायु से सूखता है। बुढ़ाई और मृत्यु दोनों को वह जीत लेता है।

५. **आकाश तत्त्व की धारणा**—भौंहों के बीच से मूर्द्धा पर्यन्त आकाश-मण्डल है। समुद्र के जल की भाँति इसका रंग नीला है। इसका बीज 'हं' है और अधिष्ठातृ

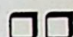
देव सदाशिव हैं, जिनके माथे पर अर्द्धचन्द्र विराजमान है, जिनके पाँच मुख, दस हाथ और तीन नेत्र हैं।

प्राणों को स्थिर कर साधक जब आकाश तत्त्व के इस स्वरूप की धारणा नित्य करता है और जब यह धारणा पाँच घड़ी तक स्थिर रहने लगती है तो उसे ऐसा अनुभव होता है कि मैं आकाश हूँ, मैं अनन्त हूँ, देश-काल सब कुछ मेरे अन्दर है। मैं एक रस हूँ, न मेरे बाहर कुछ है और न भीतर, मैं तन्मात्र हूँ। इस तत्त्व की सिद्धि से साधक आवागमन से रहित होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

६. **धारणा क्रम**—साधक को चाहिए कि पहले पृथिवी-मण्डल का चिन्तन कर उसे जल-मण्डल में विलीन कर दे, फिर जल-मण्डल को अग्नि-मण्डल में और वायु-मण्डल को आकाश में विलीन कर दे।

प्रत्येक मण्डल का चिन्तन करते हुए प्रणव (ॐ) के द्वारा तीन-तीन प्राणायाम करके हर कार्य-मण्डल को कारण-मण्ड़ल मे यह कहते हुए हवन करे–'ॐ ... मण्डलं ......मण्डले जुहोमि स्वाहा।'

जिस मण्डल का जिस मण्डल में हवन करना है तो उन मण्डलों का नाम लेकर आहुति छोड़नी चाहिए।



६/ दशमहाविद्या का रहस्य-विज्ञान

तन्त्रशास्त्र में दशमहाविद्याएँ साधना के क्षेत्र में परमोच्च स्थान तो रखती ही हैं साथ ही सृष्टितत्त्वविज्ञान, पदार्थविज्ञान भी इन विद्याओं में निहित हैं। दशमहाविद्याओं का रहस्य गहन, गंभीर और निगूढ़ है। देवियों के रूप में दशमहाविद्या क्रम से १. काली, २. तारा, ३. षोडशी, ४. भुवनेश्वरी, ५. भैरवी, ६. छिन्नमस्ता, ७. धूमावती, ८. बगलामुखी, ९. मातङ्गी और १०. कमलात्मिका प्रसिद्ध हैं और इनकी उत्पत्तिकथा भी नारदपांचरात्र, स्वतन्त्र तन्त्र, कालिका-पुराण, देवीभागवत आदि तान्त्रिक, पौराणिक ग्रन्थों में मिलती है। किन्तु जब हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दशमहाविद्याओं के रहस्य पर विचार करते हैं तो वैदिक वाङ्मय के आधार पर विस्तृत व्यापक रहस्य बोध होता है।

विद्या– आगम का आगमन निगम से होने के कारण आगम के सम्पूर्ण सिद्धान्त निगम पर निर्भर हैं। निगम में 'त्रयीब्रह्म', 'त्रयीविद्या' और 'वेदत्रयी' रूप से ब्रह्म, विद्या और वेद को परस्पर अभिन्न माना गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से तीनों अभिन्न हैं, किन्तु भौतिक दृष्टि से तीनों भिन्न हैं। विश्वसृष्टि में वेद, ब्रह्म और विद्या - इन तीनों तत्त्वों का ही आधिपत्य है। शब्द ब्रह्म वेद तत्त्व है, विषय ब्रह्म तत्त्व है और संस्कार ब्रह्म विद्या तत्त्व है। शब्द को सुनकर भी बोध होता है और पदार्थ को देखने पर भी ज्ञान होता है। शब्द सुनने से शब्दाकार - ज्ञान होता है, पदार्थ देखने से तदाकार-ज्ञान होता है, इसलिए शब्द विषय भेद से ज्ञान दो प्रकार का होता है। जो ज्ञान शब्द पर निर्भर होता है, उसे 'वेद' कहते हैं और जो ज्ञान विषयावच्छिन्न होता है उसे ब्रह्म कहते हैं। वेद और ब्रह्म के अतिरिक्त एक और ज्ञान होता है। शब्द सुनने से और विषय देखने से जो सामान्य ज्ञान होता है, वही आगे चलकर जब विशेष रूप में परिणत हो जाता है, तो उसे 'संस्कार' कहते हैं। शब्द और विषय दोनों ही सामान्य ज्ञान उत्पन्न कर विलीन हो जाते हैं, किन्तु वही सामान्य ज्ञान आगे चलकर जब अनुभव द्वारा विशेष भाव को प्राप्त करता हुआ आत्मा में अंकित हो जाता है तो दार्शनिक भाषा में उसे **'अनुभवाहित संस्कार'** कहते हैं। वैज्ञानिक परिभाषा में इसी को **'विद्या'** कहा जाता है। इसी से भविष्य का व्यवहार मार्ग चलता है।

जब तक संस्कार है तभी तक कोई स्व-स्वरूप में प्रतिष्ठित है और संस्कार का अभाव होने पर वह विश्वातीत है, मुक्त है। विश्व की सम्पूर्ण सत्ता संस्कार सत्ता पर टिकी हुई है। अतएव शब्द रूप वेद और विषयरूप ब्रह्म की अपेक्षा संस्काररूप विद्या ही विश्व की विधायिका है। उसी विद्या ज्ञान पर चितिक्रम में संस्कार पुट लगने से विश्व बनता है। जैसे हमारा विश्व हमारा संस्कार है, वैसे ही यह महाविश्व उसका संस्कार है। अतएव विश्व विद्यारूप है। संस्कारावच्छिन्न होता हुआ वह ज्ञान-मूर्ति विद्या है, शब्दावच्छिन्न होता हुआ वही वेद है और विषयावच्छिन्न बनकर वही ब्रह्म है। उपर्युक्त विश्लेषण से सिद्ध है कि सृष्टि का सम्बन्ध विद्या से है। निगम और आगम दोनों विश्व का निरूपण करते हैं। इसलिए ये दोनों विद्या नाम से प्रसिद्ध हुए। सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र, ओषधि, वनस्पति, धातु, रस, विष, कृमि, पशु, पक्षी मनुष्य आदि प्रत्येक पदार्थ एक-एक विद्या है, विश्व के अन्तर्गत ये सब क्षुद्र विद्याएँ हैं और सम्पूर्ण विश्वविद्या **महाविद्या** है। इसी को महाविश्वविद्या भी कहा जाता है। इस महाविद्या को ऋषियों ने दस भागों में बाँटा है। निगम में दस अवयव वाली विद्या **विराट् विद्या** के नाम से प्रख्यात है। आगमशास्त्र ने दशमहाविद्याओं के द्वारा विश्व कैसे उत्पन्न हुआ, उत्पन्न विश्व का क्या स्वरूप है, उस विश्व विद्या को समझने से क्या लाभ हैं, उनकी उपासना से क्या उपलब्धि होती है- इत्यादि प्रश्नों का समाधान किया है।

दशमहाविद्या की दश संख्या का रहस्य

विश्व की सृष्टि पुरुष और प्रकृति के समन्वय से हुई है। दर्शनशास्त्र उस पुरुष के 'काल' एवं 'यज्ञ' भेद से विवर्त मानता है। कालपुरुष व्यापक है, आदि है और यज्ञ पुरुष सादि है, सीमित है। व्यापक कालपुरुष का ही थोड़ा सा प्रदेश सीमित होकर यज्ञपुरुष कहलाता है। सृष्टि का प्रथम प्रवर्तक कालपुरुष है और कालपुरुष का आश्रय लेकर यज्ञपुरुष विश्वरचना में समर्थ होता है। यजुर्वेद और उपनिषदों के अनुसार उस महाकाल के उदर में अनन्त विश्व-चक्र घूम रहे हैं। यजुर्वेद में जिस तत्त्व को 'काल' कहा गया है। उपनिषद् उसे परात्पर कहती है। शतपथब्राह्मण परात्पर को सर्वमृत्युधन अमृतत्व कहता है। अमृतत्व सत्य है और मृत्युतत्त्व असत् है–

अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम् ।

- श० ब्रा० १०।५।२

तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्यबाह्यतः।

- शु० यजुर्वेद ४०।६

यजुर्वेद के इस कथन के अनुसार दोनों एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं। एक निरंजन, निर्गुण, शान्त, शाश्वत और अभय है, पूर्ण मृत्यु लक्षण है तो दूसरा साञ्जन, सगुण, अशान्त, अशाश्वत, सभय और स्वलक्षण है। वस्तुतः दोनों में से एक सत् है, उसका कभी विनाश नहीं होता तथा दूसरा असत् है और विनाश उसका स्वरूप है। तात्पर्य यह है कि सत्-असत् रूप अमृत-मृत्यु की समष्टि ही 'कालपुरुष' है। 'परात्पर' नाम से ख्यात यह विलक्षण तत्त्व 'कालपुरुष' ही है। इसी असीम परात्पर में प्रतिक्षण विलक्षण धर्म वाली माया की शक्ति का उदय होता रहता है। वही मायाबल उस असीम 'कालपुरुष' को ससीम बना देता है, जिसके प्रभाव से वह विश्वातीत, विश्व-कार और विश्व बन जाता है। जो शक्ति काल को यज्ञरूप में परिणत कर देती है, उसका नाम 'प्रकृति' है । इसी का समन्वय प्राप्त कर वह 'कालपुरुष' अपने कुछ एक प्रदेश से सीमित बनकर कामनाओं के चक्कर में फँस जाता है। एक-एक माया से एक-एक विश्व-चक्र उत्पन्न होता है। मायाबल अनन्त है, अतएव उसमें अनन्त विश्व-चक्र है। उसके रोम-रोम में ब्रह्माण्ड समाए हुए हैं। अनन्तविश्वाधिष्ठाता कालपुरुष उन सब पर शासन करता है। सात लोक चौदह भुवन सब 'कालपुरुष' से उत्पन्न हुए हैं। समस्त विश्व-चक्रों की उत्पत्ति उसी से हुई है।

अथर्व संहिता (१९।६।५३-५४) का कथन है कि 'तम' के तीन भेद हैं-

अनुपाख्य, निरुक्त और अनिरुक्त।

कालारंग, कोयला आदि पदार्थ निरुक्त तम हैं इसलिए कि इनका निर्वचन विश्लेषण भली-भाँति किया जा सकता है। आँख मूँदने पर छा जाने वाला अन्धकार और घोर अँधियारी रात का अन्धकार 'अनिरुक्त तम' है, क्योंकि इसका प्रत्यक्षीकरण तो होता है किन्तु निर्वचन नहीं है। 'निरुक्त' विश्वसत्ता है और 'अहः' काल है, सृष्टि है। 'अनिरुक्त' रात्रिकाल - प्रलय है। अहोरात्र ही समष्टि विश्व है - यह **'अनुपाख्य तम'** है, जो प्रलय काल में अनिरुक्त तम से ढका रहता है। इसी को वेद 'पुरुष' कहते हैं—

तम आसीत् तमसा गूव्ह्मग्रेऽप्रके
तं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छेनाभ्वपिहितं सदासीत्
तपसरस्ततन्महिना जायतैकम्।।

-ऋग्वेद १०।१२९।३

जो विश्वातीत अनुपाख्य तम है, वही 'कालपुरुष' है। यह विश्वभाव रूप है।

अतएव सत् रूप होने पर भी ज्ञान चक्षुओं से अतीत है, इसलिए ऋषियों ने उसे 'असत्' कहा है। यहाँ पर असत् का अर्थ अभाव नहीं बल्कि विश्वकाल में वह इससे विलक्षण किन्तु सत् है–

असदेवेदमग्र आसीत। तत् सदासीत्।

कथमसतः सञ्जायेत्। तत् समभवम्।।

तद् अण्डं निरवर्तत्।।

वही असत् किन्तु सत् कालपुरुष महामाया से घिर जाता है। वह अपरिमित है, वहाँ पर कोई अभाव नहीं, कोई कामना नहीं, वह आप्तकाम है, किन्तु उसी का माया प्रदेश जब सीमित हो जाता है तो वह आप्तकाम न रह कर कामनामय बन जाता है। उसकी कामना **'एकोऽहं बहुस्याम'** यही रूप है। मायाबल के अव्यवहित उत्तर में उसका हृदयबल (केन्द्र शक्ति) उत्पन्न होता है। उसके उत्पन्न होने पर वही रसबलात्मक तत्त्व कामनामय होकर 'मन' यह नाम धारण कर लेता है। कामना या इच्छा मन का व्यापार है। 'हृत्प्रतिष्ठंयदजिरं' (यजुर्वेद) के अनुसार मन हृदय में ही प्रतिष्ठित रहता है और 'कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्' (ऋग्वेद) के अनुसार सबसे पहले इस मन से विश्वरेत (शुक्ल) भूत कामना का उदय होता है। इसकी इस कामना से पंचन् क्रम से पहले वेद नाम के **'पुरंजन'** का प्रादुभार्व होता है। वेद चार प्रकार के हैं–ऋक्, यजुः, साम और अथर्व। त्रयीवेद अग्निवेद हैं और अथर्व सामवेद है। त्रयीवेद स्वायम्भुव ब्रह्म है और अथर्व पारमेष्ठ्यसुब्रह्म है। ब्रह्म आग्नेय होने से पुरुष है और सुब्रह्म सौम्य होने से स्त्री है। त्रयी ब्रह्म के मध्य पतित यजुः भाग में 'यज्जूदो' तत्त्व है। 'यत्' गति तत्त्व है। यह प्राण और वायु नाम से प्रसिद्ध है। 'जू' स्थिति तत्त्व है यही वाक् और आकाश नाम से प्रसिद्ध है। प्राण वाक् - ब्रह्माकाश रूप स्थिति गति तत्त्व की समष्टि यजुर्वेद है। प्राण रूप 'यत् भाग' से काम, तप से वाक् जू भाग से सर्वप्रथम जल उत्पन्न होता है। इसी की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण (६।१।३) में मिलती है–

सोऽपसृजत वाच एवं लोकात् वागेवमासृजत्।

त्रयी ब्रह्म के वाक् भाग से उत्पन्न इसी 'आप' तत्त्व का नाम अथर्ववेद है। युजुःरूप स्वायम्भुव का पसीना ही अथर्वरूप सुब्रह्म है (गोपथ ब्राह्मण १।१।१) शतपथ (१०।२।३।६।१) का वचन है–

अयमेवाकाशे जूः यदिदमन्तरिक्षं तदेतद्यजुर्वाद्युश्चान्तरिक्षंच यंच जूश्च तस्माद्यजूः तदेतद्यजुः ऋक्सामयोः प्रतिष्ठा। ऋचस्तमेवहतः।

इस प्रकार ऋक्, यजुः, साम 'यत्' और 'जू' भेद से अग्निवेद चतुष्कल हो

जाता है। दूसरा आपोमय सोम अथर्व है। भृगु और अंगिरा भेद से दो भागों में विभक्त है। **घन-तरल-विरल** – इन तीन अवस्थाओं के कारण भृगु आप, वायु और सोम इन तीन अवस्थाओं में परिणत हो जाता है। इस प्रकार आपोवेद **'षट्कल'** हो जाता है। भृगु-अंगिरा रूप आपोवेद के साथ चतुष्फल त्रयीवेद का समन्वय होता है–

आपो भृग्वङ्गिरो रूपमापो भ ग्वङ्गिरोऽयम्।
अन्तैरेते त्रयो वेदाः भृगुरङ्गिरसः श्रिताः।।

उक्त षट्कल सुब्रह्म सौम्य होने से स्त्री है और आग्नेय चतुष्कल त्रयी ब्रह्म पुरुष है। दोनों के मिलन से ब्रह्म-सुब्रह्मात्मक विराट् पुरुष का जन्म होता है। वह वेदमूर्ति पूर्ण पुरुष अपने आपको इन्हीं दो भागों में विभक्त कर विराट् को उत्पन्न करता–

द्विधा कृतात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां सं विराडमसृजत प्रभुः।।

दशाक्षर विराट्

शपतथ ब्राह्मण (१।१।२) में 'दशाक्षर वै विराट्' कह कर बताया गया है, कि ऋक्, साम, यत् - जू, आप, वायु, सोम, यम, अग्नि और आदित्य भेद से वह विराट् दशकल है, वह अक्षर प्रजापति वेद रूप में परिणत होकर दशकल बन जाता है। अग्नि-सोम रूप ब्रह्म-सुबह्म के मिलन से उत्पन्न होने वाला वह विराट् पुरुष 'यज्ञपुरुष' है। सृष्टिकर्त्ता दशाक्षर विराट् पुरुष का ही दूसरा नाम 'यज्ञपुरुष' है। इसी से सारी सृष्टि की उत्पत्ति होती है। इसलिए इसे 'प्रजापति' कहा जाता है। विश्वरूप विराट् प्रजापति दशावयव है, इसलिए इस प्राजापत्या विश्वविद्या को निगम - आगम के आधार पर दशावय माना जाना उपयुक्त है। इन्हीं को **दशहोता**, **दशाह** आदि नामों से पुकारा जाता है–

यज्ञो वै दशहोता। (तै० ब्रा० २।२।१।६)
दशाक्षरा वै विराट्। (श० ब्रा० १।१।१)
यज्ञ उ वै प्रजापतिः। (कौ० ब्रा० १०।१)
प्रजापतिर्वै दशहोता। (तै० ब्रा० ३।२।६।१)
अन्तो वा एष यज्ञस्य यद्दशममाह। (कौ० ब्रा० २।२।६।१)
प्रतिष्ठा दशमहः। (कौ० ब्रा० २।७।२)

—

एतद्वै कृत्स्नमन्नाद्यं यद् विराट्। (कौ० ब्रा० १४।३)

विराट् विरमणाद् विराजनाद् वा। (३।१२)

'न्यून्नाद् वा इमाः प्रजाः प्रजायन्ते'—शतपथ (११।१।२।४) ब्राह्मण के इस वाक्य के अनुसार न्यून विराट् से ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है। तात्पर्य यह है कि पुरुष और स्त्री के संयोग से सृष्टि होती है, न कि पुरुष-पुरुष या नारी-नारी के मिलन से। पुरुष आग्नेय है और स्त्री सौम्य है, इसीलिए सौम्य होने के कारण स्त्री आग्नेय पुरुष की भोग्या होती है। भोक्ता भोग्या से प्रबल होता है, इसलिए स्त्री पुरुष की अपेक्षा न्यून होती है। इस न्यून संबंध से ही प्रजाओं की उत्पत्ति होती है। निष्कर्ष यह निकला कि दशाक्षर पूर्ण विराट् से सृष्टि नहीं होती है, नवाक्षर के न्यून विराट् से ही सृष्टि होती है। एक अक्षर कम हो जाने पर भी विराट् का विराटत्व अक्षत बना रहता है—

'न वै एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्।'

सर्वप्रथम कुछ भी नहीं था, केवल शून्य बिन्दु मात्र था। बिन्दु का अर्थ पूर्ण है। यह बिन्दु उन ब्रह्माक्षरों का पहला रूप है, जिनसे नव अक्षर का विराट् उत्पन्न होता है। पहले केवल शून्य था, उस शून्य से १-२-३-४-५-६-७-८-९ ये नौ संख्याएँ विकसित हुई हैं। नव पर संख्या समाप्त हो जाती है। ९ पर संख्या समाप्त होने पर शून्य के साथ १ का सम्बन्ध जोड़ने से १० संख्या बनती है। पुनः एक-एक संख्या का सम्बन्ध जोड़ने से क्रमशः ११,१२ आदि संख्याएँ बनती हैं। ९ पर संख्या समाप्त होने के कारण ९ का संकलन-फल समान आता है। १-२-३ आदि किसी संख्या का संकलन-फल समान नहीं आता, अन्ततः ९ ही शेष रह जाता है, दसवाँ वही महत्त्वपूर्ण है। वही महाकाल नाम का विश्वातीत परात्पर है। उस शून्य रूप पूर्ण पुरुष के उदर में नवाँ अक्षर विराट् रूप यज्ञ पुरुष समाया हुआ है। उसी पूर्ण रूप को दसवाँ प्रतिष्ठा नाम का अहः बतलाया गया है। इसी पूर्ण ब्रह्म का निरूपण श्रुति इस प्रकार करती है—

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्।
यस्मान्नणीयो न ज्यायोऽस्तिकिञ्चित्।।
वृक्ष इवस्तब्धो दिवि तिष्टत्येक-
स्तेनेदं पूर्ण पुरुषेण सर्वम्।।

दस (१०) संख्या में एक अंक स्वतंत्र विभाग है, वही बिन्दु है और ९ का जो विभाग है, वही विराट् है। यही दश संख्या का वैज्ञानिक रहस्य है।

इस वैज्ञानिक विवेचन से सिद्ध है, कि वेदोक्त सृष्टि-विद्या दस भागों में विभक्त है। एक ही 'पुरुष' दस पुरुष बन रहा है। पुरुष प्रकृति से सम्बद्ध है, इसलिए निगम-मूलक आगम शास्त्र सृष्टि विद्यारूपा इन दश शक्तियों का निरूपण करता है। वही शक्तिप्रपंच दशमहाविद्या नाम से ख्यात है।

दशमहाविद्याओं के स्वरूप इस प्रकार हैं—

१. **महाकाल पुरुष की शक्ति महाकाली—**यह लिखा जा चुका है कि सर्वप्रथम जब कुछ न था, उस समय केवल अनुपाख्य तम था। वह अनुपाख्यतम—अलक्षण अप्रज्ञात, अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य तत्त्व है। यही तत्त्व **महाकाल** है और उसकी शक्ति महाकाली है। यही दस महाविद्याओं की पहली विद्या का रूप है। सृष्टि से पहले इसी महाकाली का—प्रथम महाविद्या का साम्राज्य रहता है। आगमशास्त्र में इसे ही प्रथम आद्या कहा गया है। रात्रि, प्रलय का प्रतीक है। रात्रि का अर्धरात्रि—घोरतम महानिशा ही महाकाली है। रात के अन्धकार को ऋषियों ने ८४ भागों में विभक्त किया है। ये विभाग ही महाकाली के ८४ अवान्तर विभाग हैं। महाकाली के ८४ स्वरूप एक-दूसरे से भिन्न हैं। रात्रि के इन्हीं स्वरूपों को समझने के लिए ऋषियों ने **निदान विद्या** के आधार पर मूर्तियों की कल्पना की है। निदान का दूसरा नाम प्रतीक है। यह निदान विद्या—प्रतीक विद्या अब तन्त्र ग्रन्थों में उल्लिखित मात्र मिलती है। इस विद्या का प्रायः लोप हो गया है। महाकाली की सभी शक्तियाँ अचिन्त्य हैं, निर्गुण हैं, प्रत्यक्ष से परे हैं, इसलिए उनके स्वरूप - ज्ञान के लिए एवं उनकी उपासना के लिए ऋषियों ने मूर्तियों की कल्पना की है। निदान विद्या का लोप हो जाने के कारण आज मूर्तियों के रचना - वैचित्र्य पर सन्देह किया जा रहा है। कुछ लोग इस रचना-विज्ञान को बहशीपन भी कहने का साहस करते हैं, कुछ लोग मूर्तियों और उनकी उपासना को मूर्खता, अज्ञानता का द्योतक मानते हैं।

वस्तुतः दश महाविद्याओं के स्वरूप का सम्बन्ध 'निदान विद्या' से है। काली तन्त्र में महाकाली का स्वरूप यह बताया गया है—

''महाकाली शव पर आरूढ़ हैं, उनकी आकृति भयावनी है, उनकी दाढ़ें अति तीक्ष्ण और भयावह हैं, महाभय देने वाली महामाया महाकाली अट्टहास कर रही हैं। उनके चार हाथ हैं। एक हाथ में खड्ग है, दूसरे हाथ में सद्यः छिन्न मुण्ड है, तीसरा हाथ अभयमुद्रा में है और चौथा हाथ वरमुद्रा में है। उनकी लपलपाती हुई लाल जिह्वा बाहर निकली हुई है। महाकाली निर्वस्त्रा- सर्वथा नग्न हैं। महाश्मशान भूमि उनका आवास है।''

महाकाली के इस भयानक स्वरूप का रहस्य 'निदान विद्या' के आधार पर इस प्रकार समझा जा सकता है—

महाकाली नाम की शक्ति प्रलय-रात्रि के मध्यकाल से सम्बन्ध रखती है। विश्वातीत परात्पर नाम से प्रसिद्ध महाकाल की शक्ति महाकाली का विकास विश्व से पहले का है। विश्व का संहार करने वाली कालरात्रि महाकाली है। महाकाली की प्रतिष्ठा सृष्टिकाल नहीं बल्कि प्रलयकाल है। इस महाशक्ति का अवलम्बन शिवरूप विश्व नहीं बल्कि शवरूप है, जिस पर वह आरूढ़ है। सृष्टि के इस रहस्य को ही व्यक्त करने के लिए महाकाली को शवारूढ़ कहा गया है। तात्पर्य यह कि प्रलयकाल में विश्व शव के समान हो जाता है, उस पर अकेली आद्याशक्ति महाकाली खड़ी रहती है। वह आद्याशक्ति अनुपाख्यतमरूपा विनाश करने वाली है। संहार करने के कारण वह भयावनी है और अपनी विजय पर उन्मत्त होकर अट्टहास कर रही है।

महाकाली की चार भुजाओं और उनके आयुधों का रहस्यबोध इस प्रकार है– खगोल विज्ञान के मत से प्रत्येक गोलवृत्त में ३६०° अंश माने जाते हैं। ९०°-९०° अंश की गणना से उसके चार विभाग किए जाते हैं। ये विभाग ही उस गोलवृत्त की चार भुजाएँ मानी जाती हैं। वेदों में इन्हें **ख-स्वस्तिक** कहा गया है। खगोल का यही स्वस्तिक इन्द्र (चित्रा नक्षत्र), पूषा (रेवती नक्षत्र), ताक्ष्र्य (श्रवण नक्षत्र), बृहस्पति (लुब्धक नक्षत्र) है। अर्थात् इन चारों का इन नक्षत्रों से सम्बन्ध रहता है। चित्रा के श्रवण १८०° अंश पर है, इसी तरह शेष सभी की स्थिति है। यजुर्वेद के निम्नांकित मन्त्र में स्वस्तिक की स्थिति का बोध इस प्रकार कराया गया हैः-

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु।।

इन्द्र, पूषा, ताक्ष्र्य और बृहस्पति—ये चारों महाकाश की चार भुजाएँ जो पूर्ववृत्त रूप में हैं-महाकाली की चार भुजाएँ हैं। खड्ग संहार का प्रतीक है, सद्यः छिन्न मस्तक अहंकार नाश का प्रतीक है। महाकाली के एक हाथ की अभय मुद्रा है और दूसरे हाथ की वर मुद्रा है। साधकों की मुख्यतया तीन प्रकार की कामनाएँ होती हैं—एक वर्ग पार्थिव सुख चाहता है। एक वर्ग स्वर्ग सुख चाहता है और एक वर्ग मोक्ष चाहता है। पार्थिव सुख में साधक के लिए सबसे बड़ा बाधक भय होता है। इस भय को दूर करने के प्रयोजन से महाकाली अभय मुद्रा धारण किए हुए हैं। स्वर्ग की कामना रखने वाले साधक को भगवती वरदान देने के लिए वरमुद्रा धारण करती हैं। और जो साधक मोक्ष चाहता है, उसे मोक्ष-प्राप्ति के प्रबल विघ्न अहंकार का नाश कर भगवती मुक्त कर देती हैं।

महाकाली मुण्डमाला धारण किए हैं। इस रहस्य को इस तरह खोला जा सकता है–

विश्व-सुख क्षणिक है, अतः वह दुःख रूप है। महाकाली परम शिवरूपा हैं इसलिए उनकी आराधना से शाश्वत सुख मिलता है। जो महाकाली जीवित दशा में सबका आधार बनी रहती है, वही प्रलयकाल में भी सबका आधार बनती है। विनष्ट विश्व के विनष्ट प्राणियों का निर्जीव भाग भी महाकाली पर स्थित रहता है– इसी परायणभाव का निदान नरमुण्डों की माला है। प्रलय में सब का नाश हो जाता है और पुनः सृष्टि होती है, उस सृष्टि को पुनः आरम्भ करने के लिए जगन्माता संसार के बीज को अपने गले में धारण कर लेती है– यह संसार बीज ही मुण्डमाला का प्रतीक है।

भगवती महाकाली का स्वरूप निर्वस्त्रा एकदम नग्न बताया गया है। इस नग्नता का रहस्य प्रतीकों के अध्ययन से समझा जा सकता है– समस्त विश्व ब्रह्माण्ड महाशक्ति काली का आवरण रूप है- 'तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्रविशत्'। वह विश्व की रचना कर उसी में प्रविष्ट हो जाती है, इसलिए विश्व महाकाली का आवरण वस्त्र हो जाता है, किन्तु जब वह विश्व का संहार कर चुकती है तो वह स्व-स्वरूप से उल्वण हो जाती है, उस अवस्था में वह निरावरण हो जाती है- केवल दिशाएँ ही उसके लिए वस्त्र बनती हैं। वह पूर्ण दिगम्बरा बन जाती है- यही नग्न भाव का निदान है। महाशक्ति काली महाश्मशान का वास करती है, इसका निदान यह है कि विश्व का प्रलयकाल ही इस महाशक्ति का विकास-काल है। समस्त विश्व जब श्मशान बन जाता है तो इस तमोमयी महाकाली का विकास होता है। महाकाली के स्वरूप तत्त्व का यह चिन्तन निदान विद्या के अन्तर्गत है।

२. **अक्षोभ्य पुरुष की महाशक्ति तारा–** 'तारा' दूसरी महाविद्या है। प्रथम महाविद्या महाकाली का आधिपत्य रात बारह बजे से सूर्योदय तक रहता है। इसके बाद तारा का साम्राज्य होता है। तारा महाविद्या का रहस्यबोध कराने वाली हिरण्यगर्भ विद्या है। इस विद्या के अनुसार वेदों ने सम्पूर्ण विश्व का आधार सूर्य को माना है। सौर मण्डल आग्नेय है, इसलिए वेदों में इसे हिरण्यमय कहा जाता है। अग्नि का एक नाम हिरण्यरेता है, सौरमण्डल हिरण्यरेत (अग्नि) से आविष्ट है, इसलिए उसे हिरण्यमय कहा जाता है। आग्नेय मण्डल के केन्द्र में सौर ब्रह्म तत्त्व प्रतिष्ठित है, इसलिए सौर ब्रह्म को हिरण्यगर्भ कहा जाता है।

विश्व-केन्द्र में प्रतिष्ठित हिरण्यगर्भ भूः भुवः स्वः रूप त्रिलोकी का निर्माण करता है तथा त्रिलोकी के अधिष्ठाता स्वयम्भू परमेष्ठी रूप अमृतासृष्टि का और पृथिवी चन्द्र रूपमर्त्य सृष्टि का विभाजन एवं संचालन करता है। हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव सौर केन्द्र में होता है। इसका वर्णन यजुर्वेद इस प्रकार करता है–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रेभूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषाव्विधेम।।

जिस प्रकार विश्वातीत कालपुरुष की महाशक्ति महाकाली है, उसी प्रकार सौरमण्डल में प्रतिष्ठित हिरण्यगर्भ की महाशक्ति तारा है। शतपथ ब्राह्मण (२।१।२।१८) का कथन है कि - ''जिस तरह घोर अन्धकार में दीपक बिम्ब के समान तारा चमकता है, उसी प्रकार महातम के केन्द्र में प्रादुर्भाव सूर्य नक्षत्र चमकता है।'' वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सूर्य सदा स्थिर रहता है, समस्त ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। यह सूर्य बृहती छन्द नाम से प्रसिद्ध विष्वक्द्वत के ठीक मध्य से क्षोभरहित होकर स्थिर रूप से तप रहा है, इसलिए इसे तन्त्र शास्त्र में अक्षोभ्य कहा गया है।

वेदों में सूर्य को पहले **रुद्र** कहा गया है, और '**शिव**' तथा '**अघोर**' रूप से रुद्र के दो शरीर बताए गए हैं। आपोमयपारमेष्ठ्य महासमुद्र में घर्षण होने से आग्नेय परमाणु उत्पन्न हुआ, तदनन्तर 'श्वेतवाराह' नाम के 'प्राजापत्य' वायु द्वारा उस केन्द्र में संघात हुआ। निरन्तर संघात होने से आग्नेय परमाणु पिण्ड रूप में परिणत होकर सहसा जल उठे। जो पिण्ड प्रज्वलित हुआ वही सूर्य कहलाया। प्रज्वलित रुद्राग्नि में अन्न भक्षण करने की इच्छा प्रकट हुई, अन्नाहुति प्राप्त होने से पहले वह सूर्य महाउग्र था और उस महाउग्र सूर्य की शक्ति को **उग्रतारा** कहा गया। रुद्राग्नि (सूर्य) में जब अन्न की आहुति होती है तो वह शान्त रहता है और अन्नाहुति न मिलने से वही सूर्य संसार का नाश कर देता है। सूर्य के उस उग्रभाव और उसकी उग्रशक्ति का निरूपण करते हुए 'शाक्त प्रमोद तारा तन्त्र' में इस प्रकार रहस्योद्घाटन किया गया है—

प्रत्यालीढपदार्पितदङ्घ्रिशवहृद् घोराट्टहासापरा।
खड्गेन्द्रीवरकर्त्री खर्परभुजा हुङ्कारबीजोद्भवा।।
खर्वानीलविशालपिङ्गलजटाजूटैक नागैर्युता।
जाड्यंन्यस्य कपालकर्त्तृ जगतां हन्त्युग्रतारास्वयम्।।

यहाँ पर तारा विद्या के स्वरूप तत्त्व का चिन्तन किया गया है।

दूसरी दश महाविद्या तारा की चार भुजाएँ और चारों में साँप लिपटे हुए हैं, वह देवी शव के हृदय पर सवार होकर अट्टहास कर रही है। उसके हाथ में खप्पर है, वह नीलग्रीव है, पिंगल वर्ण है और उसके नीलविशाल जटाजूटों में नाग लिपटे हुए हैं।

(१). उग्रताराशक्ति प्रलयकाल में विषाक्त गैसों से संसार का संहार करती है।

प्रलयकाल में वायु दूषित होकर विषाक्त बन जाता है। इस विषैलेपन का प्रतीक साँप हैं।

(२) उग्रतारा की सत्ता विश्वकेन्द्र में रहती है। प्रलय हो जाने पर जब विश्व श्मशान बन जाता है, शवरूप हो जाता है, तब उग्रतारा उसी शवरूप केन्द्र पर आरूढ़ रहती है- यह शव के हृदय पर सवार होने का प्रतीक है।

(३) रुद्राग्नि अन्नाहुति न मिलने पर प्रलय तीव्र रूप धारण कर लेता है तो वह साँय-साँय शब्द करने लगता है - यही तारा का अट्टहास है।

(४) प्रलयकाल में पृथिवी और चन्द्र तथा उनमें रहने वाले सभी प्राणियों का रस (श्री) उग्र और सौर ताप से सूख जाता है और सबका रसभाग उग्रतारा पी जाती है। रस प्राणियों का श्री भाग है। यह मुख्यतया शिर के कपाल में रहता है। श्री (रस) भाग के रहने के कारण मस्तक शिर कहलाता है (शतपथ० ६।१।१) इसी को आधार बनाकर उग्रतारा सबका रसपान करती है। शिर की खोपड़ी का प्रतीक खप्पर है।

(५) यजुर्वेद (१६।७) में **नीलग्रीवोविलोहितः** कहकर सूर्य को नीलग्रीव कहा है, वह पिंगलवर्ण है। उग्रसूर्य की शक्तितारा भी नीलग्रीव है। पिंगलवर्ण है। सूर्य की रश्मियाँ तारा की जटाएँ हैं। हर सौररश्मि प्रलय के भीषण काल में जहरीली गैसों से भरी रहती है- उसी का प्रतीक **नीलविशाल पिंगल जटाजूटैक नागैर्युता** है।

३. पंचवक्त्रशिव की महाशक्ति षोडशी—सूर्य ही त्रैलोक्य का विश्व के समस्त प्राणियों का, अमृत-मर्त्य प्रजा का निमार्ण करता है। वेदों में इसके प्रमाण मिलते हैं—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (यजुर्वेद)
निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च (यजुर्वेद)
नूनंजनाः सूर्येण प्रसूताः (ऋग्वेद)

जब सूर्य उत्पन्न होते ही उग्ररूप धारण करने लगा तो उसमें पारमेष्ठ्य सोम की आहुति होने लगी। आहुति पाते ही सूर्य की उग्रता शान्त हो गई, रुद्राग्नि सूर्य शिव बन गया। शिव भावापन्न सूर्य ही संसार का उत्पादक है। शिवात्मक सूर्य ही पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक रूप त्रिलोकी का और उसमें रहने वाली अमृत-मर्त्य प्रजा का निर्माण करता है।

७. पंचवक्त्रशिव की शक्ति षोडशी—इस शिवात्मक सूर्यशक्ति का तन्त्रशास्त्र में 'पंचवक्त्र शिव' की शक्ति कहा जाता है, उस शक्ति का नाम 'षोडशी' है। जिस तरह आग्नेय रुद्र की शक्ति 'तारा' है, उस तरह पंचवक्त्र शिव की शक्ति षोडशी है। मध्याह्नकाल का सूर्य 'घोरसूर्य' कहा जाता है और प्रातःकाल का सूर्य 'शान्त

शिव' कहा जाता है। शान्त शिव की शक्ति शिव है। तन्त्रसार में शिवाशक्ति के स्वरूप तत्त्व का चिन्तन इस प्रकार है–

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखः पञ्चभि–
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दु मुकुटं पूर्णेन्दु कोटिप्रभाम्।
शूलंटङंककृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रपाशाङ्कुशान्।
पाशं भीतिहरं दधानममिता कल्पोज्वलाङ्गां भजे।।

इसका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है–शक्तिभेद एवं कार्यभेद से भगवान् शंकर के अनेक रूप होते हैं। शिव तो एक ही हैं, जब वह सूर्य रूप में पाँच दिशाओं गें व्याप्त होते हैं, तो पंचवक्त्र - पंचमुखी बन जाते हैं। उनके पाँचों मुख पूर्वा, पश्चिमा, उत्तरा, दक्षिणा और ऊर्ध्वा दिशाभेद से क्रमशः–१. तत्पुरुष, २. सद्योजात, ३. वामदेव, ४. अघोर और ५. ईशान नाम से प्रसिद्ध हैं। ये पाँचों मुख क्रम में चतुष्कल, अष्टकल, त्रयोदशकल, अष्टादशकल और पंचकल हैं। इन पाँचों मुखों का वर्ण क्रम से हरित, रक्त, धूम्र, नील और पीत है। पंचवक्त्र शिव के दस हाथ हैं और दसों हाथों में वह अभय, टंक, शूल, वज्र, पाश, खड्ग, अंकुश, घण्टा, नाग और अग्नि- ये दस आयुध धारण किए रहते हैं। ये शिव सर्वज्ञ हैं, इनके तीन नेत्र हैं, इनका स्वरूप अनादि बोध है, यह स्वतंन्त्र, अनुप्तशक्ति और अनन्तशक्तिमान् हैं, पाँचों दिशाओं में इनकी सत्ता है और पाँचों दिशाओं को देखते रहते हैं, इनके तीन स्वरूप धर्म हैं– आग्नेय, वायव्य और सौम्य। इन तीनों स्वरूप धर्मों के प्रत्येक के तीन-तीन भेद हैं– अग्नि, वायु और इन्द्र - आग्नेय प्राण के भेद हैं। वायु, शक्ति और अग्नि - वायव्य प्राण के भेद हैं। वरुण, चन्द्र और दिक् - सौम्य प्राण के भेद हैं। इन सबको मिला देने से शिव की ९ शक्तियाँ होती हैं। ये शक्तियाँ घोर उग्र हैं। इन नवों शक्तियों का आधारभूत **'परोरजा'** नाम का सर्वप्रतिष्ठा रूप शान्तिमय प्राजापत्यप्राण है। दस हाथ और दस आयुध इन्हीं शक्तियों के प्रतीक हैं।

उपर्युक्त श्लोक में शिव के दस आयुधों में से एक 'भीतिहरं' है, जिसका पारिभाषिक नाम अभय है। अभय से लेकर अग्नि तक दस आयुधों का वैज्ञानिक विवेचन इस प्रकार है–

(१) अभगम् - आगमशास्त्रीय व्याख्या के अनुसार अभयम्∠प्राजा[illegible] ∠ **शान्तिः ∠ परोरजाः ∠ प्राणः** = सोमाहुति का प्रतीक शिव के लल[illegible] ५२। चन्द्र है। शान्ति रूप परोरजाः का प्रतीक अभयमुद्रा है। शिव स्व[illegible] क अधिष्ठातृ देवता हैं- इनका निदान (प्रतीक) घण्टा है।

(२) टंकः ∠ आग्नेयतापः ∠ अग्निः ∠ आग्नेयप्राणः= टंक का तात्पर्य ताप है।

(३) वज्रम् ∠ ऐन्द्रताप ∠ इन्द्रः ∠ आग्नेयप्राणः=इसका तात्पर्य ऐन्द्र ताप है।

(४) शूलम् ∠ वायव्यतापः ∠ वायुः ∠ आग्नेयप्राणः = इसका तात्पर्य वायव्य ताप है। यहाँ इतना और समझ लेना चाहिए कि शूल (पीड़ा, ताप) बिना वायु के नहीं होता है। **न वातेन बिना शूलम्।**

(५) पाशः ∠ वारुणः हेतिः ∠ वारुणः ∠ सौम्यप्राणः =**'वरुण्या वा एषा यद्रज्जुः'** इस वचन के अनुसार पाश का तात्पर्य वारुण्य ताप है।

(६) खड्ग ∠ चान्द्रहेतिः ∠ चन्द्र ∠ सौम्य प्राणः = चान्द्रशक्ति।

(७) अङ्कुश ∠ दिश्योहेतिः ∠ दिक् ∠ सौम्य प्राणः = दिश्योहेति।

(८) घण्टा ∠ ध्वनिः ∠ शब्दः ∠ वायव्य प्राणः= स्वरवाक् का अधिष्ठाता।

(९) नागः ∠ संचरनाड़ी ∠ वायुः ∠ वायव्य प्राणः= जिस वायुसूत्र से रुद्र प्रविष्ट होते हैं, वह संचरनाड़ी है। इस नाड़ी का नासारन्ध्र सर्प प्राण से सम्बन्ध है। समस्तग्रह सर्पाकार हैं, इनमें सौर तेज व्याप्त रहता है। सब ग्रह रूप सर्पों के साथ रुद्र सूर्य का भोग होता है; इसलिए उनके शरीर में सर्प लिपटा होने का निदान है।

(१०) अग्निः ∠ प्रकाशः ∠ अग्निः ∠ वायव्य प्राणः = प्रकाश स्वरूप दृष्टि का प्रतीक अग्नि ज्वाला है।

इस प्रकार के प्रतीकों से मण्डित पंचवक्त्र शिव हैं, जिनकी शक्ति षोडशी है पंचवक्त्र शिव पंचकल, अव्य पंचकल, अक्षर पंचकल, आत्मक्षर परात्पर की समष्टि हैं, इसलिए इन्हें **'षोडशी पुरुष'** कहा जाता है। स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्र और पृथिवी- इन पाँचों में से एक मात्र सूर्य में ही षोडशी का पूर्ण विकास होता है, क्योंकि स्वयम्भू अव्यक्त है, इसलिए वहाँ विकास नहीं, यज्ञ वृत्ति के कारण परमेष्ठी में विकास नहीं हो पाता, वहाँ षोडशी अन्तर्लीन रहती है। सूर्य अग्निमय है, चितधर्मा है, इसलिए इसमें आया हुआ चिदात्मा पूर्णरूप से उल्वण हो जाता है। स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्र और पृथिवी - इन पाँचों में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, और सोम- इन पाँच अक्षरों की प्रधानता रहती है। इन पाँचों में जो इन्द्रात्मक सूर्य है, उसमें ही षोडशी का विकास है, इसलिए सूर्य रूप इन्द्र के लिए कहा गया है! **इन्द्रोह वै षोडशी** (श० ब्रा० ४।२।५।१४)।

'स व एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः'

बृहदारण्यक उपनिषद् के इस कथन के अनुसार सृष्टि साक्षी आत्मा-मन, प्राण, वाङ्मय है। सूर्य में मन-प्राण और वाङ्मय तीनों की सत्ता है। स्थावर जंगमात्मक विश्व का आत्मा सूर्य है। सूर्य में षोडशकाल पुरुष का पूर्ण विकास होने के कारण यह षोडशी है और इसकी शक्ति भी षोडशी कहलाती है। इसी षोडशी शक्ति से ही भूः भुवः स्वः तीन ब्रह्मपुर उत्पन्न हैं। इसलिए तन्त्रशास्त्र में इसे 'त्रिपुरसुन्दरी' कहा गया है। 'शाक्त प्रमोद तन्त्र' में त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप यह है—

बालार्कमंडलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम्।
पाशांकुशधरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे।।

त्रिपुरसुन्दरी के इस स्वरूप का तात्विक चिन्तन इस प्रकार है—**त्रीणि ज्योतींशि स च ते स षोडशी**—तन्त्रशास्त्र के इस कथन के अनुसार शिव और शिवा ने तीन ज्योतियों से विश्व को प्रकाशित कर रखा है। ये तीन ज्योतियाँ हैं—अग्नि (सूर्य का ताप), प्रकाश और चन्द्र (आहुत सोम)। इन्हीं तीन ज्योतियों का प्रतीक त्रिपुरसुन्दरी का त्रिनेत्र है। इन्हीं ज्योतियों के कारण सूर्य को लोकचक्षु कहा जाता है। सम्पूर्ण खगोल में सौर-शक्ति व्याप्त है और खगोल की चार भुजाएँ (स्वस्तिक आकार) त्रिपुरसुन्दरी की चार भुजाओं का प्रतीक है। त्रिपुरसुन्दरी सोमाहुति पाकर शान्त रहती हैं, अतः प्रातःकाल का बाल सूर्य त्रिपुरीसुन्दरी की साक्षात् प्रकृति है। बालार्क (प्रातःकाल का सूर्य) इसी अवस्था का प्रतीक है। सूर्य से उत्पन्न होने वाली प्रजा सौर शक्ति से आबद्ध कर रखा है। 'पाश' उसी आकर्षण - शक्ति का प्रतीक है। अक्षर रूपा उस नियति के भय से सभी अपना-अपना कार्य यथावत् कर रहे हैं। सूर्य भी उसके भय से तपता है, अग्नि भी उसके भय से तपती है। उसके भय से इन्द्र, वायु, मृत्यु सभी अपने-अपने कार्य में रत रहते हैं—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्योर्धावति पंचमः।।

(पू. २।५।३)

इस तरह त्रिपुरसुन्दरी सभी पर अंकुश रखती है। अंकुश इसी नियन्त्रण व्यवस्था का प्रतीक है। त्रिपुरसुन्दरी शर धारण करती है। जो उसके निर्धारित अटल नियमों का उल्लंघन करते हैं, उन्हें वह विनष्ट कर डालती है। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ— इन तीन लोकों में व्याप्त रुद्र के अन्न, वायु और वर्षा — ये तीन प्रकार के इषु (बाण) हैं। ये इषु त्रिपुरसुन्दरी के हैं। इन्हीं इषुओं से वह संहार करती है त्रिपुरसुन्दरी के आयुध शर का प्रतीक अन्न, वायु और वर्षा है। त्रिपुरसुन्दरी शक्ति सिद्धिदात्री है। बिना इसकी कृपा से साधक को सिद्धि नहीं मिलती है।

४. त्र्यम्बक शिव की महाशक्ति भुवनेश्वरी– शाक्तप्रमोद, भैरवी तन्त्र में भुवनेश्वरी के स्वरूप का निरूपण इस प्रकार किया जाता है–

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्।

इसका तत्त्व-चिन्तन इस प्रकार है– सूर्य से उत्पन्न होने पर पारमेष्ठ्य सोम की आहुति हुई, उससे यज्ञ हुआ। यज्ञ से त्रैलोक्य का निर्माण हुआ। विश्वोत्पत्ति के उपक्रम में 'षोडशी' की सत्ता थी। जब वह शक्ति भुवनों का संचालन करती है तो वही भुवनेश्वरी कहलाती है। यह चौथी महाविद्या चौथी सृष्टि धारा है।

उपर्युक्त श्लोक में भुवनेश्वरी को 'भुवनेशी' कहा गया है, वह 'इन्दु किरीटी' है, 'त्रिनेत्रा' है, 'वरदा' है, 'स्मेरमुखी' है। उसके आयुध 'पाश', 'अंकुश' आदि हैं।

इनकी प्रतीकात्मक व्याख्या इस तरह है- यदि सूर्य में सोमाहुति न होती तो यज्ञ । उत्पन्न होता। यज्ञ की उत्पत्ति के बिना भुवन-रचना असंभव हो जाती, और भुवनों के अभाव में भुवनेश्वरी प्रसुप्त रहती। सूर्य के मस्तक पर ब्राह्मणस्पत्य सोम आहुत हो रहा है, इसी से भुवन उत्पन्न होते हैं और इसी से भुवनेश्वरी प्रबुद्ध होती है। 'इन्दु किरीटी' इसी अवस्था का प्रतीक है। 'त्रिनेत्र' की प्रतीक-व्याख्या वही है जो 'षोडशी' महाविद्या के प्रसंग में की जा चुकी है। संसार में जितने यज्ञ हैं, उन सभी को भुवनेशी से आहुति मिलती है। ८४ लाख योनियों का पोषण भुवनेशी ही करती है, इसलिए इसे **'वरदा'** कहा गया है। 'वरदा' भरण-पोषण का प्रतीक है।

जो भुवन-प्रत्यय प्रलय-समुद्र में विलीन था, वह भुवनेश्वरी के प्रभाव से विकसित हो रहा है। दयामयी, कृपामयी, स्नेहमयी माँ की स्नेह दृष्टि का प्रतीक **'स्मेरमुखी'** है और शासन-शक्ति का प्रतीक अंकुश है।

५. कबन्ध शिव की महाशक्ति छिन्नमस्ता–कबन्ध और छिन्नमस्ता का शाब्दबोध, अर्थतात्विक बोध समझने के लिए वैदिक साहित्य और आगम साहित्य का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। छिन्नमस्ता का शब्दिक अर्थ है–कटे हुए शिर वाली देवी। इस अभिधान का गूढ़ रहस्य वेदों द्वारा उद्घाटित होता है। शतपथ ब्राह्मण (१।१।२) के अनुसार सृष्टि का मूलयज्ञ पाँच भागों में विभक्त हैं–

१. पाकयज्ञ, २. हविर्यज्ञ, ३. महायज्ञ, ४. अतियज्ञ, ५. शिरोयज्ञ।

(१) पाकयज्ञ –पाकयज्ञ को स्मार्त्तयज्ञ भी कहा जाता है। इसी के ग्रहयज्ञ और एकाग्नि यज्ञ दो रूप और हैं।

(२) हविर्यज्ञ–अग्निहोत्र यज्ञ, दर्शपौर्णमास्य यज्ञ, चातुर्मास्य यज्ञ और पशुबन्ध यज्ञ हविर्यज्ञ है।

(३) **महायज्ञ**—भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देशयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ—ये पाँच महायज्ञ हैं।

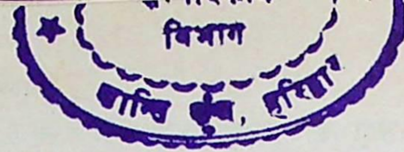
(४) **अतियज्ञ**—अग्नि चयन, राजसूय, अश्वमेध और वाजपेय—ये चार यज्ञ अतियज्ञ हैं।

(५) **शिरोयज्ञ—'छिन्न शीर्षो वै यज्ञः'** श्रुति के इस वचन के अनुसार उपर्युक्त सभी यज्ञ छिन्नशीर्ष—शिर रहित हैं। सभी का मस्तक कटा हुआ है। इसलिए पूर्वोक्त चारों यज्ञों के अन्त में 'शिरसन्धान' यज्ञ किया जाता है। उसी को 'शिरोयज्ञ' कहते हैं। इस यज्ञ को न करने से यज्ञ अधूरे शिर रहित रह जाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में शिरोयज्ञ को 'सम्राट्याग,' 'प्रवर्ग्ययाग', 'धर्मयाग' और 'महावीरोपासना' नाम से व्यवहृत किया गया है। यज्ञों के मस्तक कटने का अभिप्राय वैदिक साहित्य के अनुसार इस प्रकार है—उपर्युक्त यज्ञों और उनके अवयवों का जो निरूपण किया गया है, उसमें ब्रह्मयज्ञ (ब्रह्मौदन यज्ञ) और अवर्ग्ययाग का सम्बन्ध छिन्नमस्तक से है। जिस वस्तु का आत्म से नित्य सम्बन्ध रहता है, उस समय को 'ब्रह्मौदन' कहा गया है। वह वस्तु (अन्न) उस ब्रह्म का ओदन है। उसे केवल ब्रह्म ही ग्रहण कर सकता है, दूसरा नहीं। जो वस्तु उस आत्मा से अलग होकर दूसरे का अन्न ओदन बन जाती है, उसे 'प्रवर्ग्य' कहते हैं। प्रवर्ग्य का अर्थ उच्छिष्ट (जूठा) है।

इसका विज्ञानसम्मत तात्पर्य यह है कि सूर्य का ताप, जो सूर्य से सम्बद्ध रहता है, वह उसका 'ब्रह्मौदन' है और जो ताप सूर्य से अलग होकर ओषधि, वनस्पति तथा प्राणिवर्ग की सृष्टि में सहायक बनता है, वह 'प्रवर्ग्य' है। इसे और अधिक सरल व्यावहारिक ढंग से इस प्रकार कहा जा सकता है—

सूर्य-ताप में जल रखने से जल तप जाता है, सूर्यास्त हो जाने पर भी जल गर्म रहता है। इसका तात्पर्य यह कि सूर्य अपना ताप जल में छोड़ गया है। रात हो गई है, तारागण निकले हैं किन्तु हवा गर्म चल रही है—इसका तात्पर्य यह कि सूर्य अपना ताप हवा में छोड़ गया है। जल और हवा में सूर्य द्वारा ताप को छोड़ जाना ही सूर्य का प्रवर्ग्य (उच्छिष्ट) भाग है। इसी को 'घर्मभाग' भी कहा गया है। घर्म का शाब्दिक अर्थ घाम है। घाम (घर्म) ही का अपभ्रंश घर्म, गरम या गर्म है।

वस्तुतः सभी सौर पदार्थ सूर्य से पृथक् रहते हैं। यदि सूर्य अपने इस उच्छिष्ट भाग को न छोड़े तो सृष्टि की उत्पत्ति असंभव है। इसीलिए वैदिक श्रुति कहती है कि सम्पूर्ण जगत् की रचना उच्छिष्ट से हुई है। **उच्छिष्टात् सकलं जगत्।** यही प्रवर्ग्य भाग, उच्छिष्ट भाग उस यज्ञ का मस्तक है, वह कट कर जब अलग हो जाता है तो वह यज्ञ **'छिन्नशीर्ष'** कहलाता है। निष्कर्ष यह कि 'ब्रह्मौदन' से



आत्मरक्षा होती है और 'प्रवर्ग्य' से सृष्टि का स्वरूप बनता है। यही 'प्रवर्ग्य' निगम-आगम की प्रतीक भाषा में **कबन्ध** कहलाता है और उसी कबन्ध पुरुष का **महाशक्ति छिन्नमस्ता** है। जो महामाया 'षोडशी' से 'भुवनेश्वरी' बनती हुई संसार का पालन करती है, वही अन्त काल में 'छिन्नमस्ता' बनकर संसार का नाश करती है। छिन्नमस्ता का स्वरूप यह है—पैंतरा बदल कर वह शक्ति सदा खड़ी रहती है। उसका शिर कटा हुआ है और कटे हुए शिर के कबन्ध से बहते हुए रक्त को खप्पर भर-भर कर वह पी रही है। वह देवी दिग्वसना- नग्न है। त्रिनेत्रा है, हृदय में कोमल पुष्प की माला धारण किए हुए है, शिर में मणि रूप से नाग बाँधे हुए हैं।

इस स्परूप के खप्पर, रक्त, नाग और नग्नता प्रतीकों की 'रहस्य व्याख्या' पीछे महाकाली, षोडशी आदि शक्तियों के स्वरूप-तत्त्व के चिन्तन में की जा चुकी है। 'शाक्त प्रमोद छिन्नमस्ता तन्त्र' में महाशक्ति 'छिन्नमस्ता' को 'पराडाकिनी' कहा गया है—**साऽपि परम्परा भगवती नाम्ना पराडाकिनी।**

(६) **दक्षिणामूर्तिकला भैरव की महाशक्ति त्रिपुर भैरवी**—छिन्नमस्ता पराडाकिनी है और त्रिपुर भैरवी अपराडाकिनी है। छिन्नमस्ता का सम्बन्ध महाप्रलय से रहता है और त्रिपुर भैरवी का सम्बन्ध खण्ड प्रलय से रहता है। त्रिभुवन से पदार्थों का विनाश त्रिपुर भैरवी अपनी विशकलन - क्रिया द्वारा करती है।

(७) **धूमावती**—इस महाशक्ति का कोई पुरुष न होने के कारण वह 'विधवा' कही जाती है। यह दरिद्रता की देवी है। संसार में दुःख के मूल कारण - रुद्र, यम, वरुण और निर्ऋति—ये चार देवता हैं, इनमें निर्ऋति ही धूमावती है। प्राणियों में मूर्च्छा, असाध्य रोग, शोक, कलह, दरिद्रता आदि वही निर्ऋति—धूमावती उत्पन्न करती है। मनुष्यों का भिखारीपन, पृथ्वी का क्षत-विक्षत होना, ऊसरपन, बने-बनाए भवनों का ढह जाना, मनुष्य का पहनने के लिए फटे-पुराने वस्त्र भी न मिलने की स्थिति, भूख, प्यास और रुदन की स्थिति, वैधव्य, पुत्रशोक आदि महादुःख, महाक्लेश - दुष्परिस्थितियाँ - सब धूमावती का साक्षात् रूप हैं।

शतपथ ब्राह्मण (७।२।१।१) **घोरपाप्मा वै नैर्ऋतिः** कहकर इस शक्ति को 'दरिद्रा' कहता है। इसी को शान्त करने के लिए 'नैर्ऋति यज्ञ' किया जाता है, जिसे वेदों में 'नैर्ऋति इष्ट' कहा गया है। नैर्ऋति शक्तियाँ वैसे तो सर्वत्र व्याप्त रहती हैं, किन्तु ज्येष्ठा नक्षत्र इनका प्रधान केन्द्र है। ज्येष्ठा नक्षत्र से यह आसुरी, कलहप्रिया शक्ति धूमावती निकली है। यही कारण है कि ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति जीवन भर दारिद्र्य-दुःख को भोगता है। धूमावती मनुष्यत्व का पतन करती है इसीलिए इसे 'अवरोहिणी' कहते हैं। यही 'अलक्ष्मी' नाम से भी प्रसिद्ध है।

वैदिक साहित्य में 'आप्त प्राण' को असुर और ऐन्द्र प्राण को देवता कहा गया है। आषाढ़ शुक्ल एकादशी से वर्षा ऋतु आरम्भ होकर कार्तिक शुक्ल एकादशी को समाप्त होती है। यही वर्षा ऋतु की परम अवधि ज्योतिष शास्त्र ने बतायी है। आषाढ़ शुक्ल से कार्तिक शुक्ल तक इन चार महीनों में पृथिवी पिण्ड और सौर प्राण 'आपोमय' रहता है। चातुर्मास्य में नैर्ऋति का साम्राज्य होने से लोक और वेद के सभी शुभ काम इन चार महीनों तक वर्जित रहते हैं। संन्यासी भ्रमण त्याग कर एक स्थान पर चातुर्मास्य व्रत करता हुआ स्थित हो जाता है। विवाह, जनेऊ, यज्ञ, यात्रा आदि कोई भी मंगल कार्य नहीं किया जाता है, क्योंकि चातुर्मास्य में आसुर आप्य प्राण की प्रधानता रहती है, ऐन्द्र प्राण दब जाता है, इसीलिए ये चार मास देवताओं के 'सुषुप्ति-काल' माने जाते हैं। देवता सोते रहते हैं। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी इसकी अन्तिम अवधि है, इसलिए इसे नरक चौदस कहा जाता है। नरक चतुर्दशी के दिन दरिद्रारूपा अलक्ष्मी का गमन होता है और दूसरे ही दिन अमावस्या को रोहिणीरूपा कमला (लक्ष्मी) का आगमन होता है।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को कन्या राशि का सूर्य रहता है। कन्या राशिगत सूर्य नीच का माना जाता है। इस दिन सौर प्राण मलिन रहता है और रात में तो वह भी नहीं रहता है। इधर 'अमा' के कारण चान्द्र ज्योति भी नहीं रहती और चार मास तक की बरसात से प्रकृति की प्राणमयी अग्नि ज्योति भी निर्बल पड़ जाती है, इसलिए तीनों ज्योतियों का अभाव हो जाता है। फलतः ज्योतिर्मय आत्मा इस दिन वीर्यहीन हो जाता है। इस तम भाव को निरस्त करने के लिए साथ ही लक्ष्मी के आगमन के उपलक्ष्य में ऋषियों ने वैध प्रकाश (दीपावली) और अग्नि क्रीड़ा (फुलझड़ी पटाखे) करने का विधान बनाया है।

निष्कर्ष यह कि नैर्ऋतिरूपा धूमावती शक्ति का प्राधान्य वर्षा काल के चार महीनों में रहता है।

(८) एकवक्त्र महारुद्र की महाशक्ति बगलामुखी— तन्त्रशास्त्र की 'बगलामुखी' और वैदिक साहित्य की 'बल्गामुखी' दोनों एक ही हैं। व्याकरण के लोपागमवर्णविकार पद्धति के अनुसार जिस प्रकार 'हिंस' शब्द वर्णव्यत्यय से 'सिंह' बन जाता है, उसी प्रकार निगम का 'बल्गा' शब्द आगम शास्त्र में पहुँचकर 'बगला' रूप में परिणत हो जाता है। शतपथ ब्राह्मण (३।५।४।३) में 'बल्गामुखी' का उल्लेख इस प्रकार है—

यदा वै कृत्यामुत्खनन्ति अथ सालसा मोघा भवति।
तथो एवैष एतद्यद्मस्मा अत्र कश्चिद् द्विषन् भ्रातृव्यः।
कृत्यां बल्गां निखनति तानेवैतदुत्किरति।।

बगलामुखी शक्ति कृत्याशक्ति (मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण में प्रयुक्त होने वाली) है । इसकी आराधना से आराधक अपने शत्रु को मनमाना कष्ट पहुँचा सकता है।

बगलामुखी का सम्बन्ध अथर्वासूत्र से है। अथर्ववेदीय चिन्तन के आधार पर बगलामुखी का तत्त्व-चिन्तन इस प्रकार है—

हर प्राणी के शरीर से **'अथर्वा'** नाम का एक प्राणसूत्र निकला करता है। यह प्राणरूप है इसलिए इसे स्थूल दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। व्यावहारिक दृष्टि से इस 'अथर्वा प्राणसूत्र' को इस तरह समझा जा सकता है–

दूरातिदूर बसे हुए किसी आत्मीयजन के दुःख से अकस्मात् हमारा मन व्याकुल हो उठता है, परोक्ष रूप में उस दुःख का संकेत और उसकी अनुभूति करने वाले परोक्ष सूत्र का नाम 'अथर्वासूत्र' है। अथर्वासूत्र एक ऐसा शक्ति-सूत्र है, जिसकी साधना करने से हजारों मील दूर स्थिति व्यक्ति का आकर्षण किया जाता है। लोक-व्यवहार में घर में प्रातःकाल कौवा बोलने से किसी अतिथि के आगमन की कल्पना की जाती है। कौवा को अतिथि के आगमन का संकेत अथर्वासूत्र से मिलता है। जिस अथर्वासूत्र को हम नहीं जान पाते, उसे कुत्ते प्राणशक्ति द्वारा जान जाते हैं। चोर, डकैत, हत्यारे जिस रास्ते से जाते हैं, उस रास्ते में उनका अथर्वाप्राण वासना रूप से मिट्टी में समा जाता है। कुत्ते कपड़ा, नाखून, केश, मिट्टी, पदार्थ आदि अंग अवयव, सूँघकर अपराधी को पहचानते हैं। चिकित्सक विशेष रोगी का कपड़ा सूँध कर रोग का निदान करते हैं, तान्त्रिक किसी के द्वारा उपयोग में लाई गई किसी भी वस्तु पर मनमाना प्रयोग करते हैं- इसका तात्पर्य यही है कि अंगों, अंगावययों और उपयोग में लाई गई वस्तुओं आदि पर व्यक्ति के 'अथर्वाप्राण' वासना रूप में विद्यमान रहते हैं।

अथर्वाप्राणों का प्रयोग ऋग्वेद काल से अब तब जन समाज में प्रचलित है। भले ही अब उसके वैज्ञानिक रहस्य का बोध हमें न हो, अथवा किसी और विज्ञान विद्या से हम उसकी व्याख्या करें। ऋग्वेद में 'सरमा' नाम की कुतिया द्वारा देवताओं की गौओं के अपहरणकर्त्ता पणियों का पता लगाना, देवताओं द्वारा असुरों पर कृत्या का प्रयोग करना इत्यादि घटनाओं के मूल में 'अथर्वासूत्र' ही है। अथर्ववेद के 'घोरअंगिरस' और अथर्वांगिरस' दो भेद हैं। घोरअडिंरा में ओषधि, वनस्पति विज्ञान है और अथर्व अंगिरा में कृत्या (अभिचार कर्म) के प्रयोग है। बगलामुखी की रहस्य-साधना के प्रतिपादक बगलामुखी तन्त्र में बगलामुखी का जो प्रार्थना-श्लोक है, उसमें बगलामुखी शक्ति के उपर्युक्त गुण-कर्मों का निदर्शन मिलता है—

जिह्वाग्रमादाय करेण देवी;
वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन,
पीताम्बराख्यां द्विभुजां नमामि।।

(९) मातंग शिव की महाशक्ति मातंगी–तन्त्रसार में मातंगी का जो स्वरूप प्रार्थना के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है, उसके अनुसार यह शक्ति साधक के सभी अभीष्टों को सिद्ध करती है। नीलकमल की भाँति श्यामल रंग वाली बिराजती है, असुरों का नाश करने के लिए दावाग्नि रूप है, वह हाथों में पाश, खड्ग, अंकुश, खेटक, कमल धारण करती है–

श्यामां शुभ्रांशुमालां त्रिनयन कमलां रत्नसिंहासनस्थां।
भक्ताभीष्टं प्रदात्रीं सुरनिकर सेव्यां नील कंजाघ्रियुग्मम्।।
पाशं, खड्गं चतुर्भिर्वरकमलकरैः खेटकज्यांकुशश्च।
मातंगीमावहन्तीमभिमतफलदां मोदिनी चिन्तयामि।।

मातंगी के इस स्वरूप के तथा उसके अस्त्रों के प्रतीकों की व्याख्या पहले अन्य महाशक्तियों का प्रतीक व्याख्या में की जा चुकी है। यहाँ पुनरुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

(१०). सदाशिव पुरुष की महाशक्ति कमला–कमला लक्ष्मी का नाम है। धूमावती और लक्ष्मी परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध गुण, स्वभाव और कर्म की हैं। धूमावती और कमला में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा रहती है। धूमावती ज्येष्ठा है, लक्ष्मी कनिष्ठा है। धूमावती अवरोहिणी है कमला अरोहिणी है। धूमावती आसुरी-शक्ति है, कमला दिव्यशक्ति है। धूमावती दरिद्रा है, कमला लक्ष्मी है।

ज्येष्ठा नक्षत्र में जिनका जन्म होता है, वह व्यक्ति धूमावती के निवास केन्द्र नक्षत्र में उत्पन्न होने से जीवन भर दुःखी-दरिद्रा बना रहता है। ज्येष्ठा से ठीक १८०° अंश पर रोहिणी नक्षत्र है। रोहिणी नक्षत्र कमला का अधिष्ठान है। इस नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति जीवन भर सुखी समृद्ध बना रहता है।

सृष्टि की दस धाराएँ दशमहाविद्याएँ हैं। यही दशमहाविद्या का विज्ञान है।

☐☐

७ / अव्यय शक्ति के चमत्कार

शब्द-संयम, शब्द-साधना भारतीय ऋषियों की ऐसी देन है जो प्रत्यक्ष और प्रमाण द्वारा शाश्वत सिद्ध समझी जाती है। अक्षरों और शब्दों में निहित अव्यक्त शक्ति का साक्षात्कार और अनुभव शब्द-संयम द्वारा किया जा सकता है। शब्द-संयम अक्षर विज्ञान का मूल उद्गम है । आजकल की प्रचलित भाषा विज्ञान इसलिए अपूर्ण और विवादग्रस्त है कि उसमें शब्द-संयम की पद्धति का अभाव है । शब्दों के अन्दर छिपी हुई दिव्य शक्ति का स्फुरण कैसे हाता है? इस पर प्राचीन शब्द - शास्त्रियों ने जो मनन किया और फिर उस पर जो प्रयोग किया वही आज हमें शब्द-शास्त्र के रूप में उपलब्ध है ।

मन्त्र

इन्हीं शब्दों के चमत्कार मन्त्र कहे जाते हैं। वे मन्त्र कुछ दिव्य वर्णों की समष्टिमात्र हैं। उन वर्णों के स्थान, प्रयत्न के भेद को समझते हुए ठीक ढंग से बैठा देने पर उनके अन्दर छिपी हुई अपूर्व शक्ति का स्फुरण हो जाता है—जैसे, 'राम' शब्द। यह एक मन्त्र है। इस युग में भी इस मन्त्र के परम साधक महात्मा गांधी हो चुके हैं । राम के अन्दर निहित अव्यक्त शक्ति का स्फुरण समझने के लिए राम का शब्द - संयम करना चाहिए । इस शब्द में 'र', 'अ, म' और 'अ' ये चार अक्षर हैं। 'र' का उच्चारण मूर्द्धा से होता है, 'अ' का उच्चारण कण्ठ से होता है और 'म' का उच्चारण ओष्ठ और नासिका दोनों से होता है। मूर्द्धा (ब्रह्मरन्ध्र) परमात्मा का निवास स्थान माना जाता है । कण्ठ स्वप्नाभिमानी जीव का निवासस्थान है। जब हम 'राम' शब्द का उच्चारण करते हैं तो मूर्द्धा में स्थित रकार से उपलक्षित परमात्म-शक्ति अकार से उपलक्षित कंठस्थ जीव में आती है और मकार के उच्चारण से वही वाणी और व्यवहार में अवतरित होती है । इस शब्द के उच्चारण का फल यह होता है कि हमारी अन्तरात्मा में निहित परमात्मा की अव्यक्त शक्ति जीव में और जीव के व्यवहार में प्रस्फुटित और प्रकाशित होती है। अव्यक्त शक्ति के प्रस्फुटित होने से हम अपना कल्याण-साधन करते हैं।

शरीर के अन्दर अनेक अवयव हैं। उनके भिन्न-भिन्न कार्य हैं, जिनका उचित

ढंग से संचालन करने पर विभिन्न प्रकार के लाभ हम प्राप्त कर सकते हैं। हमारे मस्तिष्क में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त जीवन का स्रोत उमड़ता रहता है । मन्त्र शक्ति द्वारा उसके अवरुद्ध मार्ग को उद्‌घाटित किया जाता है। मन्त्र शक्ति द्वारा उसके अवरुद्ध मार्ग को उद्‌घाटित किया जाता है । उन अवरुद्ध अव्यक्त शक्तियों को जाग्रत करने के लिए शब्दों द्वारा स्पन्दन पैदा किया जाता है। कौन-सा अक्षर किस गुण के अवयव को जाग्रत करता है और उसके बाद कौन-सा अक्षर उसी के अनुसार बैठता है---इसका अनुभव प्राचीन ऋषियों ने किया और उन्हीं के अनुभव आज हमें शास्त्रों में रूप में उपलब्ध हैं । मन्त्र शास्त्र भी उन्हीं के अनुभवों का एक अंग है, जिसके द्वारा, अव्यक्त शक्ति के ज्ञान का व्यक्तीकरण हुआ है।

'मननात् त्रायते स्वस्य मन्तारं सर्वभावतः' इस निर्वचन के अनुसार मन्त्र वही है जो अपने जप करने वाले की हर प्रकार से रक्षा करता है। मन्त्र पाँच प्रकार के होते हैं– (१) नैगमिक, (२) आगमिक, (३) पौराणिक, (४) शाबर और (५) प्रकीर्णक। शास्त्रों में मन्त्रों की पुरुष, स्त्री और नपुंसक ये तीन जातियाँ मानी गयी हैं। सिद्ध और साध्य आदि भेद से इनके अनेक रूप होते हैं। शाप आदि के द्वारा जिन मन्त्रों की शक्तियाँ कील दी गई हैं- वे साध्य कहलाते हैं। ऐसे मन्त्र शक्तिशाली होते हुए प्रायः कार्यसाधक नहीं होते। इसीलिए सिद्ध करने से पूर्व उन्हें उत्कीलित करना चाहिए। जो मन्त्र अपने अधिष्ठातृ देवता के प्रभाव से अथवा मन्त्र-निर्माता के तपोबल से कुण्ठित सामर्थ्य नहीं होते– वे सिद्ध कहलाते हैं। जिस प्रकार शमी लकड़ी में अग्नि अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहता है और घिसने पर प्रकट हो जाता है, उसी तरह मन्त्रों की पूर्ण शक्ति उनके बीजों में निहित रहती है जो जप, साधन, हवन आदि से प्रकट हो जाती है।

यन्त्र

जिस प्रकार पृथ्वी पर हम अनेक आकृतियाँ देखते हैं, वैसे ही कल्पना में भी आकृतियाँ हुआ करती हैं । काल्पनिक आकृतियों का वर्णन हमें तन्त्रशास्त्र और अंकशास्त्र में मिलता है। ये शास्त्र जिन अनेक आकृतियों का वर्णन करते हैं उन्हें 'यन्त्र' कहा जाता है। ये यन्त्र उन अक्षरों या रेखाओं की सहायता से, जो दिव्य शक्ति से प्रभावित रहते हैं, साधक के मन में, शरीर में, आस-पास के वातावरण में, अच्छा या बुरा प्रभाव डाला करते हैं। यन्त्रों में जो अंक लिखे जाते हैं वे बीज हैं, वे ही विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों के ऊपर प्रभाव डालने की अपार शक्ति रखते हैं। शब्दों और अंकों में एक प्रकार का कम्पन हुआ करता है । मीमांसा शास्त्र में शब्दों के कम्पन के सम्बन्ध में बहुत विस्तृत ढंग से बताया गया है । मीमांसा का

मत है कि ''देवताओं की कोई अलग मूर्ति नहीं होती। देवता मन्त्र मूर्ति होते हैं। इसलिए मन्त्रों के उच्चारण से केवल उच्चारण करने वाले के शरीर में ही नहीं बल्कि आकाश में भी कम्पन पैदा होता है।''

प्रत्येक शब्द का आकाश में अपना स्थान रहता है, जो वाणी से छूटते ही लहर के रूप में आकाश में आकर अपना स्थान ग्रहण कर लेता है। वेदों के मन्त्रों का ऐसा निर्माण किया गया है जो अत्यधिक प्रभावशाली कम्पन पैदा करते हैं। भारतीय प्राचीन शब्द-शास्त्रियों ने अनुभव करके यह बतलाया है कि मन्त्र-शक्ति प्रत्यक्ष है, उसके शब्दों का कम्पन वही आकृति उत्पन्न करता है जिसका उसमें वर्णन होता है। मन्त्र सिद्ध हो जाने पर वही आकृति साकार उपस्थित हो जाती है। इच्छा शक्ति के संयोग से उसी आकृति द्वारा मनचाहा काम कराया जा सकता है।

मन्त्र-तन्त्र के विशेषज्ञ आचार्यों ने बतलाया कि ''शब्दों और अंकों का सम्बन्ध आकाश स्थित ग्रहों से रहता है। जितने भी नाम, अंक और आकृतियाँ हैं वे सब उन कम्पनों के परिणाम से बनते हैं जो सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों से आते हैं। हर अक्षर की एक विशेष ध्वनि होती है और प्रत्येक ध्वनि का एक विशेष कम्पन होता है तथा प्रत्येक कम्पन में विशेष प्रकार के नाम और अंग होते हैं। प्रत्येक अक्षर एक विशेष संख्या के कम्पन होते हैं। जो आकाशीय ग्रहों से आते हैं। जैसे दीपक राग गाने से एक विशेष ध्वनि पैदा होती है और वह प्रकाश उत्पन्न कर देती है। जैसे हम अपने पृथ्वी-मण्डल के मनुष्यों से अथवा अपने घर के परिवार से अभेद सम्बन्ध रखते हैं, उसी प्रकार सूर्य-मण्डल का सम्बन्ध समस्त पृथ्वी-मण्डल से रहता है। यह सम्बन्ध हमें प्रकाश के कमपन रूप से मालूम होता है।

तन्त्र

शरीर व्याकृति विज्ञान विषयक ग्रन्थों से पता चलता है कि कुल १७ शिरोजाल हैं जो पाँच विभागों में विभक्त हैं। सभी वस्तुएँ तत्त्व से निर्मित हैं। प्रत्येक वस्तु का आकार अनेक मूल तत्त्व का समुच्चय हुआ करता है। ये आकार अनेक प्रकार के कम्पनों के परिणाम होते हैं। हर आकार एक विशेष प्रकार की स्पन्दनविधि का द्योतक हुआ करता है। ये आकार प्रकाश के प्रतिक्षेप के द्वारा स्पन्दन फेंकते हैं और प्रभावित करते हैं। उन्हीं स्पन्दनों के उत्तर में हम राग-द्वेष, ईर्ष्या-मोह आदि करते हैं। तान्त्रिकों का मत है कि ''जगत् के प्रत्येक पदार्थ का एक आकार है जो यन्त्र या रेखाचित्र के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।''

मन्त्र-शास्त्र का कहना है कि ''यन्त्रों और मन्त्रों आदि के प्रयोग चित्तशुद्धि के लिए ही करने चाहिए।'' इसीलिए मन्त्रों के जप करने का विधान है, क्योंकि शुद्धि की प्रक्रिया में जप एक सोपान है। संकल्प की आवृत्ति का नाम ही मन्त्र है। हम

जो संकल्प अपने हृदय में करते हैं, उसकी अभिव्यक्ति जप से होती है। देवनागरी लिपि की वर्णमाला के सभी अक्षर तान्त्रिकों की दृष्टि से मातृकाएँ हैं। ये ही मातृकाएँ 'बीज' की जननी हैं।

मन्त्रों के जप में प्रत्येक वर्ण के साथ बीज मन्त्र का उच्चारण किया जाता है। जैसे - **'ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा'** यह एक बीज मन्त्र है। इसमें परमेश्वरि शब्द परम शक्ति का बोधक है। ह्रीं, श्रीं और क्लीं - ये तीनों बीज एक ही शक्ति के तीन विभिन्न रूप हैं। **ह्रीं** माया का वाचक है, **श्रीं** लक्ष्मी का और **क्लीं** शक्ति का बोधक है। दार्शनिक अर्थ में इन तीनों बीजों का अर्थ सृजन शक्ति, रक्षण शक्ति और संहार शक्ति है। उपर्युक्त बीज मन्त्र के **स्वाहा** शब्द में **स्वा** और **हा** दो अक्षर हैं। स्वा का अर्थ आत्मा और हा का अर्थ समष्टि जीवन है। समष्टि चेतन के साथ जीवात्मा की एकता का भाव **स्वाहा** है। मन्त्र जप करते समय साधक स्वाहा शब्द का उच्चारण कर पूर्णरूप से आत्मसमर्पण कर देता है।

कर्पूरस्तव और फेटकारिणी तन्त्र में बीजों के तात्पर्य बड़ी खूबी से समझाए गए हैं। उनके अनुसार कुछ बीजों के अर्थ यौगिक भी हुआ करते हैं। जैसे 'ह्रीं' बीज को जब दो बार जोड़ा जाता है तो वही लज्जा बीज कहा जाता है। पाणिनि के धातु पाठ में भी 'ह्रीं' धातु का अर्थ लज्जा ही है। 'ह्रीं' बीज के गर्भ में सृष्टि तत्त्व का निरूपण निहित है। सृष्टि रचते समय ब्रह्मा को लज्जा का अनुभव होता है। वह अपने को माया की झीनी चादर में ढँक लेता है। साधक, योगी और तान्त्रिक माया के इस आवरण को हटाकर ब्रह्मा का साक्षात्कार करते हैं। इसी प्रकार 'श्रीं' बीज का भी निरूपण सृष्टि तत्त्व के अनुकूल है। 'श्री' का अर्थ सेवा करना है। प्राणिमात्र वस्तुओं का सेवन कर प्राण धारण करता है। श्री का यौगिक अर्थ विष्णु के भरण - पोषण कार्य से संगति रखता है। कुछ बीजों का सांकेतिक अर्थ भी होता है। जैसे सतोगुण के लिए 'स' का, रजोगुण के लिए 'र' का और तमोगुण के लिए 'त' का प्रयोग होता है।

मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन आदि तन्त्र के छह प्रयोग हैं। इन प्रयोगों को करते समय साधक की मनोवृत्ति कैसी रहती है, इसका परिचय कुछ सांकेतिक शब्दों से भलीभाँति मालूम होता है–

नमः स्वाहा, स्वधा, वषट्, वौषट् हुँ और फट्– ये सांकेतिक शब्द हैं। अन्तःकरण की शांत अवस्था में 'नमः' का प्रयोग होता है। अपकारी शक्तियों के विनाश के लिए और पराए हित के लिए 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अन्तःकरण की वह वृत्ति जो शत्रुओं को विनष्ट करने का भाव खींचती है, उसका द्योतन 'वषट्' से होता है। अपने शत्रुओं में परस्पर विग्रह-विरोध उत्पन्न कराने का सूचक

वौषट् होता है। 'हुँ' क्रोध और वीरभाव का सूचक है। 'फट्' अपने शत्रुओं के प्रति प्रहार करने का भाव व्यक्त करता है।

इन शब्दों के प्रयोग उड्डीश तन्त्र और महानिर्वाण तन्त्र में अंगन्यास और करन्यास के लिए हैं।

संक्षेप में मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र के चमत्कारों का यही मूल रहस्य है, जो शब्द की शक्ति के चमत्कार मात्र हैं, एक नित्य शब्द प्रकृति के अन्तराल में व्याप्त हो रहा है, यदि हम संयम और साधना द्वारा उसका साक्षात्कार करते हैं तो यही हमें चतुर्वर्गप्रदायक सिद्ध हो जाता है।

मन्त्र-साधना

मन्त्र वर्णों से बनते हैं, वर्ण और उनके पारस्परिक सहयोग से बने अक्षर और शब्द ब्रह्मरूप हैं। मन्त्रों में विशिष्ट ध्वनियाँ रहती हैं, जिनका प्रयोग उपासना और साधना में किया जाता है। मन्त्रों की विशेष ध्वनियों के ध्यान से अक्षरों की क्रमिक योजना होती है। मन्त्रों के वर्ण, नाद, बिन्दु, स्वर और व्यंजन के सम्बन्ध से विभिन्न स्वरूप वाले देवताओं के संकेत मिलते हैं। भिन्न-भिन्न बीजाक्षरों में भिन्न-भिन्न देवताओं की शक्ति निहित रहती है। जिस देवता का जो मन्त्र होता है, उस मन्त्र में वर्णों की जो योजना रहती है, उसमें मन्त्र के देवता की शक्ति निहित रहती है। उसकी साधना करने से साधक के समक्ष वह देव-शक्ति साकार हो उठती है।

मन्त्र तेजोमय शक्ति के समुच्चय होते हैं और बीजाक्षर शक्ति-पुंज होते हैं। मन्त्र मानव से परे शक्ति को जाग्रत करते हैं। प्रत्येक मन्त्र में दो शक्तियाँ रहती हैं—वाच्य शक्ति और वाचक शक्ति। मन्त्र का प्रतिपाद्य देवता वाच्य शक्ति है और मन्त्र-मय देवता वाचक शक्ति है। जैसे किसी मन्त्र का देवता दुर्गा है तो उस मन्त्र की वाच्य शक्ति महामाया होगी। अपर शक्ति निर्गुण है और वाचिका शक्ति सगुण होती है। वाचिका शक्ति ही मन्त्र सिद्धि के लिए साधन भूत होती है। जब मन्त्र में निहित मन्त्र स्वरूप शक्ति साधना द्वारा चैतन्य होती है तब वह साधक के समक्ष परम सत्य का उद्घाटन करती है, जिससे ब्रह्माण्ड का वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाता है। फलतः दो प्रकार की शक्तियाँ हुईं— (१) मन्त्र शक्ति, (२) साधना शक्ति। साधक में साधना द्वारा उत्पन्न साधना शक्ति जब मन्त्र शक्ति से तादात्म्य सम्बन्ध जोड़ती है, दोनों शक्तियाँ मिलकर एक हो जाती हैं, तब मन्त्र की सिद्धि होती है।

मन्त्र-जागरण-प्रक्रिया

मन्त्र की साधना में मन्त्र का अर्थ और मन्त्र की प्रक्रिया अवश्य समझनी

हिए। इसे जाने बिना मन्त्र का जप करना निरर्थक हो जाता है। तन्त्र का यह द्धान्त है कि मन्त्र प्रसुप्त रहते हैं। अतएव उन्हें जाग्रत करने के लिए मन्त्रविदों कुछ क्रियाएँ निर्धारित की हैं। इन क्रियाओं के करने से मन्त्र का उच्चारण शुद्ध जाता है। मुख्यतया नौ क्रियाएँ हैं–मुख शोधन, जिह्वा शोधन, मन्त्र शोधन, ल्लुका, मणिपूर, सेतु, निद्राभंग, मन्त्र चैतन्य, मन्त्रार्थ भावना।

उपर्युक्त क्रियाओं के नाम पारिभाषिक हैं, इन क्रियाओं को करने के लिए सी योग्य गुरु की सहायता लेनी पड़ती है। जिस क्रिया मन्त्र-साधना में जिस ता का मन्त्र होगा उसके अनुरूप मुख शोधन मन्त्र होता है। ये अगणित हैं, ी की क्रियाएँ पुस्तकों में नहीं रहती हैं, ये गुरु द्वारा समझी और सीखी जाती जैसे यदि कोई साधक भैरव-मन्त्र की साधना करता है तो उसे 'ॐ हसौः' इस न मन्त्र के जप से मुख शोधन करना चहिए। इसी तरह जिस देवता का जो त्र होगा उसका मुख-शोधन-मन्त्र भिन्न होगा।

जिह्वा शोधन की क्रिया यह है कि जिस देवता के मन्त्र की साधना की जाए देवता के मूल मन्त्र के एकाक्षर बीज का तीन बार जप करे। फिर तीन बार व (ॐ) का जप करे, पुनः एकाक्षर बीज का तीन बार जप करके मूल मन्त्र का सात बार करे। जैसे यदि कोई साधक बटुक भैरव की साधना करे तो साधना म्भ करने से पूर्व इस प्रकार जिह्वा-शोधन करना चाहिए-

बटुक भैरव का मूल मन्त्र हैः-

ॐ ह्रीं बटुकाय आपदुद्धरणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं।

इसका बीजाक्षर 'ह्रीं' है।

जिह्वा-शोधन करने के लिए पहले एकाक्षर बीज 'ह्रीं' का तीन बार जप करे तीन बार 'ॐ' का जप करे, पुनः तीन बार 'ह्रीं का जप करके-

ॐ ह्रीं बटुकाय आपदुद्धरणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं।

इस मूल मन्त्र का जप सात बार करने से जिह्वा-शोधन होता है।

मन्त्र-शोधन के लिए जिस मन्त्र को सिद्ध करना हो उसके आदि और अन्त ' लगाकर उस मन्त्र का ९ बार जप करने से मन्त्र की अशुद्धता, अपवित्रता ा हो जाती है और मन्त्र पवित्र बन जाता है।

कुल्लुका-क्रिया सिर पर की जाती है। प्रत्येक मन्त्र के देवता की कुल्लुका है। जैसे महाकाली की कुल्लुका 'माया' है।

णिपूर क्रिया 'अ' से लेकर 'ह' तक की वर्णमाला का जप है।

ु-क्रिया बीजाक्षर के जप से निष्पन्न होती है। जिस मन्त्र की सिद्धि करनी

हो उस मन्त्र के देवता का बीज मन्त्र सेतु क्रिया में जपा जाता है। जैसे ॐ, ह्रीं यह एकाक्षर बीज मन्त्र है। सामान्यतया इसी के जप से सेतु क्रिया निष्पन्न होती है। किन्तु काली का सेतु उसका ही बीज क्रीं है, तारा का कूर्च है। काली, तारा के मन्त्रों को सिद्ध करने में ॐ या ह्रीं सेतु का नहीं बल्कि इन्हीं के सेतु प्रयोग में लाए जाते हैं।

निद्रा भंग की क्रिया मूल मन्त्र के आदि और अन्त में 'ई' लगाकर उसको सात बार जपने से निष्पन्न होती है।

मन्त्र चैतन्य क्रिया मणिपूर चक्र में मातृका बीज का संपुट लगाकर मूल मन्त्र को सात बार जपने से निष्पन्न होती है।

मन्त्रार्थ भावना क्रिया मन्त्र के अन्तर्गत वर्ण मातृकाओं के ध्यान करने से निष्पन्न होती है।

वस्तुतः मन्त्र ही वर्ण रूप देवता है, मन्त्रों द्वारा पराचित् शक्ति प्रकट होती है। मन्त्रों की साधना से मन्त्र चैतन्य होते हैं। साधक की चेतना का मन्त्र की चित् शक्ति से ऐक्य सम्बन्ध स्थापित होता है और साधक के सामने मन्त्र का अधिष्ठातृदेव प्रकट हो जाता है। यह तभी सम्भव होता है जब साधक की साधना-शक्ति मन्त्र शक्ति से ऐक्य सम्बन्ध जोड़ती है। पूजा, पाठ, ध्यान में केवल साधक की साधना - शक्ति ही काम करती है किन्तु मन्त्र - साधना में साधक की साधना शक्ति मन्त्र शक्ति से मिलकर क्रियाशील होती है।

बीजाक्षर-साधना

तीन अक्षरों के प्रणव (ॐ) से ही विश्व की सृष्टि होती है। परम रहस्य का बीज ओंकार ही है। तन्त्र शास्त्र और तांत्रिक प्रयोगों में बीजाक्षरों अर्थात् संकेताक्षरों का महनीय स्थान है। तन्त्र शास्त्र में बीजाक्षरों का प्रयोग कई प्रयोजनों से किया जाता है। किसी विस्तृत विषय को संक्षेप में बतलाने के लिए बीजाक्षर सूत्रों का प्रयोग किया गया है। कहीं पर गुह्य तन्त्र को गूह्यातिगुह्य बनाने के लिए बीजाक्षरों का प्रयोग किया गया है। भारतीय मनीषियों की इस बीज-प्रणाली को अंगीकार कर आज का विज्ञान बहुत कुछ समृद्ध हुआ है।

बीजाक्षर-प्रणाली भारत में अतिप्राचीन काल से व्यवहृत होती आ रही है ऋग्वेद में भी बीजाक्षरों के प्रयोग मिलते हैं। 'नासदीय सूत्र' की रचना 'न असत्' शब्दों को लेकर हुई है। सामवेद गान के सप्त स्वर बीजाक्षर ही हैं। शैव, शाक्त वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मों में बीजाक्षरों को महत्त्व दिया गया है।

शैव-दर्शन का प्रसिद्ध प्राचीन उद्धार कोश बीजाक्षरों का कोश है। पाणिनि ने

व्यक्तियों के नामों की संक्षिप्त प्रणाली का प्रचलन बीजाक्षरों के आधार पर ही किया है; जैसे - **देवदत्तः** का संक्षिप्त **दत्तः**, **षंडिलदत्तः** का **षडिकः**, **सुपर्याशीर्दत्तः** का सुपरिय। बीजाक्षरों के आधार पर संस्कृत में एकाक्षारी कोशों की रचना हुई है; जैसे - अ = अंगनापुर, ए=एकादश संख्या (ए स्वरों में ग्यारहवाँ स्वर है, उसी प्रकार अ का अर्थ १ है।), अं = अंजलि, त=अमृत, तार, ता = धातुवादविधौ, थ = पृथुल, र = राजभय, रुधिर, ल = लवण, ह्लादन, तैल आदि।

शैव और बौद्ध धर्म के द्वारा बीजों का प्रयोग और प्रचलन भारत से बाहर सुदूरवर्ती द्वीप-द्वीपान्तरों में हुआ। चीन और जापान में बीजाक्षरों के लिखने के लिए ''**सिद्धम्**'' लिपि का प्रयोग हुआ था। चीन की भाषा में वर्णमाला नहीं है, प्रत्येक शब्द के लिए रेखाओं से बना विशेष चित्राक्षर है। अतः पवित्र गुह्य मन्त्रों, धारणियों और सूत्रों के अनुवाद रूप में नहीं, मूलरूप में ही उनके अधिक प्रभावशाली होने के कारण आठवीं शती में भारतीय कलात्मक ''**सिद्धम्**'' लिपि का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

बीजाक्षरों के शुद्ध प्रयोगों से सहज सिद्धि प्राप्त की जा सकती है; फिर मन्त्रों के जप करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। प्राचीन साधकों ने अनुभव द्वारा यह प्रमाणित किया है कि प्रत्येक बीजाक्षर का लिखना भी एक कला है, एक साधना है। आचार्यों ने सुलेख लिखने के लिए जिन दस बातों पर विशेष ध्यान रखने की हिदायत दी है, उनमें बीजाक्षर लिखने के लिए बताया गया है कि प्रत्येक रेखा की गोलाई, मोटाई, लम्बाई का विशेष अर्थ होता है। विधिपूर्वक लिखे गए यन्त्र और बीज को देखते ही उनकी पवित्रता, गुह्यता का प्रभाव मन, मस्तिष्क पर पड़ता है।

संस्कृत साहित्य में विभिन्न स्थलों पर आए हुए बीजों और बीजाक्षरों का स्थूल वर्गीकरण इस प्रकार है–

१. **दर्शनशास्त्र में–** दार्शनिक प्रयोग, व्यक्षर मन्त्र, दशाक्षर मन्त्र आदि।

२. **देवताओं के नामों का संक्षेप रूप–** वि = विनायक, भै = भैषजन्यगुरु।

३. **धारणी–** अं = रश्विविमल विशुद्ध प्रभाधरिणी।

४. **मण्डल**

५. **मन्त्र =–** ग्रीं मन्त्र।

६. **मन्त्रों में - (अ) देवमन्त्र। जैसे - विष्णु नृसिंह षडक्षरमन्त्र - ॐ नमो विष्णवे, ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं क्ष्म्यो फट्। शिव पंचाक्षर मन्त्र, रामकृष्ण। हयग्रीव-**नवाक्षर मन्त्र आदि।

(आ) **सूर्य मन्त्र**– ॐ ह्रीं तिग्मरश्मेय आरोग्यदाय स्वाहा।

(इ) तन्त्रशास्त्र में (१) मारण, (२) मोहन, (३) उच्चाटन, (४) कीलन, (५) विद्वेषण और (६) वशीकरण ये षट्कर्म कहे जाते हैं। इन षट्कर्मों में षड्मन्त्रों का विधान बतलाते हुए कहा गया है कि शान्ति कर्म में **नमः** शब्द का प्रयोग करना चाहिए। वशीकरण में स्वाहा, स्तम्भन का वषट्, विद्वेषण में वौषट्, उच्चाटन कर्म में वषट् और मारण कर्म में फट् बीजाक्षर का प्रयोग करना चाहिए।

मन्त्र विद्या कुकृत्य एवं कृत्या प्रयोगों की शान्ति के लिए केवल बीजाक्षरों के प्रयोग की अनुमति देती है। वह कहती है कि यदि कोई व्यक्ति दीर्घकाल से असाध्य रोग से ग्रस्त है, जीवन से निराश हो चुका है उसे निम्नलिखित बीजाक्षरों का प्रयोग करना चाहिए।

ॐ सं सां सिं सीं सुं सें सैं सों सौं सं सः वं वां विं वीं वुं वूं वें वैं वों वौ वं वः हंसः अमृतवर्चसे स्वाहा।

इस मन्त्र की प्रयोग विधि यह है–

मिट्टी के सकोरा में जल भर कर उक्त मन्त्र से १०८ बार जल को अभिमन्त्रित कर प्रातःकाल रोगी को पिलाया जाए तो असाध्य महाव्याधि से मुक्त होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति किसी दुष्ट आदमी द्वारा सताया जाता हो तो उसके दमन के लिए निम्नांकित मन्त्र का विधान है– जिस मंगलवार को अमावस्या पड़े उसी रात तेरमुहानी (त्रिमार्ग) में बैठकर नीचे लिखे मन्त्र का यथाशक्ति जप करने से दुष्ट-निग्रह होता है–

ॐ कक्कोल कक्कोल किलि किलि शोषय शोषय मथ मथ क्रूं क्रूं ह्रीं फट्।

इसी प्रकार गज, व्याघ्र, चौर भय आदि के निवारण के लिए बीज मन्त्र हैं। द्वारोद्घाटन, हिंस्र जन्तु स्तम्भन, आपन्निस्तारण आदि के अतिरिक्त द्रव्यनाश, नष्ट द्रव्य लाभ, द्रव्य शोधन आदि अनेकों बीज मन्त्र हैं।

क्रोध शान्ति के लिए बीजों के प्रयोग बहुत ही सशक्त हैं–

ह्रीं ठीं ठीं क्रोधप्रशमन ह्रीं ह्रीं हां क्लीं सः सः स्वाहा।

अपना या किसी और का क्रोध शान्त करने के लिए मन में संकल्प करके प्रतिदिन १०८ बार उक्त मन्त्र का जप २१ दिन तक करने से क्रोध स्नेह में परिणत हो जाता है।

स्त्रियों को वश में करना, शत्रु को सम्मोहित करना, गर्भ की रक्षा करना, बालक की रक्षा, बन्ध्यागर्भ धारण, सुख प्रसव, पुत्र-प्राप्ति आदि अनेकानेक

प्रयोजनों की सिद्धि के लिए बीज मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है।

इनके अतिरिक्त साधन, सिद्धि, देवदर्शन, आत्मरक्षा के लिए बीजाक्षरयुक्त मन्त्रों की साधना का विधान बताया गया है। इन बीजाक्षरयुक्त मन्त्रों से 'अष्ट नायिका साधन' किया जाता है, डाकिनी, भूत-प्रेत की सिद्धि की जाती है, पिशाच-पिशाचनी की सिद्धि की जाती है, यक्ष-यक्षिणी और बेताल की सिद्धि की जाती है।

मनोकामना की सिद्धि के लिए निम्नांकित बीजाक्षर युक्त मन्त्र है–

स्फ्रें, सफ्रें दूँ दूँ दूँ तीं क्लीं हुँ हुँ सं सां सिं सूं सीं सें सौं सं सः छां छीं छूँ छैं छः ह्रीं फट् स्वाहा।

इस मन्त्र का ५१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने से जिस मनोरथ का संकल्प करके जप किया जाए, वह पूरा हो जाता है।

त्रिकाल-दर्शन अथवा गुरु दर्शन के लिए यह मन्त्र है–

ह्रीं हुँ गुरो प्रसीद ह्रीं ॐ

इस मन्त्र का जप करते हुए दृष्टि दोनों भौहों के बीच में जमाए रखना चाहिए। २१ दिन तक इस मन्त्र का जप और ध्यान से गुरु के दर्शन होते हैं।

शत्रुओं से, हिंसक जीवों से, आपदाओं से अपनी रक्षा करने के लिए यह आत्म-रक्षा मन्त्र हैं–

ॐ आं ह्रीं क्लीं श्रीं दूं हूं हुँ फट्।

इस मन्त्र से नित्य १०८ बार हवन करने से ४१ दिन में मन्त्र सिद्ध हो जाता है, फिर इसका प्रतिदिन १०८ बार जप करते रहने से आत्मरक्षा होती है।

७. **मुद्रा–** अं, खं अथवा **न्य** तथागत ज्ञान महामुद्रा के लिए बीज है।

८. **यन्त्रों में–** शत्रुनाश के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला व्यष्टि यन्त्र है, इसमें बीजाक्षर लिखे जाते हैं।

९. **साम्नः पंचाडांनि–** नमः स्वाहा, वषट्, हूँ फट् बीज है।

१०. **सूत्रों के लिए संक्षिप्त बीज–** ॐ = महामेघसूत्र।

११. **वर्णमाला के बीज–** वर्णमाला (अ से लेकर ह अक्षर तक) के बीजाक्षरों द्वारा मानव के शरीरांगों तथा शक्तियों का बोध कराया जाता है।

बीजाक्षरों में एक स्वर रहता है। व्यंजन की दृष्टि से ये एकव्यंजन अथवा बहुव्यंजन हो सकते हैं; जैसे - ह्रीं क्लीं ह्क्ष्म्ल्व्यं आदि। संयुक्त बीज, व्यंजन-बीज और स्वर-बीज। 'बीज' पद सहित भी होते हैं। ये बीज 'देव बीज', प्रकृत्यंग-बीज',

'रोधक बीज' आदि अनेक प्रकार के हैं। संयुक्त बीज के लिए 'शिव बीज का एक उदाहरण यह है–

मायातरः शब्दबीजं सन्ध्यार्णन्ताक्षरान्वितम्।
अर्द्धेन्दुबिन्दुभूषाढ्यं शिवबीजं प्रकीर्तितम्।।

अर्थात् माया प्रणव शब्द बीज र और चन्द्रबिन्दु अर्थात् ह्रीं ओं ह्रों यह शिव बीज है। ह्रीं = माया बीज, य = अग्नि बीज, ल = पृथिवी बीज है और स्वर बीज एं रोध ाक बीज है।

बीजों के अनेक प्रकार के प्रयोगों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

१. तत् प्रयोग

२. भिन्न प्रयोग

३. सांख्यिक प्रयोग

४. शीर्षक प्रयोग।

तत्प्रयोग-बीज किसी नाम, विचार या भाव के संक्षेप है। ये संक्षेप अपने संक्षेप्य से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध रहते हैं, कभी प्रत्यक्ष रूप से कभी अप्रत्यक्ष रूप से। एक ही देवता के अनेक नाम आने पर उसके किसी एक नाम का संक्षेप दूसरे नाम के लिए प्रयुक्त हो सकता है। जैसे गणेश का बीज गं है। स्पष्ट रूप से यह गणेश देवता के नाम का संक्षेप है। गणेश का दूसरा नाम विनायक है। 'गं' बीज विनायक के लिए भी प्रयुक्त होता है। इस प्रकार के संक्षेपों का तत्प्रयोग कहते हैं। तत्प्रयोग शब्द का तात्पर्य यह है कि उसी शब्द से कोई व्यंजन लेकर बीजाक्षर निश्चित कर दिया जाता है। इस कोटि के संबद्ध संक्षेप शब्द के आदि अक्षर, मध्य अक्षर और अंत्य अक्षर लेकर बनते हैं, किन्तु स्वर की वही रहना आवश्यक नहीं होता है। स्वर परिवर्तन की संभावना के साथ-साथ अनुस्वार और विसर्ग ध्वनि प्रभाव के लिए जोड़ दिए जाते हैं; जैसे–

रामाय नमः, कृष्णाय नमः, बृहस्पतये नमः – ये मन्त्र हैं। जब हम इन मन्त्रों के आद्यक्षर संक्षेप करेंगे तो रां = रामाय, क्लीं = कृष्णाय, बृं = बृहस्पतये बीज बनते हैं। रां और बृं में स्वर का भी परिवर्तन नहीं हुआ है, केवल गुह्य बनाने और शक्तिशाली बनाने के लिए अनुस्वार जोड़ा गया है। कृष्णाय नमः मन्त्र के आदि अक्षर 'कृ' से 'कृं' बीज न बनाकर 'क्लीं बनाने का तात्पर्य ध्वनि शक्ति का समावेश करना है। दीर्घ को ह्रस्व और ह्रस्व को दीर्घ भी बनाया जाता है; जैसे - 'सूर्याय नमः' मन्त्र का आदि अक्षर सू दीर्घ हैं और 'दत्तात्रेयाय नमः' मन्त्र का आदि अक्षर 'द' ह्रस्व है किन्तु संक्षेप बीज सू =, द = दां बनते हैं। कुछ नामों या

मन्त्रों के आद्यक्षर में किना कुछ मिलाए ही उन्हीं आद्यक्षरों के बीज बनते हैं; जैसे–भैषज्य गुरु=भै, सद्योजात=स, पूजामेघसार=पू। घ= एकजटाक्षर स्वर बीज हैं।

मध्याक्षर संक्षेप–वज्र कर्म के मध्य का अक्षर क है, यही इसका अनुस्वार-सहित बीज 'कं' बनता है। वज्रगन्ध के लिए 'गः' विसर्ग युक्त मध्याक्षर बीज बनता है। वज्रहास और वज्रमाला के क्रमशः **हः** और **मं** संक्षेप है। यहाँ दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दिया गया है। वज्रदीप और वज्रगीता के बीजाक्षर **'दीः'** और **'गीः'** में वही स्वर हैं विसर्ग के साथ। तथागतजिह्वा और तथागत करुणा, तथागतवस्त्र तथागतहास में जि, क, व, ह समास के उत्तर पद के प्रथमाक्षर हैं। सहचित्तोत्पाद धर्म चक्र में 'च' उपान्त्य है। 'अमोघपाश' में मो आरम्भ से दूसरा है। मध्याक्षर संक्षेप बीज बनाने के अनेक प्रकार होते हैं। बीजाक्षर बनाने की विधि परम्परागत पद्धतिबद्ध होती है। आचार्यों ने जो पद्धति बनाई है, उसी के अनुसार बीज बनाने की परम्परा है।

अन्त्याक्षर संक्षेप–अग्नि के लिए संक्षेप बीज 'न' है, वज्रराजा के लिए 'जा' है, समन्तभद्रायु के लिए 'यु' सुबाह के लिए 'हूँ', शताघ्नी के लिए 'घ्नी', गूढ़ के लिए 'ढ'। ये तो सरल सुत्रोध अन्त्याक्षर बीज बने हैं, किन्तु ब्रह्मा का अन्त्याक्षर बीज 'मैं' बहुत गूढ़ है। चन्द्रप्रभ, रत्नमुकट के बीजाक्षर भ और ट के अन्त्य स्वर लेकर बने हैं अर्थात् दोनों का बीजाक्षर 'अ' है। 'ल' बीज का प्रयोग आदि, मध्य और अन्त्य तीनों के लिए हुआ है। जैसे– लवण का 'ल' आद्यक्षर संक्षेप है, ह्लादन का 'ल' मध्याक्षर संक्षेप हैं और तैल का 'ल' अन्त्याक्षर संकेत है। ध बीजाक्षर धन, धान्य, बुद्धि, इन्द्रध्वनि, ध्यान, धन्वन्तरि आदि बहुतों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

भिन्न प्रयोग– बहुसंख्यक बीजाक्षर अपने संक्षेपों से भिन्न मिलते हैं; जैसे–वज्र पारमिता के लिए 'हूँ', धर्म पारमिता के लिए 'ह्रीः' और रत्नपारमिता के लिए 'त्रः' बीजाक्षर हैं। महामायूरी धारणी का संक्षेप बीजाक्षर बं है। महामेघ सूत्र का संक्षेप बीजाक्षर ओं है। रश्मिविमल विशुद्ध प्रभाधारणी का बीजाक्षर अं है। दिव्य दुन्दुभि-मेघनिर्घोष और समन्तभद्र दोनों नामों के लिए 'अ' बीजाक्षर है। अवलोकितेश्वर का बीजाक्षर 'श' है और एकादश मुख अवलोकितेश्वर का बीजाक्षर 'कं' है। चिन्तामणि चक्र सहस्रबाहु अवलोकितेश्वर का बीजाक्षर 'ह्रीः' है।

बीजाक्षरों के इन भिन्न प्रयोगों के अतिरिक्त एक ही बीजाक्षर के विभिन्न देवताओं, धारणियों और सूत्रों के लिए प्रयोग मिलते हैं।

सांख्यिक प्रयोग–बीज मन्त्रों के बीजों की संख्या के आधार पर उनको पंचाक्षर, द्वादशाक्षर मन्त्र आदि कहा जाता है। वैष्णव तन्त्र में 'रां' यह एकाक्ष[र] मन्त्र है। इसी से एकत्रिंशार्ण (३१ अक्षर) तक के मन्त्र बनाए गए हैं। शैवमत क[ा] पंचाक्षर मन्त्र **'नमः शिवाय'** है। इसी में ॐ को जोड़ देने से यह षडक्षर **'ॐ नम**

शिवाय' कहलाता है। रामानुजीय वैष्णव सम्प्रदाय का अष्टाक्षर मन्त्र **'ॐ नमो नारायणाय'** है। **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय** यह द्वादशाक्षर मन्त्र है। पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का **'श्रीकृष्णः शरणं मम'**–अष्टाक्षर मन्त्र है और रामानन्दी वैष्णवों का **'रां रामाय नमः'**–यह षडक्षर मन्त्र है।

एक अक्षर, तीन अक्षर, पाँच अक्षर आदि संख्यक अक्षरों से बने सांख्यिक-मन्त्रों में बीजों की गणना करके दी जाने वाले संख्याएँ वस्तुतः मन्त्र-विशेष में आए उसके प्रत्येक अक्षर को किसी घटना अथवा अर्थ-समूह के प्रतीक के रूप में ग्रहण कर गणनाएँ की गई हैं।

मन्त्र के अन्तर्गत प्रत्येक बीजाक्षर शब्द के प्रत्येक अक्षर के विभिन्न अर्थ या योजन व्यक्त करता है। जैसे 'नमः शिवाय' इस पंचाक्षर मन्त्र में शि=शिवत्त्व, ा=सदाशिवतत्त्व का प्रतीक है। त्र्यक्षर मंत्र 'ॐ' है। इसमें अ-उ-म तीन अक्षर ोते हैं। इन तीनों अक्षरों में अं उं मं बीजाक्षर बनते हैं, इनमें से अं=शिवयोग, ावमन्त्र और शिवतत्त्व के लिए है। उं सदाशियोग, सदाशिवपूजा, सदाशिव तत्व ौर 'मं' परमशिवतत्त्व, परमशिवजप, परमशिवयोग अर्थात् एक से अधिक का तेनिधित्व करते हैं।

शीर्षक प्रयोग– प्रायः सांख्यिक प्रयोगों को शीर्षक मानकर फिर उसके प्रत्येक क्षर की व्याख्या की जाती है। जैसे ॐ एक त्र्यक्षर बीजमन्त्र है। इसें अ उ म तीन क्षर हैं। इन तीनों अक्षरों द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय की अवस्थाओं का अक्षरों क्रम में भेद द्वारा निरूपित किया गया है।

वर्ण माला का दर्शन और पूजा दोनों में ही प्रयोग मिलता है। पंच ज्ञान-इन्द्रियों और कर्म इन्द्रियों के लिए स्वर और व्यंजन दोनों का साथ-साथ प्रयोग होता है; जैसे- ॐ उं टं ठं डं णं श्रोत्रत्वक् चक्षुर्जिह्व घ्राणात्मने ॐ शिखायै वषट्। ॐ एं तं थं दं ं वाक्पाणिपादपायूतस्थात्मने एं कवचाय हुम्।

शब्द ब्रह्म की महती शक्ति बीजाक्षरों में निहित रहती है। जो साधक बीजाक्षरों का य जानकर मन्त्र साधना करता है, उसे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होकर का साक्षात्कार होता है। सभी प्रकार की सिद्धियाँ बीजाक्षरों में निहित हैं अतः द्र चाहने वाले साधकों को बीजाक्षरों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

❑❑

८ / वैदिक और पौराणिक वाङ्मय में तन्त्रविद्या

पुराणों में जराजीर्णऋषि च्यवन को अश्विनी कुमारों द्वारा नवयौवन प्रदान करने की जो कथा है, उसका मूल ऋग्वेद में है–

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवनात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्राऽऽदित्पतिमकृणुतं कनीनाम्।।

–ऋग्वेद १–११६–१०

युवं च्यवानश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुःशचीभिः।

–ऋग्वेद १–११७–१३

भावार्थ यह है कि अश्विनी कुमारों ने च्यवन ऋषि के गलित पलित चमड़े को उनके शरीर से कपड़े की तरह उतार कर उन्हें युवा बना दिया और उनकी आयु बढ़ाकर उन्हें युवती कन्या का पति बना दिया।

बृहद्देवता (७।४२-४७) में घोषा नाम की एक ऋषि-कन्या की लम्बी कहानी है। जिसका सारांश यह है कि 'कक्षीवान् ऋषि की अभागिन पुत्री घोषा गन्दे चर्म रोग से आक्रान्त होने के कारण अविवाहित ही रही। साठ वर्ष की आयु हो जाने पर उसे महान् दारुण व्यथा सताने लगी। उसने यह सोचकर कि न तो मुझे बचपन में सुख मिला, न प्यार मिला, न युवावस्था में दाम्पत्य-जीवन का सुख मिला। न तो मेरे कोई सन्तान है, न मेरा कोई पति है, अब मैं वृद्धा हो चली हूँ किन्तु सुखोपभोग की कामना मुझमें प्रबल है, आश्विनीकुमारों से अपनी मनोव्यथा कहकर उनसे जवानी और तन्दुरुस्ती माँगी। अश्विनीकुमारों ने उसे नवयौवन और अनिन्द्य रूप, निर्विकार स्वास्थ्य देकर उसका विवाह भी करा दिया।

इस कथा का मूल स्रोत ऋग्वेद है-

घोषायै चित् पितृषदै दुरोगे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्।

–ऋग्वेद-१-११७-७

उपर्युक्त दो उदाहरणों से भी अधिक चमत्कारी सिद्धि कथा दध्यङ् ऋषि की है। शतपथ ब्राह्मण (१४।१।१।१८-२४ एवं बृहदारण्यक १।१।१८-२४) में जो कथा मिलती है, उसका सारांश यह है–

दध्यङ् ऋषि को मधु विद्या प्राप्त थी। इन्द्र ने ऋषि को धमकाया कि यदि तुमने यह विद्या किसी और को बताई तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग हो जाएगा। अश्विनीकुमारों ने दध्यङ् ऋषि के पास जाकर उनसे मधुविद्या का उपदेश देने की प्रार्थना की तो उन्होंने सिर काट लेने की इन्द्र की धमकी को बताकर विवशता प्रकट की। अश्विनीकुमारों ने उन्हें आश्वासन दिया। ऋषि को उनकी सिद्धियों, औषधियों पर विश्वास था कि वह मधुविद्या का उपदेश देने के लिए राजी हो गए तो अश्विनीकुमारों ने उसका सिर काट कर अलग सुरक्षित रख दिया और उसकी जगह घोड़े का सिर लगा दिया। घोड़े के मुख से दध्यङ् ऋषि ने अश्विनी कुमारों को उपदेश दे दिया, यह बात इन्द्र का मालूम हुई तो उसने वहाँ पहुँचकर उनकी गर्दन काट डाली। घोड़े का सिर कट जाने पर अश्विनीकुमारों ने ऋषि के कटे हुए सुरक्षित सिर को फिर लगा दिया।

इस कथा का मूल स्रोत ऋग्वेद है–

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।
स वां मधु प्र वोचदृतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम्।।

—ऋग्वेद १।११७।२२

इस तरह ऋग्वेद के अनेक स्थलों में सिद्धियों के चमत्कार मिलते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों में तो सिद्धि चमत्कार पदे-पदे मिलते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् (१।१२) में कुत्ते द्वारा सामवेद का 'हिंकार' गायन करना, अन्यत्र (४।५-८) जाबाल सत्यकाम को वृषभ, अग्नि, हंस और मुद्ग द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश देना।[1] बृहदारण्यक उपनिषद् (१।५।२१) में याज्ञवल्क्य से शाकल्य ऋषि का विवाद छिड़ जाने पर याज्ञवल्क्य द्वारा अनर्गलवक्ता शाकल्य से यह कहे जाने पर कि तुम अनर्गल प्रलाप करते हो, तुम्हारा सिर धड़ से अलग हो जाएगा-शाकल्य का सिर कटकर गिर जाना। छान्दोग्य उपनिषद् (५।२।३) में सिद्ध पुरुषों का परिचय देते हुए यह कहा जाना कि यह अपनी सिद्धियों द्वारा ठूँठ वृक्ष में भी शाखाएँ, पत्ते, फूल, फल उत्पन्न कर देते हैं। कठोपनिषद् में नचिकेता का यम के यहाँ जाना उनसे तीन 'वर' प्राप्त करना आदि सिद्धि चमत्कार ही हैं।

---

१. उत्तर मध्य काल में महाराष्ट्र के किशोरवय सिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर जी महाराज ने भैंसे के मुँह से वेद मन्त्रों का पाठ कराया था।

वैदिक वाड्मय में सिद्धि चमत्कारों का खजाना अथर्ववेद है। इसमें सहस्रों आश्चर्यजनक कार्यों के विधान और मन्त्र मिलते हैं। हाथ में स्पर्श करने मात्र से असाध्य रोगों का दूर होना (४।१३), भयंकर से भयंकर विष मन्त्र द्वारा दूर करना (४।७।७-५६), मन्त्र द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त करना (४।२०), घातक, मारक कृत्या प्रयोगों को मन्त्र द्वारा नष्ट कर देना (५।१४, ५।३१), शाप देनेवाले को ही विनष्ट कर देना। (६।३७)।

अथर्ववेद में मणि-मन्त्र-ओषधि-तन्त्र के प्रयोग से सिद्धियाँ प्राप्त करने के अनेक विधान हैं। यहाँ पर मणि का अर्थ जवाहरात नहीं, वनस्पतियाँ ओषधियाँ हैं।[1] प्रतिसरणमणि को धारण करने से अनेक कार्य सिद्ध होते हैं (८।५)। यह मणि शौर्य, ऐश्वर्य की वृद्धि करती है। शत्रु को निर्मूल करती है, मारण प्रयोगों, कृत्या प्रयोगों को निष्फल बनाती है।[2] वरण मणि शत्रु-नाश करती है (१०।३)। सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों को तीन दिन में नष्ट करती है।

अथर्ववेद भौतिक, आध्यात्मिक लाभ कराने वाली अनेक सिद्धियों का प्रतिपादन कर उनका सविस्तार विधान बताता है।

निर्माणकायसिद्धि

निर्माणकाय का दूसरा नाम निर्माण-चित्त भी तन्त्रशास्त्र, योगशास्त्र और दर्शनशास्त्रों में मिलता है। महाभारत के अनुशासन पर्व की टीका के अन्तर्गत नीलकण्ठ ने निर्माणकाय का प्रामाणिक अर्थ इस प्रकार बताया है–

निर्माणमनेकधा भवनम् योगेन अनेकशरीरधारणमिति। तात्पर्य यह कि योगबल से अनेक शरीर धारण करना 'निर्माणकाय' या 'निर्माण-चित्त' है।

विविध प्रकार की सिद्धियों में 'निर्माणकाय' सिद्धि का प्रमुख स्थान है। इस सिद्धि का स्वरूप अनेक शास्त्रों में वर्णित है। सांख्य शास्त्र के प्रख्यात आचार्य पंचशिख ने लिखा है कि परमर्णि कपिल ने निर्माण चित्त में अधिष्ठित होकर आसुरि को तन्त्र का उपदेश दिया। महायान सम्प्रदाय में समस्त जीवों के उद्धार के लिए तथागत के निर्माणकाय धारण करने के अनेक प्रसंग उल्लिखित हैं। आचार्य वसुबन्धु ने असंगाचार्य के **'महायान सूत्रालंकार'** ग्रंथ की व्याख्या में **सम्भोगकाय** और **निर्माणकाय** का पृथक् बोध कराते हुए लिखा है कि 'सम्भोगकाय' निजी प्रयोजन साधने का हेतु होता है और 'निर्माणकाय' दूसरे जीवों के कल्याण-साधन का हेतु रखता है। न्याय-ग्रन्थों में यह स्वीकार किया गया है कि

---

१. एकमुखी रुद्राक्ष।

२. वरण वृक्ष कश्मीर में रागना देवी के मंदिर के आस-पास पहाड़ में मिलते हैं।

ईश्वर संसार का मंगल-साधन करने के लिए समय-समय पर मनुष्य-शरीर ग्रहण कर अवतरित हुआ करता है। न्यायशास्त्र 'निर्माणकाय' को 'माया' रूप कहता है। शांकर दर्शन में न्यायशास्त्र के इस सिद्धान्त का साक्षात्कार बहुत जगह पर किया गया है। वेदान्तसूत्र (१।१।२०) के भाष्य में शंकर भगवत्पाद ने लिखा है कि **''ईश्वर स्वेच्छावश जीवों पर अनुग्रह करने के लिए लौकिक शरीर धारण करता है।''** महाभारत में लिखा है कि नारद ने श्वेतद्वीप में जाकर भगवान् के 'मायारूप' के दर्शन किए।

ईश्वर की तरह योगी, सिद्धपुरुष भी लोक-कल्याण-कामना रखकर विभिन्न शरीर धारण किया करते हैं। निर्माणकाय धारण करने के अन्योन्य प्रयोजन भी शास्त्रों में मिलते हैं–

श्रीमद्भागवत से ज्ञात है कि सौन्दर्यमृतरसमूर्ति साक्षात् मन्मथ-मन्मथ भगवान् श्रीकृष्ण रासोत्सव में गोपियों के साथ रमण करने की कामना से अपने विग्रह को अनेक रूपों में विभक्त कर एक से अनेक हो गए थे। जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही श्रीकृष्ण थे–

रेमे स भगवान् ताभिरात्मारासोऽपि लीलया।

यहाँ पर 'लीलया' पद से 'निर्माणकाय' का ही संकेत लक्षित किया गया है। अन्यत्र श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के उत्तरार्द्ध में लिखित है कि एक बार नारद मुनि भगवान् श्रीकृष्ण के गार्हस्थ्य चरित्र को देखने की इच्छा रखकर द्वारकापुरी गए। वहाँ उन्होंने देखा कि विभिन्न कार्य करते हुए अनेक श्रीकृष्ण विद्यमान हैं। सोलह हजार स्त्रियों में हर एक के भवन में श्रीकृष्ण विद्यमान हैं। भगवान् की इस काव्यव्यूह सम्पत्ति के लोकातीत चमत्कारों का स्मरण करते हुए महर्षि व्यास ने लिखा है कि–

इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेधिनाम् ।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह।।
कृष्णास्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ।
मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितौ जातकौतुकः।।

वाचस्पति मिश्र ने भामती की व्याख्या (४।४।११) में लिखा है कि सौभरि नाम के मुनि ने राजा मान्धाता की पाँच सौ कन्याओं से विवाह कर एक ही समय में पाँच सौ रूप धारण कर पाँच सौ कन्याओं के साथ रमण किया।

योगियों को जब आत्मज्ञान की उपलब्धि हो जाती है और उनके कर्म शेष रह जाते हैं, तो कर्मों को भोगने के लिए वे अनेक शरीर धारण कर उन शरीरों के द्वारा

अवशिष्ट कर्मों को भोग कर आवागमन से रहित हो जाते हैं। यदि अवशिष्ट कर्म न भोगे जाएँ तो पुनः जन्म धारण करना पड़ता है। वात्स्यायन ने न्याय कुसुमांजलि में लिखा है कि ''योगी में जब ऋषियों का प्रादुर्भाव हो जाता है तो वह अद्‌भुत इन्द्रिय सामर्थ्यवान् बन जाते हैं। भिन्न-भिन्न रूप धारण करने की शक्ति उनमें आ जाती है।''

श्रीशंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र (१।३।२७) के भाष्य में लिखा है कि 'योगियों की भाँति देवताओं में भी 'काव्यव्यूहसम्पत्तिसिद्धि' देखी जाती है, जिसमें वे एक ही समय में अनेकानेक शरीर धारण कर एक ही समय में होने वाले यज्ञों में यज्ञ-भाग लेने के लिए उपस्थित हैं?

स्वेच्छामृत्यु-सिद्धि के लिए योगीजन 'कायव्यूह' का अवलम्बन करते हैं। एक के बाद एक शरीर को बदलते रहते हैं। इस तरह कर्म फलों के भोग की समाप्ति के बिना उन्हें मृत्यु की संभावना नहीं रहती हैं। एक ही शरीर से समस्त कर्मों को भोगना संभव नहीं होता है, इसलिए योगी लोग अनेक शरीर धारण कर कर्मों को भोगते हैं। जब सब कर्मों का फल भोग लेते हैं, कुछ अवशिष्ट न रहने से पुनर्जन्म की संभावना मिट जाती है, तभी वह शरीर छोड़कर कैवल्य पद प्राप्त करते हैं।

पातंजलि ने '**सोपक्रम**' और '**निरुपक्रम**' दो प्रकार के कर्म बताये हैं। वाचस्पति मिश्र ने इसकी टीका में लिखा है कि ''योगी अपने 'सोपक्रम' कर्म को जानकर अनेक प्रकार की कामनाएँ उत्पन्न कर कर्म फल का भोग करता है। तत्पश्चात् अपनी इच्छा से मरता है।''

'निर्माणचित्त' या 'निर्माणकाय' अथवा 'कायव्यूह' की उत्पत्ति के विषय में भी शास्त्रों में बहुत कुछ विचार किया गया है–

देवताओं द्वारा शरीर धारण किए जाने के सम्बन्ध में वाचस्पति मिश्र ने 'भामती' की टीका में लिखा है कि 'देवताओं के शरीर सामान्य मनुष्यों की भाँति माता-पिता के संयोग से नहीं उत्पन्न हुआ करते हैं, बल्कि साक्षात् महाभूतों से इच्छामय शरीर उत्पन्न होते हैं। देवता इच्छा रूप होते हैं, उनका ज्ञान एकदेशीय, एककालिक नहीं होता है और न उनके शरीर में कोई विकृति उत्पन्न होती है देवता पंचमहाभूतविजयी होते हैं, इसलिए सब कुछ उनकी इच्छा से निर्मित हुआ करता है।''

शंकराचार्य (ब्रह्मसूत्र ४।४।१५) तथा योगशास्त्र का एक ही मत है कि योगी लोग इच्छामात्र से अनेक रूप धारण करते हैं। उन अनेक शरीरों के निर्माण में प्रेरक भूतचित्त रहता है। इसलिए अशरीरों को 'प्रयोजक चित्त' भी कहा जाता है।

न्यायशास्त्र के मत से निर्माणकाय की उत्पत्ति में परमाणु ही उपादान कारण होते हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शन में आचार्य अभिनव गुप्त ने भी यही कहा है कि ''योगी के 'निर्माणकाय' के उत्पादन में पूर्व परमाणु आदि पदार्थ ही उपादान हैं, जिनसे योग संविद् अद्‌भुत शक्तियाँ और नाना रूप धारण करने की क्षमता प्राप्त करते हैं।''

'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (१८४-१८५) का निष्कर्ष है कि ''बाह्य-दृष्टि से निर्माणकाय तो वास्तविक ही जान पड़ता है, किन्तु तात्विक दृष्टि से वह केवल 'मायारूप' होता है। योगी लोग स्वेच्छावशात् किंचित्काल-पर्यन्त विशिष्ट अभिप्राय बुद्धि से निर्माणचित्त को उत्पन्न कर लेते हैं। निर्माणकाय धारण करने के अनेक तात्पर्य होते हैं– कहीं तो करुणावश उपदेश देने के लिए निर्माणकाय उत्पन्न किया जाता है, कहीं धर्म का ह्रास होता हुआ देखकर धर्म की रक्षा के लिए, कहीं इच्छा मृत्यु के सम्पादन के लिए और कहीं भौतिक अभिप्रायवश कायव्यूह या निर्माणकाय ईश्वर या योगीजन अथवा सिद्ध महापुरुष धारण किया करते हैं। प्रयोजन पूरा हो जाने के बाद निर्माणचित्त स्वतः तिरोधान हो जाया करता है। इसलिए निर्माणचित्त को सर्वथा मायिक रूप ही समझना चाहिए।

तापस-सिद्धि

'तपति सन्तापयति कायं वाचं मानसं वा तत्तपः इति'। इस व्युत्पत्ति के अनुसार शरीर मन और वचन द्वारा कष्ट झेलकर जो जप, अनुष्ठान आदि कर्म किए जाते हैं, वह तप है। तप द्वारा जो सिद्धि प्राप्त होती है, उसे 'तापस सिद्धि' कहते हैं। ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना, मौन रहना, हितभाषण, मितभाषण, सत्यभाषण, एक नारीव्रत, पातिव्रत आदि जो भी कर्म मन, वचन को शुद्ध रखकर संयम-नियम-निष्ठापूर्वक किए जाएँ, उन सबका परिगणन कायिक 'तप' में होता है। शास्त्रों का अभ्यास, स्वाध्याय, चिन्तन वाचिक-तप है। सब प्रणियों का हित - चिन्तन करना, सबसे सुहृदभाव रखना है–

मानसिक तप है। कायिक, वाचिक, मानसिक तप का स्वरूप गीता में बताया गया है –

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मय तप उच्यते।।
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरत्येतत्तपो मानसमुच्यते।।

भामतीकार ने हितभाषण, मितभाषण, मेध्य (पवित्र), अशन (भोजन) के संयम से आत्मसाक्षात्कार कराने वाली सिद्धि का नाम 'अनाशक-तप' बताया है। श्रुति भी इसका समर्थन करती है–

तमात्मानं ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन।

शास्त्रों में कामनाशन भी 'तपस्' शब्द से प्रसिद्ध है। मन्त्र-सिद्धियाँ भी वाचिक तप से प्रादुर्भूत होती हैं। मन्त्र के जप को वाचिक तप कहा गया है। मन्त्रों के जप से भी सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जैसे 'ऐं' यह सरस्वती का बीज मन्त्र है। इसके आदि और अन्त में ॐ का सम्पुट लगाकर - ॐ ऐं ॐ -जपने से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

दुर्गा सप्तशती के सौ पाठ, सहस्र पाठ का प्रभाव तथा चण्डी पाठ का साधारण पाठ के प्रभाव सर्वसाधारण में विदित है। 'ललितासहस्रनाम' के जप-अनुष्ठान का प्रभाव कभी भी निष्फल नहीं होता है। अनुष्ठान से सिद्धि मिलती है न कि अध्ययन और विषय ज्ञान से। 'दुर्गा सप्तशती' और 'ललितासहस्र नाम' का प्रयोजन के अनुसार विधिवत् पाठ करने और मूल मन्त्र का जप करने से निःसन्देह सिद्धि प्राप्त होती है। ललितासहस्र नाम का भाष्य श्री भास्कर राय ने किया है। उन्होंने ललितासहस्र नाम के पाठ और जप से ही अद्‌भुत सिद्धियाँ प्राप्त की है। एक जगह उन्होंने लिखा है कि–

'नियुत्वान् वायवागहि'

इस एक मन्त्र-पद के जप से वायु का आवाहन किया जाए तो वायु चलने लगती है। इस मन्त्र को सिद्ध करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। हवा बन्द हो, उसकी आवश्यकता प्रतीत हो तो शुद्ध होकर निष्ठापूर्वक इस मन्त्र का जप प्रारम्भ किया जाए। थोड़ी ही देर में वायु बहने लगेगा। प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय और जाति में मन्त्रों का जप, व्रत, अनुष्ठान आदि अपने-अपने ढंग से प्रचलित है और उनसे कार्य-सिद्धियाँ हुआ करती हैं। पातंजलियोगसूत्र का एक सूत्र है–

'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

सत्य भाषण रूप तप से सिद्धि का फल मिलता है। वाणी सिद्ध हो जाती है। सत्य भाषण मात्र से प्राप्त वाक्सिद्धि शाप और वरदान देने की क्षमता प्रदान करती है। तापस सिद्धि से संकल्प सिद्धि प्राप्त होती है। संकल्प मात्र से योगी जो चाहता है वही प्राप्त करता है। उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं होता है।

संजीवनीविद्या-सिद्धि

पुराणों में अनेक विद्या सिद्धियों के उल्लेख हैं किन्तु संजीवनी विद्या के प्रभाव

और परिणाम से सम्बन्धित तीन ही कथाएँ पुराणों से प्राप्त हैं–

(१) कच - देवयानी उपाख्यान (म०, अ० ७६-७७ (म० पु०, अ० २५-२८))

(२) सान्दीपनसुतप्रत्यर्पण आख्यान (वि० पु० अ० ५-२१)

(३) बभ्रुवाहन कथा (म०, आश्व० ७९-८१)

ये कथाएँ मरे हुए आदमी को जीवित करने के विषय में प्रसिद्ध हैं। कथाएँ लिखना यहाँ अभीष्ट नहीं है बल्कि उनके मूल में निहित विज्ञान तत्त्व का विवेचन करना हमें इष्ट है।

पुराण कथाओं में संजीवनी विद्या की शक्ति से मृतक को पुनरुज्जीवित करने का वर्णन तो है किन्तु इस विद्या का क्या स्वरूप है, किस उपाय या विधान से यह प्राप्त होती है, इस शक्ति को प्राप्त करने की कौन-सी पद्धति है- इत्यादि प्रश्नों का समाधान नहीं मिलता है। हाँ, तन्त्रशास्त्र में संजीवनी विद्या को प्राप्त करने के लिए शतशः विधान है। संजीवनी विद्या का मूल मन्त्र भी मिलता है और संजीवनी विद्या के अनेक भेद और सिद्ध करने की क्रियाएँ भी प्राप्त हैं।

ईशानशिवगुरुदेव पद्धति में संजीवनी मन्त्र के अनुष्ठान का विधान है। संक्षेपतः परिचय दिया जा रहा है–

संजीवनी मन्त्र

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्- भर्गोदेवस्य धीमहि उर्वारुकमिव बन्धनोत् धियो यो नः प्रचोदयात् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।

संजीवनी मन्त्र का जप करने से पूर्व ध्यान करने का विधान है-

ध्यान

स्वच्छं स्वच्छारविन्दस्थितमुभयकरे संस्थितौ पूर्णकुम्भौ।
द्वाभ्यामेनाक्षमाले निजकरकमले, द्वौ घटौ नित्यपूर्णौ।।
द्वाभ्यां तौ च स्रवन्तौ शिरसि शशिकलां चामृतैः प्लावयन्तः।
देहं देवी प्रधानः प्रदिशतु विशदा कल्पजालः श्रियं नः।।

ध्यान के अनन्तर **त्र्यम्बक महारुद्राय नमः** इस मन्त्र से शिव-पूजन करे। तदनन्तर संजीवनी मन्त्र का जप करे। एक लाख जप संख्या पूरी होने पर दशमांश आहुतियाँ देनी चाहिए।

पुराणों के अनुसार यह विद्या शुक्राचार्य को सिद्ध थी। इस विद्या के प्रभाव से वह मरे हुए व्यक्तियों को जिला देते थे।

वस्तुतः तन्त्र ग्रंथों में संजीवनी विद्या का वह विधान लुप्त है, जिससे संजीवनी विद्या सिद्ध होती थी और मृत को जीवित बनाने की शक्ति रखती थी। सम्प्रदाय - भेद से वर्तमान तन्त्र ग्रन्थों में कई प्रकार के संजीवनी मन्त्र हैं और उनके भिन्न-भिन्न विधान हैं। वस्तु तत्त्व का बोध न होने से यह विद्या अपने मूल रूप में अब किसी को अधिगत नहीं होती है। मरे हुए आदमी को जीवित करने की बात यदि छोड़ दें, तो वह अनुभव सिद्ध है कि उक्त संजीवनी मन्त्र का जप, अनुष्ठान से अकाल मृत्यु का भय दूर हो जाता है, मरणासन्न असाध्य रोगी आरोग्यता प्राप्त कर दीर्घायु होता है।

स्तम्भनक्रिया

स्तम्भनक्रिया बहुत प्राचीन विद्या-सिद्धि है। तन्त्रशास्त्रों के अतिरिक्त वेदों में, पुराणों में और महाभारत में इसका उल्लेख और सिद्धि विधान मिलता है। स्तम्भनक्रिया तीन प्रकार की होती है–

मन्त्र साध्य, ओषधि साध्य और इन्द्रजाल साध्य। क्रम से ये तीनों भेद उत्तम, मध्यम और अधम माने गए हैं। किसी भी वस्तु, व्यक्ति को स्तम्भित करना, निश्चेष्ट, स्थिर करना स्तम्भन है।

तन्त्रों में शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और कीलन ये छह कर्म हैं। इन षट्कर्मों में से प्रत्येक कर्म के देवता हैं–

रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, दुर्गा और काली- षट्कर्मों की सिद्धि के लिए इनका पूजन होता है। स्तम्भन क्रिया की देवी 'रमा' हैं। इस क्रिया को सिद्ध करने के लिए 'रमा' के पूजन का विधान है। स्तम्भनक्रिया की सिद्धि के लिए शिशिर ऋतु, पौर्णमासी तिथि, पश्चिम दिशा श्रेष्ठ मानी गई है। पूजन काल में स्तम्भन की 'गदा' मुद्रा का भी संकेत प्रदर्शन करने का विधान है। इसके अतिरिक्त मातृका न्यास, अंग न्यास, कर न्यास, भूत शुद्धि, तत्त्व शुद्धि आदि भी आवश्यक हैं।

स्तम्भन क्रिया की सिद्धि दो प्रकार से की जाती है–एक तो यन्त्र बना कर उसका पूजन, दूसरे मन्त्र का जप, अनुष्ठान। फेत्कारिणी तन्त्र में शत्रु के मुख को स्तम्भित करने का मन्त्र यह है–

ॐ शत्रुमुखस्तम्भनी कामरूपा आलीढकरी ह्रीं फ्रें फेत्कारिणी मम शत्रूणां मुखं स्तम्भय मम सर्वविद्वेषिणं मुखस्तम्भनं कुरु कुरु ॐ हूँ फ्रें फेत्कारिणी स्वाहा।'

अग्नि स्तम्भन का मन्त्र है–

ॐ ह्यं अग्निस्तम्मनं कुरु कुरु।

जल स्तम्भन का मन्त्र –

ॐ नमो भगवते जलं स्तम्भय स्तम्भय

सं सं सं के क के क चर चर

सं समं सके कके कचर।

उक्त मन्त्र से अग्नि का स्तम्भन होता है, कहीं आग लगी हो इस मन्त्र को पढ़ कर जल छिड़क दे तो आग जहाँ की तहाँ रहेगी, चाहे आँधी चले किन्तु आग फैलेगी नहीं।

इसी तरह जल का स्तम्भन मन्त्र प्रभाव रखता है।

अग्नि स्तम्भन, जल स्तम्भन ओषधियों द्वारा भी किए जाते हैं। पुराणों और इन्द्रजाल ग्रन्थों में ओषधियों द्वारा किए जाने वाले स्तम्भन प्रयोग शतशः उपलब्ध हैं। गरुड़ पुराण में गर्भ निरोध का एक प्रयोग यह है–

पलाश (ढाक) के बीजों का चूर्ण शहद के साथ रजस्वला स्त्री तीन दिन तक पिये तो गर्भ नहीं ठहरता। सदा के लिए बन्ध्या हो जाती है।

ये ओषधि प्रयोग अनुभव प्राप्त करके ही किए जाने चाहिए। किसी विशेषज्ञ की देख-रेख में इन प्रयोगों की सिद्धि सफल और हितावह बनती है।

पंचतत्त्व सिद्धि

पंचतत्त्वों की सिद्धि के बिना स्वरोदय साधना नहीं हो सकती है और जप, अनुष्ठान, पूजा, पाठ आदि साधनोपचार पूर्ण फल नहीं दे पाते हैं। पंचतत्त्वों की सिद्धि से भौतिक सिद्धियाँ प्राप्त होने के साथ जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त होता है। पहले पाँच तत्त्वों का ध्यान सिद्ध किया जाता है, इसके बाद उनकी धारणा की जाती है, भूतशुद्धि और तत्त्वशुद्धि से तन, मन निर्विकार बनते हैं। इसलिए किसी भी साधना, सिद्धि, अनुष्ठान को प्रारम्भ करने से पूर्व प्रतिदिन भूतशुद्धि और तत्त्वशुद्धि करनी चाहिए।

पंचभूतों के ध्यान की विधि इस प्रकार है–

शुद्ध, शान्त, एकान्त स्थान पर वज्रासान (दोनों पैरों को पीछे मोड़कर) लगा कर बैठ जाए। दोनों हाथों को सीधा तानकर दोनों हथेलियों को उलट कर घुटनों पर रख ले फिर नासाग्र में दृष्टि स्थिर कर तत्त्वों का चिन्तन करे।

तत्त्व चिन्तन की विधि इस प्रकार है–

१. पृथिवी तत्त्व– इस तत्त्व का स्थान मूलाधान चक्र में है। मूलाधार चक्र गुदा स्थान के ऊपर सुषुम्णा के मुख के साथ संलग्न रहता है। यहीं से सुषुम्णा नाड़ी

प्रारम्भ होती है। मूलाधार चक्र का स्वरूप चतुर्दल युक्त कमल पुष्प के समान है। इसी पर पृथिवी तत्त्व का निवास है। पृथिवी तत्त्व भूः लोक का प्रतिनिधि है। इसका रंग हरताल के समान पीला है। इस तत्त्व की आकृति चतुष्कोण है। वज्रलांच्छित यह पृथिवी आधार-मण्डल में स्थित है। जिस पर सात सूँडों वाले हाथी पर सवार 'लं' बीज है। इसके अधिष्ठातृ देवता इन्द्र है। ऋषि ब्रह्म हैं, छन्द गायत्री है। पृथ्वी तत्त्व का गुण गन्ध है और तदर्थ ज्ञानेन्द्रिय नासिका एवं कर्मेन्द्रिय गुदा है। जिस व्यक्ति का पृथिवी तत्त्व विकृत हो जाता है, या दुर्बल बन जाता है, उसे भय उत्पन्न होता है, पाण्डुरोग पैदा होता है। पृथिवी तत्त्व का ध्यान करने से इस तत्त्व के विकृत होने से उत्पन्न सारे रोग दूर हो जाते हैं।

'लं' बीज वाली पृथिवी का ध्यान करने से नासिका सुगन्धि से भर जाती है, शरीर में स्वर्णिम कान्ति उत्पन्न होती है। पृथिवी तत्त्व का ध्यान करते समय निरंतर 'लं' बीज का जप मन ही मन करते रहना चाहिए।

२. जल तत्त्व–इस तत्त्व का निवास 'स्वाधिष्ठान चक्र' में रहता है। यह चक्र लिंग के मूल भाग में रहता है। इसकी आकृति षट्दल कमल पुष्प के समान है। इसके अधिष्ठाता विष्णु हैं। यह तत्त्व भुवः लोक का प्रतिनिधि है। जल तत्त्व का रंग कपूर या मोगरे के फूल की तरह श्वेत है। इसकी आकृति अर्धचन्द्राकार है। जल तत्त्व का गुण 'रस' है और सभी प्रकार के रसों का आस्वादन इसी से किया जाता है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय जिह्वा है और कर्मेन्द्रिय लिंग है। इसी चक्र में मकर पर सवार वरुण बीज 'वं' है। इसके ऋषि हिरण्यगर्भ हैं, देवता हंस और छन्द त्रिष्टुप् है। जल तत्त्व के विकृत होने पर जलोदर, मस्तिष्क विकार उत्पन्न होते हैं।

जल तत्त्व का उपर्युक्त ढंग से ध्यान करने से मोह, भ्रम, मूर्च्छा आदि रोग दूर होते हैं। भूख, प्यास मिट जाती है तथा अगाध जल में भी साधक डूब नहीं सकता।

३. अग्नि तेजस् तत्त्व– इस तत्त्व का निवास मणिपूर चक्र है। यह चक्र नाभि में स्थित है। इसकी आकृति दशदल युक्त कमल पुष्प के समान है। इसके अधिष्ठातृ देवता वृषभ आरूढ़ त्रिनेत्रधारी शिव हैं। यह स्वः लोक का प्रतिनिधि है। इसकी आकृति त्रिकोण है, रंग रक्त वर्ण है और गुण रूप है। अग्नि तत्त्व की ज्ञानेन्द्रियाँ नेत्र हैं और कर्मेन्द्रियाँ पैर हैं। शरीर में सूजन, क्रोध, नेत्रविकार आदि रोग इस तत्त्व के विकृत होने पर होते हैं। इस तत्त्व की सिद्धि से कुण्डलिनी का जागरण होता है। इस तत्त्व का बीज 'रं' है। इसके ऋषि कश्यप हैं, देवता अग्नि और छन्द त्रिष्टुप् है। इस तत्त्व के विकृत होने से उदरामय, प्लुरिसी, प्लीहा आदि रोग होते हैं।

इस तत्त्व का ध्यान करने से जठराग्नि तीव्र होती है। लू, लपट, आग, बि[illegible]

का भय नहीं रहता है।

४. वायु तत्त्व– इस तत्त्व का निवास अनाहत चक्र है। यह चक्र हृदय-प्रदेशों में है। इसकी आकृति द्वादश दल युक्त कमल पुष्प की भाँति है। इसके देवता त्रिनेत्रधारी ईश हैं जो एक हाथ में वर, दूसरे हाथ में अभय मुद्रा धारण किए रहते है। इसी चक्र में वायु तत्त्व का निवास रहता है। यह महःलोक का प्रतिनिधि है। इसकी आकृति षट्कोण है; रंग अंजन - पुंज की भाँति कृष्ण वर्ण है, गुण स्पर्श है। वायु तत्त्व की ज्ञानेन्द्रिय धर्म है, कर्मेन्द्रिय हाथ है। इस तत्त्व के विकृत होने पर वायु-विकार, दमा, श्वास, आदि रोग होते हैं। वायु तत्त्व का बीज हरिण पर सवार 'यं' है। इसकी ध्वजाएँ सदा हिलती रहती हैं और धूं धूं शब्द होता रहता है। इसके ऋषि किष्किन्ध हैं, देवता वायु हैं और छन्द जगती है।

वायु तत्त्व के 'यं' बीज का ध्यान करने से, आकाश-गमन करने की ओर पक्षियों की तरह उड़ने की सिद्धि प्राप्त होती है।

५. आकाश तत्त्व– यह तत्त्व विशुद्ध चक्र में स्थित है। पंचभूतों के ध्यान और धारण में आकाशमण्डल भ्रूमध्य से लेकर मूर्द्धापर्यन्त माना जाता है। इस चक्र में आकृति पोडशदल युक्त कमल की भाँति है। इसके देवता सिंह पर आसीन पंचमुख सदाशिव हैं। उनके दस हाथ हैं। आकाश तत्त्व जन-लोक का प्रतिनिधि है। इसकी आकृति वृत्ताकार है। रंग समुद्र के जल की तरह नीला है। इसका गुण शब्द है। ज्ञानेन्द्रियाँ कान हैं और कर्मेन्द्रियाँ वाणी हैं। इसके विशुद्ध चक्र में ऐरावत पर सवार आकाश बीज 'हं' है।

इस तत्त्व की सिद्धि से 'खेचरी' मुद्रा सिद्ध होती है। परकाय प्रवेश करने की शक्ति उत्पन्न होती है। साधक त्रिकालज्ञ बन जाता है और उसे अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

उपर्युक्त पाँच तत्त्वों का ध्यान निरन्तर छह मास तक दो घण्टे प्रतिदिन करना चाहिए।

ध्यान और धारणा का क्रम इस प्रकार है–

पहले पृथिवी तत्त्व का ध्यान कर कुण्डलिनी के द्वारा जल तत्त्व में विलीन कर देना चाहिए। फिर जल तत्त्व को अग्नि तत्त्व में, अग्नि तत्त्व को वायु तत्त्व में और वायु तत्त्व को आकाश तत्त्व में विलीन करना चाहिए। एक मण्डल को दूसरे मण्डल में विलीन करने में उक्त मण्डल का ही चिन्तन करते हुए प्रणव के द्वारा तीन प्राणायाम करके नीचे लिखे मन्त्र में कार्य-मण्डल को कारण-मण्डल में होम करे–

ॐ (मण्डल का नाम) ..... मण्डलं .....मण्डले जुहोमि स्वाहा।

एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में विलीन करने के मन्त्र ये हैं–

(१) पृथिवी तत्त्व का चिन्तन करते हुए उसे जल तत्त्व में विलीन करते हुए यह मन्त्र पढ़ना चाहिए–

ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिवी व्याधिपतये

निवृत्त्कलात्मने हुँ फट् स्वाहा

(२) जल तत्त्व को अग्नि तत्त्व में विलीन करते हुए–

ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठा कलात्मने

हुँ फट् स्वाहा

(३) अग्नि तत्त्व को वायु तत्त्व में विलीन करते हुए–

ॐ ह्रें रुद्राय तेजाधिपतये विद्याकलात्मने

हुँ फट् स्वाहा

(४) वायु तत्त्व को आकाश तत्त्व में विलीन करते हुए–

ॐ ह्रैं ईशानाय वायव्याधिपतये शान्तिकलात्मने

हुँ फट् स्वाहा

(५) इसके बाद आकाश को निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए कुण्डलिनी के द्वारा अहंकार में विलीन कर देना चाहिए–

ॐ ह्रौं सदाशिवाय आकाशाधिपतये

शान्त्यतीत कलात्मने हुँ फट् स्वाहा

तदनन्तर अहंकार को महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व को शब्द रूप प्रकृति में; प्रकृति को स्वयं प्रकाश, परम कारण, आन्नद स्वरूप, ज्योति स्वरूप परब्रह्म में विलीन कर देना चाहिए। यही पंचतत्त्व सिद्धि का परम लक्ष्य है।

अनाहतनाद की सिद्धि

बिना किसी आघात के जो नाद (शब्द) उत्पन्न हो उसे 'अनाहतनाद' कहा जाता है। मध्ययुगीन सन्तों ने इसे **अनहदनाद** या **सुरत शब्द** योग कहा है। सन्तों की भाषा में उच्चरित 'सुरत' शब्द दर्शन और तन्त्रशास्त्र के 'स्रोत' शब्द का अपभ्रंश है। स्रोत का अर्थ चित्तवृत्ति का प्रवाह बताया गया है।

अनहदनाद या सुरत शब्द योग नाद-साधना की वह पद्धति है, जिसमें चित-वृत्ति-प्रवाह को शब्द में लय किया जाता है। गुरु द्वारा बताई गई पद्धति से जो व्यक्ति इसका निरन्तर अभ्यास करता है, उसकी चित्तवृत्ति इसी ध्वनि की डोर

के सहारे ऊपर चढ़कर बीच की भूमिकाओं को पार करती हुई 'असम्प्रज्ञात' समाधि में सहज लीन हो जाती है।

'नादबिन्दु उपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, योगदर्शन (विभूतिपाद), ध्यानबिन्दु उपनिषद्, शिवमहापुराण और तन्त्रशास्त्र में अनाहतनाद का विस्तृत विवेचन मिलता है। इन शास्त्रों के अतिरिक्त कबीर, नानक, बुल्ला साहब, तुलसी साहब, जगजीवन साहब, गुलाल, चरण दास, गरीब दास, एवं राधा स्वामी सम्प्रदाय के सन्तों की बानियों में सुरत शब्द योग का विस्तृत विवरण मिलता है।

विराट् में कुल ३६ मण्डल हैं और वे सब अपना-अपना अलग रंग, रूप, शब्द और अधिकार रखते हैं, विराट् के प्रकट और अप्रकट इन्हीं छत्तीस मण्डलों के आधार पर वीणा के ३६ तारों का निर्माण हुआ है और ३६ राग-रागिनियों का आविर्भाव हुआ है। यह अनहदनाद शब्द ब्रह्म की उपासना की एक पद्धति है।

विराट् के ३६ मण्डलों में से केवल दस मंडलों के ही स्वर प्रकट रूप में सुनाई देते हैं, शेष २६ मंडलों के शब्द स्वर रूप से गुप्त रूप से संचालित हुआ करते हैं। इन सभी मंडलों की अपनी अर्द्ध मात्राएँ अलग-अलग हैं और उनके बीज (शिव) भी अलग - अलग हैं। प्रत्येक मंडल में जो सूत्र इस स्थूल जगत् में आता है, वह स्वर या शब्द रूप में होता है, लेकिन इनमें से केवल दस प्रकार का अनहद् ही कान से साधना अभ्यास द्वारा सुना जा सकता है, शेष ३६ प्रकार के अनहदनाद केवल उच्च स्तर पर पहुँचने के बाद अनुभव द्वारा सुने जा सकते हैं। क्योंकि दस मंडल अपरा के क्षेत्र में तथा २६ मंडल परा के क्षेत्र में है, ये दसों मंडल अखण्ड अर्धमात्रा के नीचे अध चिन्द्राकार घेरे में स्थित हैं और वही से शब्द प्रकट हुआ करता है। शिवमहापुराणों के छब्बीसवें अध्याय में अनहदनाद का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि "यह अनहदनाद कालजयी और मोक्ष देने वाला है। जो मनुष्य नित्य दो घड़ी इसका अभ्यास करता है वह इच्छानुसार मृत्यु को जीत सकता है। वह सर्वज्ञ होकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप धारण कर सकता है। अनहदनाद की सिद्धि प्राप्त कर योगी संसार - बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। वे आलस्य, निद्रा, काम, क्रोध को जीत कर शब्द ब्रह्म की साधना करते हैं। अनदहनाद की साधना में ॐ अक्षर बीज, मन्त्र आदि कुछ भी नहीं रहता है। यह अनाहत उच्चारण में न आने वाला परम कल्याणकारी शब्द ब्रह्म है।"

अनाहतनाद के दस मण्डल और मण्डलों से आने वाले शब्दों का स्वरूप इस प्रकार है–

मण्डल	मण्डल से आने वाले प्रकट शब्द
१. संहारदेव का लोक	पायल की झंकार-सा शब्द
२. पालकदेव का लोक	समुद्र-घोष-सा शब्द
३. सृजकदेव का लोक	मृदंगध्वनि-सा शब्द
४. सहस्रदल कमल मण्डल	शंखनाद जैसा शब्द
५. आनन्द मण्डल	तुरही नाद जैसा शब्द
६. चिदानन्द मण्डल	वंशीरव जैसा शब्द
७. सच्चिदानन्द मण्डल	बीन जैसा शब्द
८. अखण्ड अर्द्धमात्रा	सिंहगर्जन जैसा शब्द
९. अगम मण्डल	नफीरी जैसा शब्द
१०. अलख मण्डल	बुलबुल की आवाज जैसा शब्द

अनाहतनाद सुनने की अभ्यास-विधि

१. प्रातःकाल शौच, स्नान आदि से निवृत्त हो पवित्र एकान्त स्थान में शवासन से सीधे लेट जाए। हाथ के दोनों अँगूठों से दोनों कानों को बन्द कर लेने पर अन्दर ही अन्दर ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। साधक को चाहिए कि केवल दाहिनी ओर के शब्दों को सुने, बायीं ओर के शब्द 'माया' के होते हैं, उन्हें त्याग देना चाहिए।

२. रात में सबके सो जाने पर अन्धकार में सिद्धासन पर बैठकर श्वास को रोक योग का प्रयोग करे। एक मुहूर्त्त तक तर्जनी अँगुलियों से कानों को बन्द करके अग्नि प्रेरित शब्दों को सुने।

३. योनिमुद्रा से (हाथ के दोनों अँगूठों से कान, मध्यमा से नाक के दोनों छिद्र, अनामिका कनिष्ठा से मुँह और तर्जनी से दोनों आँखें) आँख, कान, नाक, मुँह को बन्द करके दोनों भौहों के बीच प्रातःकालीन सूर्य के तेज का ध्यान करने से ज्योति दर्शन होने लगता है और अनहदनाद सुनाई पड़ने लगता है।

उमासंहिता में दस प्रकार के अनहदनाद बताए गए हैं जिनमें शब्द ब्रह्म से प्रकट हुए नौ शब्द हैं। जिन्हें प्राणवेत्ताओं ने सिद्धकर साक्षात्कार किया है वे नौ शब्द ये हैं–

१. घोष, २. कांस्य, ३. भृंग, ४. घण्टानन्द, ५. वीणा, ६. वंशज (बाँसुरी), ७. दुन्दुभि, ८. शंख और ९. मेघगर्जन।

१. इन नौ प्रकार के मृत्युजंयी नादों में पहला नाद **'घोष'** होता है। यह आत्मा को शुद्ध कर सम्पूर्ण दैहिक, दैविक, भौतिक व्याधियों को दूर करता है। वशीकरण,

आकर्षण करने वाला यह उत्तम नाद है।

२. **कांस्यनाद** सर्म्पूण प्राणियों की गति को निश्चत बनाता है। विष, भूत, प्रेत तथा ग्रहों के दोष दूर कर देता है।

३. **शृंगनाद आभिचारक** है। यह शत्रु के उच्चाटन और मारण के काम आता है।

४. **घण्टानाद** का दूसरा नाम शिव भी है। यह देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य सभी को आकृष्ट करता है। साधक के सभी अभीष्ट पूरे करता है।

५. **वीणानाद** से दूरदर्शिता प्राप्त होती है।

६. **वंशीनाद** से तत्त्व ज्ञान प्राप्त होता है।

७. **दुन्दुभिनाद** से जरा-मरण से छुटकारा मिलता है।

८. **शंखनाद** से यथेच्छ रूप धारण करने की सिद्धि मिलती है।

९. **मेघगर्जन** नाद से साधक शिवत्व प्राप्त करता है।

अनहदनाद का अभ्यासी साधक मरते समय जिस नाद को पकड़ लेता है, उसी मण्डल में उसकी आत्मा पहुँच जाती है जहाँ से शब्द आ रहा हो। नादमण्डल यमलोक से बहुत ऊपर है, इसलिए नाद का अभ्यासी साधक मरने के बाद यमलोक न जाकर नाद-मण्डल में पहुँच जाता है।

स्वरोदय-सिद्धि

स्वरोदय विज्ञान का आधार मनुष्य के श्वास-प्रश्वास की भाँति है। श्वास-प्रश्वास की गति का सम्बन्ध 'इडा' (चन्द्र नाड़ी), पिंगला (सूर्यनाड़ी) और सुषुम्णा नाड़ियों से है। अव्याहतगति से चलता हुआ यह श्वास-प्रश्वास एक साथ ही नासिका के दोनों छिद्रों से नहीं चला करता है। कभी यह बाएँ छिद्र से प्रवाहित होता है तो कभी दाहिने। इसका क्रम और समय भी निश्चित रहता है। श्वास की एक निश्चित संख्या नासिका से प्रवाहित होती है। रोगावास्था में इस रांख्या में अन्तर पड़ जाता है। मनुष्य-जीवन में सारे सुख-दुःख, रोग-दोष, सौभाग्य-दुर्भाग्य तथा दीर्घायु-अल्पायु- सभी इन श्वास-प्रश्वासों से प्रभावित होते हैं और यदि श्वास-प्रश्वास की इस गति को नियन्त्रित कर लिया जाता है तो रोग, शोक, दुर्भाग्य, मृत्यु आदि पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

श्वास-प्रश्वास की इस गति का नाम 'स्वर' है। नासिका के एक छिद्र से दूसरे छिद्र में स्वर के चले जाने का नाम उदय है और स्वर-नियंन्त्रण को 'स्वरोदय साधना' कहते हैं। इस साधना से हीं स्वर की सिद्धि प्राप्त होती है।

स्वरोदय की साधना करने से पूर्व पंच तत्त्वों की उपस्थिति को पहचानने का

ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। शरीर के अन्दर पृथिवी, जल आदि तत्त्वों का उदय श्वास की गति के साथ हुआ करता है। प्रत्येक तत्त्व के उदय होने पर चलते हुए श्वास की गति बदल जाती है; जैसे–

- यदि नासिका छिद्र के मध्य में श्वास चले तो पृथिवी तत्त्व की उपस्थिति समझनी चाहिए।
- छिद्र के निम्न भाग की ओर श्वास चले तो जल तत्त्व की उपस्थिति समझनी चाहिए।
- छिद्र के ऊपरी भाग की ओर श्वास चले तो अग्नि तत्त्व की उपस्थिति समझनी चाहिए।
- छिद्र से तिरछे श्वास चले तो वायु तत्त्व की उपस्थिति समझनी चाहिए।
- घूम-घूम कर श्वास चले तो आकाश तत्त्व की उपस्थिति समझनी चाहिए।

जिस प्रकार प्रत्येक तत्त्व के उदय होने पर श्वास की गति में अन्तर आ जाता है, उसी प्रकार श्वासों की लम्बाई में भी अन्तर आ जाता है; जैसे–

- श्वास की लम्बाई यदि आठ अंगुल हो तो वायु तत्त्व की उपस्थिति रहती है।
- यदि श्वास की लम्बाई चार अंगुल हो तो अग्नि तत्त्व विद्यमान रहता है।
- यदि श्वास की लम्बाई बारह अंगुल की हो तो पृथिवी तत्त्व की उपस्थिति रहती है।
- यदि श्वास की लम्बाई सोलह अंगुल की हो तो जल तत्त्व की उपस्थिति रहती है।
- और यदि श्वास की लम्बाई बीस अंगुल की हो तो आकाश तत्त्व की उपस्थिति रहती है।

श्वास की लम्बाई नापने की विधि– हाथ में धुनी हुई रुई लेकर श्वास की राह में धीरे-धीरे लाया जाए। जहाँ पहुँच कर रुई के रेशे उड़ने लगें, वहीं हाथ रोक कर उस दूरी को अंगुल से नाप कर नाप के अनुसार तत्त्वोदय का निर्णय कर लिया जाए ।

तत्त्वोदय की पहचान– जीभ के स्वाद द्वारा तत्त्वों के उदय को पहचाना जाता है। तत्त्वों निश्चित रंग, स्थान, गति और लम्बाई की भाँति तत्त्वों का एक निश्चित स्वाद भी रहता है। स्वाद द्वारा तत्त्वों की पहचान अनुभव से होती है; जैसे–

यदि मुँह का स्वाद मीठा हो तो पृथिवी तत्त्व, स्वाद कसैला हो तो जल तत्त्व, तीता हो तो अग्नि तत्त्व, खट्टा हो तो वायु तत्त्व और कटु हो तो आकाश तत्त्व का

उदय समझना चाहिए।

तत्त्वों की उपस्थिति ही पहचान रंगों द्वारा– तत्त्वों के रंग को पहचानने की विधि यह है - सुखासन या पद्मासन पर बैठ कर योनि मुद्रा धारण करे। अर्थात् दोनों अँगूठों से दोनों कान के छेद, दोनों तर्जनी अँगुलियों से दोनों आँखें, बीच की दोनों अँगुलियों से नाक के दोनों छेद शेष अनामिका और कनिष्ठा अँगुलियों से मुँह को बन्द कर ले। इस प्रकार योनिमुद्रा धारण करने से यदि पीला रंग दिखाई पड़े तो पृथिवी तत्त्व की उपस्थिति समझनी चाहिए। सफेद रंग दिखाई पड़े तो जल तत्त्व की, लाल रंग दिखाई पड़े तो अग्नि तत्त्व की, श्याम रंग दिखाई पड़े तो वायु तत्त्व की और अनेक रंग एक साथ दिखाई पड़ें तो आकाश तत्त्व की उपस्थिति समझनी चाहिए।

आकार द्वारा तत्त्वों की पहचान– पृथिवी तत्त्व का आकार चौकोर है, जल तत्त्व का आकार चन्द्राकार है, अग्नि तत्त्व का आकार तिकोना है, वायु तत्त्व का आकार गोला अंडाकार है तथा आकाश तत्त्व का आकार बिन्दु के रूप में है। तत्त्वों के इन आकारों को देखने के लिए एक स्वच्छ दर्पण में जोर से साँस छोड़ने पर जो आकार बनता है, उससे तत्त्वों के आकार की पहचान की जा सकती है।

किसी भी स्वर के उदय होने पर पाँचों तत्त्व क्रम से एक निश्चित अवधि तक ही उपस्थित रहते हैं। कोई भी स्वर अपने उदय होने के समय से एक घण्टे तक विद्यमान रहता है। उसी एक घण्टे की अवधि में पाँचों तत्त्व क्रमशः उदय और अस्त होते रहते हैं। प्रत्येक तत्त्व उदय होकर कितनी देर तक विद्यमान रहता है, यह जानने के लिए निम्नांकित काल-तालिका है–

पृथिवी तत्त्व	२० मिनट तक रहता है।
जल तत्त्व	१६ मिनट तक रहता है।
अग्नि तत्त्व	१२ मिनट तक रहता है।
वायु तत्त्व	८ मिनट तक रहता है।
आकाश तत्त्व	४ मिनट तक रहता है।

तात्पर्य यह कि पृथिवी तत्त्व के बाद हर तत्त्व की उपस्थिति का समय क्रमशः चार-चार मिनट कम होता जाता है। जोड़ने से ज्ञात होता है कि सभी तत्त्वों का समय कुल मिलाकर ६० मिनट का होता है, जो कि एक स्वर की उपस्थिति की अवधि है।

इस प्रकार यदि सभी तत्त्वों की लम्बाई भी जोड़ी जाए तो वह भी ६० अंगुल की होती है।

स्वरोदय-विज्ञान का मत है कि यदि कोई कार्य एक निश्चित स्वर और निश्चित तत्त्व की उपस्थिति में किया जाए तो वह कार्य निश्चित ही सफल होता है। इसके विपरीत असफलता मिलती है।

स्वर-विज्ञान के रहस्य को जान लेने पर, दुर्भाग्य पर, दरिद्रता पर, रोग-दोष पर और असफलताओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

स्वरोदय-विज्ञान का रहस्य-बोध– स्वरोदय-विज्ञान का रहस्य सरलतापूर्वक इस प्रकार समझा जा सकता है– मनुष्य का स्वर प्रधानतया बायाँ या दाहिना चला करता है। बाएँ स्वर को 'इडा' नाड़ी का 'चन्द्र स्वर' कहा जाता है और दाहिने स्वर को 'पिंगला' नाड़ी का 'सूर्य स्वर' कहा जाता है। मध्यभाग में जब स्वर चलता है तक सुषुम्णा नाड़ी की उपस्थिति होती है। स्वरों के अनुसार मनुष्य के सारे कार्य तीन भागों में विभक्त रहते हैं और स्वरों का पंचतत्त्वों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। किसी विशेष कार्य की सिद्धि के लिए जहाँ किसी विशेष स्वर का उदय होना आवश्यक होता है, वहाँ तत्त्व विशेष की भी उपस्थिति आवश्यक होती है, अन्यथा कार्य में असफलता होती है।

तात्पर्य यह कि प्रत्येक स्थिर और स्थायी कार्य पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व की उपस्थिति में करने चाहिए; जैसे–शान्ति कर्म, मैत्रीकरण, योगाभ्यास, ओषधि-सेवन, आभूषण-निर्माण, आभूषण-धारण, वस्त्र-धारण, विवाह, दान, यज्ञ, गृह, उद्यान, जलाशय-निर्माण, तुष्टि, पुष्टिवर्द्धक कर्म, रसायन कर्म, दक्षिण-पश्चिम की ओर विदेशगमन, ग्रंथ लेखन, दीक्षा मन्त्रदान, कृषिकर्म आदि कर्म पृथिवी या जल तत्त्व की उपस्थिति में बाएँ स्वर तथा सोम, बुध, गुरु, शुक्र के दिन करने चाहिए तथा भोजन, स्नान, मैथुन (केवल स्वर में ही, इसमें तत्त्व की उपस्थिति आवश्यक नहीं), बही-खाता लिखने का आरम्भ, ऋण देना, मन्त्र सिद्धि, ध्यान, विद्यारम्भ, शत्रु के घर गमन, विष उतारना, भूत-प्रेत उतारना, नौकारोहण, संगीत, क्रय-विक्रय, विवाद इत्यादि कर्म पृथिवी तत्त्व या जल की उपस्थिति में दाहिने स्वर में मंगल, रवि या शनिवार के दिन करने चाहिए।

सुषुम्णा की स्थिति में परम तत्त्व के चिन्तन के अतिरिक्त सभी कार्य त्याज्य हैं। सुषुम्णा और अग्नि तत्त्व की उपस्थिति में गर्भाधान करने से बन्ध्या भी पुत्रवती होती है। सुषुम्णा की जगह सूर्य स्वर होने से भी सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

यदि सुषुम्णा की उपस्थिति में कहीं यात्रा की जाए तो क्लेश और पीड़ा होती है। यदि बायाँ स्वर चल रहा हो, उस समय पूर्व या उत्तर दिशा की यात्रा की जाए तो महान् अनर्थ या प्राणघातक घटना घटित होती है। यदि दाहिना स्वर चलते रहने पर दक्षिण-पश्चिम की यात्रा की जाए तो महान् संकट उपस्थित होता है।

दाहिने स्वर में पूर्व और उत्तम की यात्रा करने से सुख, सम्पत्ति और आनन्द लाभ होता है। बाएँ स्वर में दक्षिण-पश्चिम की यात्रा आनन्दायक, लाभदायक है।

स्वरों की गति के अनुसार प्रश्नों के उत्तर– जिस ओर का स्वर चल रहा हो और प्रश्नकर्त्ता उसी ओर आकर खड़ा हो जाए तो कार्यसिद्धि और विपरीत ओर खड़ा होने पर कार्य हानि होती है। जल या पृथिवी तत्त्व की उपस्थिति में कार्य-सिद्धि होती है और अन्य तीनों तत्त्वों की उपस्थिति में प्रश्नकर्त्ता की कार्यसिद्धि सम्भव नहीं होती है।

पृथिवी या जल तत्त्व की उपस्थिति में जिस ओर का स्वर चल रहा हो, वही पैर पहले उठाकर घर से बाहर चलने पर मनोरथ सिद्ध होता है और जिस ओर का स्वर चल रहा हो उसी ओर उस व्यक्ति.को जिससे अपना कार्य साधना हो-करके बात की जाए तो घोर शत्रु भी परममित्र बनकर कार्य-साधक बनता है।

सूर्योदय से पहले जागकर जिस ओर का स्वर चल रहा हो उसी हाथ को मुँह पर फेरकर शय्या त्यागते हुए उसी ओर के पैर को पहले धरती पर धरे। ऐसा नित्य प्रति नियमित करते रहने से दुर्दिन और दुर्भाग्य समाप्त हो जाते हैं।

यदि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को दाहिना स्वर चले तो पूर्णिमा तक गर्मी से सम्बन्धित कोई-न-कोई रोग अथवा हानि अवश्यम्भावी है और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को बायाँ स्वर चले तो अमावस्या तक शीत सम्बन्धी कोई रोग या हानि होगी। लगातार तीन दिन तक विपरीत स्वर चलते रहें तो कलह या रोग की संभावना होती है। एक महीने तक चन्द्र स्वर विपरीत चलता रहे तो महारोग होता है। एक मास तक दोनों स्वर विपरीत चलते रहें तो स्वयं पर अथवा परिवार पर कोई संकट आता है। यदि यही क्रम लगातार डेढ़ मास तक चलता रहे तो निश्चित ही मृत्यु होती है।

चन्द्र स्वर यदि ४, ८, १४ या २४ घड़ी तक चलता रहे तो प्रेम, मैत्री, वैभव, सुख की प्राप्ति होती है। आधे-आधे पहर दो दिन तक यदि दोनों स्वर चलते रहें तो सौभाग्य और यश मिलता है। दिन में चन्द्र और रात में सूर्य स्वर निरन्तर चलते रहें तो १२० वर्ष की दीर्घायु प्राप्त होती है। यदि ४, ८, १२ या २० दिन तक निरन्तर बायाँ स्वर चलता रहे तो ऐश्वर्य, दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। यदि बायाँ स्वर १० या १२ घड़ी तक निरन्तर चलता रहे, तो शरीर-कष्ट अथवा शत्रु-भय उत्पन्न होता है।

यदि वाम स्वर १, २ या ३ दिन तक लगातार चलता रहे तो रोग उत्पन्न होते हैं और ५ दिन तक चलता रहे तो चित्त में उद्विग्नता उत्पन्न होती है और एक मास

तक चलता रहे तो धननाश होता है। यदि दाहिना स्वर दो घड़ी निरन्तर चले तो सज्जनों से द्वेष, ४ घड़ी तक चले तो वस्तु हानि, २१ घड़ी तक चले तो किसी प्रियजन की मृत्यु, रात-दिन चलते रहने पर आयु क्षीण होकर मृत्यु हो जाती है।

यदि १६ पहर तक दाहिना स्वर चलता रहे तो दो वर्ष में मृत्यु होती है। तीन दिन, तीन रात चलते रहने पर एक वर्ष में मृत्यु और २० दिन-रात चलने पर ३ मास में मृत्यु होती है और पाँच घड़ी तक सुषुम्णा चलती रहे तो तत्काल मृत्यु होती है।

सामान्य रोगों में जो स्वर रोगावस्था में चल रहा हो उसे बदल देना चाहिए। नीरोगावस्था को बनाए रखने के लिए बाईं करवट सोना चाहिए। बायाँ स्वर चलने पर पानी पीना चाहिए और दाहिना स्वर चलने पर भोजन करना चाहिए।

देह सिद्धि

शरीर नश्वर है, क्षणभंगुर है, रोगायतन है तथापि मणि, मंत्र, ओषधितन्त्र द्वारा अथवा तपस्या के प्रभाव से मनुष्य को ऐसी दिव्य शक्ति या सम्पति प्राप्त हो जाती है, जिससे नश्वर शरीर अमृत-अमर बन जाता है। कालदहन-तन्त्र और मृत्युंजय तन्त्र में देह सिद्धि का विशद विवरण मिलता है। **कालदहन - तन्त्र** का मत है कि स्थूल आदि पाँचों रूपों से युक्त भूतों पर संयम द्वारा विजय प्राप्त करने से साधना या योगी को जब अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तब उसकी काय-सम्पत्ति की अभिव्यक्ति भी होती है। काय-सम्पति का ताम्पर्य है- मोहक, आकर्षक शरीर का वज्र की तरह दृढ़ बन जाना।

देह सिद्धि प्राप्त होने पर तत्त्वों के गुण-धर्म का प्रभाव सिद्ध पुरुष के शरीर पर नहीं पड़ता है। जरा-व्याधि से निवृत्त होकर वह अमरतत्त्व प्राप्त करता है। जरा-मरण रहित शरीर को दिव्य देह कहा जाता है। तत्त्वों के प्रभाव, काल का प्रभाव दिव्य-देह पर नही व्याप्त होता। श्वेताश्वतरोपनिषद् (२।२२) दिव्य-देह को योगाग्निमय शरीर कहता है, उसमें रोग, जरा-मृत्यु का अभाव होता है-

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।

देह-सिद्धि की विभिन्न प्रक्रियाएँ विभिन्न शास्त्रों से मिलती हैं। मुख्यतया देह-सिद्धि देह दो प्रकार की होती है- १. सापेक्ष्य, २. निरपेक्ष्य।

सापेक्ष्य देह-सिद्धि प्राप्त होने पर शरीर में वज्रांगना आ जाती है। आयु अपनी निर्धारित सीमा का अतिक्रमण कर जाती है। पाँचों तत्त्व निर्विकार बने रहते हैं, निर्विकारता की सिद्धि मिलने पर भी शरीर का निपात, सैकड़ों-हजारों वर्षों बाद अथवा युगों-कल्पों बाद होना अवश्यम्भावी है। क्योंकि सापेक्ष्य देह-सिद्धि में देह के

उपादानों की शुद्धि उचित रूप में न होने से प्रदीप्त कालाग्नि उसका दहन कभी-न-कभी करेगी ही। जिस प्रकार सोमरस पान करने से अमरत्व की जो सिद्धि मिलती है, वह सावधिक होती है। सोमरसपायी की अमरत्वसिद्धि की अवधि प्रलयकाल तक रहती है, क्योंकि उसे सापेक्ष्य देह-सिद्धि प्राप्त होती है।

निरपेक्ष्य देह-सिद्धि प्राप्त होने पर योगी का शरीर शुद्ध सत्यमय, चिन्मय बन जाता है। चिन्मय शरीर का कभी मरण इसलिए नहीं होता है कि षोडश कला प्रपूर्ण पुरुष की 'षोडशी' नाम से विख्यात अमृत कला उसमें निवास करती है। वही अमृत कला 'पूर्ण सोमकला' है, उसकी वजह से देह-सिद्धि योगी के चिन्मय शरीर में 'संवर्तक' नाम का कालाग्नि प्रवेश नहीं कर पाता है। चिन्मय शरीर प्राप्त योगी को अभेद सिद्धि मिल जाती है और यह मृत्युंजय बन जाता है। उसके देह का पतन नहीं होता है। वह अपनी इच्छानुसार शरीर का तिरोधान कर सकता है।

हठयोग और नाथ-पंथ में सापेक्ष्य देह-सिद्धि को असम्यक् काय-सिद्धि और निरपेक्ष्य देह-सिद्धि को सम्यक् कायसिद्धि कहा गया है। कहा जाता है कि नाथ पंथ के सिद्ध योगी गोरखनाथ को काय-सिद्धि प्राप्त थी। उनका शरीर बज्र बन गया था। किसी प्रकार के आघात का उन पर कोई असर नहीं पड़ता था। एक बार गुरु गोरखनाथ अपनी सिद्धियों का चमत्कार दिखाकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का उद्‌देश्य रखकर तत्कालीन महासिद्ध 'अल्लाम प्रभुदेव' के समक्ष प्रकट होकर बोले कि मुझे काय-सिद्धि प्राप्त है। मेरे अंग - अंग वज्र बन गए हैं, उन पर किसी प्रकार के आघात का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, आप चाहें तो तलवार चलाकर मेरी मरीक्षा ले सकते हैं।

प्रभुदेव जी ने गोरख की यह बात सुनकर कहा कि योगिन्, शरीर की वज्रहतां ही सम्यक् सिद्धि नहीं है। देह-सिद्धि प्राप्त होने पर भी जब तक माया पर विजय नहीं प्राप्त ह्मेती तक परामुक्ति प्राप्त करना असंभव है। यह सब दिखावटी सिद्धि-चमत्कार तब तक निरर्थक है, जब तक महेश्वर पर पूर्ण भक्ति न हो। महेश्वर 'क्षर' और 'अक्षर' के अध्यक्ष हैं। उनकी भक्ति से ही परामुक्ति मिलती है। परामुक्ति के बिना जो देह-सिद्धि है, वह असम्यक् देह-सिद्धि है।

प्रभुदेव जी की यह बात गोरखनाथ को नहीं भायी और उन्होंने उनसे बार-बार आग्रह किया कि आप मेरे शरीर पर अस्त्राघात करें। अगर उस आघात से एक रोवाँ भी टूट जाए तो उपके कथनानुसार मैं समझूँगा कि मुझे काय-सिद्धि नहीं मिली और मैं संसार में सिद्ध कहलाने का अधिकारी नहीं रहूँगा–

मदीयकाये यदि रोममात्रं त्रुट्येत्त्वेत्तर्हि न कायसिद्धिः।
अहं च लोके न भवामि सिद्धिः सत्यं ब्रुवे प्रत्ययमाशु पश्य।।

प्रभुदेव ने गोरख को फिर समझाया कि छेदन - भेदन द्वारा काय-सिद्धि की परीक्षा आसुर-परीक्षा है। शरीर को जलने से, गलने से, जर्जन होने से बचाकर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर काय-सिद्धि मिलती है, ऐसा मानना ही भ्रान्तिमूलक है।

इतने पर भी जब गोरख शरीर पर आघात करने का हठ करते रहे तो प्रभुदेव ने उन पर तलवार से बार किया। गोरख का एक रोवाँ भी कटा तो क्या टेढ़ा भी न हीं हुआ। किन्तु तलवार का आघात लगते ही ऐसा टंकार हुआ जैसे पर्वत पर वज्र मारने पर हुआ करता है।

गोरख ने समझा कि मैं ज़ीत गया। तलवार के आघात से मेरा बाल भी बाँका न हुआ। तब प्रभुदेव ने उन्हें समझाया- "गोरख ! काय-सिद्धि क्या है, यह मुझसे सुनो। योगी और काय-सिद्धि को समझने के लिए वेदान्त का रहस्य समझो–

वायु, अग्नि, आतप, वज्र, वर्षा, हिम से पीड़ित, प्रताड़ित न होने वाला तथा जरा-मरण, रोग - व्याधि से रहित जो देहधारी पुरुष अपने में और ब्रह्म में अभेद बुद्धि रखकर समाधिस्थ रहता है, वह 'योगी' है। यह योगी पंचभूतों के रूप और गुणों पर विजय प्राप्त कर, बाह्य विषयों में अनसक्त होकर रत्न और मिट्टी दैहिक गुणों से सर्वथा रहित कायसिद्धि से परिपूर्ण पुरुष ही योगी होता है–

यत् कायसिद्धिर्शब्दितमस्ति वस्तु
तत् तद् ब्रवीमि शृणु वेदशिखारहस्यम्...."

यह सुनकर गोरखनाथ प्रभुदेव की परीक्षा लेने के लिए उद्यत हुए और तलवार से उन पर प्रहार किया। किन्तु तलवार शून्य आकाश में जैसी चलती रही, न तो कोई शब्द हो रहा था, न किसी पर आघात हो रहा था। प्रभुदेव का शरीर आकाश की भाँति आघातविहीन, निर्विकार रहा।

गोरख पैंतरा बदल कर प्रभुदेव के शरीर पर प्रहार कर प्रहार पर रहे थे। कभी उछलकर उनके शिर पर आघात करते, कभी झुककर उनके दोनों पैरों पर तलवार मारते, कभी बाएँ घूम कर, कभी दाएँ घूम कर, कभी पीछे जाकर और कभी आकाश में उछलकर प्रहार कर रहे थे। गोरख ने प्रभुदेव के प्रत्येक अंग पर तान-तान कर तलवार चलाई किन्तु कुछ भी परिणाम न निकला तो रोम-रोम में तलवार चुभाने का प्रयास किया, वह भी विफल रहा। प्रभुदेव की इस असाधारण देह-सिद्धि को देखकर गोरख का मदज्वर उतर गया और वह बोले–

इदं वेदान्तप्रथितं परमाद्वैतफलितं महत्त्वम्।
मम देहेऽसिना खण्डिते निर्घोषणमभूत्।
त्वदंगमम्बरवद् विभाति निःशब्दं च।।

यह वेदान्त प्रसिद्ध परम अद्वैत का फलस्वरूप महत्त्व है। मेरी देह पर खड्ग द्वारा प्रहार करने से शब्द हुआ। आपका शरीर आकाश के समान प्रतीत होता है, बिल्कुल शून्य निःशब्द।

यह सुनकर प्रभुदेव बोले–

शरीर के घनीभूत होने पर माया भी घनीभूत होती है–

काये घनीमवति सापि घनैव माया

साधना-क्षेत्र में एक 'रस-सम्प्रदाय' है। पारा को इस सम्प्रदाय में शिववीर्य और अभ्रक को शक्तिबीज कहा जाता है। पारद (पारा) शिव जी के शरीर के अंग से उत्पन्न है, इसलिए वह उनकी देह का रस माना गया है। यही कारण है कि पारा का दूसरा नाम 'रस' भी है। रसशास्त्र वेत्ताओं और रस-सिद्धों का मत है कि अठारह संस्कारों से शुद्ध किया हुआ रस (पारद) लौहवेध और देहवेध करने में समर्थ होता है। जैसे पारा द्वारा लौहवेध होने से लोहा सोना बन जाता है, उसी तरह रस (पारा) वेध से मनुष्य की देह सिद्ध हो जाती है, वह वज्र की तरह दृढ़ बन जाती है और उसके सम्यक् शोधन से मनुष्य आकाश मार्ग से उड़ सकता है। इतना ही नहीं, रसवेध से शरीर अमर हो जाता है और संसार को पार करा देता है।

रस सिद्धों का उद्देश्य है कि सभी विकल्पों से रहित, सर्वार्थवर्जित चिदानन्द स्फुरित होकर भी कायसिद्धिरहित काया से प्राणियों का कोई उपकार नहीं कर सकता है। इसलिए कायसिद्धि से काया को स्फुरित बनाकार शरीर को अमर बनाकर परम-पद प्राप्त करना चाहिए।

निष्कर्ष यह कि कायसिद्धि के दो विधान हैं। एक तो योगाभ्यास, तान्त्रिक साधना द्वारा और दूसरा रस-रसायन के सम्यक् प्रयोग द्वारा।

जाग्रत सचेतन सिद्धि

दिन और रात, सदा-सर्वदा जाग्रत रहना, चेतन और अचेतन से वस्तुओं को देखना और जानना ही जाग्रत सचेतन सिद्धि प्राप्त करने की मुख्य प्रक्रिया है। इस सिद्धि की प्राप्ति का मुख्य साधन है, 'संकल्प'। संकल्प वाहन है। यही जीवात्मा को अभीष्ट वस्तु के पास ले जाता है और सम्पूर्ण सिद्धियों तथा प्राणियों को जीवात्मा के पास ले आता है, इसलिए किसी भी सिद्धि, साधना की सफलता प्राप्त करने के लिए पहले संकल्पों की साधना करनी चाहिए।

किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में हमारा जो विशेष ज्ञान है, वही संकल्प का हेतु है। तात्पर्य यह है कि विशेषताओं के ज्ञान वाली बुद्धि ही संकल्प की जन्मभूमि है।

संकल्पों का क्षेत्र जितना सीमित रहेगा उतनी ही अधिक शक्ति जाग्रत सचेतन को प्राप्त होती है। साधक को चाहिए कि व्यक्तिगत सुख की सम्भावना वाले क्षेत्रों को सीमित बनाने का अभ्यास करे। व्यक्तियों से सम्पर्क, भोग और उपलब्धि से सुख की सम्भावना होती है, इसलिए सम्पर्कों, भोगों और उपलब्धियों को साधक जितना सीमित करेगा उतनी ही संकल्प भी अल्प और नियन्त्रित होते जाएँगे। उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म का विवेक रखने से संकल्पों पर नियन्त्रण होता है, वे संयमित होते हैं। संयम ही चेतना-शक्ति को जाग्रत और जागरूक बनाता है।

लौकिक संकल्पों का नियन्त्रण करने के लिए धर्मानुष्ठान, पारलौकिक, संकल्पों का केन्द्रीकरण करने के लिए उपासना और निष्काम संकल्पों को नियन्त्रित, निरुद्ध करने के लिए योगाभ्यास साधन है। जाग्रत अचेतन सिद्धि के वास्तविक साधन-संकल्पों का नियन्त्रण, केन्द्रीकरण और निरोध ही हैं, क्योंकि इन्हीं से संकल्प शक्तिशाली बनते हैं।

जाग्रत सचेतन सिद्धि के उपाय-मन को मनश्चक्र से उठाकर क्रमशः ऊर्ध्वगामी बनाते हुए सहस्रार चक्र में ले जाकर विलीन कर देना चाहिए। यह साधन, पुस्तकें पढ़कर की जाएँ तो अधूरी और असफल होती हैं, इसलिए आवश्यक है कि किसी योग्य व्यक्ति का सान्निध्य प्राप्त कर उससे सीखना चाहिए। इस साधना की सिद्धि के लिए श्रद्धा, तत्परता और जितेन्द्रियता का होना आवश्यक है। इस साधना का अभ्यास करने से पूर्व संकल्पों का स्वरूप भेद समझ लेना आवश्यक होता है।

संकल्पों के स्वरूप

मनुष्य के ही जीवन में नहीं बल्कि प्राणिमात्र के जीवन में भी दो प्रकार के संकल्प हुआ करते हैं– एक तात्कालिक संकल्प और दूसरा महासंकल्प। तात्कालिक संकल्प दैनन्दिन के कार्य-कलाप एवं जीवन-निर्वाह के लिए हुआ करते हैं और महा-संकल्प अमर्यादित वासनाओं की पूर्ति के लिए हुआ करते हैं। इन दोनों प्रकार के संकल्पों में से प्रथम तात्कालिक संकल्पों को सीमित करना चाहिए और वासना-पूर्ति के लिए उत्पन्न महासंकल्पों को भक्ति, योग अथवा वैराग्य से ही निवृत्त करना चाहिए।

संकल्प-निरोध की साधना प्रक्रिया– (१) स्थिर चित्त होकर एकान्त में बैठकर जिह्वा को मुख-विवर में ऐसी दशा में स्थापित किया जाए कि वह ऊपर, नीचे और दाँतों, ओठों को छू न सके। दाँतों को परस्पर न मिलाकर उन्हें खुला रखा जाए और

मुँह को बन्द कर दिया जाए। ऐसा करने से जीभ का हिलाना-डुलना बन्द हो जाएगा, जीभ के स्तब्ध होने पर मन में कोई संकल्प नहीं उठेगा।

इस प्रक्रिया का रहस्य-विज्ञान यह है कि शब्दों पर आरूढ़ होकर संकल्प अन्तर्देश में प्रकट हुआ करते हैं। हर संकल्प के साथ कोई-न-कोई संलग्न रहता है। शब्दों का उच्चारण वाक् से हुआ करता है और वागिन्द्रिय का अधिष्ठातृ देवता 'अग्नि' है। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए अरणि-मन्थन किया जाता है। जीभ के नीचे अधर अरणि और जीभ के ऊपर की उत्तर अरणि का जब जिह्वा रूप मन्थन काष्ठ से आलोड़न नहीं होता है तब अग्नि नहीं उत्पन्न होती है, अग्नि न उत्पन्न होने से शब्द नहीं होगा और शब्द न होने संकल्प का भी उदय न होगा।

(२) सुस्थिर होकर सुखासन में बैठकर आँखों की दोनों पुतलियों का संचरण रोककर उन्हें अचल बना दिया जाए। इससे मन में किसी भी रूप की कल्पना नहीं आती है। रूप का निरोध होने से संकल्प का निरोध स्वतः हो जाता है।

इसका रहस्य यह है कि संकल्प किसी-न-किसी रूप में ही पैदा हुआ करते हैं। जितने भी विषय हैं, उन सब के आकार होते हैं और संकल्प निर्विषयक नहीं होते हैं। नेत्रों की पुतलियों का निरोध होने से रूप का निरोध होता है, रूप का निरोध होने से संकल्पों का निरोध होता है।

(३) मूलाधार चक्र से लम्बी घडघड़ाहट, ध्वनि के साथ प्रणव (ॐ) का उच्चारण करने से संकल्प स्वतः निवृत्त हो जाते हैं।

(४) जो व्यक्ति जिस किसी धर्म, सम्प्रदाय का हो, उसी के अनुसार वह अपने इष्टेव का नाम या इष्ट मन्त्र अथवा प्रार्थना का मन-ही-मन उच्चारण करे तो संकल्प क्षीण हो जाते हैं।

मनुष्य के शरीर में कुछ ऐसे केन्द्र हैं, जो चेतना के विभिन्न स्तरों को प्रकट करते हैं। जब मन निम्न केन्द्रों में अधिष्ठित रहता है तब मनुष्य को क्रोध, भय, ईर्ष्या आदि विकार घेर लिया करते हैं, शरीर से भी वह अस्वस्थ रहने लगता है और मन उद्विग्न, अशान्त रहता है। साधना द्वारा जब मन को निम्न केन्द्रों से उठाकर ऊपर की भूमिकाओं में पहुँचा दिया जाता है तो उसका सम्बन्ध जीवन के सूक्ष्म एवं शक्तिशाली तत्त्वों के साथ जुड़ जाता है, सात्विक गुणों की अभिव्यक्ति होने लगती है, दैवी गुणों का विकास होने लगता है, विचार और व्यवहार में एकरूपता आ जाती है और चेतना जाग्रत हो जाती है। जाग्रत चेतना परमात्मा की अनुभूति कराने लगती है। जाग्रत चेतना ही सिद्धि की परिणति है।

ध्यानसिद्धि

हर देश, जाति धर्म, सम्प्रदाय की आध्यात्मिक परम्परा में 'ध्यान' आत्म-साधना, आत्मसाक्षात्कार और परमात्म ज्ञान का मुख्य तत्त्व माना गया है। ध्यान की साधना तथा सिद्धि की परम्परा सदैव एकान्त और मौन की रही है। ध्यान की साधना प्रक्रिया पुस्तकें पढ़कर कभी प्राप्त होती हुई देखी या सुनी गई है। यह गुप्त - शिष्य परम्परा प्रधान एक रहस्यविद्या के रूप में चली आ रही है। जिस प्रकार एक दीपक दूसरे दीपक से प्रकाश प्राप्त करता है, उसी प्रकार ध्यान-सिद्धि आलोक को शिष्य गुरु से रहस्य के रूप में प्राप्त करता आ रहा है।

आत्मा को आत्मा के द्वारा प्रज्वलित करने की यह प्रक्रिया वैदिक काल से अब तक निर्बाध रूप से रहस्य विद्या के रूप में जीवित और प्रचलित है। वैदिक युग में अन्तरात्मा की ओर जिनका ध्यान सदा लगा रहता था और अपने मौन ध्यान से जो विश्व का उपकार करते रहे, उन्हें मुनि कहा जाता था।

ध्यान योगी मौन, एकान्तवास करता हुआ चारों दिशाओं में योग-क्षेम का वितरण करता रहता है। विश्व को स्वस्थ, शील-वृत्त सम्पन्न बनाने की भावना और क्रिया ध्यानयोगियों में परम्परा से चली आ रही है, ऋषियों - मुनियों से लेकर बुद्ध, ईसा मसीह, मुहम्मद साहब सभी ध्यान योग द्वारा विश्वकल्याण का संपादन करते थे।

ध्यान में अद्भुत शक्ति निहित रहती है, ध्यान से विशृंखल मन एकाग्र होता है, दूषित वृत्तियों और दूषित विचारों को ध्यान की तरंगें बहा ले जाती हैं। ध्यान चेतना - शक्ति को जाग्रत करता है। जाग्रत चेतना में समस्त अनुभूतियाँ समा जाती हैं। और केवल ध्येय अनुभूति उसमें मुखर रहती है। ध्यान से विचारों में सामंजस्य आ जाता है, भेद - दृष्टि समाप्त हो जाती है। जब संकुचित जीवात्मा विराट् सत्ता में लीन हो जाता है तो वही ध्यान-सिद्धि कहलाती है।

ध्यान के अभ्यास के लिए शीघ्रता, उतावली नहीं करनी चाहिए। दीर्घकाल तक नियम, संयमपूर्वक ध्यान करते रहने से ही ध्यान-सिद्धि प्राप्त होती है। नियत समय की भाँति शुद्ध, शान्त, एकान्त स्थान का भी निश्चय करना चाहिए। ध्यान का उत्तम समय अर्द्धरात्रि या ब्रह्म बेला है। बैठने के लिए कुशासन या मृगचर्म अथवा ऊन का आसन उपयुक्त होता है। पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके ध्यान करना अधिक लाभदायक होता है। सामान्तया ध्यान के समय सिद्धासन ही उपयुक्त होता है, किसी विशेष मन्त्र या देवता की सिद्धि में विशेष आसन तदनुकूल अपेक्षित होते हैं।

ध्यान के समय भावनाएँ पवित्र बनाकर मन, चित्तवृत्ति आदि को इष्ट के साथ संलग्न कर देना चाहिए। ईर्ष्या, द्वेष, ग्लानि, दुर्भाव नहीं रहने देना चाहिए। निश्चयबल और संकल्पबल को बढ़ाते रहना चाहिए। इनकी शक्ति से ध्यान के समय आने वाली बाह्य और अभ्यन्तर बाधाएँ साधक नहीं बनती हैं।

ध्यान के भेद– ध्यान के अनेक भेद हैं। ज्ञान प्राप्त करने के लिए, आत्म-साक्षात्कांर करने के लिए महाशक्ति का ज्योति रूप से ध्यान किया जाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रयोजनों के लिए पदस्थ ध्यान, पिण्डस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान आदि अनेक प्रतीक ध्यान के माध्यम हैं। तन्त्रशास्त्र में ध्यान करने से पूर्व हृदय में न्यास करने का विधान है। पहले हृदय-कमल पर द्वादश कलात्मक सूर्य, षोडश कलात्मक चन्द्र और दशकलात्मक अग्नि तत्त्व का न्यास किया जाता है। इसे तत्त्वन्यास कहते हैं। तत्त्वन्यास के बाद पीठन्यास किया जाता है, जिसमें क्रमशः आधार शक्ति, प्रकृति, कूर्म, अनन्त, पृथ्वी, क्षीर समुद्र, श्वेतद्वीप, मणिमंडल, कल्पवृक्ष, मणिवेदिका और रत्नसिंहासन का न्यास किया जाता है।

पीठन्यास के आधार शक्ति की स्थापना नित्य प्रति अंगों में करने से साधक को अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है। यह बाह्य स्मृति रहित होकर अपने इष्टदेव की अनुभूति में मग्न हो जाता है।

ध्यान करते समय यह दृढ़ निश्चय करना चाहिए कि मैं जो ध्यान करने जा रहा हूँ वह कभी भी भंग नहीं होगा। जितनी देर तक ध्यान करना हो उतने समय का भी संकल्प कर लेने से ठीक उतने ही समय में ध्यान निष्ठ हो जाता है।

ध्यान और उपासना में न्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अक्सर लोग ध्यान और उपासना तो करते हैं किन्तु न्यास को आवश्यक नहीं मानते हैं। यदि न्यास तत्त्व पर विचार किया जाए तो अनेक दृष्टियों से न्यास कर्म की महती आवश्यकता प्रतीत होती है।

न्यास दो प्रकार का होता है- अन्तर्न्यास और बहिर्न्यास। और ये दोनों प्रकार के न्यास भी मन्त्र-न्यास और देवता -- न्यास के रूप में भिन्न-भिन्न प्रकार के हो जाते हैं। जिन्हें तत्त्व न्यास, व्यापक न्यास, किरीट न्यास, ऋषि, छन्द और देवता न्यास, व्याहृति न्यास, मन्त्र न्यास आदि कहा जाता है। न्यास का अर्थ है - स्थापना। अपने शरीर के अंग-अंग में मन्त्र और देवताओं की स्थापना ही न्यास है। न्यास करने से साधक का शरीर देवतामय और मन्त्रमय बन जाता है, उसकी वृत्तियाँ और भावनाएँ पवित्र हो जाती हैं। पवित्रता में ही शान्ति का निवास होता है और शान्ति में ही ध्यान लगता है।

आसन-शुद्धि से लेकर न्यास पर्यन्त कर्म करने पर साधक का बाह्य और अभ्यन्तर शुद्ध हो जाता है। उस स्थिति में ध्यान, जप तो भी किया जाता है वह सफल होता है। न्यास कर्म से चित्तवृत्तियाँ जब पवित्र हो जाती हैं, उस समय जिस मन्त्र का जप किया जाए उसके अर्थ में मन लीन हो जाता है। शब्द की शक्ति बहिर्मुखी इन्द्रियों को समेट कर अन्तर्मुखी बना देती है तब स्वयमेव ध्यान लग जाता है। तन्त्रशास्त्र का कथन है कि जप से ध्यान और ध्यान से जप की सिद्धि होती है। जो साधक इन दोनों को सिद्ध कर लेता है, उसे आत्मसाक्षात्कार या परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

ध्यान का परिणाम अथवा ध्यान की सिद्धि सहज और शीघ्र प्राप्त होने वाली नहीं होती, इसमें आस्था, श्रद्धा, धैर्य और नैरन्तर्य की अपेक्षा हुआ करती है। यद्यपि कुछ लोग अपवादस्वरूप भी हैं, जिन्हें अकस्मात् अनायास शीघ्र ही ध्यान सिद्धि प्राप्त हुई है। ध्यान का फल प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि किसी ध्यान सिद्धि योगी, अथवा गुरु की सहायता ली जाए।

वस्तुतः ध्यान-योग ज्ञानमार्ग की अद्वैत प्रक्रिया है, जिसमें बारम्बार यह भावना की जाती है कि - ''मैं मन नहीं हूँ'', ''मैं प्राण नहीं हूँ'', ''मैं शरीर नहीं हूँ' इस प्रकार मन, प्राण और शरीर से अपना तादात्म्य सम्बन्ध छुड़ाया जाता है। मन, बुद्धि, अहंकार आदि को अपनी आत्मा से पृथक् देखा जाता है। इस प्रकार के पृथक् भाव का अभ्यास जब परिपक्व हो जाता है तो ध्यान - साधक को यह अनुभव होने लगता है कि मन, बुद्धि, प्राण और शरीर के सब कार्य और ये स्वयं बहिर्भूत हैं और अन्दर आत्मसत्ता की चेतना इन सबसे अलग जाग्रत होकर परात्पर आत्मा की ओर अग्रसर हो रही है।

सांख्य योग की ध्यान - प्रणाली में पुरुष और प्रकृति के पार्थक्य की जबर्दस्त प्रक्रिया है। सांख्ययोग के अनुसार ध्यान के समय अपने मन में साक्षी होने की भावना करनी पड़ती है और यह मानना पड़ता है कि मन, बुद्धि, प्राण, शरीर का सारा क्रिया-कलाप मुझसे भिन्न होता है। यह क्रिया - कलाप न मेरा है और न यह मैं हूँ बल्कि यह प्रकृति का है, जो मुझ पर लादा गया है, मैं तो केवल साक्षी पुरुष हूँ। मैं किसी चीज से बँधा हुआ नहीं हूँ। मैं शान्त और उदासीन हूँ।

इस प्रकार की भावना करने से साधक के अन्दर अपने - आप पार्थक्य उत्पन्न हो जाता है। वह अपने अन्दर एक शान्त पृथक् चैतन्य का अनुभव करने लगता है। ऐसा अनुभव जब होने लगता है तो पराशक्ति का कर्म और वेग नीचे की ओर ले आना सम्भव हो जांता है। ध्यान के बाद शक्ति का अवतरण होता है। जब शक्ति का अवतंरण होना प्रारम्भ हो उस समय योग्य गुरु के मार्ग-निर्देशन की आवश्यकता

पड़ती है, क्योंकि शक्ति के अवतरण से निम्न प्रकृति शक्तियाँ उत्तेजित हो उठती हैं और महाशक्ति के अवतरण के साथ मिलकर वह अपना काम करने लगती है। अनेक साधकों का ऐसा अनुभव हुआ है कि ध्यान के उत्तर में जब महाशक्ति का अवतरण होने लगा तो उन्होंने किसी गुरु की सहायता या उनका निर्देशन नहीं लिया। फलतः भगवती दुर्गा के रूप में अथवा भगवान् कृष्णा के रूप में अदिव्य शक्तियाँ साधक सामने प्रकट हुईं, साधक समझ न पाया इसलिए विनाशकारी परिणाम उन्हें भोगना पड़ा।

ध्यान की साधना करने वालों को चेतावनी देते हुए योगी अरविन्द ने ठीक ही कहा है कि - ''ध्यान करते समय यदि साधक की भावना भगवान् की शक्ति के कार्य के लिए होती है और साधक भगवत्शक्ति के शरणागत होकर उसे प्रणिपात करता है तो कोई विघ्न - बाधा नहीं आती है, ध्यान सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार की भावना के साथ समस्त अहंकारगत शक्तियों तथा अहंकार को प्रिय लगने वाली सब शक्तियों का त्याग ही सारी साधना में साधक की रक्षा करता है। परन्तु प्रकृति के सब रास्तों पर सब तरह के काँटे बिछे हुए हैं, विविध प्रकार के जाल बिछे हुए हैं, अहंकार के अनेक छद्मवेश हैं, अन्धकार की शक्तियों की माया राक्षसी अत्यन्त धूर्ततापूर्ण है, बुद्धि पूरा-पूरा यथेष्ट पथ प्रदर्शन नहीं कर सकती, बुद्धि पर कभी भरोसा न रखे, यह दगा दे जाती है। प्राणगत वासना बराबर हमारे साथ रहती है और किसी भी आकर्षक चीज को पकड़ने के लिए दौड़ पड़ने के लिए हमारे अन्दर लोभ जगाती है। इसलिए ध्यान में, उपासना में, साधना में 'समर्पण' भाव पर जोर दिया है।''

योगी अरविन्द के उपर्युक्त उपदेश उपनिषदों पर आधारित हैं। उपनिषदों में ध्यान की विधि प्रक्रियाएँ बहुत ही सहज और रोचक ढंग से बतायी गई हैं– ''कठोपनिषद् का कथन है कि अपने शरीर को रथ समझो। आत्मा, जो उसके अन्दर बैठा है, वह रथी रथ का स्वामी है, बुद्धि सारथि है, मन लगाम है और इन्द्रियाँ घोड़े हैं- जो सांसारिक भोगों की ओर दौड़ लगाते रहते हैं। यदि लगाम (मन), सारथि (बुद्धि) के हाथ से छूट गई तो फिर इच्छा पर से ज्ञान का नियन्त्रण हट जाता है। घोड़े (इन्द्रियाँ) मनमानी दौड़ लगाने लगते हैं और रथ को तोड़ डालते हैं।''

तात्पर्य यह कि मानव शरीर रथ है, आत्मा उसका स्वामी है, इन्द्रियाँ घोड़े बने हुए रथ पर जुती हैं। सांसारिक विषय घोड़ेरूपी इन्द्रियों के दौड़ने का मैदान हैं। बुद्धि रथ पर चलाने वाला सारथि है और मन लगाम है। साधक को चाहिए कि ध्यान द्वारा वह यह चिन्तन करता रहे कि इच्छाशक्ति पर ज्ञान शक्ति का नियंत्रण है और उस ज्ञानशक्ति को निरन्तर मुझे बढ़ाना है।

उपनिषदों में पंचकोषों का ध्यान– कोष का अर्थ आवरण है। हमारा यह स्थूल शरीर एक आवरण या कोष है। यह कोष चार कोषों से बाहर घिरा हुआ है। सबसे ऊपर के आवरण इस स्थूल देह को **'अन्नमय कोष'** कहते हैं। इसके अन्दर दूसरा कोष **'प्राणमय कोष'** है- यह पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच कर्म इन्द्रियाँ और पाँच प्राण वायु - इन पन्द्रह तत्त्वों का बना हुआ है। प्राणमय कोष के अन्दर तीसरा मनोमय कोष में संकल्प, विकल्प तथा इच्छाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं। मनोमय कोष के अन्दर चौथा विज्ञानमय कोष है। इस कोष में पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म और भले-बुरे की पहचान हमें हुआ करती है। इसके अन्दर पाँचवाँ आनन्दमय कोष है जिसके द्वारा हमें सुख-दुख की अनुभूति हुआ करती है। आनन्दमय कोष का स्वरूप बताते हुए उपनिषद् कहती है– ''जब हम सो जाते हैं तब सब कुछ भूल जाते हैं फिर भी जागने पर हम कहते हैं खूब सुख से सोए। इससे ज्ञात होता है कि निद्रा में भी सुख की अनुभूति हुआ करती है। उस समय जो चेतना काम करती है, वही आन्नदमय कोष है।'' आनन्दमय कोष सब स्वार्थों से ऊपर है और आत्मा उससे भी परे है। मनुष्य ध्यान-क्रिया द्वारा ज्यों-ज्यों ऊपर पहुँचता है, उसका विकास होता जाता है और अन्त में वह शुद्ध आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करता है।

एकाग्रता– ध्यान में मन की एकाग्रता का प्रथम स्थान दिया गया है, इसीलिए शांत, एकांत स्थान, नीरव, निस्तब्ध वातावरण आदि ध्यान के लिए उपयोगी साधन बताए गए हैं। एकाग्रता क्या है– इसे समझने के लिए यह कहा गया है कि मनुष्य को चेतना चारों ओर छितरी हुई रहती है और इधर-उधर विषयों, वस्तुओं की ओर दौड़ा करती है। जब कोई स्थायी स्वभाव का काम करना होता है तो मनुष्य सबसे पहले छितरी हुई चेतना को समेट कर उसे एकाग्र करता है। एकाग्र चेतना की पहचान तक की जा सकती है, जब छितरी हुई चेतना किसी एक स्थान और किसी एक कार्य, विषय या वस्तु पर एकाग्र होने के लिए बाध्य हो जाती है। जैसे जब कोई वैज्ञानिक किसी पुष्प विशेष का अध्ययन करने में मग्न हो जाता है तो उसकी चेतना उस पुष्प पर एकाग्र हो जाती है। इससे सिद्ध हो होता है कि एकाग्रता का ध्यान मस्तिष्क पर होता है। जैसे कोई शिकारी किसी वस्तु पर निशाना साधता है तो उसकी चेतना उस वस्तु पर जागकर एकाग्र हो जाता है। कोई योगी किसी बिन्दु पर त्राटक साधता है तो उसकी एकाग्रता उसी बिन्दु पर टिककर एकाग्र हो जाती है। उस समय साधक केवल बिन्दु को ही देखता है, इधर-उधर की कोई वस्तु उसे दिखाई नहीं पड़ती है और न मन में कोई विचार ही पैदा होता है।

ध्यानयोग का एक और नियम है—दोनों भौंहों के बीच ध्यान को एकाग्र करना। दोनों भौंहों के बीच जो त्रिपुटी है उसी पर आन्तर मन, गुह्य दर्शन और संकल्प का केन्द्र है। यही कारण है कि ध्यान के समय, जिसका चिन्तन त्रिपुटी में एकाग्रता से किया जाता है, उसकी प्रतिमूर्ति देखने का अनुभव होता है। अनुभूति ही ध्यान की पूर्णता है। जब तक अनुभूति नहीं होती है, तब तक ध्यान में सफलता नहीं मिलती है।

ध्यान को केवल दोनों भौंहों के बीच में ही नहीं बल्कि मस्तक के किसी भाग पर अथवा हृदय में एकाग्र करने की भी प्रणाली है। ध्यान चाहे भौंहों के बीच में एकाग्र किया जाए; चाहे मस्तक के किसी स्थान पर अथवा हृदय में। तात्पर्य यही है कि उस समय साधक किसी वस्तु पर एकाग्र न होकर त्रिपुटी, मस्तक या हृदय में एक संकल्प पर एकाग्र होता है। उसका संकल्प ऊपर से शक्ति के अवतरण के लिए होता है। उस संकल्प के करने से एक अदृश्य ढक्कन के खुल जाने और ऊपर से चेतना के अवतरित होने पर साधक तन्मय एवं एकाग्र हो जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद् में एकाग्रता का एक बहुत अच्छा उपाय **'दहरविद्या'** बताया गया है। शंकर, रामानुज आदि सभी ने अपने - अपने भाष्यों में दहरविद्या की व्याख्या की है। ध्यान-साधना की दृष्टि से उपनिषद् - 'दहरविद्या' का स्वरूप यह बतालाती है—

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म
दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वे-
ष्टवयं तद्वाव विजिज्ञासितव्यम्।।

यह शरीर ब्रह्मपुरी है, इसमें ब्रह्म का निवास है। ब्रह्मपुरी के दहर (हृदय) स्थान पर एक कमल है, उसके भीतर जो आकाश है, उसे खोजना और जानना चाहिए।

सूत्र रूप में उपनिषद् ने ध्यान की प्रक्रिया और उसका उद्देश्य बतलाया है। यहाँ पर आकाश का अर्थ सर्वव्यापी परमात्मा है **'ॐ खं ब्रह्म'**। इस सर्वव्यापी ब्रह्म का ध्यान एक विशेष स्थान पर किया जाता है। ध्यान के लिए वही स्थान उपयुक्त होते हैं, जहाँ अनुभूति अधिक मिलती है। हृदय इच्छाशक्ति का केन्द्र होने के कारण यहाँ अनुभूति अधिक मिलती है। हृदय में भगवान् का ध्यान कर साधक अपनी इच्छा को ईश्वर की इच्छा में मिला देता है। यह अनुभव करता है कि हृदय आकाश में समस्त ब्रह्माण्ड व्याप्त है। वह अनन्त सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्रों को चमकते हुए देखता है। इस प्रकार की अनुभूति प्राप्त होने पर साधक का संकुचित अस्तित्व व्यापक विराट् बन जाता है। उपनिषद् कहती है कि इस प्रकार कर

ध्यान करने से साधक के समस्त अभीष्ट पूरे होते हैं।

आनापान स्मृति– जैन ध्यान साधना के स्वरूप और विधान पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ भेद से उसी प्रकार है जो शैव, शाक्त, वैष्णवों और सन्तों के हैं, किन्तु बौद्ध साधना में श्वास-प्रश्वास पर ध्यान करने की जो प्रक्रिया प्रचलित है, उसे **'आनापान स्मृति'** कहा जाता है। इस ध्यान के अभ्यास में न तो क्रिया योग है और न प्राणों का निरोध है। केवल प्राणों की गति पर मन को स्थिर किया जाता है। वस्तुतः **आनापान स्मृति ध्यान** एक प्रकार का मानसिक ध्यान है। इस मानसिक क्रिया के अभ्यास से सूक्ष्मता की वृद्धि होती है। इस ध्यान का अभ्यास करने के लिए स्मृति और प्रज्ञा का निर्मल होना आवश्यक बताया गया है। स्मृति की निर्मलता के अनुसार ही निरीक्षण की स्पष्टता बढ़ती है। स्मृति जितनी दृढ़ होगी निरीक्षणता उतनी ही स्थायी बनती है। इस ध्यान में अस्पष्टता और चंचलता सिद्धि प्राप्त कराने में बाधाक मानी गई है। आनापान स्मृति के लिए शुद्ध, एकान्त स्थान और पद्मासन को उपयोगी बताया गया है, किन्तु शवासन को भी प्रधानता दी गई है। रात में चित लेटकर शव की तरह निश्चेष्ट होकर इसका अभ्यास किया जाता है।

आनापान स्मृति में श्वासों पर ध्यान जमाया जाता है। श्वास-प्रश्वास अपनी स्वाभाविक गति से चलते रहते हैं, साधक केवल उनका निरीक्षण करता है। श्वास कहाँ से उठा, कैसे उठा, किस प्रकार धीरे - धीरे बाहर निकला, फिर किस प्रकार लौटकर उसने प्रवेश किया–इन सब बातों का सूक्ष्म निरीक्षण करता हुए साधक मन में अन्य और कोई वासना या भावना नहीं लाता है।

ध्यान-विधि– प्रायः हर व्यक्ति के श्वास-प्रश्वास सहज और नियमित ढंग से नहीं चलते हैं। मानसिक उद्वेगों और विचारों के तंतु-जाल श्वास की गति को अस्वाभाविक बनाते हैं। कभी साँस तेजी से चलने लगती है, कभी मन्द पड़ जाती है और कभी किसी भाग में रुक जाती है। जब कोई अवरोध नहीं होता है और श्वास स्वाभाविक गति से चलता है तो प्राण की गति अपने आप नियमित हो जाती है और अनायास प्राणायाम होने लगता है।

श्वास की गति को स्वाभाविक बनाने के लिए मन को श्वास के साथ लगा देना चाहिए। मन को संलग्न कर देने से श्वास में कोई बाधा नहीं आ पाती। जब श्वास अपनी स्वाभाविक गति से चलने लगे तो साधक को चाहिए कि वह यह निरीक्षण करे कि श्वास कहाँ से उठता है, किस रास्ते में जा रहा है, कहाँ जा रहा है, किस रास्ते से बाहर निकलता और कहाँ तक बाहर जाता है, फिर किस प्रकार खिंच कर लौटता है और भीतर जाता है। प्राण वायु के इस खेल को साक्षी बनकर

देखता रहे किन्तु देखने के लिए श्वास-प्रश्वास की गति से छेड़-छाड़ न करे; उसे अपनी गति से चलने देना चाहिए। हाँ, इस बात का ध्यान बराबर रखे कि मन श्वास-प्रश्वास की गति के साथ लगा रहे, तनिक भी हटे नहीं। कदाचित् मन कभी हटने लगे, या हट जाए तो तुरन्त उसे श्वास की गति के साथ लगा दे।

श्वास की गति देखना ही आनापन स्मृति ध्यान का मूल उद्देश्य है। साधक इस ध्यान-योग में पहले बहुत भटकता है उसे यह ज्ञात नहीं हो पाता कि श्वास कहाँ से उठता है, किस रास्ते से चलता है और कैसे बाहर निकलता है; किन्तु यदि हताश नहीं होता है और क्रिया नहीं छोड़ता है तो श्वास स्वयं अपनी गति बतला देते हैं। साधक को श्वास की गति का पूरा-पूरा बोध हो जाता है। यह साधना भूत, भविष्य का ज्ञान कराती है और शरीर, मन, बुद्धि को निर्मल बनाती है और अन्त में उद्देश्य की सिद्धि प्राप्त होती है।

जप-ध्यान-पद्धति– ध्यान में किसी मन्त्र का जप भी सिद्धि प्रदान करता है। जपपूर्वक ध्यान की पद्धति दो प्रकार की होती है–(१) **मानसिक पद्धति**, (२) **भावप्रधान पद्धति।**

यदि जप मन्त्र के अर्थ पर ध्यान रखकर किया जाता है, तो साधक के मन में कोई ऐसी चीज होती है जो उस मन्त्र के देवता के स्वभाव, शक्ति सौन्दर्य पर एकाग्र होती है; जिसे जप का मन्त्र व्यक्त करता है। जप के मन्त्र द्वारा देवता की शक्ति को चैतन्य के अन्दर ले आना मानसिक पद्धति का अभीष्ट होता है–

और यदि जप हृदय से उठता है अथवा मन्त्र का बोधार्थ हृदय को झंकृत करता है तो यह भाव प्रधान ध्यान-पद्धति कही जाती है।

यदि साधक किसी मन्त्र का जप करते हुए मन्त्रार्थ या मन्त्र के देवता का ध्यान करता है, तो उस जप को मन या प्राण का सहारा अवश्य मिलता चाहिए। यदि जप करते हुए मन में नीरसता आ जाए, प्राणों में चंचलता आ जाए तो समझना चाहिए कि जप को मन का सहारा नहीं मिल पा रहा है।

जब कोई साधक नियमित रूप से किसी मन्त्र का जप करता है तो कभी-कभी अथवा बहुधा जप स्वतः प्रस्फुरित होने लगता है- जब इस प्रकार मन्त्र जप का प्रस्फुरण स्वतः होने लगता है तो समझना चाहिए कि आन्तरिक सत्ता के द्वारा जप होने लगा है, इस ढंग से जप बहुत अधिक फलदायक होता है और शीघ्र ही सिद्धि मिलती है।

ऐसे सैकड़ों प्रमाण हैं और प्रत्यक्ष अनुभव भी है कि साधक बिना किसी मन्त्र का जप किए ध्यान में निरत रहता है तो उसे ध्यानावस्था में ही मन्त्र प्राप्त हो जाता है

जिस प्रकार ध्यान के द्वारा ध्येय वस्तु का अन्दर्शन होता है; उसी प्रकार मन्त्र भी प्राप्त होता है।

सन्तों-योगियों ने 'ॐ' मन्त्र का जप और ध्यान करने का आग्रह कर उसका विधान बताया है। यह बहुत ही उपयोगी ध्यान साधन मन्त्र है। 'ॐ' मन्त्र है, यह ब्रह्म - चैतन्य के तुरीय से लेकर भौतिक स्तर तक के चारों लोकों को अभिव्यक्त करने वाला शब्द-प्रतीक है। साधक जब किसी मन्त्र का जप करते हुए ध्यान करता है तो मन्त्र की शब्दशक्ति, ध्वनिशक्ति और अर्थशक्ति उसकी चेतना में प्रकम्पन पैदा करती है और चेतना को उस वस्तु की सिद्धि के लिए तैयार करती है, जिसका प्रतीक वह मन्त्र होता है। स्वयं वह मन्त्र उसे अपने अन्दर वहन करता है।

'ॐ' मन्त्र का जप करते हुए जब ध्यान किया जाता है तो ॐ मन्त्र चेतना के सभी स्तरों, सभी परतों का उद्घाटन करता है, वह सभी स्थूल-भौतिक वस्तुओं में, आन्तरिक सत्ता और अतिभौतिक जगतों में साधक को चेतन का अनुभव कराता है। ॐ मन्त्र का जप - ध्यान करने वाले साधकों का मुख्य लक्ष्य अंतिम अनुभूति ही हुआ करती है।

पुराणों में सिद्धियों के स्वरूप-भेद

सिद्धियों के स्वरूप और उनकी उपलब्धियों के विवेचन प्रसंग के प्रारम्भ में ही एक स्वाभाविक जिज्ञासा वह उत्पन्न होती है–

१. प्राचीन काल में सिद्धियों का क्या स्वरूप था?

२. सिद्धियों को प्राप्त करने की क्या प्रक्रिया थी?

३. आजकल अलौकिक शक्तियों का परिचय किस प्रकार मिलता है?

४. अलौकिक शक्तियों को प्राप्त करने के लिए कौन से साधन हैं?

संक्षेपतः इनका समाधन यह है–

किसी अलौकिक शक्ति द्वारा किसी अद्भुत चमत्कार का प्रस्तुत होना ही सिद्धि की सत्ता निर्धारित करता है। आश्चर्यजनक पदार्थों को उत्पन्न करने वाली, अलौकिक सामर्थ्य को प्रकाशित करने वाली लोकातीत शक्ति का नाम सिद्धि है। पतंजलि ने योगसूत्र में पाँच प्रकार की सिद्धियों का उल्लेख किया–

१. जन्म - सिद्धि, २. ओषधि सिद्धि, ३. मन्त्र-सिद्धि, ४. तप-सिद्धि, ५. समाधि-सिद्धि।

१. अणिमा, महिमा आदि सिद्धियाँ जिन महापुरुषों को पूर्वजन्म के संस्कार से जन्म काल से ही प्राप्त रहती हैं, ऐसी सिद्धियाँ **जन्म-सिद्धि** कहलाती हैं। इनके लिए

किसी प्रकार की साधना नहीं करनी पड़ती है।

२. पारा आदि रसायन से बनाई गई ओषधियाँ ओषधि - सिद्धि कहलाती हैं। नागार्जुन ने अपने रस सिद्ध ग्रंथ में ऐसी सिद्ध ओषधियों को बनाने और उनके उपयोग की विधि विस्तार से बताई है। अंजना गुटिका आदि ओषधियों के योग से ही बनाई जाती हैं। ऐसी ही रासायनिक सिद्ध ओषधियों के प्रयोग से गोरखनाथ आदि महात्मा चिरायु बनकर मृत्यु को भी चुनौती देने में समर्थ हुए।

३. मन्त्र के अभ्यास से प्राप्त सिद्धि **मन्त्र-सिद्धि** है। मन्त्र-सिद्धि को प्राप्त करने वाले आजकल भी अनेक सिद्ध विद्यमान हैं।

४. तपस्या द्वारा प्राप्त सिद्धि **तपःसिद्धि** है। यह सिद्धि संकल्प शक्ति पर आधारित रहती है। संकल्प मात्र से अद्भुत, अलौकिक, अश्रुत, अपूर्व की सृष्टि तपःसिद्धि से होती है।

५. समाधि की साधना से उत्पन्न सिद्धि **समाधि-सिद्धि** है। वह सिद्धि विशुद्ध योग से सम्बन्ध रखती है। समाधि सिद्धि से योगी एक स्थान पर बैठा हुआ अखिल ब्रह्माण्ड को नाप लेता है, देख लेता है।

अष्ट ऐश्वर्य को अष्टधासिद्धि कहा गया है- **ऐश्वर्यमणिमादिकमष्टधा।** अणिमा, महिमा आदि अष्ट ऐश्वर्य सिद्धियाँ आठ हैं–

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः।।

१. **अणिमा**–अणुभाव को अणिमा कहते हैं। अणिमा की सिद्धि प्राप्त करने पर सिद्ध योगी अणु रूप धारण कर ठोस पत्थर के अन्दर भी प्रवेश कर जाता है।

२. **लघिमा**–लघुभाव को लघिमा कहते हैं। लघिमा सिद्धि प्राप्त होने पर सूर्य किरणों का अवलम्बन कर सिद्ध पुरुष सूर्य में भी प्रवेश कर जाता है।

३. **महिमा**–जिससे महान् बन जाए वह सिद्धि महिमा है।

४. **प्राप्ति**–जिससे जो भी चाहे वही प्राप्त हो जाए वह सिद्धि प्राप्ति है। अंगुली के अग्रभाग से चन्द्रमा का स्पर्श करने तक की क्षमता इस सिद्धि में रहती है।

५. **प्राकाम्या**–इच्छाशक्ति को अप्रतिहत बनाने वाली शक्ति प्राकाम्य है। इस सिद्धि को प्राप्त कर योगी धरती पर ऐसे डूबता-उतराता और तैरता है जैसे पानी में डुबकी लगा रहा है या तैर रहा है।

६. **वशित्व**–इस सिद्धि से वशीकरण करने की क्षमता प्राप्त होती है।

७. **ईशित्व**–सर्वत्र प्रभुता स्थापित कराने वाली सिद्धि ईशित्व है।

८. **गरिमा**–गुरुता भाव लाने वाली शक्ति गरिमा सिद्धि है।

पुराणों में सिद्धि का स्वरूप, सिद्धि के भेद, सिद्धि के प्रयोजन विस्तृत रूप से मिलते हैं। यद्यपि योग दर्शन में बताई गई सिद्धियों और पुराणों में उल्लिखित सिद्धियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, तथापि अनेक स्थलों में विचारोत्तेजक पार्थक्य मिलता है। जैसे स्कन्द पुराण के महेश्वर खण्ड के अन्तर्गत कुमारिका खण्ड के अध्याय ५५ से ६४ प्रकार की सिद्धियाँ बताई गई हैं। पहले सिद्धियों के आठ प्रकार बताए गए हैं–ऐशानी, राक्षसी, याक्षी, गान्धर्वी, ऐन्द्री, सौम्या, प्राजापत्या और ब्राह्मी। ये आठों प्रकार की सिद्धियाँ क्रमशः पंचभूत, मन, अहंकार और बुद्धितत्व पर आश्रित रहती हैं। तदनन्तर ये सभी आठों सिद्धियों में से प्रत्येक सिद्धि आठ-आठ प्रकार की होती है- इस प्रकार ६४ प्रकार की सिद्धियों की नामावली स्कन्द पुराण में उल्लिखित मिलती है।

श्रीमद्भागवत पुराण के पन्द्रहवें अध्याय में अठारह प्रकार की सिद्धियों का सम्यक् वर्णन है। इस पुराण के मत से 'धारणा' से ही सिद्धि की उपलब्धि होती है। यहाँ बताया गया है कि ऐशानी सिद्धि का सम्बन्ध पृथिवीतत्त्व से होने के कारण यह सिद्धि पार्थिवी है। राक्षसी का सम्बन्ध जल से है इसलिए यह जलीय है। याक्षी का सम्बन्ध तेज से है, इसलिए यह तैजसी है। गान्धर्वी का सम्बन्ध वायु से है, इसलिए यह वायवी है। ऐन्द्री का सम्बन्ध व्योम से है, इसलिए यह व्योमात्मिका है। सौम्या का सम्बन्ध मन से है, अतः यह मानसी है। अपराप्रकृति से ब्राह्मी का सम्बन्ध है, इसलिए यह मतिजा है। श्रीमद्भागवत का मत है कि जितेन्द्रिय होने पर योगी में यदि भगवान् के प्रति धारणा नहीं होती तो सिद्धियाँ उसे नहीं प्राप्त होती हैं–

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः।।

श्रीमद्भागवत ११।१५।१

तात्पर्य यह है कि भगवद्धारणा ही सिद्धि का बीज है।

इसी प्रसंग में पुराणों में उल्लिखित सिद्धियों को सफल बनाने वाली ऐसी अनेक विद्याओं का उल्लेख किया गया है, जिनका अनुशीलन करने पर आधुनिक युग के अविश्वासी लोग भी दाँतों तले अंगुली दबा लें। कतिपय विद्याओं का परिचय यहाँ दिया जा रहा है–

(१) **स्वेच्छारूपधारिणी ज्ञान**–इसके ज्ञान से यथोचित रूप धारण किया जाता है।

(२) **सर्वभूतरुत ज्ञान**–इसके ज्ञान से सभी जीवों की बोली, उनके रोने, चीखने,

चिल्लाने के आशय का बोध होता है।

(३) अनुलेपन विद्या–पैरों में लेप लगाकर योगी सैकड़ों कोस की दूरी क्षण भर में पार कर सकता है।

(४) उल्लापन विधान विद्या–इस विद्या से टेढ़ी वस्तुएँ, सीधी कर दी जाती हैं।

(५) देवहूति विद्या–इस विद्या से किसी भी देवता को सशरीर बुलाया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार की सिद्धियाँ देने वाली - पद्मिनी विद्या, रक्षोध्नविद्या, जालन्धरी विद्या, पराबाला विद्या, पुरुष प्रमोहिनी विद्या, युवकरण विद्या, वज्रवाहनिका विद्या, मोहिनी विद्या, जृम्भणी विद्या अग्निपुराण में वर्णित है।

ऐसी सिद्धियाँ तपस्या की अपेक्षा रखती हैं। ऋषियों ने, वेदों ने बताया है कि-

तपसैव सिद्धयो जायन्ते– तप से ही सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं।

तपसैव विश्वामित्रेण आगाधा नद्यो गाधाः कृता– तपस्या के प्रभाव से ही ऋषि विश्वामित्र ने अगाध नदी को छिछली बना दिया था।

तपोमूला हि सिद्धय– सिद्धियों का मूल तप है।

उपर्युक्त सभी प्रकार की सिद्धियों, विद्याओं की सिद्धि, साधना के दृष्टान्त पुराणों में मिलते हैं। जिनका वैज्ञानिक रहस्य न समझने के कारण कुछ लोग उन्हें कल्पनानीत कथा, या गप समझते हैं।

मन्त्र-सिद्धि और उसका प्रभाव– प्रत्येक मन्त्र कुछ नियत ध्वनियों का समूह होता है। मन्त्र के अर्थ पर विचार न करना चाहिए अन्यथा उसके उच्चारण में त्रुटि हो जाती है। 'कौत्स' मुनि ने मन्त्रों को अर्थरहित माना है, इसका तात्पर्य यह न समझ लेना चाहिए कि मन्त्रों के अर्थ होते ही नहीं। उनका आशय यही रहा है कि उच्चारण वश मन्त्रों में शब्द का ही महत्त्व होता है, अर्थ का नहीं। शाबर मन्त्रों के अर्थ पर ध्यान दिया जाए तो उनके अनमिल अक्षरों का कोई संगत अर्थ नहीं बैठता है, किन्तु वही मन्त्र सर्प विष उतारने में, कृत्या का दोष दूर करने में और मारण, मोहन आदि षट् कर्मों में अमोघ सिद्ध होते हैं। इसका कारण यह है कि मन्त्र की ध्वनि ही साँप, बिच्छू आदि के विषों को दूर करने में प्रभाव डालती है। इसी प्रकार जो भी मन्त्र हैं, उन्हें ऋषियों ने, सिद्धों ने, तपस्वियों और योगियों ने भिन्न-भिन्न प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाले ध्वनि-समूहों को मन्त्रों में निहित कर उन प्रयोजनों के लिए उन्होंने उन मन्त्रों को प्रकट किया है। यदि ऋषियों, तपस्वियों और योगियों द्वारा आविर्भूत मन्त्रों को प्राप्त किया जाए तो बिना किसी जप अनुष्ठान के ही वह मन्त्र कार्य सिद्धि करते हैं, क्योंकि वह स्वतः सिद्धि होते हैं। निष्कर्ष यह कि

मन्त्रों में प्रयोग नियम होता है, अर्थ नियम नहीं। यही कारण है कि वेद मन्त्रों का उच्चारण यदि सस्वर किया जाता है, तो भौतिक तत्त्वों में और भौतिक जगत् में मन्त्र-देवता का अवतरण सम्भव हो जाता है। वेद मन्त्रों के शुद्ध स्वर पाठ से और उसकी क्रिया द्वारा अग्नि, जल, मेघ, विद्युत, वायु आदि तत्त्वों के विविध उपयोग किए जा सकते हैं।

मन्त्रों की सिद्धि के विषय में यह भी ज्ञातव्य है कि मन्त्र शब्दात्मक होते हैं। और शब्द में अचिन्त्य शक्ति निहित रहती है। शत्रुता, प्रेम, क्रोध, शान्ति, कार्य सिद्धि और अनेक प्रकार की क्रान्तियाँ शब्द - शक्ति से ही उत्पन्न होती हैं। शब्दों का एक विशेष क्रम होता है और उनमें संगीत निहित रहता है, इसलिए शब्द ध्वनि-सुन कर पशु-पक्षी भी मोहित हो जाते हैं। मन्त्रशास्त्र भी शब्द-क्रम पर निर्भर है। मन्त्रों में बीज का संयोग होने से मन्त्र की प्रभावशक्ति बढ़ जाती है।

ज्ञानात्मक और क्रियात्मक सिद्धियाँ–शरीर, इन्द्रिय और मन के उत्कर्ष को 'सिद्धि' कहा जाता है। यह सिद्धि 'ज्ञान रूप' और 'क्रिया रूप' भेद से दो प्रकार की होती है। भूत-भविष्य का ज्ञान कराने वाली सिद्धि ज्ञानात्मक सिद्धि है, इसी को 'विज्ञानरूपा विभूति' भी कहते हैं और परकाय प्रवेश आदि सिद्धियाँ 'क्रियात्मक सिद्धि' कहलाती हैं।

शंकर भगवत्पाद ने शारीरिक भाष्य (१।३।३३) में लिखा है कि ''योग अणिमा आदि सिद्धियों को प्राप्त करने वाला आधार है- यह जानते हुए कोई मात्र साहस के द्वारा सिद्धियों का खण्डन नहीं कर सकता है।'' सिद्धियों को अपलाप, प्रलाप, धूर्तता की वस्तु समझने वाले व्यक्ति या विज्ञानी सिद्धियों की कार्य-कारण-परम्परा को न तो युक्तियों द्वारा चिन्तन करते हैं, न शास्त्र का अनुशीलन करते हैं और न विशेषज्ञों से जिज्ञासु बन कर रहस्य प्राप्त कर सकते हैं - इसलिए वे ऐसी भ्रान्त धारणा के शिकार होते हैं। हमेशा जो तमाम बाह्य वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं, हमारा जो यह शरीर है, इन्द्रियाँ हैं, इनका जो रूप है, जब तक हम इन्हें स्थूल दृष्टि से देखते रहेंगे, समझते रहेंगे तब तक सिद्धियों के रहस्य को नहीं समझ पाएँगे। जो कुछ भी दृश्यमान है चाहे वह संसार हो चाहे, अपना शरीर आदि उसका यह स्वरूप तात्विक रूप नहीं है। बाह्य वस्तुएँ तो प्रकाश्यकार्यधार्यधर्मात्मक शब्द आदि पाँच गुणों की तरह हैं। शरीर भी सात धातुओं के संघात का रूप है। शरीर के अंश भूत चित्त, बुद्धि आदि भी स्थूल पदार्थ हैं और बाह्य प्रभाव से प्रभावित हुआ करते हैं। चित्त वृत्तियों का कोई गुण नहीं है, वह चंचला रूप है तो जब तक उनके तात्विक सत्य का बोध नहीं होगा तक तक न तो अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं और न उन पर विश्वास उत्पन्न हो सकता है। इसलिए बाह्य पदार्थों का तथा शरीर

और मन का तात्विक स्वरूप समझना आवश्यक होता है। योग-अध्यात्मपरक शास्त्रों के अध्ययन-चिन्तन से तथा योगियों और आध्यात्मिक मनीषियों के सम्पर्क से यह सहज बोध हो जाता है कि 'सिद्धि' प्राकृत है, स्वाभाविक है-यह नियम-संयम-जन्य है, इसे अतिप्राकृत नहीं कहा जा सकता है। स्वाभाविक सिद्धि में अज्ञेयवाद, रहस्यवाद का प्रवेश नहीं हो पाता है। जैसे ग्रहण करने से योग्य वस्तु और ग्रहण-वस्तु के तात्विक स्वरूप का ज्ञान होता जाता है, वैसे ही साधना की उत्कर्ष शक्ति द्वारा सिद्धियों का रहस्य प्रकट होता जाता है और यह रहस्य विस्तृत हो जाता है। यह निश्चित है कि यदि कोई व्यक्ति आर्ष आध्यात्मिक तत्त्व जान जाता है, मोक्ष-दर्शन-पद्धति से अवगत हो जाता है और आन्वीक्षिकी पद्धति से ग्राह्य वस्तु का एवं शरीर, मन आदि का विश्लेषण करता है तो वह सिद्धि के रहस्य को भली-भाँति जान जाता है। इतिहास, पुराण, उपनिषद् और स्मृतियों में इस अध्यात्म विद्या का स्पष्ट और विशद वर्णन है।

योगदर्शन में विविध प्रकार की ज्ञान सिद्धियों का वर्णन है जिनमें से प्रमुख ज्ञान सिद्धियाँ ये हैं -

१. भूत-भविष्य का ज्ञान- ध्यान - धारणा - समाधि, इन तीन का परिणाम भूत-भविष्यत् ज्ञान है। इस सिद्धि के द्वारा योगी जब किसी वस्तु पर ध्यान-धारणा-समाधि द्वारा संयम करता है तो उसे तुरन्त ज्ञान हो जाता है कि वह वस्तु भूतकाल में कैसी थी और भविष्य में कैसी रहेगी। इस ज्ञानात्मक शक्ति द्वारा योगी त्रिकालज्ञ बन जाता है। व्यास, वशिष्ठ आदि ऋषियों, जनक-जैसे राजर्षियों तथा अन्य अनेक तपस्वियों की इस सिद्धि के उदाहरण पुराणों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

२. सर्वभूतरुतज्ञान- इस सिद्धि से सभी प्राणियों की बोली समझने की क्षमता प्राप्त होती है। यह सिद्धि ब्रह्म की उपासना से संबंध रखती है। शब्द, अर्थ और प्रत्यय के परस्पर निर्वचन और संयम से यह ज्ञान - सिद्धि प्राप्त होती है। जैसे सामान्य जन गाय यह शब्द है, गाय यह अर्थ है - गाय यह ज्ञान एक ही प्रकार का ज्ञान गाय शब्द पर रखता है, उसका अर्थ भेद, स्वरूप भेद नहीं कर सकता। प्रत्येक शब्द का स्वरूप शब्द संयम-पद्धति द्वारा जानने से सभी प्राणियों की बोली समझी जा सकती है। राजा ब्रह्मदत्त और दत्तात्रेय को यह सिद्धि प्राप्त थी। आजकल भाषा-शास्त्रीय अध्ययन अनेक क्षेत्रों में बड़े पैमाने से किया जा रहा है। जर्मनी में बन्दरों की भाषा समझने का प्रयत्न चल रहा है, किन्तु सर्वरुतज्ञान सिद्धि से तो प्राचीन ऋषियों, तपस्वियों और सिद्धों ने भूतकाल और भविष्यत् काल के शब्दों का भी परिज्ञान प्राप्त किया था, पशु-पक्षियों की बोली समझना तो उस

समय कुछ असाधारण नहीं माना जाता था। भगवान् राम की वानरों, भालुओं और गृध्र जटायु से होने वाली बातें रामायण में उल्लिखित हैं।

३. **पूर्वजन्म का वृत्तज्ञान–** इसे पूर्वजातज्ञान सिद्धि कहा जाता है। यह सिद्धि आत्मचिन्तन प्रधान है, जिसमें वासना और धर्माधर्म हेतु होते हैं। ये दोनों संस्कार संयम द्वारा सिद्ध होते हैं। कुछ लोगों को जन्मान्तर का संस्कार प्राप्त होने के कारण इस जन्म में बिना किसी संयम - साधना के ही वह अपने पूर्व जन्म या जन्मों का वृत्त स्मरण रखते हैं। ऐसे लोग 'जातस्मर' कहे जाते हैं। जब पूर्वजन्म से प्राप्त संस्कार क्षीण हो जाते हैं, तो सब कुछ भूल जाता है। पुराणों में जैगीषव्य आदि ऋषियों की अनेक कथाओं के उदाहरण मिलते हैं। इसी सिद्धि से योगी याज्ञवल्क्य ने जो भगवान् राम के अवतार वृत्त को पहले से ही निरूपित कर दिया था। ऋषि वशिष्ठ ने दिलीप के सन्तान रहित होने का कारण पूर्व जन्म में कामधेनु का शाप बताया था।

४. **परचित्त ज्ञान–** दूसरे के मन की बात जान लेना इस सिद्धि का परिणाम है। ऐसे लोग अन्तर्यामी कहे जाते हैं। इस सिद्धि के अनेक उदाहरण पुराणों में मिलते हैं।

५. **सूक्ष्म विषयक ज्ञान–** शास्त्रों ने दो प्रकार की प्रवृत्ति बतलाई है। एक विषयवती और दूसरी ज्योतिष्मती। शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श–ये पाँच विषय कहलाते हैं। इनका संयम करने से स्थूल, सूक्ष्म सभी प्रकार के शब्दों का ज्ञान होता है। ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का सम्बन्ध मन से रहता है। ज्योतिष्मती के सत्वप्रकाशात्मक आलोक में संयम करने से सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान होता है। इसी को श्रीमद्भागवत् में 'दूरश्रवणदर्शन' नाम की सिद्धि कहा गया है। यह सिद्धि प्राप्त होने पर योगी एक स्थान पर बैठे हुए दूरातिदूर की बातें सुन सकता है, घटित होने वाली घटनाओं को देख सकता है।

६. **भुवनज्ञान सिद्धि–** सूर्य का संयम करने से यह सिद्धि प्राप्त होती है।

यम-नियम से और शुद्ध अन्तःकरण द्वारा धारणा करने से योगी सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं और वह सर्व-समर्थ होते हैं।

उपर्युक्त ज्ञान सिद्धियों में से भूत-भविष्यत् ज्ञानपूर्व जन्मवृत्त ज्ञान और परिचित्त ज्ञान सिद्धियाँ क्रियासिद्धियों में भी परिगणित हैं। तात्पर्य यह कि ये सिद्धियाँ महाशक्ति की किसी एक कला की उपासना करने से और उसके मूलमन्त्र का विधिवत् जप करने से प्राप्त होती हैं। इनमें योग की आवश्यकता नहीं पड़ती है, क्रियाओं द्वारा ही ये सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

जैसे ऐन्द्रजालिक क्रिया सिद्धियों में केवल दृष्टि शक्ति स्तम्भन प्रक्रिया रहती

है। दर्शक और दर्शन का स्तम्भन कर दिया जाता है, जिससे वास्तविक कार्यकलापों, क्रियाओं को भली-भाँति समझना मुश्किल हो जाता है उसी प्रकार सिद्ध योगी लोग दृक्शक्तिस्तम्भनक्रिया द्वारा दूसरों की नजर बाँध देते हैं, जिससे नेत्र खुले रहने पर भी नजर बँधी रहने के कारण लोग योगी को देख नहीं पाते हैं और वह वहीं खड़ा रहता है। ऐन्द्रजालिक लोग साधारण क्रिया से नजर को बाँधते हैं और सिद्ध योगी लोग संयम क्रिया से दृष्टि का स्तम्भन करते हैं।

ज्ञानसिद्धि और क्रियासिद्धि दोनों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होने पर सिद्ध पुरुष को शरीर की सारी नाड़ियों का परिज्ञान हो जाता है। उस परिज्ञान के कारण वह दूसरे के शरीर में अपने चित्त को प्रविष्ट कराकर उस पुरुष के मन की सारी बातों को जान लेता है। संयम द्वारा चित्त को नाड़ियों के परिज्ञान के आधार पर किसी के भी शरीर के अन्दर प्रविष्ट और निर्गत कराया जा सकता है।

जिस प्रकार पाँच विषयों में से रूप विषय का संयम करने से योगी के शरीर को कोई नहीं देख पाता है, उसी प्रकार शब्द विषयक संयम से श्रोत्रग्राह्य शक्ति भी स्तम्भित हो जाती है, जिससे योगी द्वारा कहे गये शब्दों को उसी के पास खड़े हुए लोग सुन नहीं सकते हैं। इसी प्रकार शेष गंध, स्पर्श, रस विषयों के संयम से योगी के शरीर के स्पर्श, गन्ध का ज्ञान बगल में खड़े हुए लोगों को नहीं होता है।

शब्द का सम्बन्ध आकाश से रहता है। आकाश का गुण शब्द है। शब्द का आधार आकाश ही है। एक स्थान पर बोला गया शब्द सारे आकाश में व्याप्त हो जाता है। कर्ण इन्द्रिय का सम्बन्ध आकाश से होने के कारण ही कानों में शब्द सुनाई पड़ते हैं। कान के अन्दर जब आकाश तत्त्व विकृत हो जाता है तो आदमी बहरा हो जाता है। कर्णेन्द्रिय और आकाश का जो परस्पर आश्रय-आश्रित भाव है, उसी में संयम करने से योगी लोग दिव्य शक्तिसम्पन्न सिद्धि प्राप्त करते हैं, जिससे सूक्ष्माति-सूक्ष्म, निगूढ़ से भी निगूढ़ दूर स्थित शब्दों को सुनने में समर्थ होते हैं।

योगी लोग अपने स्थूल शरीर और आकाश से सम्बन्ध स्थापित कर संयम द्वारा अत्यन्त लघुतर, सूक्ष्मतम पदार्थ में धारणा करते हैं तो उन्हें लघिमा लघुत्व की सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे वह स्वच्छेया आकाश-गमन करने में समर्थ होते हैं।

जब योगी जन संयम क्रिया द्वारा पंचमहाभूतों की सिद्धि प्राप्त करते हैं तो प्रकृति स्वतः उनके अधीन हो जाती हैं। जैसे गाय अपने बछड़े को स्वतः दूध पिलाया करती है, वैसे ही पंचमहाभूतों पर विजय प्राप्त योगी के वश में प्रकृति स्वयमेव रहती है।

ज्ञानसिद्धि प्राप्त योगी भगवत्साक्षात्कार करने में समर्थ होता है और वह बिना

किसी अवरोध के परमपद प्राप्त करता है, क्रिया सिद्धि सिद्धों को मोक्ष तक न पहुँचाकर प्राणमय लोकों में ले जाती है।

अधम, मध्यम, उत्तम भेद से सिद्धयोगी तीन प्रकार के होते हैं। जो साधना पथ पर चलते हुए प्राप्त सिद्धियों का उपभोग करते हैं वह अधम कहलाते हैं, जो सिद्धि प्राप्त कर उसके भोग सो पराङ्मुख रहते हैं वह मध्यम और जो सिद्धि की कामना न रखकर साधनारत रहते हैं और सिद्धि प्राप्त होने पर भी निष्काम बने रहते हैं, वह उत्तम सिद्ध कहलाते हैं - उन्हें कैवल्य पद की प्राप्ति होती है।

जब साधक मन्त्र - यन्त्र - तन्त्र की सिद्धि की कामना छोड़कर अपने मन को, प्राण को और इन्द्रियों को नियन्त्रित कर चित्त को परमात्मा में लगा देता है तो परमात्मभाव में स्थित उस साधक के समक्ष अनन्त प्रकार की सिद्धियाँ स्वयं उपस्थित होती हैं।

अणिमा, महिमा आदि आठ सिद्धियों के अतिरिक्त **अनूर्मित्व, दूरश्रवण-दूरदर्शन, मनोजवत्व, कामरूपत्व, परकाय प्रवेशन, स्वच्छन्द, मृत्यु, संकल्प सिद्धि, अप्रतिहत गति और आज्ञा** - ये दस प्रकार की सिद्धियाँ सतोगुण प्रधान योगी में विशेष रूप से विकसित होती हैं और त्रिकाल ज्ञान, परिचित ज्ञान, अग्नि - सूर्य - जल - विष आदि की शक्ति स्तम्भित करना और पंचतत्त्वों पर विजय प्राप्त करना-ये पाँच सिद्धियाँ और हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण (श्रीकृष्ण जन्म खण्ड) में २२ प्रकार की सिद्धियों का उल्लेख किया गया है- **१. अणिमा सिद्धि, २. लघिमा सिद्धि, ३. प्राप्ति सिद्धि, ४. कामावसायित्व सिद्धि, ५. महिमा सिद्धि, ६. ईशित्व सिद्धि, ७. वशित्व सिद्धि, ८. प्राकाम्य सिद्धि, ९. दूर श्रवण सिद्धि, १०, परकाय प्रवेश सिद्धि, ११. मनोजवत्व सिद्धि, १२. सर्वज्ञत्व सिद्धि, १३. अभीष्ट सिद्धि, १४. अग्निस्तम्भन सिद्धि, १५. जलस्तम्भन सिद्धि, १६. चिरजीवित्व सिद्धि, १७. वायुस्तम्भन सिद्धि, १८. क्षुधापिपासा निद्रा-स्तम्भन सिद्धि, १९. वाक् सिद्धि, २०. मृतानयन सिद्धि, २१. सृष्टिकरण सिद्धि और २२. प्राणाकर्षण सिद्धि।**

उक्त सिद्धियों का नामोल्लेख करते हुए ब्रह्मवैवर्त पुराण में इन सिद्धियों को प्राप्त करने के उपाय और साधना - क्रियाएँ भी बताई गई हैं।

मार्कण्डेय पुराण (अध्याय ४०) और शिवपुराण (अध्याय २६, २७) में सिद्धियों के स्वरूप और फल का विस्तृत वर्णन मिलता है। शिवपुराण का दावा है कि "यदि प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर 'ओंकार' का अभ्यास किया जाए तो साधना करने वाले साधक के लिए कुछ असाध्य नहीं रह जाता है, उसे मनोवांछित सिद्धियाँ प्राप्त

होती हैं, वह सर्वज्ञ, समदर्शी, स्वेच्छारूपधारी, गगनचारी हो जाता है; उसमें कोई विकार, रोग दोष का प्रवेश नहीं होता। वह साक्षात् शिव बन जाता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

शिव पुराण ने बड़े विश्वास के साथ कहा है कि "कोई भी व्यक्ति नित्य नियमानुसार ब्राह्ममुहर्त्त में सिद्धासन लगाकर बैठे और एकाग्रचित्त होकर दोनों भौंहों के बीच उगते हुए सूर्य के तेज का ध्यान करता हुआ 'ॐ' का जप करे तो वह यथेच्छ रूप धारण करने की शक्ति, दूसरे के चित्त में प्रवेश कर उसके मन की बात जान लेने की शक्ति, दूरस्थ अतिदूरस्थ शब्दों को सुनने की शक्ति, भूत, भविष्य, वर्तमान जानने की शक्ति प्राप्त कर सकता है।

□□

अंजनकल्प ग्रन्थ

९ / जैन और बौद्ध तन्त्र

साधन-मार्ग की सर्वसम्मत तीन धाराएँ हैं- मन्त्र धारा, यन्त्र धारा और तन्त्र धारा। जैन धर्म में इन तीनों धाराओं को स्वीकार किया गया है। जैन धर्म में जो आगमशास्त्र हैं वे सनातनी आगमों की तरह सृष्टि, प्रलय, देवार्चन, देव साधना, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन, ध्यानयोग आदि प्रधान न होकर केवल साधना पथ के निदेशक हैं। जैन शास्त्रों में 'योग' शब्द भी तन्त्र नाम से अभिहित हुआ है। अनुश्रुति है कि जैन तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ से मन्त्र साधना की स्फूर्ति जैन धर्म से हुई है। जैन तन्त्रों का अक्षय कोष जैनाचार्यों द्वारा गोपनीय बना हुआ है। जिस प्रकार सनातन-धर्म में आगम मार्ग की प्रधानता है, उसी प्रकार जैन धर्म में भी सभी कर्म आगमोपदिष्ट हुआ करते हैं। जैन धर्म में सृष्टि-स्थिति-संहार रूप परिकल्पना; देवपूजा-सर्वसाधन-पुरश्चरण-षट्कर्मसाधन-ध्यान योग आदि की साधना के लिए और उपाय विधि बताने के लिए अनेक तन्त्र ग्रन्थ हैं। अर्द्धमागधी भाषा में भी विभिन्न तान्त्रिक साधनाओं में पटु जैनाचार्यों द्वारा अपने तन्त्र में कुछ नवीन और ऐन्द्रजालिक पद्धतियों क्रो भी समाविष्ट किया गया है; जैसे - नखदर्पण (हाजरात) की पद्धति का अनुसरण करते हुए उन्होंने खड्गदर्पण, जलदर्पण, कज्जल दर्पण, घटावतार-पद्धति, अंजन प्रयोग, हनमुत् अंजन, बेताल अंजन आदि प्रयोगों को 'अंजन कल्प' नाम के ग्रन्थ में बड़े विराट् रूप में निरूपित किया है। जैनाचार्यों ने सर्वसाधारण के हित के लिए मणि-मन्त्र-ओषधि-तन्त्र के तान्त्रिक प्रयोग बताए हैं। यन्त्रों से सम्बन्धित विषय में पताका यन्त्र, अंकयन्त्र, रेखायन्त्र, अक्षरयन्त्र आदि अनेकानेक यन्त्र बहु प्रचलित हैं। यन्त्रों - मन्त्रों के साथ ही जैन तान्त्रिकों ने बीज मन्त्र, त्राटक आदि का विशद निरूपण किया है।

सनातन धर्म में तान्त्रिक ग्रन्थ आगम और तन्त्र के नाम से जाने जाते हैं, किन्तु जैन धर्म में आगम और तन्त्र को ही '**विद्याकल्प**' कहा गया है। जैन तान्त्रिक ग्रन्थों की कुछ नामावली यहाँ प्रस्तुत की जा रही है–

विद्याकल्प, नमस्कारमन्त्रकल्प, पंचपरमेष्ठि, महामन्त्र-यन्त्र, बृहत्कल्प, ओंकार कल्प, ह्रींकारकल्प, उपसमाहार कल्प, नमिऊण कल्प, भक्तामर कल्प, कल्याणमन्दिर कल्प, लोगस्स कल्प, शक्रस्तव कल्प, चिन्तामणि कल्प, मन्त्राधिराज कल्प, अट्टेमट्टे मन्त्र कल्प, धरणोरगेन्द्रस्तव कल्प, कलि कुण्ड यन्त्र-मन्त्र कल्प, जीरा

उलीपार्श्वनाथ मन्त्र कल्प, रक्त पद्मावती कल्प, पद्मावती कल्पलता, सूरि मन्त्र कल्प, वर्द्धमान विद्याकल्प, ज्वालामालिनी कल्प, अप्रतिचक्राकल्प, अम्बिका कूष्माण्डी कल्प, गान्धार विद्या कल्प, काम चण्डालिनी कल्प, पंचाङ्गुलिका कल्प, प्रत्यंगिरा कल्प, भारती कल्प, वाग्वादिनी कल्प, सारस्वत कल्प, घण्टाकर्ण कल्प, उग्रविद्या कल्प, क्षेत्र देवता कल्प, श्री विद्या कल्प, मणिभद्र कल्प, घण्टाकर्ण कल्प, उग्रविद्या कल्प, क्षेत्र देवता कल्प, वीशाकल्प, पण्डरिको कल्प, पंचषष्ठिकल्प, द्वासप्ततिकल्प, विजय यन्त्र कल्प, विजय पताका कल्प, जैन पताका कल्प, अर्जुन पताका कल्प, हनुमान पताका कल्प, वज्रपंजर महामन्त्र कल्प, चन्द्र कल्प श्वेतार्क - श्वेतगुंजा - अपराजिता - रुदन्ती - मयूर शिखा - सहदेवी - श्रृगाल श्रृंगी - मार्जारी प्रभृति दिव्य ओषधि कल्प और प्रतिष्ठा कल्प।

कल्प ग्रन्थों की भाँति तन्त्र प्रधान ग्रन्थ भी हैं–गणधर विद्या, चन्द्र सेणमहा विज्जा, मयूरवाहिनी विद्या, चन्द्रप्रभाविद्या, महामोहिनी विद्या, पद्मावती विद्या, शत्रुभय नाशिनी पार्श्वविद्या, परविद्योच्छेदिनी पार्श्व विद्या, वर्द्धमान विद्या, गान्धार विद्या, चतुर्विंशतितीर्थंकर विद्या, श्री ऋषभ विद्या, शान्तिनाथ विद्या, अपराजिता विद्या, रोगापहारिणी विद्या, वासुपूज्य विद्याम्नाय, सारस्वत महाविद्या, श्रुत देवता विद्या– इस प्रकार अनेक विद्याएँ हैं, जिनमें बहुत सी मन्त्र विद्याएँ प्रधान हैं, कुछ साधना पद्धति प्रदर्शिका है। कल्प नाम के संग्रह में ब्रह्म विद्या, श्री विद्या का भी उल्लेख है।

जैन श्रमणों में शक्ति पूजा

जैन श्रमणों में शक्ति पूजा और शाक्त तन्त्रों का प्रचुर प्रभाव मिलता है। यद्यपि जैनियों की शाक्त साधना में बाह्याचार, कुलाचार, समयाचार, सदृश आचार नहीं हैं तथापि प्रणव-बीज, माया-बीज, काम-बीज आदि उपासनाओं के साथ वर्णमय देवता, तीर्थंकारों और शासनदेवताओं की उपासना चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, कालिका, बैरोट्या प्रभृति देवियों एवं सरस्वती की उपासना - षोडशविद्या व्यूह रूप से रोहिणी, प्रजाप्ति शृंखला आदि देवियों की मिलती है।

जिस प्रकार सनातन धर्मावलंबियों में श्री विद्या की उपासना प्रचलित है, वैसे ही बौद्धों में तारादेवी की उपासना और जैनों में शाक्त सम्प्रदाय के अनुकूल श्री पद्मा देवी की उपासना विशिष्ट महत्त्व रखती है। पद्मावती देवी की उपासना के अनेक प्रयोग जैन तन्त्र ग्रन्थों में मिलती है। जैसे, रक्त पद्मावती, शैवागमोक्त पद्मावती, हंस पद्मावती, सरस्वती पद्मावती, नित्या पद्मावती, महामोहिनी पद्मावती, दीपावतार पद्मावती, पुत्रकर पद्मावती, कज्जलावतार पद्मावती, घटावतार पद्मावती

आदि अभीष्ट सिद्धि के तदनुसारी नामों से पद्मावती के मन्त्र मिलते हैं।

जैन धर्मावलम्बी शक्ति की साधना, उपासना में पूर्ण विश्वास रखते हैं। जैन-धर्म की शाक्तसाधना में वामाचार, वज्रयान की भाँति कोई बलि प्रथा या पन्थ प्रचलित नहीं है। जैनों की शाक्त साधना विशुद्ध स्वरूप से आत्मयोग मार्ग का पोषण करती हुई शक्ति युक्त आत्म भावनाओं को प्रधानता देती है। जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र के धर्म ध्यान प्रसंग में पदस्थ ध्यान में षट्चक्र वेध पद्धति के अनुसार वर्णमयी देवी का स्मरण इस प्रकार किया है–

क्षीराम्भोधेर्विनिर्यान्तीं प्लावयन्तीं सुधाम्बिभिः।

भालेशशिकलाध्यायेत् सिद्धिसोपान पद्धतिम्।।

पंचनमस्कृति मन्त्र– जैन धर्म में पंचनमस्कृति का सर्वोपरि महत्त्व है। जैसे वैदिक सनातन धर्म में समस्त धर्म-कर्म की सफलता गायत्री मन्त्र-जप पर निर्भर रहती है, वैसे ही जैन धर्म में पंचगुरु मन्त्र का साधना के बिना सभी धर्म-कर्म निष्फल होते हैं। जब जैन धर्म में तान्त्रिक क्रियाओं का प्रभाव बढ़ा जो पंच-नमस्कार मन्त्र के अनेक साधना-प्रयोगों की रचना आचार्यों ने की। जिस प्रकार शाक्त-साधना में कादि, हादि, सहादि, कूट पद्धति का प्रचलन है, उसी प्रकार जैन तन्त्र-साधना में 'अरिहंत', 'सिद्ध', 'आचार्य', 'उपध्याय' और 'साधु' रूप पंच-परमेष्ठी के लिए असिआउसा कूटाक्षर–बीजाक्षर बन गए। 'असिआउसा' यह बीज मन्त्र भगवान् जिनेश्वर का मन्त्रात्मक शरीर माना गया है–

जग्मुर्जिनारत्तदपवर्गपदंतदैव,

विश्वं वराकमिदमत्र कथं बिनाऽस्मान्।

तत् सर्वलोक भुवनोद्धारणाय,

धीरैर्मन्त्रात्मकं निजवपुर्निहितं तदत्र।।

वैदिक धर्म में ॐ शब्द ब्रह्म का वाचक है, किन्तु जैन धर्म में ओंकार को पंचपरमेष्ठी का वाचक माना गया है। ॐ शब्द की निरुक्ति करते हुए श्री समन्त भद्र सूरि ने लिखा है कि **'पंचषुगुरोर्विद्यैकासुखदा'** तदनुसार **'अरिहन्त'** से 'अ', अशरीरी से 'अ', आचार्य से 'आ', उपाध्याय से 'उ' और मुनि से 'म' आद्य अक्षर लेकर अ + अ + आ + उ + म् - इन पाँ अक्षरों से ओम् शब्द को निष्पन्न बताया गया है।

वैदिकधर्मी तंन्त्र शास्त्र में 'ह्रीं' लक्ष्मी का बीज माना गया है किन्तु जैन तन्त्र में 'ह्रीं' पंचपरमेष्ठी का निवास है। इसके अतिरिक्त 'मन्त्राधिराज कल्प' में ह्रीं में

चौबीस जिनों का निवास बताया गया है। पंचनमस्कारान्तर्गत अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु - इन पंचपरमेष्ठियों का ऐक्य रूप 'अर्हम्' बताया गया है। यहीं श्रीमन्त्राधिराजकल्प में 'ॐ' ह्रीं अर्ह नमः' इस मन्त्र को रत्नत्रय कहा गया है। कहीं 'ह्रीं' इस बीजाक्षर को ही मन्त्रराज कहा गया है–

ऊर्ध्वाधो रेफमाक्रान्तं सकलं बिन्दुलाञ्छितम्।
अनाहतयुतं तत्त्वं मन्त्रराजं प्रचक्षते।।

- ब्रह्म विद्या विधि

शाक्तमत की भाँति जैनमत में भी मन्त्रों की साधना के लिए साधक को सुयोग्य गुरु से दीक्षा लेनी आवश्यक होती है। जैनतन्त्र में दीक्षा से ही सारी साधना फलवती होती है। साधना के आचार भी सम्प्रदाय के अनुसार जैनतन्त्रों में बताए गए हैं। बहिर्याग के रूप में शय्यात्याग, मल-विसर्जन, दन्तधावन, स्नान, वस्त्र धारण, गृह-प्रवेश, आसन, दिशामुख, गन्ध, धूप-दीप, पुष्प, नैवेद्य आदि आचार साधना पद्धति में स्वीकार किए गए हैं। वशीकरण, सम्मोहन आदि विशिष्ट षट्कर्मों के विधान भी बताए गए हैं। जैनतन्त्राचार में अपने-अपने आराध्य देवताओं की प्रतिमा, उनके यन्त्र, चित्र आदि की बाह्य पूजा के साथ कुण्डलिनी जागरण, सहस्रार चक्र भेदन आदि कर्मों का विशद विधान मिलता है।

जैनतन्त्राचार्यों ने तान्त्रिक क्रियाओं और साधनाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्योद्घाटन करते हुए विविधि प्रकार के प्रयोग बताए हैं। वैदिक तन्त्र - क्षेत्र में जिस प्रकार रुद्राक्ष, तुलसी, अक्षमाला, करमाला आदि का विधान बताए गया है, उसी प्रकार जैनतन्त्रों में माला सम्बन्धी विशद निरूपण किया गया है। इतना ही नहीं, जप की माला के विषय में 'सूत्र माला', मुक्ता-माला', 'बीजमाला' तथा 'करमाला' जैसे अभिनव प्रकारों का आविष्कार किया गया है।

यन्त्र-रचना के लिए बताया गया है कि सोने, चाँदी या कांसे के पत्र में यन्त्र लिखकर जो नित्य पूजन करता है उसके घर में अष्ट सिद्धियाँ सदैव वास करती हैं और यदि भोज पत्र में लिखकर गले या भुजा में धारण किया जाए तो सभी प्रकार के भय, संकट का विनाश होता है–

सुवर्णे रौप्ये पटे कांस्ये लिखित्वा यस्तु पूजयेत्।
तस्यैवाष्टमहासिद्धिर्गृहे वसति शाश्वती।।
भुर्जपत्रेलिखित्वेदं मस्तके मूर्ध्नि वा भुजे।
धारितं सर्वदा दिव्यं सर्वभीतिविनाशकम्।।

वैदिक तन्त्र शास्त्रीय विधान की भाँति जैनतन्त्रों ने भी षट्चक्र शोधन, माला-मन्त्र, लेखनमन्त्र, पूजनमन्त्र, पाठमन्त्र का विशद विवरण देते हुए कीलित, अभिशप्त, सुप्त-प्रसुप्त, खण्डित स्वरूप विचारण, अभिषेक, मार्जन, अधिश्रयण, संस्कारकरण, दोष निवारण के लिए पंचांग विधान, रहस्य स्तोत्र, सहस्रनाम कवच-न्यास-ध्यान-मुद्रा-तत्त्व-मण्डल-स्वर आदि का सामयिक परिचय बड़े विस्तार से दिया है।

'आर्षविद्यानुशासन' ग्रंथरत्न में मन्त्रमेलन और पांचभौतिक चक्र, द्वादशाक्षर-चक्र, ऋण-धन शोधन चक्र, नक्षत्र चक्र, सूर्य चक्र का सम्यक् विवेचन किया गया है। इतना ही नहीं बल्कि जैनतन्त्राचार्यों ने सभी प्रकार के सुख देने वाले लौकिक विषयों को भी तन्त्रविद्या में स्थान दिया है। जैसे 'आर्षविद्यानुशासन' के छठे समुद्देश्य में स्त्रियों के जो आठ दोष होते हैं, उनके विरोधक अदोषों के लक्षण बताए गए हैं। उन दोषों के निवारण के लिए ओषधियाँ और मन्त्र-यन्त्र बताए गए हैं। बन्ध्या स्त्री को पुत्र लाभ प्राप्त कराने के लिए ओषधि और गर्भसम्बन्धी सब दोषों को दूर करने के लिए प्रयोग बताए गए हैं। गर्भाधान होने पर स्त्री के लिए प्रतिमास के कर्त्तव्य, शीघ्र प्रसव के लिए मन्त्र प्रयोग बताए गए हैं। इनके अतिरिक्त सर्पविषज्ञान, विषविज्ञान, बालविज्ञान, जमीन के अन्दर गड़े हुए धन के परीक्षण का विधान आदि विस्तार से बताया गया है।

जैनतान्त्रिक साधक वैदिक पद्धति से शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, आकर्षण, उच्चाटन, स्तम्भन आदि कर्मों की सिद्धि के लिए हवन आदि भी करते हैं। डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत, पिशाच, बेताल के भय का अपसारण करने के लिए जप का विधान प्रधान मानते हैं।

जैनतन्त्र और शाक्ततन्त्र की समानता–'**भैरवपद्मावतीकल्प**' नामक जैनतन्त्र में शाक्ततन्त्र के सभी सिद्धान्त मिलते हैं। सरस्वती की साधना जैनतन्त्र का सिद्धिप्रद अध्याय है। देवी स्तोत्र में शाक्ततन्त्र की सभी शक्तियों का उल्लेख मिलता है। इस शक्ति-साधना से जैन शासन की सिद्धि बताई गई है–इसे '**स्याद्वादमंजरी**' के टीकाकार हेमचन्द्राचार्य ने भी स्वीकार किया है। पद्मावती कल्प में शाक्तों की शक्ति उपासना एवं जैन मान्यता में पूर्ण समानता मिलती है–

तोतला त्वरिता नित्या त्रिपुरा कामसाधिनी।
देव्या नामानि पद्मायास्तथा त्रिपुर भैरवी।।

'भक्तामार' स्तोत्र जैन तन्त्र में बहुत ही शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाला स्तोत्र है। इसमें मारण, मोहन, उच्चाटन आदि षट्कर्म प्रयोगों की विधियाँ बताई गई हैं।

बौद्ध तन्त्र– तथागत बुद्ध ने कहा है कि ''तृष्णा-क्षय के द्वारा दुःख की निवृत्ति हो

सकती है। तृष्णा-क्षय के लिए पवित्र और निर्दोष जीवन व्यतीत करना आवश्यक है।" तात्पर्य यह कि बुद्ध के उपदेश दुःखों, क्लेशों से निवृत्त कराकर 'निर्वाण' की ओर ले जाने वाले थे। निर्वाण या मोक्ष की साधना वैदिक, तान्त्रिक, शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्ध, सभी मतों, धर्मों, दर्शनों का लक्ष्य है। तथागत के परिनिर्वाण के अनन्तर बौद्ध धर्म की 'महायान' शाखा में एक जबर्दस्त उदार परिवर्तन यह हुआ कि उसका लक्ष्य व्यक्तिगत निर्वाण के स्थान में सभी प्राणियों का उद्धार करना हो गया। परिणाम यह हुआ कि दूसरे धर्मावलम्बियों का महायान में बिना किसी रुकावट के प्रवेश होने लगा। कुछ ही दिनों में महायान बौद्धधर्म की एक शाखा से ऊपर उठ कर एशिया का व्यापक धर्म बन गया।

साधक अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रता से बढ़ सके इसलिए तान्त्रिक साधना का द्वार सबके लिए खोल दिया गया। अब तक यही मान्यता चली आ रही है कि बुद्ध के परिनिर्वाण के सौ वर्ष बाद बौद्धधर्म में तान्त्रिक साधनाओं का समावेश हुआ है, किन्तु यह भ्रान्ति है। सूक्ष्म समीक्षात्मक दृष्टि से देखा जाए तो स्वयं तथागत ने भी तान्त्रिक साधना की थी। जिस ब्रह्म विद्या और योग विधि को नचिकेता ने यम से प्राप्त किया था, जिसे बृहदारण्यक उपनिषद् 'मधुविद्या' कहती है और श्रीमद्भागवत में जिसे हयग्रीव विद्या कहा गया है, उसी की साधना देवों, ऋषियों और दैत्यों-असुरों ने भी की है। इस विद्या और योग विधि की साधना हिरण्यकशिपु वैरोचन ने की थी, इसलिए इन्हें 'वज्रवैरोचनीया' कहते हैं। वस्तुतः 'वैरोचन' नाम अग्नि का है। मणिपूर चक्र में अग्नि अधिष्ठान है, यहीं पर उस अग्नि का ध्यान किया जाता है। 'वज्रनाड़ी' में प्रवाह होने से इसे 'वज्र वैरोचनीया' कहा गया है। **वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्**– कहकर यही बात कही गई है, क्योंकि जितने भी कर्मफल हैं, सब अग्नि द्वारा भी प्राप्त होते हैं। तथागत बुद्ध ने 'वज्र वैरोचनीया' साधना द्वारा 'मार' पर विजय प्राप्त की थी। इसलिए गौतम बुद्ध का एक नाम 'वैरोचन बुद्ध' भी पड़ गया। इसके प्रमाण वज्रयान के ग्रंथों में मिलते हैं। 'गुह्यसमाज तन्त्र' का भी साक्ष्य है–

एवं मया श्रुतं एकस्मिन् समये भगवान् सर्वतथागतः।
कायवाक् चित् हृदयवज्रयोषिद् भगेषु विजहार।।

(पृष्ठ १)

इस साक्ष्य से सिद्ध है कि बुद्ध तान्त्रिक साधक थे। 'हूँ' बीज शक्ति तन्त्रों में 'तारा' और छिन्नमस्ता' का है। इस बीज का निरूपण उक्त 'गुह्यसमाजतन्त्र' में किया गया है। तिब्बती बौद्धों में 'वज्रेश्वरी' (तारा) की उपासना प्रचलित है। इनकी उपासना का क्रम 'चीनाचार' एवं 'दिव्य चीनाचार' के नाम से प्रसिद्ध है।

तान्त्रिक साधनाएँ प्रारम्भ से ही गोप्य मानी जाती रही हैं। सर्वसाधारण में इनको प्रकट नहीं किया जाता है। कदाचित् तथागत ने भी अपनी तान्त्रिक साधना को गोपनीय रखा था, कुछ ही अधिकारी शिष्य साधकों को उन्होंने इस परम गोपनीय रहस्य को बताया हो। गौतम बुद्ध ने अपने जीवन काल में सूखी हुई नदी में जल - प्रवाह उत्पन्न करने जैसे अनेक चमत्कारी सिद्धियों का प्रदर्शन किया था।

बौद्ध धर्म की महायान शाखा की दो धाराएँ हैं–'पारमितायान' और 'मन्त्रयान'। दोनों धाराओं का लक्ष्य बुद्धत्व की प्राप्ति है। पारमितायान में करुणा, मैत्री आदि की चर्या प्रधान है। दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञा–ये छह पारमिताएँ मानी गई हैं, जिनमें 'प्रज्ञा' का महत्त्व सर्वोपरि है। मन्त्रयान के वज्रयान, काल-चक्रयान तथा सहजयान - अवान्तर भेद है। 'वज्रयान' तथा 'कालचक्रयान' की साधना में मन्त्र का प्राधान्य रहता है। सहजयान योग प्रधान है, मन्त्र पर अधिक बल नहीं दिया गया है। बौद्धमहायान सम्प्रदाय के अर्न्तगत सहज और वज्रमार्ग में साधना-सम्पन्न, अनुभूति सम्पन्न आचार्य 'सिद्ध' कहलाते हैं। ये सिद्धगण अपनी प्राकृत और अतिप्राकृत शक्तियों के लिए शताब्दियों से प्रसिद्ध हैं।

शाक्त तन्त्रों का आधार 'पंचब्रह्ममन्त्र' है। पंचब्रह्ममन्त्र का उल्लेख कृष्ण यजुर्वेद की काष्ठा, तैत्तरीय और मैत्रायणी शाखाओं में मिलता है; जिन्हें सद्योजात, वामदेव, अघोर तत्पुरुष और ईशान कहते हैं। शिव के ये पाँचों मन्त्रमय मुख कहे जाते हैं। इन्हीं से शैवागमों और शाक्त आगमों का विस्तार हुआ है।

परशुराम कल्पसूत्र २ का कथन है कि ''परमशिव ने सर्वदर्शन-लीला-न्याय से अष्टादशविद्याओं की रचना की है। संविद्मयी महाशक्ति के पूछने पर परमशिव ने अपने पंचमुखों के पंचाम्नायों को कहा।'' इन्हीं पाँचों मन्त्रों पर पंचाध्यायात्मक 'पाशुपत' सूत्रों की रचना कर शैवधर्म का विस्तार किया गया है। ये मन्त्र शैव और शाक्त दोनों सम्प्रदायों के समान रूप से मान्य हैं। वीर शैव सम्प्रदाय के आचार्यों ने इन्हीं पाँचों मन्त्रों से अपने पंचाचार्यों की कल्पना की है। जिन्हें 'रेणुक', 'दारुक', 'चंकुकर्ण', 'धेनुकर्ण' और 'विश्वकर्ण' कहते हैं। बौद्धों की 'पंचबुद्ध' की कल्पना इसी के अनुकरण पर है–

जिनो वैरोचनः ख्यातो रत्नसम्भव एव च।
अमिताभोऽमोघसिद्धिरक्षोभ्यश्च प्रकीर्तितः।।

१. वैरोचन, २. रत्नसम्भव, ३. अमिताभ, ४. अमोघसिद्धि और ५. अक्षोभ्य बुद्ध - ये पंचबुद्ध हैं।

बौघ तन्त्र साधना में चक्रपूजा, मन्त्र, हठ, मैथुन आदि शाक्तों के कर्मों का समावेश है। शाक्त तन्त्रों के अनुकरण पर बौद्ध तन्त्रों का आविर्भाव हुआ है। शाक्त

साधना में जैसे 'सद्योजातः' आदि दिशा क्रम है, ऐसा ही बौद्ध तन्त्र साधना में भी है। पूर्व दिशा में 'वैरोचन', दक्षिण दिशा में 'अमिताभ', पश्चिम दिशा में 'रत्नसम्भव', उत्तर दिशा में 'अमोघसिद्धि' एवं ऊर्ध्व में 'अक्षोभ्यबुद्ध' माने जाते हैं। 'वैरोचन बुद्ध' और 'अक्षोभ्य बुद्ध' का सम्बन्ध वज्रयान से है। विरोचन ही विकराल शिव का दूसरा नाम है। 'ज्ञानसिद्धि', प्रज्ञोपाय' आदि ग्रन्थों में बौद्ध तन्त्र साधना के अन्तर्गत बलिदान, श्मशान सेवन क्रियाएँ बताई गई हैं।

सनातन वैदिक धर्म समन्वयवादी है, जैन धर्म और बौद्ध धर्म के बृहस्पति, ऋषभ एवं बुद्ध आदि आचार्यों को भगवान् के अवतार के रूप में मान्यता देकर उन्हें सम्मान दिया है। शाक्त साधना के 'षडायतन' पूजन में जैन-बौद्ध तन्त्र ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, उन्हें प्रामाण्य माना गया है। ओड्डियान, पूर्णगिरि, कामाख्या, श्रीह्रद आदि शाक्तमत के प्रमुख शक्ति पीठ है। बौद्धों ने भी इन्हें अपनी तान्त्रिक साधना का पीठ माना है। बौद्ध तन्त्र साधन माला (पृष्ठ ४५३) में 'वज्रयोगिनी' साधना के सन्दर्भ में उक्त पीठों में पूजन करने का उल्लेख है—

ओडियान - पूर्णगिरि - कामाख्या - सिरिहट्ट इत्यनेन पूजयेत्।

शैव तत्त्वज्ञान पर आधारित बौद्धों का शून्यवाद

शैवदर्शन बौद्धदर्शन से बहुत पुराना और श्रुतिआगमसम्मत है। बौद्धों के 'शून्यवाद' का विवेचन '**माध्यमकारिका**', 'महायानविंशक' आदि ग्रंथों में विस्तृत रूप से मिलता है। शंकर के अद्वैत सिद्धान्त से नागार्जुन का शून्य सिद्धान्त बहुत कुछ मिलता है। शंकर का अद्वैत मत कश्मीर के शैव शाक्तों की मान्यता पर आधारित है, इस मान्यता का विस्तार वसुगुप्त, सोमानन्द आदि आचार्यों ने किया है। शैव और शाक्त अद्वैतवाद में 'परिणामवाद' पर अधिक बल दिया गया है, किन्तु आचार्य शंकर ने 'विवर्तवाद' मानकर केवल 'कार्य - कारणावस्था में सत्य है, जगत् अवस्था में मिथ्या है'-सिद्धान्त का मुख्य रूप से प्रचार किया है। 'पाशुपत' सूत्रों की भूमिका में शैवों के भेदों का निरूपण करते हुए श्री आर० एस० शास्त्री ने कश्मीरी शैवों के सम्बन्ध में जो लिखा है, उसका आशय यह है—

''कश्मीर के शैव भगवान् शिव की अपेक्षा भगवती उमा को ही प्रधानता देते हैं। इस मत के संस्थापक 'वसुगुप्त' और 'सोमानन्द' हैं। शाक्तदर्शन का निर्माण यहीं हुआ है। 'प्रत्यभिज्ञाहृदय', 'तत्त्वसंदोह', 'पराप्रावेशिका', 'कामकलाविलास', आदि ग्रन्थ यहीं लिखे गये हैं। इस मत का विकसित रूप ही शंकराचार्य, का 'अद्वैतवाद' है। आचार्य शंकर ने अपने शब्दों में इस मत का कहीं खण्डन भी नहीं किया है।''

इसलिए जिन लोगों की यह धारणा है कि शंकर का अद्वैतवाद नागार्जुन के शून्यवाद से प्रभावित है, वह निरस्त हो जाती है। शंकर के अद्वैतवाद में श्रुति की प्रधानता है। आगम वचनों के प्रमाण उन्होंने नहीं ग्रहण किए हैं। कश्मीरी शैव आगम को ही मुख्य मानते हैं, साथ ही विवर्तवाद का खण्डन भी नहीं करते हैं। 'अभेदकारिका' में सिद्धनाथ ने कहा है कि - 'अग्राह्य, आकृतिरहित, भावशून्य वस्तु को शिवपद से व्यवहार करना भी एक कल्पना है। इस तरह तो विवर्त और परिणाम दोनों नहीं हो सकते अथवा दोनों ही हों- इसका हम खण्डन नहीं करते–

वस्तुनो भावशून्यस्य त्वग्राह्यस्य निराकृतेः।
कल्पनामात्रे वै एतत् यच्छिवव्यपदेशनम्।।
नेत्थं विभोर्विवर्तीऽस्ति परिणामश्च न क्वचित्।
अथवा द्वयमप्यस्तु तथाप्यस्य न खण्डना।।

'विवर्तवाद' और 'परिणामवाद' इन दोनों मतों का प्रतिपादन 'संवित्प्रकाश' में इस प्रकार किया गया है–

''इस प्रकार निर्मल ज्ञानैकरूप में विवर्त और परिणाम दोनों प्रकार से सृष्टिकार्य बन सकता है। हे अच्युत, विवर्तरूप में तुम अतथा रूप से भासित होते हो, जैसे रज्जु में सर्प और परिणाम में तुम वही हो, जैसे कुण्डल में स्वर्ण।।

इति निर्मलबोधैकरूपे देहपरिग्रहः।
विवर्तपरिणामाभ्यां द्वाभ्यामप्युपपद्यते।।
विवर्तेऽतथारूपस्तथा भासितत्वमच्युत।
परिणामे स एव त्वं सुवर्णमिव कुण्डले।।

विवर्तवाद और परिणामवाद की इस एकता को आचार्य गौड़पाद ने भी 'माण्डूक्यकारिका' में स्पष्ट स्वीकार किया है। नागार्जुन ने अपने शून्यवाद के शून्य का लक्षण भी इसी ढंग से बताया है। उनका शून्यवाद उनसे कहीं अधिक प्राचीन शैवदर्शन के सिद्धान्तों पर आधारित है।

वातुलनाथ सूत्रों में भी शिव को शून्य आकार में बताया गया है। योगी अमृतानन्द ने 'योगिनी हृदय' की टीका में शून्य का अर्थ यह किया है–

शून्याकाराद् विसर्गान्ताद् बिन्दोः प्रस्पन्दसंविद (१-१०)

इसकी व्याख्या में कहा गया है कि–

शून्यत्वं पुनरभनिरस्तनिखिलप्रपंचत्वात् अतएव परमशिवः।

समस्त प्रपंच से रहित परमशिव ही शून्य आकार वाले हैं। इस विवेचन से सिद्ध है कि शैव-शाक्त सन्तों के तान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुकरण पर बौद्ध तन्त्रों का निर्माण हुआ है और शैवतत्त्व ज्ञान के अनुकरण पर ही नागार्जुन का 'शून्यवाद' है।

अभीष्टफल की प्राप्ति के लिए बौद्धधर्म में तान्त्रिक साधनाओं का सर्वाधिक विकास 'नागार्जुन' ने किया है। उन्हीं के प्रयास से 'योगचर्या' में योग का पुनः समावेश हुआ। मूर्तिपूजन एवं विस्तृत अर्चन-विधान भी ग्रहण किया गया, विभिन्न शक्तियों की विभिन्न ढंग से साधनाएँ प्रचलित हुई हैं। 'मन्त्रयान' और 'वज्रयान' के द्वारा अगणित तथा कल्पनातीत चमत्कारों से भरे मन्त्रों, यन्त्रों का व्यवहार होने लगा है। तिब्बत के **'सोंघपा'** नाम के एक तान्त्रिक ने **'लाम-रिम-छेनमो'** नाम का विशाल तन्त्र ग्रन्थ रचकर उसमें बौद्ध तन्त्रों की साधना का क्रमबद्ध विवरण दिया है। 'क ह-ग्युर' नाम का एक महाग्रन्थ है, जिसमें ऐसे-ऐसे चमत्कारी तन्त्रों का संग्रह है, जिन्हें अपूर्व कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में मन्त्र-सिद्धि के विधान, पूजन-विधान, दिव्य मातृकाओं का अर्चन-विधान, ज्योतिष विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान पर विस्तृत विवेचन मिलता है।

बौद्ध तन्त्र मुख्यतया चार प्रकार के हैं– **क्रिया, चर्या, योग** और **अनुत्तर तन्त्र।** अनुत्तर तन्त्र के तीन अवान्तर भेद हैं–महा, अनु और अतियोग तन्त्र। बौद्ध तन्त्रों की साधना सर्वाधिक और व्यापक रूप में तिब्बत में हुई है।

□□

१०/ शक्ति-साधना

देव्यथर्वशीर्ष की साधना

वेदों, आगमों, पुराणों और तन्त्रशास्त्र में अनेकानेक तन्त्रविषयक साधनाएँ हैं, किन्तु ब्रह्म की चित् शक्ति महामाया के सगुण और निर्गुण स्वरूप यथावत् निरूपण तथा उसका ध्यान, मन्त्र और स्तोत्र का वर्णन करने वाला अत्यन्त सा[illegible], स[illegible]ल श्रुति का शिरोभाग 'देव्यथर्वशीर्ष' अत्यन्त फलप्रद, तेजस्वी और अमोघ सिद्ध है।

'अथर्वशीर्ष' का अर्थ है–अथर्ववेद का शिरोभाग। वेद के संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक तीन अंग हैं। उपनिषद् प्रायः आरण्यक के अन्तर्गत मानी जाती है। प्रत्येक वेद की उपनिषद् होती है। अथर्ववेद की उपनिषद् 'अथर्वशीर्ष' है। अथर्वशीर्ष प्रधानतया पाँच हैं, जिनमें देव्यथर्वशीर्ष सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि केवल इसी के पठन से इसके अनुष्ठान से पाँचों अथर्वशीषों की फल प्राप्त होता है। मेरा निजी अनुभव है कि ' देव्यथर्वशीर्ष से पाप-ताप का नाश होता है, कृत्या का परिहरण होता है, महासंकटों से मुक्ति मिलती है, देव-सान्निद्धय प्राप्त होता है। मुझे एक ऐसे साधक के साक्षात्कार करने का अवसर मिला है, जिन्होंने 'देव्यथर्वशीर्ष' की साधना द्वारा वाकसिद्धि प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त अत्रि[1], शंख[2] और वशिष्ठ[3] स्मृतिकारों ने **'शतरुद्रीयमथर्वशिरस्त्रिसुपर्ण महाव्रतम्'** कहकर रुद्र आदि के साथ ही 'अथर्वशीर्ष' का निर्देश किया है और गौतम धर्मसूत्र[4] में अघमर्षणमथर्वशिरोरुद्रः का उल्लेख मिलता है।

अधिक विवरण न देकर हम प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों से पाठानुशीलन और अर्थानुसन्धान करके सर्वांग शुद्ध 'देव्यथर्वशीर्ष' हिन्दी भाषान्तर सहित प्रस्तुत कर रहे हैं। इसकी साधना, उपासना या नित्य पाठ करना सकाम प्रयोजन के लिए बहुत ही हितकर एवं फलप्रद है।

---

१. अत्रि स्मृति ६।३

२. शंख स्मृति ११।४

३. वशिष्ठ स्मृति २८।१४

४. गौतमधर्मसूत्र ३।१।१२ ।

श्री देव्यथर्वशीर्षम्

१. ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति।

अर्थ–सभी देवगण भगवती महाशक्ति के समीप स्थित होकर बोले - ''हे महादेवि! तुम कौन हो?''

२. साऽब्रवीत्–अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च।

अर्थ–भगवती ने कहा-''मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ। मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक सत्-असत् रूप जगत् उत्पन्न हुआ है।''

३. अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पंचभूतान्यपंचभूतानि। अहमखिलं जगत्।

अर्थ–मैं आन्नद और अनानन्दरूपा हूँ। मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूँ। अवश्य जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्म मैं ही हूँ। पंचमहाभूत और अपंचमहाभूत मैं ही हूँ। अखिल विश्व ब्रह्माण्ड मैं हूँ।

४. वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याऽहमाविद्याऽहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्व च तिर्यक्चाहम्।

अर्थ–वेद और अवेद मैं हूँ। विद्या और अविद्या मैं हूँ। अजा और अनजा मैं हूँ। नीचे और ऊपर, दाएँ-बाएँ, टेढ़े-तिरछे सर्वत्र मैं हूँ।

५. अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ विभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ।

अर्थ–मैं रुद्रों और वसुओं के रूप में र चरण करती हूँ। मैं आदित्यों और विश्वेदेवों के रूप में भ्रमण करती हूँ। मैं मित्र-वरुण का, इन्द्र-अग्नि का और अश्विनद्वय का पोषण करती हूँ।

६. अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापति दधामि।

अर्थ–मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूँ। तीनों लोकों का अतिक्रमण करने के लिए लंबे डग भरने वाले, विष्णु ब्रह्मदेव और प्रजापति को मैं ही धारण करती हूँ।

७. अहं दधामि द्रविणम् हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते। अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद। स दैवींसम्पदमाप्नोति।

अर्थ–हविर्यज्ञ करने वाले सोमपायी यजमान के लिए मैं हविष्यान्न युक्त द्रव्य (धन) को धारण करती हूँ। मैं समस्त विश्व की अधीश्वरी अपने उपासकों को श्री सम्पदा देने वाली हूँ। मैं ब्रह्मरूप हूँ और यज्ञभाग प्राप्त करने वाले देवों में सर्वप्रथम स्थान रखती हूँ। अपने ही (स्व) रूप पर मैं आकाशादि का निर्माण करती हूँ। आत्मस्वरूप को धारण करने वाली बुद्धि वृत्ति में मेरा स्थान है।

८. ते देवा अब्रवन्–नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मृताम्।।

अर्थ–भगवती द्वारा उनका आत्मपरिचय सुनकर वे देवगण बोले -देवि ! आपको नमस्कार है। हे महादेवि ! आपको नमस्कार है। हे शिव ! आपको बारम्बार नमस्कार है। हे महामाये ! आपको नमस्कार है। हे गुणसाम्यावस्थारूपिणि मंगलमयि देवि ! आपको नमस्कार है। हे कल्याण-कारिणि देवि ! हम नियम-युक्त होकर तुम्हें प्रणाम करते हैं।

९. तामाग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरण प्रपद्या-
महेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः।।

अर्थ–अग्नि के समान जाज्वल्य वर्णवाली, तप से प्रदीप्त कर्मफल-प्राप्ति के निमित्त आराधना की जाने वाली भगवती दुर्गे ! हम आपकी शरण में हैं। हे असुर निकन्दिनी देवि ! आपको नमस्कार है।

१०. देवीं वाचमजनवन्त देवास्तां
विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्पानुप सुष्टुतैतु।।

अर्थ–प्राण-अपान रूप देवों ने जिस बैखरी वाणी को उत्पन्न किया, उसे सभी प्राणी बोलते हैं। वह आनन्ददायिनी, अन्न-धन देने वाली कामदुघा वाणी रूपिणी भगवती महाशक्ति हम उत्तम स्तुति से सन्तुष्ट होकर समीप आए।

११. कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम्।।

अर्थ–वेदों द्वारा स्तुत्य भगवती कालरात्रि, विष्णुशक्ति, शिवशक्ति, ब्रह्मशक्ति, देवमाता अदिति और दक्षकन्या सती, पापापहारिणी, कल्याणकारिणी भगवति! हम

तुम्हें प्रणाम करते हैं।

१२. महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि
तन्नो देवी प्रचोदयात्।

अर्थ–हम उस महाशक्ति के महालक्ष्मी रूप को जानते हैं और उसी सर्वशक्तिरूपिणी देवी का ध्यान करते हैं। वह देवी हमें सत्कर्मों में प्रवृत्त करें।

१३. अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्दजायन्त भद्रा अमृत बन्धवः।।

अर्थ–हे दक्ष ! आपकी जो कन्या अदिति है, वह प्रसूता हुई और उसकी स्तुति करने योग्य एवं जरा-मरण रहित देव उत्पन्न हुए।

१४. कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्।।[1]

अर्थ–काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि (इन्द्र = ल), गुहा (ह्रीं)। ह, स वर्ण, मातरिश्वा-वायु (क) अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं)। स, क, ल वर्ण, और माया (ह्रीं), यह सर्वात्मिका जगन्माता का मूल विद्या है और यह ब्रह्मरूपिणी है।

इस श्लोक से पंचदशी मन्त्र और पंत्रदशी यन्त्र का उद्धार होता है। तन्त्र-शास्त्र में पंचदशिकादि श्री विद्या के नाम से प्रसिद्ध है। इस श्लोक के छह प्रकार के भावार्थ, वाच्यार्थ, सम्प्रदाय अर्थ, कौलिक अर्थ, रहस्यार्थ और तत्त्वार्थ 'नित्याषोडशिकार्णव' ग्रन्थ में बताए गए हैं।

उपर्युक्त बीजाक्षरों से यह भावार्थ निकलता है–

''शिव-शक्ति अभेदरूपा, ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती-लक्ष्मी-गौरीरूपा, अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासकात्मिका, समरसीभूत शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूप का निर्विकल्प ज्ञान देने वाली सर्वतत्त्वात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी।

वस्तुतः इस श्लोक (मन्त्र) में रहस्य विद्या निहित है। यह परम गोपनीय है। गुरुओं द्वारा ही इसका रहस्य बोध प्राप्त किया जाता है। मन्त्र को गोपनीय रखने के लिए इस मन्त्र में कहीं लक्षणा है, कहीं जहल्लक्षणा, कहीं अजहल्लक्षणा, कहीं

---

१. हमने अपनी पुस्तक ''त्रिपुर सुन्दरी साधना'' (प्रकाशित) में इस रहस्य विद्या का उद्‌घाटन कर विस्तृत विवेचनपूर्वक साधना-विधि दी है।

स्वरूपोच्चार, कहीं वर्ण विपर्यय, कहीं वर्ण के पृथक् अवयव प्रस्तुत कर गोपनीय बनाया गया है।

१५. एषात्मशक्तिः । एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति।

अर्थ—यह परमात्मशक्ति है। यह विश्वविमोहिनी है। पाश, अंकुश, धनुष, बाण धारण करने वाली है। यह 'श्रीमहाविद्या' है। जो ऐसा जानता है, वह शोक को पार कर जाता है।

१६. नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः।

अर्थ—हे भगवति! तुम्हें नमस्कार है। हे मातः ! सब प्रकार से हमारी रक्षा करो।

१७. सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्माविष्णु-रुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादिकालरूपिणी। तमहं प्रणौमि नित्यम्।

पापापहारिर्णी देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्।।

अर्थ—वही देवी अष्टवसु है, वही यह एकादश रुद्र है। वही यह द्वादश आदित्य है। वह यह सोमपान करने वाले और सोमपान न करले वाले विश्वदेव हैं। वही यह यातुधान, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं। वही यह सत्व, रज और तम हैं। वही यह ब्रह्मा-विष्णु-रुद्ररूपिणी हैं। वही यह प्रजापति, इन्द्र मनु है, वही यह ग्रह, नक्षत्र और तारा हैं। पापापहारिणी, भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी हैं। वही यह कलाकाष्ठादिकालरूपिणी है और वही यह अन्तर्हित, विजयाधिष्ठात्री, निर्दोष, शरण लेने योग्य कल्याणकारिणी, मंगलरूपिणी हैं। ऐसी उन देवी को हम सदा प्रणाम करते हैं।

१८. वियदीकार संयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दु लसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्।।

अर्थ—वियत् - आकाश (ह) तथा 'ई' कार से युक्त, वीतिहोत्र - अग्नि (र) सहित, अर्धचन्द्र (ँ) से अलंकृत जो देवी का बीज (ह्रीं) है, वह सभी मनोरथों को सिद्ध करता है।

१९. एकमेवाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः।।

अर्थ–इस एकाक्षर (ह्रीं)[1] ब्रह्म का ध्यान ऐसे यति करते हैं जिनका चित्त शुद्ध है, जो परमानन्दमय और ज्ञाननिधि हैं।

२०. वाड्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम्।
सूर्योऽवाम श्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयकः।।

अर्थ–वाक् (ऐं), माया (ह्रीं), ब्रह्मसू (काम- क्लीं), इसके आगे का छठा व्यंजन (च) वक्त्र (आ) से समन्वित (चा), सूर्य (म), अवाम श्रोत्र (दक्षिण कर्ण उ) और बिन्दु से युक्त (मुं), टकार से तीसरा वर्ण (ड), वही नारायण (आ) से मिश्र (डा), वायु (य), वही अधर (ऐ) से युक्त (यै) और 'विच्चे' यह नवार्ण मन्त्र महान् आनन्द (ब्रह्म सायुज्य) देने वाला है।

इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार है–

हे चित्स्वरूपिणी महासरस्वति ! हे सद्रूपिणी महालक्ष्मि ! हे आन्नद-रूपिणी महाकालि ! ब्रह्मविद्या-प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महासरस्वती महालक्ष्मी-महाकाली स्वरूपिणी चण्डिके ! तुम्हें नमस्कार है।

२१. हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं प्रातःसूर्यसमप्रभाम्।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुधां भजे।।

अर्थ–हृदय-कमल के मध्य स्थित, प्रातःकाल के सूर्य की कान्ति के समान द्युतिमती, पाश और अंकुश धारण करने वाली, सौम्यवदना, हाथों में वरद मुद्रा और अभय मुद्रा धारण करने वाली, तीन नेत्रों वाली रक्त वसना, भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाली देवी की मैं आराधना करता हूँ।

२२. नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम्।
महादुर्ग प्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्।।

अर्थ–महाभय को नाश करने वाली, महासंकट को शान्त करने वाली, करुणामयी हे महादेवि ! तुम्हें नमस्कार है।

२३. यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्याः लक्ष्यं नोपलक्ष्यन्ते

---

१. 'ह्रीं' यह बीजमन्त्र देवीप्रणव माना जाता है। जिस तरह ॐ व्यापक अर्थपूर्ण है, उसी प्रकार यह देवी प्रणव भी अनेक रहस्यार्थों और विपुल भावों से पूर्ण हैं। ह्रीं बीज का सार अर्थ है- इच्छा - ज्ञान - क्रियाधार, अद्वैत, अखण्ड, सच्चिादानन्द समरसीभूतशिव-शक्ति स्फुरण।

तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्याः जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अतएवोच्यते अज्ञेयानन्ता लक्ष्याजैका नैकेति।।

अर्थ–जिसके वास्तविक स्वरूप को ब्रह्मा आदि नहीं जानते, इसलिए वह महाशक्ति अज्ञेया कही जाती है। जिसका कोई अन्त नहीं है, अतः वह अनन्ता कहीं जाती है। जिसका कोई लक्ष्य नहीं देखा जा सकता, अतः उसे अलक्ष्या कहा गया। जिसका जन्म अविज्ञात है। अतः उसे अजा कहा जाता है, जो सदा सर्वत्र अकेली ही है, अतः उसे एका कहा जाता है, जो अकेली ही विश्व रूप में सजी हुई है अतः उसे नैका कहा जाता है। वह इसलिए अज्ञेया, अनन्ता, अजा, एका और नैका कहलाती है।

२४. मन्त्राणां मातृकादेवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।।

अर्थ–सभी मन्त्रों में मातृका रूप से रहले वाली, शब्दों में अर्थ रूप से निहित रहने वाली, सभी प्रकार के ज्ञानों में चिन्मयातीता, शून्यों में शून्यसाक्षिणी तथा जिससे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वह महाशक्ति 'दुर्गा' नाम से प्रसिद्ध है।

२५. तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्।।

अर्थ–दुरित-दुर्गमनाशिनी, दुर्विज्ञेय! दुराचार विनाशिनी एवं भवसागर से पार कराने वाली भगवती दुर्गा देवी को भवभयभीत मैं नमस्कार करता हूँ।

२६. इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पंचाथर्वशीर्षफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्ष-मज्ञात्वां योऽर्चां स्थापयति - शतलक्षंप्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति। शतष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।
दशवारं पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः।।

अर्थ–इस देव्यथर्वशीर्ष का जो अध्ययन करता है, उसे गणपत्यथर्वशीर्ष आदि पाँचों अथर्वशीर्षों के जप का फल प्राप्त होता है। इस अथर्वशीर्ष की उपेक्षा कर जो व्यक्ति चक्र-पूजा, प्रतिमा-अर्चा आदि करता है, वह सैकड़ों लक्ष संख्या में जप करके भी अर्चा सिद्धि नहीं प्राप्त करता।

भगवती महाशक्ति की स्थापना कर इस अथर्वशीर्ष का १०८ बार पाठ करने तथा मूलमन्त्र (ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) का १०८ बार जप करने से इसकी

पुरश्चरण विधि पूर्ण होती है।

जो साधक इस देव्यथर्वशीर्ष का दस बार पाठ करता है, वह उसी क्षण पापों से मुक्त हो जाता है और महादेवी की अनुकम्पा से घोर संकटों से छुटकारा पाता है।

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति।

प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति।

सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति।

निशीथे तुरीय सन्ध्यायां जप्त्वां वाक्सिद्धिर्भवति।

नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वां देवतासान्निध्य भवति। प्राण प्रतिष्ठायां जप्त्वां प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्यां महादेवी सन्निधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति य एवं वेद। इत्युपनिषद्।

अर्थ–देव्यथर्वशीर्ष का सायंकाल में सविधि पाठ करने से साधक के दिन में किए गए ज्ञाताज्ञात पापों का क्षय होता है। प्रातःकाल पाठ करने से रात में किए गए ज्ञाताज्ञात पापों का शमन होता है। सायंकाल और प्रातःकाल पाठ करने से साधक निष्पाप होता है।

तुरीया सन्ध्या (मध्यरात्रि) में पाठ करने से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। भगवती की नवीन प्रतिमा प्रतिष्ठापितकर अर्चनापूर्वक पाठ करने से महाशक्ति के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। भौमाश्विनी-अमृतसिद्धि योग में मातादेवी के आयतन में उनकी सन्निधि में पाठ करने से साधक महामृत्यु से तर जाता है। वह निश्चय ही महामृत्यु से तर जाता है।

इस प्रकार यह देव्यथर्वशीर्ष अविद्या अन्धकार को निरस्त करने वाली ब्रह्म विद्या है।

शाक्तमन्त्र और उनकी साधना-विधि

शाक्तमन्त्रों की साधना में साधक को लाल रेशमी वस्त्र पहनना चाहिए। साधना का समय ब्राह्ममुहूर्त्त या आधी रात उपयुक्त होता है। गृहस्थ साधक को मृग चर्म या व्याघ्र चर्म पर बैठकर साधना नहीं करनी चाहिए। ये दोनों आसन ज्ञान प्रधान होने से केवल विरक्तों के लिए उपयुक्त होते हैं। गृहस्थ साधक के लिए कुशासन, दर्भासन, कौशेयासन, शरपत्रआसन और ऊर्णासन विहित हैं।

आसन

कौशेयासन (रेशमी आसन पर) बैठकर साधना करने से व्याधियों का नाश होता है। सूत से बने आसन पर बैठने से साधना विफल होती है। ऊन के आसन

पर बैठने से दुःख, दारिद्र्य का नाश होता है। कुशासन पर बैठने से आयु, आरोग्य की वृद्धि होती है, मृगचर्म पर बैठने से ज्ञान-सिद्धि मिलती है और व्याघ्रचर्मासन पर बैठने से मोक्ष-साधन होता है।

शान्ति कर्म की साधना में धवल वर्ण का आसन सिद्धि प्रदान करता है। कई रंगों के ऊनी आसन पर बैठने पर साधना सफल होती है, महाकाली, त्रिपुर-सुन्दरी, ललिता और दुर्गा भगवती की साधना में लाल रंग के आसन का व्यवहार करना चाहिए।

आसन दो हाथ लम्बा, डेढ़ हाथ चौड़ा और तीन अंगुल से अधिक लम्बा-चौड़ा और मोटा नहीं होना चाहिए। लकड़ी के बने हुए आसन पर बैठकर साधना नहीं करनी चाहिए। इस आसन से विपरीत फल मिलता है।

महामाया की साधना में ऊन का आसन, कामाख्या देवी की साधना में मृगचर्म, त्रिपुर सुन्दरी, शिव, विष्णु की साधना में कुश का आसन उत्तम माना गया है।

साधना के प्रमुख पाँच आसन–साधनाकाल में भूमि पर बिछाए जाने वाले आसनों के अतिरिक्त साधक के बैठने के आसन का अधिक महत्त्व है। विभिन्न उद्देश्यों के लिए की जाने वाली साधनाओं के लिए पाँच प्रकार के बैठने के आसन हैं–

१. पद्मासन, २. स्वास्तिक आसन, ३. रुद्रासन, ४. वज्रासन और ५. वीरासन।

१. बायाँ पैर दाहिनी जंघा के जोड़ पर रखकर दाहिने पैर को बाईं जंघा के जोड़ पर रखने से पद्मासन बनता है। जप करने में, ध्यान करने में यह आसन बहुत उपयोगी होता है।

२. जानु तथा दोनों जंघाओं के मध्य दोनों पैर रखकर शरीर को सीधा करके बैठने से स्वास्तिक आसन बनता है।

३. अण्डकोश के अधोभाग में सीवनी के दोनों पार्श्वों में पैरों के दोनों गुल्फ स्थापित करते हुए दोनों हाथों से दोनों पैरों के पार्श्वभाग को बाँध कर निश्चल बैठने से रुद्रासन बनता है।

४. दोनों पैरों के अग्रभाग को पीछे मोड़ कर घुटनों पर दोनों हाथों की हथेलियाँ उलट कर रखने से वज्रासन बनता है।

५. दाहिना पैर बाईं जंघा पर बायाँ पैर दाहिनी जंघा पर रखकर शरीर को सीधा करके बैठने से वीरासन बनता है।

१. काली मन्त्र की साधना– दश महाविद्याओं में महाकाली आद्या-विद्या है।

महाकाली का मन्त्र सभी प्रकार के दुःखों का निवारण कर अभीष्ट-सिद्धि प्रदान करता है।

मूल मन्त्र– ॐ क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं

दक्षिणकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

साधक को चाहिए कि मन्त्र के अन्तर्गत महाकाली का ध्यान करते हुए मत्र का जप करे।

कालीमन्त्र में आए हुए वर्णों का अर्थ इस प्रकार है–

जलरूपी 'क' मोक्षदायक है। अग्निरूपी 'रेफ' सर्वतेजोमय है।

क्रीं क्रीं क्रीं ये तीनों बीजाक्षर सृष्टि, स्थिति, प्रलय के प्रतीक हैं। इनका बिन्दु मुक्ति प्रद है और हुँ हुँ ये दोनों बीजाक्षर ज्ञानप्रद है। ह्रीं ह्रीं ये दोनों बीजाक्षर सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने में समर्थ हैं। दक्षिणकालिके सम्बोधन शब्द है। यह सम्बोधन भगवती महाकाली का सान्निध्य प्राप्त कराने का बोधक है और स्वाहा शब्द उच्चारण करने मात्र से सब पापों का क्षय करता है।

साधना प्रारंभ करने से पूर्व क्रीं बीज का तीन बार उच्चारण करते हुए तीन बार आचमन करना चाहिए। तदनन्तर ॐ काल्यै नमः ॐ कपाल्यै नमः दो बार कह कर दोनों ओठों का मार्जन करे, फिर कुल्यायै नमः कह कर हस्त प्रक्षालन करे। तदनन्तर ॐ कुरु कुल्यायै नमः से मुख, ॐ विरोधन्यै नमः से दाहिनी नासिका, ॐ विश्वचित्तायै नमः से वाम नासिका, ॐ उग्रायै नमः से दाहिनी आँख, ॐ उग्र प्रभायै नमः से बाईं आँख, ॐ दीप्तायै नमः से दाहिना कान, ॐ नीलायै नमः से बायाँ कान, ॐ धनायै नमः से नाभि, ॐ बलाकायै नमः से हृदय, ॐ मात्रायै नमः से मस्तक, ॐ मुद्रायं नमः दाहिना कन्धा और मितायै नमः से बायाँ कन्धा स्पर्श करें।

इसके बाद तत्त्वशुद्धि और भूत शुद्धि करके प्राणायाम करे। ह्रीं इस एकाक्षर बीज को १६ बार जपते हुए पूरक प्राणायाम ६४ बार जप कर कुम्भक प्राणायाम और ३२ बार जप करके रेचक प्राणायाम करना चाहिए। इस विधि से तीन बार प्राणायाम करना चाहिए। तत्पश्चात् विनियोग करे–

विनियोग– अस्य कालीमन्त्रस्य भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, दक्षिण कालिका देवता ह्रीं बीजम् क्रीं कीलकम्, हुँ शक्तिः, सर्व पुरुषार्थ सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास– शिरसि भैरव ऋषये नमः। उष्णिक् छन्दसे नमः हृदि। दक्षिण

कालिकायै देवतायै नमः गुह्ये। ह्रीं बीजाय नमः पादयोः । हुं शक्तये नमः मुखे। क्रीं कीलकाय नमः सर्वांगे।

कराङ्गन्यास– ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां वषट्। ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

षडङ्गन्यास–ॐ क्रां हृदयाय नमः। ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्रूं शिखायै वषट्। ॐ क्रैं कवचाय हुं। क्रौ नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ क्रां अस्त्राय फट्।

वर्णन्यास–ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं नमः हृदि। ॐ ए ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः दक्षिण बाहौ। ॐ ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः वाम बाहौ। ॐ णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः दक्षिण पादे। ॐ मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं त्रं नमः वामपादे।

मातृकान्यास

१. **ॐ अं ॐ ललाट** – सब मातृका वर्णों का मातृका न्यास करे।

२. **अं ॐ अं आं ॐ आं** – ललाट आदि मातृकान्यास स्थानों में न्यास करे।

३. **श्रीं अं श्रीं** – ललाट आदि मातृकान्यास आदि स्थानों में न्यास करे।

४. **अं श्रीं अं** – ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।

५. **क्लीं अं क्लीं** – ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।

६. **अं क्लीं अं** – ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।

७. **ह्रीं अं ह्रीं** – ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करें।

८. **अं ह्रीं अं** – ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करें।

९. **क्रीं क्रीं ऋं ॠं लृं लॄं क्रीं क्रीं अं क्रीं क्रीं ऋं ॠं लृं लॄं क्रीं क्रीं नमः** का ललाट आदि मातृका न्यासों में न्यास करें।

१०. **अं क्रीं क्रीं ऋं ॠं लृं लॄं अं नमः** का ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।

११. **क्रीं अं क्रीं** का ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।

१२. **अं क्रीं अं** का ललाट आदि मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।

१३. **क्रीं हं क्रीं** का विलोम क्रम से मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।

१४. हं क्रीं हं का विलोम क्रम से मातृका न्यास स्थानों में न्यास करे।

१५. उपर्युक्त २२ अक्षरों के क्रम में मूल मन्त्र से १०८ बार व्यापक न्यास करे। तदनन्तर तत्त्व न्यास, बीज न्यास करे।

तत्त्व न्यास– क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा। इस मन्त्र से पैर से नाभि तक न्यास करे।

दक्षिण कालिके ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा– इस मन्त्र से हृदय से लेकर मस्तक तक न्यास करे।

बीजन्यास– ब्रह्मरन्ध्रे क्रीं नमः। भ्रू मध्ये क्रीं नमः ललाटे क्रीं नमः। नामौं हुँ नमः। मुखे ह्रीं नमः। सर्वाङ्ग ह्रीं नमः।

तदनन्तर मूल मन्त्र से सात बार व्यापक न्यास करके श्री महाकाली का ध्यान करे। ध्यान के बाद मूल मन्त्र का जप रुद्राक्ष की माला से करे। नित्य नियम, संयम और विधिपूर्वक १०८ बार मूलमन्त्र का जप करते हुए जब २१००० जप संख्या पूरी हो जाए तो जप संख्या का दशांश हवन किया जाए। इस विधि से काली मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

२. महाकालीमन्त्र

महाकाली का सिद्ध मन्त्र इस प्रकार है–

ॐ ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं हसौः श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं जूं क्लीं सं लं श्रीं रः अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं त्रं महाकाल्यै नमः।

ध्यान

विरंचिः पंचत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं,
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनं।
वितन्द्रा माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलित दृशाम्,
महासंहारेऽस्मिन् विलसित सतित्वत्पतिरसौ।

इस मन्त्र की साधना से पहले ध्यान किया जाए तब मूल मन्त्र का जप १०८ बार किया जाए। साधना में भगवती महाकाली की प्रतिमा का सान्निध्य अनिवार्य है। प्रतिमा पूजन करके घृतदीपज्योति जलाकर ध्यान करके मन्त्र जपना चाहिए। स्थान पवित्र और एकान्त हो। समय रात ११ बजे से १ बजे तक।

नियमित रूप से साधना ५१ दिन तक करने पर महाकाली का अनुग्रह प्रत्यक्ष मिलता है।

नवार्ण मन्त्र की साधना– दुर्गासप्तशी का मूलमन्त्र नवार्ण मन्त्र है। इसमें नौ अक्षर होने से यह नवार्ण कहा जाता है। नवार्ण मन्त्र के सम्बन्ध में गुरु-परम्परा से यह मत प्रचलित है कि "निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के ब्रह्मतत्त्वों का प्रकाश शक्ति मन्त्र नवार्ण मन्त्र से ही होता है। निगुर्ण ब्रह्म का प्रकाश गायत्री मन्त्र में है और सगुण ब्रह्म का प्रकाश (रूप) दुर्गा के इस नवार्ण मन्त्र में है। दोनों ही शक्ति मन्त्र हैं। इन दोनों की साधना से जितने भी मन्त्र (३३ करोड़) हैं, वे सब सिद्ध होते है।

नवार्ण मन्त्र– ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।

साधना विधि– एक चौरस ताम्रपत्र बनवाकर उस पर अनार की कलम और लाल चन्दन से षट्कोण बनाया जाय। मध्य में **ऐं ह्रीं क्लीं** लिखा जाए। शेष वर्णों को छह कोणों में लिखा जाए। यन्त्र के मध्य में फूल, बत्ती का दीपक रख कर **ॐ देवी दीपाधाराय यन्त्राय नमः** पढ़ते हुए यन्त्र का पूजन पंचोपचार से करे। फिर नवार्ण मन्त्र से दीप-ज्योति में भगवती दुर्गा का आवाहन, प्राणप्रतिष्ठा अक्षत छिड़कते हुए की जाए।

तदनन्तर–

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्म ताम्।।

पढ़ कर भगवती का षोड्शोपचार पूजन किया जाए। पूजन के बाद नवार्ण मन्त्र से अंगन्यास, करन्यास आदि करके भगवती दुर्गा का ध्यान किया जाए।

ध्यान

विद्युद्दाम समप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणाम्।
कन्याभिः करवालखेट विलसद्धस्ताभिरासेविताम्।।
हस्तैश्चक्र गदालिखेट विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम्।
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रं भजे।।

ध्यान के बाद नवार्ण मन्त्र का जप करना चाहिए। जप एक नियत संख्या में प्रतिदिन इतना किया जाए कि २१ दिन में एक लाख जप पूरा हो जाए। एक लाख जप पूरा होने के बाद दशांश हवन करना चाहिए।

नवार्ण मन्त्र की यह साधना कभी विफल नहीं होती है। चाहे जिस प्रयोजन के लिए की जाए वह अवश्य पूरा होता है। साधना करते समय अनेक चमत्कारिक अनुभूतियाँ हुआ करती हैं।

दारिद्र्य-दुःख-भयहारी दुर्गामन्त्र– एकान्त, शुद्ध स्थान में कुशासन पर पद्मासन से बैठ कर आसन-शुद्धि, तत्त्वशुद्धि, और भूतशुद्धि करके हाथ में कुश-जल लेकर संकल्प करे। तत्पश्चात् विनियोग करे।

विनियोग–अस्य श्री दुर्गेस्मृतेति मन्त्रस्यं विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्री महालक्ष्मी देवताः शाकम्भरी शक्तिः, वायुः कीलकं, मम सकल संकेत कष्ट दारिद्र्यदुःखभयपरिहारार्थं जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास–श्री विष्णु ऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे। महालक्ष्मी देवतायै नमः हृदि। शाकम्भरी शक्त्यै नमः नाभौ। वायुः कीलकाय नमः पादयोः। मम सकल संकेत कष्ट दारिद्र्य परिहारार्थं विनियोगाय नमः करांजलौ।

करन्यास–दुर्गेस्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह अंगुष्ठाभ्यां नमः।

स्वस्थैः स्मृतामतिमतीव शुभं ददासि यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दतिं। मामिह तर्जनीभ्यां नमः।

दारिद्र्य दुःखभयहारिणि कात्वदन्या यदन्तियच्चदूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहि मध्यमाभ्यां नमः।

सर्वोपकार करणाय सदार्द्रचित्ता यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहि अनामिकाभ्यां नमः।

दुर्गेस्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभं ददासि यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहिदारिद्र्य दुःखभयहारिणि का त्वदन्या कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

ॐ ह्रीं दुं दुर्गेस्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः स्वस्थैः स्मृतां मतिमतीव शुभां ददासि यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहि। दारिद्र्य दुःख भयहारिण का त्वदन्या स्वाहा करतलं करपृष्ठाभ्यां नमः। इसके बाद ध्यान करे।

ध्यान

पिद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्ध स्थितां भीषणाम्।
कन्याभिः करवालखेट विलसद्धस्ताभिरासेविताम्।।
हस्तैश्चक्र गदालिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम्।
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गा त्रिनेत्रां भजे।।

तदनन्तर १०८ बार निम्नांकित मन्त्र का जप करे–

ह्रीं दुं दुर्गेस्मृता हरसिमीतिमशेष जन्तोः,

स्वस्थैः स्मृतामतिमतीव शुभांददासि

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह

पवमानवीतं जहि दारिद्र्यदुःखमयहारिणिकात्वदन्या

सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्तं स्वाहा।।

इस प्रकार सविधि साधना करते हुए १० हजार मन्त्र-जप-संख्या-पूरी होने पर यह मन्त्र सिद्ध होता है।

यह प्रयोग अनुभूत और अमोघ है। प्रतिदिन इसका थोड़ा भी जप करने से रोग-दोष, भय, संकट दुःख-दारिद्र्य का नाश होता है।

तारिणी मन्त्र साधना– तन्त्रशास्त्र से तारिणी मन्त्र को महाविद्या का दोष रहित मन्त्र कहा गया है, किन्तु तिब्बत के बौद्ध लामाओं के यहाँ तारिणी मन्त्र का बहुलांश है और वे तारिणी मन्त्र की साधना कर अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त करते थे। इस तन्त्र का कुछ अंश जैनमतावलंबियों के पास भी है। अनेक जैनाचार्य तारिणी मन्त्र की साधना कर महान् सिद्ध प्रसिद्ध हुए हैं। तिब्बती लामाओं का मत है कि तारिणी मन्त्र का 'त्रीं' भगवती तारिणी मां का 'स्वबीज' है। इस तारिणी मन्त्र की साधना में किसी भी रीति से मूल मन्त्र से पृथक् नहीं करना चाहिए। तारिणी मन्त्र स्वतः सिद्ध है। इसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। केवल जपमात्र से अभीष्ट सिद्ध होता है। तारिणीदेवी का मूल मन्त्र यह है–

ॐ ह्रीं त्रीं हुँ फट् स्त्रीं ह्रीं ॐ

जयदुर्गामन्त्र-साधना

जयदुर्गा का दशाक्षर मन्त्र बहुत ही सिद्धिप्रद है। अंगन्यास, करन्यास और ध्यानपूर्वक इस मन्त्र का जप करना चाहिए। जप संख्या एक लाख है।

मूलमन्त्र– ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि ठः ठः स्वाहा।

करन्यास– ॐ दुर्गे अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ दुर्गे तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ दुर्गायै मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ भूतरक्षिणी अनामिकाभ्यां हुं। ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि अस्त्राय फट्।

करन्यास करने के बाद हृदयादिन्यास करके ध्यान किया जाए। ध्यान के बाद जप किया जाए।

ध्यान

कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां
मौलि वद्धेन्दु रेखां
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करे–
रुद्रवहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं
तेजसा पूरयन्तीम्।
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां
सेवितां सिद्धिकामैः।।

सर्वमंगला मन्त्र

सर्वमंगला देवी अपने साधक का सदा सर्वदा कल्याण मंगल ही करती हैं। सभी मनोरथ सिद्ध कराने वाला यह मन्त्र बहुत ही समर्थ है। इस मन्त्र को दस हजार जप कर अन्त में अष्टांग हवन सामग्री से जप संख्या का दशमांश हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है फिर नित्य का माला जप करते रहना चाहिए। ध्यान और जप ये ही इसकी साधना में मुख्य है।

ध्यान

प्रकृत्यां रक्तायास्तव सुदति दन्तच्छदरुचेः।
प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता।
क्व बिम्बं त्वद् बिम्बप्रतिफलनभावदरुणितं।
तुलामध्यारोढुंकथमपि विलज्जेत कलया।

मन्त्र–ॐ क्लीं सं सर्वमंगलायै नित्यायै स्वाहा।

शूलिनी दुर्गा-मन्त्र– इस मन्त्र की साधना में अंगन्यास, करन्यास, हृदयादि-न्यास करके ध्यान किया जाए, इसके बाद मूल मन्त्र का जप प्रतिदिन ११०० करे। कुल जप संख्या सवा लाख है।

मन्त्र– ॐ ज्वल-ज्वल शूलिनि दुष्टग्रह हुं फट्।

करन्यास– ॐ शूलिनी दुर्गे हुं फट् अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ शूलिनी वरदे हुं फट् तर्जनीभ्यां नमः।

ॐ शूलिनी विन्ध्यवासिनी हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट्।

ॐ शूलिनी असुरमर्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं।

ॐ शुलिनि देवसिद्धपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरी हुं फट् कनिष्ठकाभ्यां वौषट्।

इसी प्रकार हृदयादिन्यास करना चाहिए।

ध्यान

अध्यारूढां मृगेन्द्रं सजल जलधरश्यामलां हस्तपद्मां।
शूलं बाणं कृपाणं त्वसि जलजगदा चापपाशान् वहन्तीं।।
चन्द्रोतंशां त्रिनेत्रां चितसृणिरसिमाखेटकं विभ्रतीभिः।
कन्याभिः सेव्यमाना प्रतिभट भयदां शूलिनीं भावयामः।।

ध्यान के बाद पीठ-पूजन कर जप करना चाहिए। जप की संख्या १५ लाख है। हवन दशांश करना चाहिए।

विशेष– पीठ-स्थापना के स्थान पर चक्र-स्थापना अधिक सुविधाजनक होता है। सिद्धि भी शीघ्र मिलती है। ताम्रपत्र पर श्रीयंत्र अंकित कराकर उसी का पूजन करना चाहिए।

सिद्ध दुर्गा-मन्त्र– रात के बारह बजे ऊन के आसन पर बैठकर सिंहवाहिनी दुर्गा की प्रस्तर, मिट्टी की मूर्ति अथवा चित्रपट सामने रख कर घी का दीप जला कर पृष्ठ १७६ में लिखित सिंहवाहिनी दुर्गा का ध्यान करे।

ध्यान के अनन्तर मूलमन्त्र का जप ८० माला नित्य करे। ४१ दिन में यह दुर्गा मन्त्र प्रत्यक्ष चमत्कार उत्पन्न कर सिद्ध होता है। ४१ दिन पूरे हो जाने के बाद ९ दिन तक प्रतिदिन ८ माला जपते हुए मूलमन्त्र से १०८ बार हवन करने से मन्त्र पूर्ण सिद्ध हो जाता है। किसी प्रकार के संकट, भूतग्रह, प्रेत-पिशाच बाधा, दुर्भाग्यग्रस्त, रोगग्रस्त व्यक्ति पर दूर्वादल से जल छिड़कते हुए मन्त्र पढ़ने से सारी बाधाएँ तत्काल दूर हो जाती हैं।

मूलमन्त्र– ह्रीं दुं दुर्गायैनमः।

महिषमर्दिनी दुर्गामन्त्र– यह मन्त्र शत्रुबाधा-निवारण में अद्वितीय है। इससे शत्रु पर मारण प्रयोग भी किया जाता है। कर-बल-छल-सम्पन्न शक्तिशाली शत्रु को परास्त करने के लिए इस मन्त्र की साधना की जाती है। इस मन्त्र का पुरश्चरण भी किया जाता है। पुरश्चरण करने में ऋष्यादिन्यास पूर्ववत् किए जाएँ। केवल करांगन्यास में अंतर है। करांगन्यास इस प्रकार किया जाए–

करांगन्यास– महिष हिंसके हुं फट् अंगुष्ठाभ्यां नमः। महिषशत्रोः हुं फट् तर्जनीभ्यां नमः। महिषं ह्वेषय ह्वेषय हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट्। महिषं हन हन देवि हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं फट् स्वाहा। महिषसूदिनि हुं फट् कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। करांगन्यास के ही मन्त्रों से अंगन्यास किया जाए। जैसे–महिष हिंसके हुं फट् हृदयाय नमः इत्यादि।

ध्यान

गारुडोपलसन्निभां मणिमौलि कुण्डल मण्डिताम्।
नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमांगनिषेदुषीम्।।
शंखचक्र कृपाणखेटकबाणकार्मुक शूलकाम्।
तर्जनीमपि विभ्रर्ती निजबाहुभिः शशिशेखराम्।।

ध्यान के बाद पीठ-पूजन करे। तदनन्तर मूल मन्त्र का जप करना चाहिए। जप संख्या ८ लाख है और ८ लाख आहुति भी देनी चाहिए।

मूलमंत्र– ॐ ह्रीं क्लीं ऐं महिषमर्दिनि स्वाहा।

भुवनेश्वरी मन्त्र-साधना– भगवती भुवनेशवरी का परमसिद्ध मन्त्र यह है–

ॐ हर त्रिपुर हर भवानी बाला
राजा प्रजा मोहिनी सर्वशत्रु-
विध्वंसिनी मम चिन्तितं फलं
देहि देहि भुवनेश्वरी स्वाहा।।

इस मन्त्र का प्रयोग सभी कामनाओं की पूर्ति के लिए किया जाता है। यदि धन, समृद्धि की कामना रखकर साधना की जाए तो पद्माक्ष या रेशम की माला से जप किया जाए। शत्रु-निवारण के लिए हल्दी की गाला से, संकट-विपत्ति निवारण के लिए लाल चन्दन की माला से, विद्या प्राप्ति के लिए स्फटिक की माला से जप किया जाए। सभी प्रकार के प्रयोजन के लिए रुद्राक्ष की माला से जप करने से कामनापूर्ति होती है।



वन दुर्गा मन्त्र साधना

भगवती वन दुर्गा का मंत्र महामंत्र माना जाता है और यह सद्यः फलप्रद है। वन दुर्गा की उपासना और सिद्धि साधक को त्रिकालज्ञ बना देती है और उसकी हर प्रकार से रक्षा करती हुई श्री-कीर्ति ऐश्वर्य प्रदान करती है। वन दुर्गा की साधना यदि वन दुर्गा के सिद्ध पीठ पर की जाए तो तीन दिन में ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। हमने अभी तक केवल दो स्थानों पर वन दुर्गा के पीठ स्थान के दर्शन किए हैं।

एक तो हिमालय में स्थित देवसर (माणा से २० मील उत्तर पर्वत शिखर पर) और दूसरा चित्रकूट (जिला बाँदा, यू० पी०) में सीतापुरा से मन्दाकिनी पार कर हनुमान धारा के रास्ते में सघन जंगल में एक छोटी सी मढ़िया वन दुर्गा की है।

सामान्यतया नित्य वन दुर्गा का ध्यान करके महामन्त्र का १०८ बार जप कर लेने से ही सिद्धि मिलती है।

ध्यान

गुरुत्वं विस्तारंक्षितिधरपति पार्वति निजा-
न्नितं बादाच्छिद्य त्वयि भरणरूपेण निदधे।।
अतस्तेषां विस्तीर्णो गुरुरयशमेषां वसुमती।
नितम्बप्राग्भारः स्थगयति लघुत्वं च नयति।।

महामंत्र– ॐ हूं क्रौं महाभयपरिपंथिनी वनविहारिणि दुर्गे देवि धन धान्यं रक्ष रक्ष स्वाहा।

प्रयोविधि– ब्राह्म मूहूर्त्त में अथवा रात दस बजे के बाद से इसकी आराधना करनी चाहिए। पूर्व की ओर मुँह करके कुशासन पर पद्मासन लगाकर बैठा जाए। घी का दीप जला लिया जाए। दीपक ज्योति में भगवती पर आवाहन, पूजन कर ध्यान किया जाए।

ध्यान

वालरविद्युतिमिन्दु किरीटां
तुंगकुचां नयनत्रययुक्तां ।
स्मरेमुखीं वरदांकुशपाशां
भीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्।।

ध्यान के अनन्तर मन्त्र का जप करना चाहिए। नित्य १०८ बार जप करते हुए

हवन करता जाए। २१ दिन में जप-हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद प्रतिदिन १०८ बार जप करते रहना चाहिए। कोई विशेष प्रयोजन आ जाने पर उसकी सफलता के लिए १०८ बार हवन कर देने मात्र से कार्य सिद्ध हो जाता है।

वज्रेश्वरी मन्त्र– ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वज्रेश्वरी पुर निवासिनी मम-कार्य साधय साधय स्वाहा।

इस मन्त्र को २१ दिन में सिद्ध किया जाता है। प्रतिदिन १०८ बार जप करना चाहिए। अन्तिम दिन दशांश हवन किया जाए। २१ दिन तक संयम-नियम पूर्वक रहना चाहिए। जप करने से पूर्व नित्य ध्यान किया जाए–

ध्यान

अरालं ते पाली युगलमगराजन्य तनये।
न केषामाधत्ते कुसुमशरकोदण्ड कुतकं।।
तिरश्चीनो यत्र श्रवण पथमुल्लंघ्य विलस-
न्नपांगव्यासंगो दिशति शरसन्धानधिषणाम्।।

वाग्वादिनी मन्त्र– भगवती वाक् का मन्त्र पूर्ण सिद्ध है। केवल ४१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार इसका जप करना चाहिए। ब्राह्म-मुहूर्त्त में कुशासन पर सिद्धासन से बैठकर जप किया जाए। रुद्राक्ष अथवा हल्दी की माला से जप करना चाहिए। जपकाल में पीलावस्त्र धारण किया जाए और दीप-ज्योति जलाकर ज्योति में भगवती का आवाहन पूजन कर जप प्रारम्भ करना चाहिए।

इस मन्त्र की सिद्धि से वाणी सिद्ध हो जाती है। भविष्य की बातों का ज्ञान होता है। शत्रु मित्र बनते हैं। सभी प्रकार के संकटों से मुक्ति मिलती है।

मन्त्र– ॐ ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिराभाव सर्वसत्ववशंकरि स्वाहा।

दैन्य-भेदिनी मन्त्र-साधना– भगवती त्रिपुर सुन्दरी दीनता-दरिद्रता को दूर करती हैं, इसलिए उन्हें दैन्यभेदिनी भी कहा जाता है। मन्त्र की साधना नवरात्र में करनी चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त्त में कुशासन पर बैठ कर सिद्धासन लगाकर जप किया जाए। दीप ज्योति में भगवती का आवाहन कर पूजन किया जाए। पश्चात् ध्यान किया जाए।

ध्यान

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशानुसदृशी-
ममन्दं सौन्दर्य प्रकरमकरन्दं विकरति।

तवास्मिन् मन्दारस्तवकसभगे यात् चरणे,

निमज्जोन्मज्जीवः करणचरणैःषट्चरणताम्।।

मन्त्र– ॐ श्रीं ऐं यं रं लं वं दुर्गतारिण्यै दैन्यभेदिन्यै स्वाहा।

नवरात्र में ९ दिनों में सवा लक्ष जप पूरा करे दशमांश हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

→ अन्नपूर्णा मन्त्र– १. ॐ ह्रां ह्रीं क्लीं लं अन्नपूर्णायै भवान्यै स्वाहा।

इस मन्त्र को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिदिन भगवती अन्नपूर्णा का ध्यान करके पाँच माला जप नियमित रूप से करते रहने से दीनता, दरिद्रता दूर होती है। ऋण भार से मुक्ति मिलती है। धन-मान्य-सम्पदा समृद्धि की वृद्धि होती है।

ध्यान मन्त्र

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-

मिति स्तोतु वाञ्छन् कथयति भवानी त्वमिति।

तदैव त्वं तस्मै दिशसि-निजसायुज्यपदवीं,

मुकुन्द ब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुट-नीराजित पदम्।।

(२). ॐ ह् सौः पं फं बं भं मं रः भवानि स्वाहा।

ध्यान

किरीटं वैरं चं परिहर चुरः कैटभभिदः।

कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारि मुकुटं।।

प्रणम्येषवेतेषु प्रसभमभि या तस्य भवनं।

हरस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते।।

इसकी विधि उपर्युक्त है। एक वर्ष तक नित्य नियमित जप, ध्यान करने के बाद अन्नपूर्णा का अनुग्रह प्राप्त हो जाने पर इस मन्त्र से अक्षय पात्र सिद्ध किया जाता है।

→ बालग्रह-निवारण मन्त्र– इस मन्त्र को सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण में ११०० बार जप करके १०८ बार हवन करके सिद्ध कर लिया जाए। सिद्ध हो जाने पर पाँच वर्ष की आयु तक के बच्चों को किसी प्रकार की भी बाधा होने पर मन्त्र पढ़ते हुए मोरपंख से झाड़ दिया जाए। हर प्रकार की बाधा दूर होती है।

मन्त्र– क्षीर गोपय गोरक्षी रक्षमाक्ष क्षमः क्षरः।

सर्वापन्निवारण-मन्त्र

असाध्य बीमारी में, प्रतिष्ठा भंग होने की स्थिति में, न्यायालय में मुकदमा होने पर तथा जो भी संकटपूर्ण स्थिति हो, उसमें निम्नांकित मन्त्र से श्रीदुर्गा-सप्तशती का संपुटित पाठ ९ दिन पर्यन्त करने से ९ दिन के अन्दर ही कार्य और मनोरथ सिद्ध होते हैं।

पूर्व मन्त्रों की भाँति संकल्प, विनियोग, सभी प्रकार के न्यास करके पाठ किया जाए। यदि देवी की प्रतिमा न हो तो देवी की पीठ स्थापित कर आवाहन किया जाए तो षोडशोपचार पूजन किया जाए। ज्योति अवश्य जलाई जाए।

मन्त्र – **सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा।**
स्मरन्ममैतच्चरितं, नरो मुच्येत् संकटात्।।

वशीकरण-मन्त्र

यहाँ पर वशीकरण का तात्पर्य सीमित है। यह वशीकरण प्रयोग उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों पर ही किया जाना चाहिए। जो पहले मित्र रहे हैं, बाद में अमित्र बनकर संकट उपस्थित करते हैं।

प्रयोग-विधि

मिट्टी की वेदी बनाकर उस पर मिट्टी का एक सकोरा रखना चाहिए। उस सकोरे की भीतरी पेंदी पर ऊपर से नीचे और बाएँ से दाएँ चार सीधी रेखाएँ अष्टगंधा (श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, केशर, कस्तूरी, गोरोचन, कपूर, अम्बर, अगर) और अनार की लेखनी से लिखी जाएँ। यदि कोई अष्टगंध सामग्री न खरीद सके तो सिन्दूर और गोघृत का उपयोग किया जाए। रेखाओं से ९ कोष्ठ बनेंगे। उन कोष्ठों के अन्दर अनुलोम, विलोम क्रम से अथवा सर्पाकारगति से नवार्ण मन्त्र के प्रत्येक बीजाक्षर को एक-एक कोष्ठक में पृथक्-पृथक् लिखे। यन्त्र के नीचे उस व्यक्ति का नाम लिखे, जिसे वश में करना हो, फिर उस सकोरे को दूसरे सकोरे से ढक कर उसके भी तल पर पहले सकोरे की भाँति यन्त्र लिखा जाए। तत्पश्चात् जिसे वश में करना हो, उसके नाम-रूप का ध्यान करें और उसका आवाहन, प्राणप्रतिष्ठा कुश के ऊपर करे। इसके बाद दोनों सकोरों को लाल रेशमी वस्त्र से भली-भाँति ढक दिया जाए। प्रतिदिन ज्योति जला कर ज्योति का और सकोरे में लिखित यन्त्र का (कपड़े में ढका रहने दें) पूजन, आवाहन करके निम्नांकित मन्त्र का जप १००८ बार किया जाए।

मन्त्र– **ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि, देवी भगवती हि सा।**
वलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

जप पूरा होने पर इसी मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाकर मन्त्र को पढ़ते हुए विपरीत क्रम से (बाएँ से दाएँ) अपने अभिमुख सात या नौ बार घुमाया जाए। घुमाते हुए यह भावना रखनी चाहिए कि वशीभूत किये जाने वाले व्यक्ति को मैं अपने में अन्तर्निहित जगदम्बा की दुर्ल्लंघ्य आत्मशक्ति से अपने अनुकूल करता हूँ। इसके बाद १०८ बार इसी मन्त्र से हवन कर भगवती की प्रार्थना करनी चाहिए।

सायंकाल आरती करके १००८ बार नवार्ण मन्त्र का जप किया जाए। यह अनुष्ठान इसी क्रम से ९ दिन तक करने से अभीष्ट सिद्ध होता है।

वशीकरण विद्या

किसी भी प्रकार के पुरुष या स्त्री को वश में करने से यह विद्या मन्त्र उपयोगी है। यह मन्त्र कुल सुन्दरी देवी का है जो वशीकरण की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती हैं। इस मन्त्र को नित्य ध्यानपूर्वक १००० जपना चाहिए ६४ दिन में यह मन्त्र जाग्रत होकर सिद्ध हो जाता है। अन्तिम दिन घी, गुग्गुल, तिल, जौ, सहदेवी, जटामांसी, नागरमोथा से आम की लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित कर जप की दशांश संख्या में आहुति देनी चाहिए, फिर नित्य १०८ बार जपते रहना चाहिए।

ध्यान

शिवे श्रृंगारार्द्रा तदितर मुखे कुत्सनपरा।
सरोषा गंगायां गिरिश चरिते विस्मयवती।।
हरादिभ्यो भीता सरसिरुह सौरभ्यजयिनी।
सखीषु स्मेराते मयिजननि दृष्टिः सकरुणा।

मन्त्र

ॐ ऐं क्लीं सौः कुलसुन्दरी नित्या सरुह सकल रूपे स्वाहा।

मन्त्र सिद्ध कर लेने के बाद मन्त्र को जाग्रत रखने के लिए नित्य १०८ बार जपते रहना चाहिए। जिसे वश में करना हो, रात ११ बजे से १२ बजे के बीच उक्त हवन सामग्री २१ बार उक्त मन्त्र से हवन करना चाहिए। हवन करते समय मन्त्र के अन्त में जिसे वश में करना हो उसका नाम द्वितीयान्त (जैसे रामं) लेकर **वशमानय स्वाहा** कह कर आहुति दे अथवा २१ बार मन्त्र पढ़ कर जल या ताम्बूल अभिमंत्रित कर के पिला दें, खिला दें।

कवच साधना

श्रीदुर्गा सप्तशती का कवच स्वयंसिद्ध है। घी की ज्योति जला कर केवल कवच

का पाठ करने मात्र से असाध्य कार्य सिद्ध होते हैं। पहले शापोद्धार किया जाए। नित्य कवच के प्रत्येक मन्त्र से हवन कर दिया जाए। केवल नौ दिन के पाठ से दुस्तर से दुस्तर कार्य सिद्ध होते हैं।

सरस्वती-मन्त्र की साधना– गूँगापन, तुतलाना, बुद्धिहीनता, अविकसित मस्तिष्क और जड़ता को दूर कर मेधाशक्ति, स्मृतिशक्ति, बुद्धिवर्द्धक यह सरस्वती मन्त्र अनुभव सिद्ध है।

मन्त्र– ह्रीं ऐं ह्रीं सरस्वत्यै नमः।

चन्द्रग्रहण प्रारम्भ होने के साथ ही कुश की जड़ और मधु से जीभ पर **'ऐं'** बीज मन्त्र लिखकर **ह्रीं ऐं ह्रीं सरस्वत्यै नमः** का जप चन्द्रग्रहण पर्यन्त करते रहने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद नित्य ब्राह्ममुहूर्त्त में स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण कर श्वेत रंग के ऊन के आसन पर बैठ कर भगवती सरस्वती का ध्यान करे।

ध्यान

धवल नलिनराजच्चन्द्र संस्थां प्रसन्नां।
धवलवसनभूषामाल्यदेहां त्रिनेत्रम्।।
कमलयुगवराभीत्युल्लसद् बाहुपद्मां।
कुमुदरमणचूडां भारतीं भावयामि।।

ध्यान के बाद मन्त्र का जप १०८ बार करे। गूँगे और तुतला कर बोलने वाले व्यक्ति प्रातःकाल ३ बजे उठ कर हाथ, मुँह धोकर पवित्र जगह में सिद्धासन लगाकर बैठे और जिह्वा का अग्रभाग उलट कर तालु से सटा कर **'ऐं'** इस बीज का उच्चारण करें। तीन महीना में हकलाना और तीन वर्ष के अन्दर गूँगापन दूर हो जाता है।

सरस्वती-साधना मन्त्र

सरस्वती-मन्त्र की साधना में प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में भगवती सरस्वती की प्रतिमा या छवि के सामने सिद्धासन से बैठकर पहले ध्यान करे। फिर मन्त्र का जप १०८ बार करे। बिना नागा नित्य नियमानुसार ध्यान जप करते रहने से वाणी सिद्ध होती है। बुद्धि का विकास होता है और अल्प प्रयास में विद्या-वैभव प्राप्त होता है। अध्ययनरत छात्रों के लिए अध्ययन में सफलता प्राप्त कराने में यह मन्त्र अनुभव सिद्ध है।

ध्यान

कदाकाले मातः कथय कलितालक्तकरसं।
पिबेयं विद्यार्थी तव चरण निर्णेजन जलं।।
प्रकृत्यामूकानामपि च कविताकारणतया।
यदादत्ते वाणीं मुखकमल ताम्बूलरसनाम्।

मन्त्र

ॐ ऐं वाण्यै स्वाहा।

इस मन्त्र को हमने कई कण्ठ विकारग्रस्त रोगियों और गूँगों तथा हकलाने वाले व्यक्तियों में प्रयुक्त किया है, बहुत ही प्रभावशाली सफल हुआ है जो बालक बोल नहीं पाते हैं, उन्हें इस मन्त्र से अभिमंत्रित जल पिलाने से वाणी का अवरोध दूर होता है। जिन बच्चों का मस्तिष्क विकसित नहीं हो अथवा जो उद्दण्ड हों, या परीक्षा में बार-बार अनुत्तीर्ण होते हों, पढ़ने से जी चुराते हों, उनको बुद्धिमान, विद्वान् बनाने में यह मन्त्र बहुत सफल हुआ है।

ऐश्वर्यप्रद काली का बीज मन्त्र– सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाले दो बीज मन्त्र हैं। नित्य १०८ बार ५१ दिन तक हवन करने से सिद्ध हो जाते हैं। इसके बाद नित्य नियमानुसार इनका जप करते रहना चाहिए।

१. मन्त्र – हूं हूं।

२. ॐ दक्षिण कालिके क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

बालग्रह-निवारक सिद्धमन्त्र

किसी बालक को अकस्मात् मूर्च्छा आ जाए, बेहोश हो जाए अथवा अज्ञात बीमारी हो जाए। उसे नीरोग करने के लिए नीचे लिखे मन्त्र पढ़ कर बालक के सर्वांग शरीर पर ऊपर से नीचे तक हाथ फेरने अथवा कुश से जल छिडकने से या हवन कर देने से सभी प्रकार के ज्वर, अतिसार, खांसी आदि रोग दूर हो जाते हैं।

मन्त्र

ऐं ह्रीं क्लीं बालग्रहादि भूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
संघातभेदे व नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् । क्लीं ह्रीं ऐं।।

शीतला-प्रकोप शामक मन्त्र– बच्चों को शीतला (चेचक) का प्रकोप होने पर नीचे लिखे मन्त्र से बालक की चारपाई के पास १०८ बार तीन दिन हवन करने से चेचक का प्रभाव दूर हो जाता है।

मन्त्र

शीतले त्वं जगन्माता, शीतले त्वं जगत्पिता।
शीतले त्वं जगद्धात्री, शीतलायै नमोनमः।।

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे स्वाहा।

बन्दीमोचन मन्त्र– कोई व्यक्ति कारागार में हो उसे मुक्त कराने के लिए इस मन्त्र का पुरश्चरण अथवा जप करना चाहिए। यह मन्त्र अमोघ है। इसका प्रयोग विफल नहीं होता है।

जिसे मुक्त कराना हो उसके नाम संकल्प किया जाए, फिर विनियोग करके भगवती का ध्यान किया जाए, तत्पश्चात् १०८ बार नित्य जप किया जाए। दस हजार जप संख्या पूरी होने पर दशांश हवन किया जाए।

प्रतिदिन मन्त्र का जप करने के बाद **बन्दीमोचन-स्तोत्र** का पाठ अवश्य किया जाए।

मन्त्र– ॐ ह्रीं ह्रीं हूं बन्दीदेव्यै नमः।

संकल्प के बाद यह विनियोग किया जाए-

विनियोग–ॐ अस्य श्री बन्दीमोचनविद्यायाः विराट् छन्दः, क एवं ऋषिः, ह्रीं बीजं, हूं कीलकम् बन्धमोचने विनियोगः।

ध्यान

वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभार तिमिर–
त्विषां वृन्दैर्वन्दी कृतमिव नवीनार्क किरणं–
तनोतु क्षेमं नस्तव बदनसौन्दर्य लहरी।
परीवाहस्रोतः सरणिरिव सीमान्त सरणिः।।

बन्दी-मोचन स्तोत्र

बन्दी देवीं नमस्कृत्य वरदाऽभय शोभितां।
त्वां बन्दीं शरणं गत्वा शीघ्रं मोक्षं ददातु मे।।
बन्दी कमलपत्राक्षी लौहश्रृंखलभंजना।
प्रसादं कुरु मे देवि शीघ्रं मोक्षं ददातु मे।।
त्वं बन्दी त्वं महामाया त्वं दुर्गा त्वं सरस्वती।
त्वं देवि रजनी चैव शीघ्र मोक्षं ददातु मे।।

संसारतारिणी बन्दी सर्वकाम प्रदायिनी।
सर्वलोकेश्वरी बन्दी शीघ्रं मोक्षं ददातु मे।।
त्वमैन्द्री चेश्वरी चैव ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी।
त्वं च कल्पक्षये तावत् शीघ्र मोक्षं ददातु मे।।
दिविधात्री धरित्री च धर्मशास्त्रादिभाविनी।
दुःखहा भंगिनी देवि शीघ्र मोक्षं ददातु मे।
नमस्कृत्य महालक्ष्मीं रत्नकुण्डल भूषिता।
शिवस्यार्द्धांगवासिनी शीघ्रं मोक्षं ददातु मे।।
नमस्कृत्य महादुर्गे महादुस्तरतारिणी।
महादुःखहरणी च शीघ्रं मोक्षं ददातु मे।।

शत्रुबाधा विनाशिनी विद्या

महान् से महान् प्रभावशाली, शक्तिशाली शत्रु पर विजय प्राप्त कराने में यह विद्या कभी विफल नहीं हुई है। सामान्यतया नित्य इस विद्या के मूल मन्त्र का १०८ बार ध्यापूर्वक जप करने मात्र से शत्रुगण हताश, निराश रहते हैं। एक दूसरी विधि है, जिससे शत्रुओं का क्षय होता है। उस विधि को लिखना हमें अभीष्ट नहीं है।

ध्यान

भ्रुवोर्मध्येकिंचिद् भुवनभयभंग व्यसनिनि।
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकर रुचिभ्यां धृतशरं।।
धनुर्मन्ये सव्येतरकरगृहीतंरतिपतेः।
प्रकोष्ठौ मुष्टौ च स्थगयति निगूढान्तरमुमे।।

मन्त्र

ॐ ऐं क्लीं ह्सौं सर्व संक्षोभणि सर्व विद्रावणि रिपुगणं कवलय-कवलय हुं ब्रूं हः ठः प्रभञ्जने स्वाहा।

ध्यान के पूर्व विनियोग करना चाहिए। विनियोग के बाद जप करना चाहिए।

विनियोग– ॐ अस्य श्री शत्रुक्षयं करीविद्यायाः कहोल ऋषिः जगतीछन्दः महाकाली देवता हुं बीजं ब्रूं कीलकम् ठः शक्ति शत्रुक्षयंकरणे विनियोगः।

अगर किसी व्यक्ति विशेष से भय, बाधा हो तो विनियोग में शत्रुक्षय करने से पूर्व उसका नाम जोड़ना चाहिए।

श्री गंगाष्टाक्षर मन्त्र

श्री गंगा जी का अष्टाक्षर मन्त्र बहुत शक्तिशाली है। रोग-दोष, दारिद्र्य, दुःख निवारण के लिए तथा सन्तान-सुख, दाम्पत्य-सुख, गार्हस्थ्य-सुख प्राप्त करने और जन्मान्तर के पापों को दूर करने में यह मन्त्र और गंगा कवच अमोघ सिद्ध हुआ है।

मन्त्र– ॐ ह्रीं श्रीं गंगायै स्वाहा।

महाविद्यारूपी इस अष्टाक्षर मन्त्र का जप गंगातट पर बैठकर नित्य १०८ बार जपने से ४१ दिन में कामना पूरी हो जाती है। जहाँ गंगा जी न हों, यहाँ किसी भी सरिता, सरोवर के तट पर गंगा जी की भावना करके जप करना चाहिए। १०८ बार जप करने के बाद नीचे लिखा गंगा-कवच का पाठ करना चाहिए।

श्री गंगा-कवच

विनियोग– ॐ गंगायै नमः। अस्य श्री गंगा कवचस्य विष्णुर्ऋषिर्विराट् छन्दः चतुर्दश पुरुषोद्धारणार्थ पाठे विनियोगः।

ॐ द्रवरूपा महाभागा स्नाने च तर्पणेऽपि च।
अभिषेके पूजने च पातु माम् शुक्लरूपिणी।। १।।
विष्णुपाद प्रसूतासि वैष्णवीनामधारिणी।
पाहि मां सर्वतो रक्षेत् गंगा त्रिपथगामिनी।। २।।
मन्दाकिनी सदापातु देहान्ते सर्ववल्लभा।
अलकनन्दा च वामभागे पृथिव्यां पातु तिष्ठति।।३।।
भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा।
पंचाक्षरमिमं मन्त्रं यः पठेच्छृणुयादपि ।।४।।
रोगी रोगात् प्रमुच्येत् बद्धोमुच्येत् बन्धनात्।
गर्भिणी जनयेत् पुत्रं बन्ध्या पुत्रवती भवेत्।।५।।
गंगास्नानमात्रेण निष्पापो जायते नरः।
यः पठेत् गृहमध्ये तु गंगा स्नानफलं लभेत् ।।६।।
स्नानकाले पठेद्यस्तु शतकोटिफलं लभेत्।
यः पठेत् प्रयतो भक्त्या मुक्तः कोटिकुलैः सहः।।७।।

शत्रु-वशीकरण मन्त्र– जिसे प्रबल शत्रु का भय बना रहता हो, शत्रु द्वारा हर कार्य में विघ्न डाला जाए; ऐसे शत्रु को वश में करने के लिए, उसकी हरकतें बन्द करने के लिए इस मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

मन्त्र– ॐ चामुण्डे क्रां ह्रीं ठं ठः ठः फट् स्वाहा।

पहले इस मन्त्र से तीन दिन तक १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए। फिर एक हजार तप करके इसी मन्त्र को सफेद भोजपत्र पर घी और सिन्दूर से लिख कर शहद में डाल दे। जब तक भोजपत्र शहद में पड़ा रहेगा, तब तक शत्रु निश्चेष्ट बना रहेगा।

चिन्ता निवारण मन्त्र– कुछ लोगों को अकारण चिन्ताएँ घेरे रहती हैं और कुछ लोग अभाववश, संकटापन्न हालत में चिन्तित रहते हैं। सभी प्रकार की चिन्ताओं को दूर करने के लिए नीचे लिखा मन्त्र बहुत ही लाभदायक है'

मन्त्र– ॐ वं वं वं नमो रुद्रेभ्यो क्ष्रं क्ष्रां क्ष्रीं स्वाहा ।

इस मन्त्र को नित्य १०८ बार जपते रहने से चिन्ताएँ मिट जाती हैं।

व्याधियों, चिंताओं का निवारण मन्त्र– कुछ लोग माला लेकर जपने में लज्जा या संकोच करते हैं और व्याधियों, चिन्ताओं के कारण अन्दर ही अन्दर घुलते रहते हैं, किसी से कुछ कहते भी नहीं हैं। कृत्रिमता का आवरण ओढ़ने वाले या अन्तर्मुखी व्यक्तियों के लिए नीचे लिखा मन्त्र बहुत ही लाभदायक है।

मन्त्र– ॐ हं शं शां ॐ ह्रीं फट् स्वाहा।

एकान्त में बैठकर इस मन्त्र का जप मन ही मन करना चाहिए। जब तक मन लगे, तभी तक जप किया जाए।

मृत्युहरी विद्या

यह मन्त्र मृत्युहरी विद्या नाम से ख्यात है। विष खा लेने पर, विषैले जीव जन्तु के काटने पर, किसी के द्वारा मूठ मारे जाने पर, मारण प्रयोग किए जाने पर, हृदय का दौरा पड़ने पर इत्यादि आकस्मिक बीमारियों और घटनाओं से जब मृत्यु होने का भय उपस्थित हो जाता है, उस समय इस मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित जल पिला देने से मृत्यु भय दूर हो जाता है। दीर्घकाल तक बेहोशी रहे या असाध्य बीमारी हो तो ताँबे के पात्र में जल भर कर २१ बार मन्त्र पढ़ते हुए उस जल को अभिमन्त्रित कर आचमनी से थोड़ी-थोड़ी देर में पिलाते रहना चाहिए। कुश-अपामर्ण से अभिमन्त्रित जल से मन्त्र पढ़ते हुए मार्जन करने से भी मृत्यु भय दूर होता है।

मन्त्र

ॐ यं अं आ। इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः अमृत भरि स्वाहा।

इस मन्त्र को १०० रोज जपा जाए तो सिद्ध हो जाता है। जप से पूर्व ध्यान करना

चाहिए। ध्यान मन्त्र यह है–

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभय जरा मृत्यु हरिर्णीं।
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्यादिविषदः।।
करालं यत्क्ष्वेडं कवलितवतः कालकलना।
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ताटंकमहिमा।।

दाम्पत्य-सुखवर्द्धक मन्त्र– आजकल अधिकतर पति-पत्नी के बीच मनमुटाव, खिंचाव-तनाव बना रहता है। विशुद्ध प्रेम प्राप्त करने की भावना रख कर इस मन्त्र का जप नित्य १०८ बार तेरह दिन तक करने से पति-पत्नी के बीच सौमनस्य बढ़ता है।

मन्त्र– ॐ कं कं ज्ञं ज्ञः नमः.........वश्यं कुरुकुरु स्वाहा।

(.....) खाली जगह में नाम बोलना चाहिए। पत्नी पति कहे और पति पत्नी कहे।

सर्वाकर्षिणी विद्या

यह सर्वाकर्षिणी विद्या अमोघ है। इसकी दो विधियाँ हैं। एक तो सर्वाकर्षिणी देवी का ध्यान करके नित्य १०८ बार विद्या मन्त्र का जप, दूसरा पुरश्चरण है, पुरश्चरण ९१ दिन तक करना होता है। प्रतिदिन १० हजार जप करे और नित्य दशमांश हवन करे। विधिपूर्वक पुरश्चरण के नियम सर्वसाधारण के लिए कठिन है। पूरा न होने पर क्षति होने का भय रहता है। सरल उपाय यही है कि ध्यान और जप करते रहने से यह विद्या जाग्रत हो जाती है, फिर चाहे जिस किसी को अपनी ओर आकृष्ट करना हो उसका स्मरणकर रात में इस मन्त्र का जप, ध्यान करे दूसरे ही दिन वह व्यक्ति खिंचा चला आता है अथवा उसका कोई समाचार आता है।

ध्यान

अरालैः स्वाभाव्यादलि कलभस श्रीभिरलकैः।
परीतं ते वक्त्रं परिभवति पंकेरुहरुचिं।।
दरस्मेरे वास्मिन् दशनरुचिं किंजल्करुचिरे।
सुगन्धौ माद्यन्ति स्मर मथन चक्षुभिर्मधुलिहः।।

विनियोग

ॐ अस्य सर्वाकर्षिणी मन्त्रस्य भृगुः ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः सर्वाकर्षिणी देवता ऐं बीजं क्लीं कीलकम् ह् सौः शक्तिः सर्व लोकाकर्षणै विनियोगः।

मन्त्र– ॐ ऐं क्लीं ह् सौः सर्वकार्षिण्यै नमः।

मन्त्र जाग्रत होने के बाद किसी का आकर्षण करना हो तो विनियोग में सर्व लोकाकर्षणे की जगह उस व्यक्ति का नाम......आकर्षणे विनियोगः कहना चाहिए।

प्रेत बाधा निवारण मन्त्र

मन्त्र

ॐ हं क्षं हं सः स्वाहा

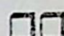
इन बीजाक्षरों का जप करते हुए प्रेत बाधाग्रस्त व्यक्ति के पास इन्हीं मन्त्रों से हवन कर के हवन के धूआँ उसके शरीर में स्पर्श कराते रहने से तुरन्त भूत बाधा दूर हो जाती है।

दरिद्रता निवारण मन्त्र

दरिद्रता, निर्धनता आदि आर्थिक संकटों के निवारण के लिए यह अमोघ मन्त्र है–

ॐ नमः कालिके ह्रां ह्रीं ह्रैं स्वाहा।

पहले २१ दिन तक १०८ बार नित्य इस मन्त्र से हवन करना चाहिए। फिर नित्य प्रति १००० इसका जप करते रहने से उत्तरोत्तर सुख संपत्ति की वृद्धि होती है।



११/ श्रीगणपति मन्त्र साधना

रुद्र के मरुत्‌गणों के कई गण थे। उन गणों के नायक गणपति-गणेश थे। अथर्ववेद ने रुद्र की तुलना कई देवताओं और शक्तियों से की है। उनमें एक प्रमुख नाम 'विनायक' आता है। महाभारत के अनुसार विनायक और गणेश्वर उन देवताओं में से हैं, जो मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों को देखते हैं और जो सर्वत्र निवास करते हैं। शतरुद्रिय में विनायकों की संख्या बहुत बड़ी है।

गृह्यसूत्र में चार प्रकार के विनायक बताए गए हैं। **मानवगृह्यसूत्र** में बताया गया है कि जब किसी व्यक्ति पर विनायक प्रवेश कर जाते हैं तो उस व्यक्ति की अभिलषित वस्तु उसे नहीं मिलती है, विद्यार्थी को विद्या अध्ययन में विक्षेप पड़ता है। आचार्य को पढ़ाने के लिए विद्यार्थी नहीं मिलते हैं और कुमारी कन्याओं के विवाह में अवरोध उत्पन्न होता है।

गृह्यसूत्र में ऐसे व्यक्तियों के लिए विधियाँ भी बताई गई हैं–

जिस व्यक्ति में विनायक का प्रवेश हो, उसे चार तीर्थों से लाए गए जल से स्नान करना चाहिए। स्नान के बाद राई का तेल चार विनायकों को अलग-अलग चढ़ाना चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति भी इसी का समर्थन करती है।

इन चार विनायकों को मिलाकर एक नाम गणपति विनायक प्राचीन धर्म-शास्त्रों में मिलता है और इनकी माता का नाम अम्बिका बताया गया है। गणपति विनायक अपने मूलरूप में विघ्नकर्त्ता, अपवित्र, अप्रसन्न और अनुपलब्ध होने वाला देवता है, किन्तु उपासना साधना से यही देवता जब प्रसन्न हो जाता है तो विघ्न विनायक और पुनीत बन जाता है। ठीक रुद्र देवता के समान गणपति विनायक का स्वभाव है।

गाणपत्य सम्प्रदाय

गणपति की उपासना करने वालों के छह सम्प्रदाय हैं। प्रत्येक की उपासना विधि अलग-अलग है–

१. महागणपति सम्प्रदाय– इस सम्प्रदाय के लोग महागणपति की उपासना करते हैं। उनके अनुसार महागणपति जगत् के स्रष्टा हैं। जब सृष्टि का प्रलय हो जाता है तो सिर्फ महागणपति ही शेष रहते हैं। महागणपति की शक्ति से ही ब्रह्मा की

उत्पत्ति होती है।

२. गणपतिकुमार सम्प्रदाय– इस सम्प्रदाय के अनुयायी हरिद्रागणपति की उपासना करते हैं। इनकी मान्यता है कि हरिद्रागणेश रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा देवसमूह के नायक हैं और यही सृष्टि का सर्जन करते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी अपने दोनों हाथों में गणपति के मस्तक को चित्रित कराते हैं।

३. उच्छिष्टगणपति सम्प्रदाय– यह वाममर्गी सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय में वर्णव्यवस्था नहीं है और मद्यपान, मांस भोजन विहित है। इस सम्प्रदाय के लोग अपने माथे पर गोला चौड़ा लाल रंग का टीका लगाते हैं।

४. नवनीत, ५. संतान, ६. सवर्ण सम्प्रदाय– इन तीनों सम्प्रदाओं के अनुयायी अपने-अपने सम्प्रदाय के नवनीत गणपति, संतान गणपति और सवर्णगणपति की उपासना शुद्धाचार द्वारा वैदिक विधि से करते हैं। प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में गणपति का पूजन करते हैं।

कदाचित् ऐसे ही प्रमाणों के आधार पर बहुश्रुत विद्वान् स्व० सम्पूर्णानन्द जी ने गणेश जी को अनार्यों का देवता कहा है। किन्तु हम इस विचार से सहमत नहीं है, क्योंकि गणेश उपासना ऋग्वेद काल से अब तक प्रचलित है। गणेश का जो प्रतीतात्मक स्वरूप है, उसका रहस्यबोध न होने से लोग अभद्र कल्पनाएँ करते हैं।

गणपति तत्त्व

ऋग्वेद में गणपति की स्तुति में कहा गया है–

गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे।
कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्।।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणं ब्रह्मणपत आ नः।
शृण्वन्नुतिभिः सीद सादनम्।।

और यजुर्वेद में–

गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे।
प्रियाणां त्वां प्रियपति ँ हवामहे।
निधीनां त्वा निधिपति ँ हवामहे।

जब देवताओं के नाम से उपनिषदों की रचना प्रारम्भ हुई तो 'गणपत्युनिषद्' भी बना। इसी का दूसरा नाम '**गणपत्यथर्वशीर्ष**' भी है।

इनके अतिरिक्त अठारहों पुराणों, उपपुराणों में गणेश जी को प्रधान देवता माना गया है। योगशास्त्र में षट्चक्र-निरूपण के प्रसंग में मूलाधार चक्र के

अधिष्ठातृ देव श्री गणपति को माना गया है। मूलाधार चक्र के चार दलों वाले कमल के चारों पंखुड़ियों पर व, श, ष, स ये चार वर्ण अवस्थित हैं। इस कमल की कर्णिका (मध्य भाग) में 'त्रिकोण' है और उसके बीच में 'लं' बीज है उस बीज पर रक्त वर्ण गणेश स्थित हैं।

गणेश जी का शिर हाथी का है, यह शिर लगाने की कथाएँ पुराणों में हैं, उन कथाओं में रहस्य है, प्रतीकवाद है। हाथी के शिर का तत्त्व बोध यह है कि पशुओं से लेकर देवताओं तक सब में एक सच्चिद् ब्रह्म है, दूसरा नहीं है, इस बात को गणेश अपने गजानन स्वरूप में प्रत्यक्ष करते हैं।

गणपति की विभिन्न कलाएँ हैं, उन कलाओं के विभिन्न साधनामन्त्र हैं, किन्तु एक ही ध्यान मन्त्र से एक और एक ही षडंग मन्त्रों से प्रत्येक मन्त्र की साधना में अंगन्यास, करांगन्यास, हृदयादिन्यास किया जा सकता है।

गणेश जी शीघ्र प्रसन्न होने वाले देवता हैं। सब प्रकार के मनोरथ पूरा करते हैं। सम्पूर्ण विघ्नों के नाशक, मंगलकारी देवता हैं। इनकी साधना भी सुगम है। यदि कोई गणेश जी के किसी मन्त्र का पुरश्चरण करना चाहे तो पुरश्चरण का नियम यह है कि जिस मन्त्र का पुरश्चरण किया जाए उस मन्त्र में जितने अक्षर हों उतने हजार या उतने लाख मन्त्र का जप करना चाहिए। पुरश्चरण में आठ हवन द्रव्यों से हवन किया जाता है–

मोदक (पका हुआ कपित्थ - कैथा), पृथुक (गेहूँ का परमल), लाजा (धान के लावा), सक्तु (सत्तु), इक्षुपर्व (गन्ने की गाँठ), नारिकेल (नारियल), तिल (काले तिल) और कदलीफल (पका केला)।

इन आठ द्रव्यों को मधु (शहद), क्षीर (गाय का दूध) और घृत (गाय का घी) में मिलाकर हवन करना चाहिए।

विशेष– मोदक शब्द का सामान्य प्रचलित अर्थ लड्डू है। अधिकांश लोग मोदक का कपित्थ अर्थ न जानकर लड्डू का भोग लगाते हैं और उसका हवन करते हैं। हवन और भोग में पका कैथा का प्रयोग करना चाहिए।

जिस प्रकार गणेश जी के अनेकविध मन्त्र हैं, उसी प्रकार उनकी मूर्तियाँ भी विविध प्रकार की हैं। मन्त्रमहोदधि, तन्त्रसार, मन्त्रमहार्णवमाला आदि तांत्रिक ग्रन्थों में गणेश जी की ५१ प्रकार की मूर्तियों का उल्लेख मिलता है।

मन्त्रों और मूर्तियों की तरह गणेश जी के यन्त्र भी सैकड़ों प्रकार के हैं। सबसे प्रसिद्ध गणपति यन्त्र हैं। गणपति यन्त्र में पहले बिन्दु, फिर त्रिकोण, इसके बाद षट्कोण, तब वृत्त के सहित अष्टफल कमल तत्पश्चात् भूपुर बनाया जाता है।

हरिद्रागणपति की साधना में आगामी पृष्ठों में इस यन्त्र को उद्धृत किया गया है।

गणेश जी की गायत्री भी है–

ॐ तत्पुरुषाय विघ्नते वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।

इस गणेश गायत्री मन्त्र के ऋषि गणक हैं, छन्द नृचितगायत्री और देवता महालक्ष्मी गणपति हैं। गायत्री के पुरश्चरण में इन्हीं का विनियोग करना चाहिए।

गायत्री पुरश्चरण का ध्यान यह है-

ततो हृदब्जे शोणांगं वामोत्संगविभूषया,
सिद्धलक्ष्म्या समाश्लिष्टपार्श्वमर्धेन्दुशेखरम्।
वामाधः करतो दक्षाधः करान्ते तु पुष्करे,
परिष्कृतं मातुलुंगगदापुण्ड्रेक्षुकार्मुकैः।
शूलेन शंखचक्राभ्यां पाशोत्पलयुगेन च,
शालमंजरिका स्वीयदन्तांचलमणीघटैः।।
तपति धरणिबीजं कर्णिकायां त्रिकोणे।
तदुपरिगज वक्त्रो राजते लोहितांगः।।
द्रवति सकलविघ्नं यस्य सद्भावनेन।
स हि गणपतिरेषस्तीक्ष्णो वक्रतुण्डः।।
अभयवरदहस्तश्चापपाशङ्कुशाढ्यो।
जयति विविधभूषो रत्नकल्पोज्ज्वलांगोः।।

१. एकाक्षर गणेश मन्त्र– गं यह गणेश मन्त्र है। सर्वसिद्धिप्रद है। चार लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है।

२. अट्ठाईस अक्षरी गणेश मन्त्र– ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय।

चार लाख चौवालीस हजार जप से इसका पुरश्चरण होता है। यह महागणेश मन्त्र है। अपने अनुकूल बनाने के लिए यह वशीकरण मन्त्र है।

३. १२ अक्षरों का महागणेश मन्त्र– ह्रीं गं ह्रीं महागणपतये स्वाहा।

एक लाख जप से इसका पुरश्चरण संकट नाश के लिए किया जाता है।

४. ११ अक्षरों का महागणेश मन्त्र– ॐ ह्रीं गं ह्रीं वशमानय स्वाहा।

तीन लाख जप से इसका पुरश्चरण सम्मोहन कार्य के लिए होता है।

५. चार अक्षरों का हेरम्ब– ॐ गूं नमः।

तीन लाख जप से इसका पुरश्चरण धन, पद, समृद्धि-वृद्धि के लिए किया जाता है।

६. **दश अक्षर का हेरम्ब मन्त्र**– गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः।

एक लाख जप से इसका पुरश्चरण कर्मजव्याधियों, कुसंस्कारों और दुर्भाग्य निवारण के लिए किया जाता है।

७. **एकाक्षर हरिद्रागणेश मन्त्र– ग्लौं।**

इसका पुरश्चरण ४ लाख जप से होता है-

८. **द्वयक्षर हरिद्रागणेश मन्त्र**– एकाक्षर मन्त्र 'ग्लौं' में रमा बीज लगाने से "**श्री ग्लौं**"

कूर्च बीज लगाने से "**हूँ ग्लौं**"

माया बीज लगाने से "**ह्रीं ग्लौं**"

काम बीज लगाने से "**क्लीं ग्लौं**"

वधू बीज लगाने से "**स्त्री ग्लौं**"

प्रणव बीज लगाने से "**ॐ ग्लौं**"

निज बीज लगाने से "**गं ग्लौं**"

दो अक्षर के सात बीज मन्त्र बनते हैं और इन दो अक्षरों के मन्त्रों के अन्त में 'फट्' लगाने से तीन अक्षरों के मन्त्र बनते हैं और तीन अक्षरों के मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाने से चार अक्षरों के मन्त्र बनते हैं–

१. श्रीं ग्लौं फट्
२. हूं ग्लौं फट्
३. ह्रीं ग्लौं फट्
४. क्लीं ग्लौं फट्
५. स्त्रीं ग्लौं फट्
६. ॐ ग्लौं फट्
७. गं ग्लौं फट्

त्र्यक्षर बीज मन्त्र

इन त्र्यक्षर बीज मन्त्रों के अन्त में स्वाहा लगाने से **श्रीं ग्लौं फट् स्वाहा, हूं ग्लौं फट् स्वाहा** आदि चार अक्षरों के बीज मन्त्र बनते हैं।

ये गणपति बीज मन्त्र बहुत फलप्रद हैं। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इनकी साधना से मिलता है। एकाक्षार, द्वयक्षर, त्र्यक्षर और चतुरक्षर–ये चारों प्रकार के मन्त्रों में से किसी एक की साधना से अभीष्ट कामनाएँ सिद्ध होती हैं। महापातक का

नाश होता है। इनमें से चाहे जिस बीज मन्त्र की साधना की जाए उसकी ४ लाख जप संख्या है। हवन समाग्री में घृत, मधु, शर्करा और हरिद्राचूर्ण मिश्रित तण्डुल प्रधान है।

चिन्तामणि गणपति प्रयोग

इसी को श्वेतार्क कल्प प्रयोग भी कहा जाता है। श्वेतार्क कल्प नाम का एक ग्रन्थ है, जिसमें यह प्रयोग विस्तार से दिया गया है, इसलिए इस प्रयोग को भी श्वेतार्क कल्प कहा जाने लगा है।

अर्क–आक-मदार वृक्ष की दो जातियाँ हैं। एक लाल फूल का मन्दार दूसरा सफेद पुष्प का। सफेद फूल के मन्दार के पत्ते, डंठल, फल सभी श्वेत वर्ण के होते हैं। पाँच कल्पवृक्षों में से श्वेत मन्दार (अर्क) एक कल्पवृक्ष है।

एक प्राचीन हस्तलिखित तन्त्र-ग्रन्थ का प्रमाण है–

''श्वेतार्क की जड़ की सातवीं गाँठ में स्वयम्भू गणपति प्रकट होते हैं। रवि पुष्य नक्षत्र के योग में इन स्वयम्भू गणपति को लाकर तिजोड़ी या खजाना में रखने से वहाँ ऋद्धि-सिद्धि का वास होता है–

अथ तत्र पुष्यार्के श्वेतार्कस्य सप्तमी ग्रन्थिः गणेशाकारा भवति। तां गृहीत्वा द्रव्य मध्ये रक्षितमष्टसिद्धिः।

'सण्डे हिन्दूमद्रास' के १९५२ ई० के २४ अगस्त के अंक में दक्षिणावर्त सूँड़ वाले श्वेतार्क गणपति का चित्र प्रकाशित कर लिखा गया है कि 'श्वेतार्क गणपति अपने दंड का एक ही होता है। जो हाल में मैसूर में पाया गया है । कहा जाता है कि ये श्वेतार्क गणेश पाँच सौ साल में एक बार श्वेत अर्क की जड़ में प्रकट होते हैं।'

श्वेतार्क गणपति को प्राप्त करने का उपाय

रविवार के दिन जब पुष्य नक्षत्र हो, उससे एक दिन पूर्व शनिवार को सायंकाल जहाँ श्वेत मन्दार का पौधा हो उसके समीप जाकर भगवान् श्वेतार्क गणपति से प्रार्थना करे कि वह हमारे घर में निवास करें और दूसरे दिन रविवार को उन्हें ले चलने का निमन्त्रण देकर उसी दिन रात १२ बजे के बाद श्वेत अर्क के चारों ओर धूप, दीप देकर अक्षत बिखेर कर वृक्ष के आस-पास की मिट्टी खोदकर सावधानी से श्वेतार्क की जड़ खोदे। जड़ खोदते समय **गं गणेशाय नमः** का जप श्रद्धापूर्वक जपते रहना चाहिए।

श्वेतार्क जड़ किसी धातु के बने औजार से न खोदकर शीशम की बनी हुई तेज धार की करवाल से पहले शाखाएँ, पत्तियाँ काट-छाँट कर अलग कर फिर तना का

दिया जाए इसके बाद बहुत सावधानी से जड़ को खोदे। श्वेतार्क की जड़ बहुत गहराई में होती है। धैर्य और श्रद्धा रखकर खोदाई करनी चाहिए। जड़ निकल आने पर शुद्ध काष्ठ की टेक लगाकर जड़ सहित पूरे पेड़ को निकाल लिया जाए। फिर ऊँचाई में लाकर जड़ सहित उसे शुद्ध जल से स्नान कराकर स्वच्छ कर लिया जाए। स्वच्छ हो जाने पर खोदे हुए गड्ढे में उतर कर देखे तो वृक्ष की सातवीं गाँठ पर गणेश जी का आकार दिखाई पड़ेगा।

जब रवि-पुष्य का योग आ जाए ठीक उसी समय पर गणेश की उस स्वयम्भू मूर्ति को ग्रहण कर लिया जाए और उसी योग के अन्तर्गत घर लाकर उस प्रतिमा की विधिवत् प्राण प्रतिष्ठा कीजाए।

श्वेतार्क गणेश का ही पूजन नित्य षोडशोपचार से करके यह मन्त्र जपा जाए–

ॐ नमस्ते श्वेतार्कगणपतये ॐ

यदि कोई व्यक्ति श्वेतार्क गणेश की साधना की अन्योन्य विधियों और उनकी उपलब्धियों का साक्षात्कार करना चाहे तो 'चिन्तामणिगणपति प्रयोग' नाम की पुस्तक पढ़कर अथवा किसी विशेषज्ञ से अपना समाधान प्राप्त करें।

यह पुस्तक रसशाला औषधालय गोंडल (काठियावाड़) से प्रकाशित है और वहीं बिकती भी है।

एकाक्षर गणपति-मंत्र साधना

मूल मन्त्र– ॐ गं गणपतये नमः।

साधना-विधि– स्नानादि प्रातः क्रियाओं से निवृत्त होकर पवित्र एवं एकान्त स्थान पर ऊर्णासन या कुशासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाए फिर आचमन और प्राणायाम करके संकल्प करे।

संकल्प–ॐ अद्येतस्य श्री ब्रह्मणोह्नि द्वियीयपरार्द्धे....शुभपुण्यतिथौ...अमुक गोत्रः अमुक....(शर्मा वर्मा, गुप्तः दासोऽहं) श्री चिन्तामणि गणपति देवता प्रीत्यर्थं मम सकल पुरुषार्थ सिद्ध्यर्थमेकाक्षर गणपति मन्त्र जपमहं करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प पढ़कर जल को पृथिवी पर गिरा दे। तत्पश्चात् सर्वात्म शुद्धि के लिए आसन विधि, भू शुद्धि, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, अन्तर्मातृका न्यास करे। इसके बाद शिखा बाँध कर या शिखा स्थान को स्पर्श करके सिद्धासन लगा कर बैठे। पहले विनियोग करे।

विनियोग–ॐ अस्य श्री एकाक्षर गणपति मन्त्रस्य गणक ऋषिः निचृत् गायत्री छन्दः, एकाक्षर गणपतिर्देवता, ॐ गं बीजं ॐ आं अः शक्तिः ॐ ग्लौं कीलकम् मम

श्री चिन्तामणि गणपति प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ॐ गणक ऋषये नमः शिरसि।

ॐ निचृद्गायत्री छन्दसे नमः मुखे।

ॐ एकाक्षर गणपति देवतायै नमः हृदि।

ॐ गं बीजाय नमः मूलाधारे (गुह्ये)।

ॐ आं अः शक्तये नमः पादयोः।

ॐ ग्लौं कीलकाय नमः सर्वांगे।

करन्यास

ॐ गां अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ गीं तर्जनीभ्यां नमः।

ॐ गूं मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ गैं अनामिकाभ्यां नमः।

ॐ गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास

ॐ गां हृदयाय नमः।

ॐ गीं शिरसे स्वाहा।

ॐ गूं शिखायै वषट्।

ॐ गैं कवचाय हुम्।

ॐ गौं नेत्रत्रवाय वौषट्।

ॐ गः अस्त्राय फट्।

इसके बाद ॐ भूर्भुवः स्वरोम् बोलकर अपने चारों ओर चुटकी बजाकर दिग्बन्ध करे।

फिर मस्तक पर हाथ रखकर नीचे लिखे शाप विमोचन मन्त्र को तीन बार पढ़कर शापविमोचन करे-

शापविमोचन मन्त्र- ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं हूं गं ऐं क्रों कीलय-कीलय स्वाहा।

इसके शापोद्धार के लिए निम्नांकित मन्त्र पढ़ते हुए यथास्थान न्यास करे।

शापोद्धार मन्त्र तथा न्यास-ॐ गं हूं गीं ह्रीं फट् कल्पाद्याय नमः स्वाहा।

ॐ गं गणपतये नमः।

ॐ सेतवे नमः मुखे।

ॐ ह्रीं गं महासेतवे नमः कण्ठे।

ॐ अं गं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञां टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं त्रं ज्ञं ॐ निर्वाणाय नमः नाभौ।

ॐ कामराजया नमः लिंगे।

ॐ गं महाकुण्डलिन्यै नमः मूलाधारे

ॐ रां रीं रुं रूं रें रैं रों रौं रः शाकिन्यै नमः मूर्ध्नि।

ॐ ग्लौं गजानन मन्त्र-शापं मोचय-मोचय गं स्वाहा।

फिर एकाग्रचित होकर निम्नांकित ध्यान करे-

ध्यान

रक्ताम्भोधिस्थपीतोल्लसदरुण सरोजाधिरूढं त्रिनेत्रं।
पाशं चैवांकुशाद्य वरदमभयदं बाहुभिर्धारयन्तम्।
शक्त्यां युक्तं गजास्यं पृथुतरजठरं नागयज्ञोपवीतम्।
देवं चन्द्रार्क चूडं सकलभय हरं विघ्नराजं नमामि।

इसके बाद मूलमन्त्र **ॐ गं गणपतये नमः** का १०८ बार जप करे।

इस विधि से प्रतिदिन जप करते रहने से कभी कोई संकट या अभाव नहीं आता है। कार्यों में सफलता मिलती है। धन, सम्पत्ति और यश की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

विशेष प्रयोजन के लिए यदि किया जाए तो इसी विधि से १००० नित्य जप किया जाए। २१ दिन में कार्य सिद्धि होती है। २१००० जप पूरा होने पर मूल मन्त्र से ११०० आहुतियाँ दी जाएँ। दूर्वादल, कपित्थ, रक्त पुष्प आदि में गणपति पूजन किया जाए। मंगलवार से प्रारम्भ कर मंगलवार को समाप्त करना चाहिए।

हरिद्रागणपति मन्त्र-साधना

हरिद्रागणपति की साधना, उपासना और आराधना से सभी मनः कामनाएँ पूरी होती हैं। नित्य अर्चन से सभी प्रकार के विघ्नों का शमन होता है, शुभ मंगल और आनन्द की सृष्टि होती है हरिद्रा गणेश के मूल मन्त्र से ही हरिद्रागणपति यन्त्र निर्मित होता है। इस साधना में मन्त्र का जप और यन्त्र का पूजन किया जाता है। हरिद्रागणपति मन्त्र बत्तीस अक्षरों का होता है।

हरिद्रागणपति मन्त्र–ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वर वरद सर्वजन हृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा।

इस मन्त्र के आधार पर निर्मित हरिद्रागणपति का यन्त्र इस प्रकार है–

हरिद्रागणपति यंत्र

साधना-विधि– स्नान आदि कर के पवित्र स्थान पर शुद्ध आसन पर पूर्व की ओर मुँहकर के बैठ जाए। कुश और पवित्र जल से शरीर को अभिसिंचित कर तीन बार आचमन कर के तीन प्राणायाम करे। फिर गौरी-गणेश और कलश की स्थापना कर हरिद्रागणपति का अनुग्रह प्राप्त करने का संकल्प कर गौरी, गणेश और कलश का पूजन करना चाहिए। इसके बाद अभीष्ट सिद्धि के लिए विनियोग करे।

विनियोग– अस्य हरिद्रागणनायक मन्त्रस्य मदन ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः हरिद्रा गणनायको देवता मम अभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

इसके बाद अंगन्यास, करन्यास करना चाहिए–

ऋष्यादिन्यास

मदन ऋषये नमः शिरसि।
अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे।
हरिद्रागणनायक देवतायै नमः हृदि।
विनियोगाय नमः सर्वांगे।

करन्यास

ॐ हुं गूं ग्लौं अंगुष्ठाभ्यां नमः।
हरिद्रागणपतये नमः तर्जनीभ्यां नमः।
वरवरद मध्यमाभ्यां नमः।
सर्वजन हृदयं अनामिकाभ्यां नमः।
स्तम्भय स्तम्भय कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
स्वाहा करतल करपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास

ॐ हुं गं ग्लौं हृदयाय नमः।
हरिद्रागणपतये शिरसे स्वाहा।
वरवरद शिखायै वषट्
सर्वजन हृदयं कवचाय हुम्।
स्तम्भय स्तम्भय नेत्रत्रयाय वौषट्।
स्वाहा अस्त्राय फट्।

इसके बाद हरिद्रागणपति का ध्यान करना चाहिए।

ध्यान

पाशांकुशौ मोदकमेकदन्तं
करैर्दधानं कनकासनस्थम्।
हारिद्र खण्ड प्रतिमं त्रिनेत्रं
पीतांशुकं रात्रि गणेशमीड्यम्।

इसके बाद काष्ठ पीठ पर निर्मित सर्वतोभद्र मंडल में पीठ देवताओं की स्थापना व प्राण प्रतिष्ठा करके पंचोपचार से उनका पूजर करे। तदनन्तर पूर्वादिक्रम से आठों दिशाओं में पीठ शक्तियों की पूजा निम्नांकित मन्त्रों से करे—

१. ॐ तीव्रायै नमः, २. ॐ चालिन्यै नमः, ३. ॐ नन्दायै नमः, ४. ॐ भोगदायै नमः, ५. ॐ कामरूपिण्यै नमः, ६. ॐ उग्रायै नमः, ७. ॐ तेजोवत्यै नमः, ८. ॐ सत्यायै नमः, ९. ॐ विघ्ननाशिन्यै नमः।

इसके बाद पीठ के मध्य स्थान पर **ॐ सर्व शक्ति कमलासनाय नमः** पढ़कर पुष्प और अक्षत का आसन प्रदान कर यन्त्र को उस पर स्थापित करे (यन्त्र सोने या ताँबे के पत्र में अथवा भोज पत्र में निर्मित कराना चाहिए। भोजपत्र में यन्त्र अनार की कलम और अष्ट गंध से लिखा जाए। स्वर्ण पत्र, या ताम्र पत्र में यन्त्र खुदवा लिया जाए। इसके बाद हरिद्रागणपति के मूल मन्त्र से २१ बार हवन कर यन्त्र को आहुति के धुएँ से धूपित कर लिया जाए) इसके बाद पीठ के मध्य भाग में स्थित यन्त्र की प्राण प्रतिष्ठा करे।

प्राणप्रतिष्ठा– ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वरवरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा। इस मन्त्र का उच्चारण करके दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली से यन्त्र का स्पर्श करे।

इसके बाद यन्त्र के केन्द्र में स्थित देवताओं का पूजन करे, यन्त्र के अन्तर्बहिरावरणों में स्थित देवताओं का पूजन करके दसों दिग्पालों और आयुधों का पूजन करना चाहिए।

केन्द्र में स्थित देवताओं का पूजन– यन्त्र के केन्द्र स्थल में जहाँ हरिद्रागणपति मन्त्र लिखा है, वहाँ श्री हरिद्रागणपति के विग्रह की भावना करके गन्ध, अक्षत पुष्प से पूजन करना चाहिए। पूजन करते समय हरिद्रागणपति मन्त्र का ही उच्चारण करना चाहिए अन्य वैदिक या पौराणिक पूजन मन्त्रों का नहीं।

आवरण पूजन– प्रथम आवरण (यन्त्र के षट्कोण में) स्थित देवताओं का पूजन **हरिद्रागणपति मन्त्र–**ॐ हुं गं ग्लौं हृदयायनमः हृदि श्री पादुकां पूजायामि तर्पयामि नमः–बोले।

ॐ हरिद्रागणपतिये शिरसे स्वाहा शिरसि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ वर वरद शिखायै वषट् शिखायां श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ सर्वजन हृदयं कवचाय हुम् कवचे श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् अस्त्रे श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इसके बाद दोनों हाथों में अंजलि में पुष्प लेकर पुष्पांजलि अर्पित करे।

पुष्पांजलि

अभीष्ट सिद्धिं मे देहि, शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।

द्वितीय आवरण स्थित देवताओं का पूजन

यन्त्र के अष्टदल कमल में स्थित शक्तियों का पूजन दाहिने हाथ की तर्जनी और अँगूठे से गंधपुष्पादि अर्पित करते हुए निम्नांकित मन्त्र पढ़ने चाहिए–

ॐ वामायै नमः वामा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ ज्येष्ठायै नमः ज्येष्ठा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ रौद्रायै नमः रौद्री श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ काल्यै नमः काली श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ कलपदादिकायै नमः कलपदादिका श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ विकरिण्यै नमः विकरिणी श्रीपादुकां पूजयमि तर्पयामि नमः।

ॐ बलायै नमः बला श्रीपादुकां पूजायामि तर्पयमि नमः।

ॐ प्रमथिन्यै नमः प्रमथिनी श्रीपादुकां पूजयमि तर्पयामि नमः।

इसके बाद देवाग्रस्थित देवताओं का पूजन करे।

ॐ सर्वभूत दमन्यै नमः सर्वभूतदमनी श्रीपादुकां पूजयमि तर्पयामि नमः।

ॐ मनोन्मन्यै नमः मनोन्मनी श्रीपादुकां पूजायमि तर्पयामि नमः।

इसके बाद चारों दिशाओं में स्थित देवताओं का पूजन करे।

ॐ प्रमोदाय नमः प्रमोद श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ सुमुखाय नमः सुमुख श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ दुर्मुखाय नमः दुर्मुख श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ विघ्ननाशाय नमः। विघ्ननाश श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इसके बाद नीचे लिखे मन्त्र से पुष्पांजलि दे।

अभीष्ट सिद्धिं मे देहि, शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

तृतीय आवरण स्थित देवताओं का पूजन

ॐ आं ब्राह्म्यै नमः ब्राह्मी श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ ईं माहेश्वर्ये नमः माहेश्वरी श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ कौमार्ये नमः कुमारी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ ॠं वैष्णव्यै नमः वैष्णवी श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ लृं वाराह्यै नमः वाराही श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ ऐं इन्द्राण्यै नमः इन्द्राणी श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ औं चामुण्डायै नमः श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ अः महालक्ष्म्यै नमः महालक्ष्मी श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इसके बाद पुष्पाञ्जलि अर्पित करे–

अभीष्ट सिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

अन्तिम आवरण स्थित दिक्पाल पूजन

भूपुर के बहिर्भाग में स्थित दसों दिग्पालों का पूजन गन्ध, अक्षत आदि से नीचे लिखे मन्त्रों से करे–

ॐ इन्द्राय नमः इन्द्र श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ अग्नये नमः अग्नि श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ यमाय नमः यम श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ निर्ऋतये नमः निर्ऋति श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ वरुणाय नमः वरुण श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ वायवे नमः वायु श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ कुवेराय नमः कुवेर श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ ईशानाय नमः ईशान श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ अनन्ताय नमः अनन्त श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इसके बाद पुष्पाञ्जलि अर्पित करे–

अभीष्ट सिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्।।

इसके बाद आयुध पूजन करे।

आयुध पूजन

गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि से नीचे लिखे मन्त्रों से आयुध पूजन करे–

ॐ वज्राय नमः। ॐ शक्तये नमः। ॐ दण्डाय नमः। ॐ खड्गाय नमः। ॐ पाशाय नमः। ॐ अंकुशाय नमः। ॐ गदायै नमः। ॐ त्रिशूलाय नमः। ॐ पद्माय नमः। ॐ चक्राय नमः।

इसके बाद पुष्पाञ्जलि अर्पित करे–

अभीष्ट सिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तुभ्यमायुधानामर्चनम्।।

आवरणों का पूजन समाप्त होने पर हरिद्रागणपति यन्त्र का पंचोपचार पूजन मूल मन्त्र से करके आरती करना चाहिए। तत्पश्चात् मूल मन्त्र का जप एक माला करना चाहिए।

मूलमन्त्र– ॐ हुं गं ग्लौ हरिद्रागणपतये वर वरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा।

विशेष– हरिद्रागणपति यन्त्र और मन्त्र का नित्य पूजन और जप करने से अभीष्ट सिद्ध होते हैं। यदि कोई इस मन्त्र और यन्त्र को सिद्ध करना चाहे तो अनुष्ठान के रूप में संयम नियमपूर्वक पूजन और जप करे। चार लाख जप करने से यन्त्र और मन्त्र सिद्ध होते हैं।

किसी भी अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए अथवा मन्त्र-यन्त्र की सिद्धि के लिए किए गए पूजन और जप के समाप्त होने पर हवन अवश्य करना चाहिए। जितना जप किया जाए उसका दशांश हवन हल्दी के चूर्ण में घी और चावल मिलाकर आम की लकड़ियों में आहुति देनी चाहिए। हवन के बाद हवन के दशांश संख्या में तर्पण और तर्पण के दशांश संख्या में मार्जन और मार्जन के दशांश संख्या में गायों को या ब्राह्मणों को या गरीबों को भोजन कराया जाए। इस विधान से मन्त्र सिद्ध हो जाता है, फिर प्रत्येक प्रयोजन में यह सफलता प्रदान करता है।

महागणाधिपति माला मन्त्र-साधना– गणपति का माला मन्त्र धन-धान्य, यश, ऐश्वर्य की श्री वृद्धि करता है। ऋण और रोग को नाश करने में यह अद्वितीय है। किसी भी प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति के पास जाए तो इस मन्त्र का स्मरण कर उससे साक्षात्कार करने पर निश्चित ही कार्य सिद्ध होता है। प्रतियोगिता परीक्षाओं के साक्षात्कार में, अर्थोपाजन में, पदोन्नति में, उद्योग-व्यवसाय में यह मन्त्र पूर्ण सफलता प्रदान करता है।

इसकी साधना भी सरल है। नित्य संकल्प करके विनियोग करके गणपति के ध्यान पूर्वक मन्त्र को १०८ बार जपते रहने से कार्य सिद्ध होते रहते हैं और संकटों का निवारण होता रहता है।

यदि कोई इस मन्त्र की सिद्धि के लिए साधना करना चाहता हो तो यह साधना २१ दिन में पूरी होती है और मन्त्र सिद्ध होकर साधक का इष्ट बन जाता है।

विधि– भाद्रपद कृष्ण पक्ष की चतुर्थी अथवा माघ मास की संकटा चतुर्थी से

साधना आरम्भ करनी चाहिए। २१ दिन की साधना में २८ हजार मूल मन्त्र का जप पूरा करना चाहिए। साधना कालावधि में पूर्ण ब्रह्मचर्य तथा अन्तर्बाह्य पवित्रता नितान्त अपेक्षित है।

ताँबे के पत्र में गणपति यन्त्र (हरिद्रागणपति मन्त्र साधना में जो यन्त्र उद्धृत है) बनवाकर उस पर गणपति की प्रतिमा स्थापित कर यन्त्र-पूजा और गणपति पूजन (हरिद्रागणपति मन्त्र साधना में बताई गई विधि के अनुसार) की जानी चाहिए। प्रारम्भ में संकल्प करे, फिर विनियोग, फिर अंगन्यास, करन्यास करके ध्यान करे, तत्पश्चात् पूजन करे, गणपति स्तवन करे। इसके बाद मूल मन्त्र का जप करे। जप के बाद नित्य मूल मन्त्र से १०८ आहुतियाँ कैथा (कपित्थ), गेहूँ का परमल (पृथुक), धान के लावा (लाजा), सत्तू जौ के (सक्तु), गन्ने की गाँठ (इक्षुपर्व), नारियल (नारिकेल), काले तिल और पके केला इन आठ द्रव्यों को मधु, गाय के दूध, गाय के घी में मिलाकर देनी चाहिए।

संकल्प– हरिः ॐ तत्सत् अद्य अमुक गोत्रः___अमुक नामाहं__सकलारिष्ट शान्त्यर्थे धनधान्य समृद्धि वर्द्धनार्थे, ऋण रोग दारिद्रय नाशनार्थे सकलाभीष्ट सिद्ध्यर्थे श्रीमन्महागणाधिपति देवता प्रीत्यर्थे विनियोग, अंगन्यास, करन्यासपूर्वक श्रीमन्महागणाधिपति देवतायाः ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं क्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमनाय स्वाहेति मूलमन्त्रस्य एकविंशति दिनान्तर्गते अष्टाविंशतसाहस्रकं जपं तदंगत्वेन प्रतिदिन अष्टोत्तरशत संख्याकां आहुतिमहं करिष्ये। अनेन भगवान् महागणधिपति देवता प्रीयतां न मम।

विनियोग– अस्य श्रीमहागणाधिपति माला मन्त्रस्य गणक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीमहागणाधिपति देवता श्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकम् श्रीमन्महागणाधिपति देवता प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

अंगन्यास

ॐ गणकऋषये नमः शिरसि।

ॐ अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे।

ॐ महागणाधिपतये देवतायै नमः हृदि।

ॐ श्रीं बीजाय नमः गुह्ये।

ॐ ह्रीं शक्त्यै नमः पादयोः।

ॐ क्लीं कीलकाय नमः नाभौ।

ॐ श्रीमन्महागणाधिपति प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः इति सर्वांगे।

करन्यास

ॐ श्रीं गं अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ ह्रीं ग्लौं तर्जनीभ्यां नमः।

ॐ क्लीं गुं मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ ग्लौं ग्लीं अनामिकाभ्यां नमः।

ॐ गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमनाय स्वाहा इति करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः।

ध्यान

रक्ताम्भोधिस्थ पीतोल्लसदरुण सरोजाधिरूढं त्रिनेत्रम्।
पाशं चैवाङ्कुशाद्य वरदमभयदं बाहुभिर्धारयन्तम्।।
शक्त्यायुक्तं गजास्यं पृथुतरजठरे नागयज्ञोपवीतम्।
देवं चन्द्रार्धचूडं सकलभयहरं विघ्नराजं नमामि।।

मूलमन्त्र- ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

इस मन्त्र का जप करने के बाद स्तुति करनी चाहिए।

मंगल प्रार्थना

अविरलमदधारा धौतकुम्भः शरण्यः
फणिवरवृतगात्रः सिद्धसाध्यादिवन्द्यः।
त्रिभुवन जनविघ्नध्वान्तविध्वंसदक्षो
वितरतु गजवक्त्रः सततं मंगलं नः।।

ऋणहर्त्ता गणेश मन्त्र

कृष्णयामल तन्त्र में ऋणहर्त्ता गणेश मन्त्र की महिमा का अत्यधिक बखान है। इसके अतिरिक्त अनेक व्यक्तियों के अनुभव भी साक्षी हैं जो घोर दरिद्रता के दल - दल में फँसे हुए थे, कुछ लोगों के ऊपर इतना ऋण भार था कि उन्हें अपने जीवन-काल में ऋण से मुक्त होना असम्भव प्रतीत हो रहा था। ऐसे दुःखी, दरिद्र, ऋणग्रस्त व्यक्तियों ने स्वयं ऋणहर्त्ता गणेश मन्त्र की साधना की तो वे सम्पत्ति-शाली, कीर्तिशाली बन गए और गणेश जी ने उनके इष्टदेवता बन कर उन्हें अपने अनुग्रह से सिद्धि प्रदान कर दी है।

गणेश मन्त्र

ॐ गणेश ऋणं छिन्धि वरेण्यं हुं नमः फट्।

अनुष्ठान विधि– दारुण दरिद्रता का नाश करने वाले ऋण-हर स्तोत्र का पाठ प्रतिदिन एकाग्रचित्त से करने के बाद गणेश मन्त्र का जप एक सहस्र करे। एक वर्ष तक का यह अनुष्ठान है किन्तु छह मास के अन्दर ही दरिद्रता का दारुण दुःख दूर हो जाता है तथा ऋण से छुटकारा मिल जाता है। एक वर्ष नियमित रूप से यह अनुष्ठान करते रहना चाहिए। एक वर्ष पूरा होने के बाद चाहे करता रहे चाहे बन्द कर दे।

ऋणहर्त्ता गणेश स्तोत्र

सृष्ट्यादौ ब्रह्मणा सम्यक् पूजितः फलसिद्धये।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे।।
त्रिपुरस्य वधात् पूर्वं शम्भुना सम्यगर्चितः।
सदैव पावती पुत्र ऋणनाशं करोतु मे।।
हिरण्यकश्यपादीनां बधायै विष्णुनार्चितः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे।।
महिषस्यवधे देव्या गणनाथः प्रपूजितः।
सदैव पार्वतीपूत्र ऋणनाशं करोतु मे।।
तारकस्य वधात् पूर्वं कुमारेण प्रपूजितः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे।।
भास्करेण गणेशस्तु पूजितश्छवि सिद्धये।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे।।
शशिना कान्ति सिद्ध्यर्थं पूजितो गणनायकः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे।।
पालनाय च तपसा विश्वामित्रेण पूजितः।
सदैव पार्वतीपुत्र ऋणनाशं करोतु मे।।
इदं त्वृणहरं स्तोत्रं तीव्रदारिद्यनाशनम्।
एकबारं पठेन्नित्यं वर्षमेकं समाहितः।
दारिद्र्यं दारुणं त्यक्त्वां कुबेरसमतां ब्रजेत्।
पठन्तोऽयं महामन्त्रः सार्धपंचदशाक्षरम्।।

अनुष्ठान विधि–पहले संकल्प किया जाए, फिर विनियोग। इसके बाद ऋष्यादिन्यास, करन्यास, हृदयादिन्यास करके गणपति का ध्यान किया जाए। ध्यान के बाद स्तोत्र का एक बार पाठ किया जाए। फिर महामन्त्र का एक सहस्र (१० माला, जप किया जाए।

संकल्प अपनी भाषा में शुद्ध हृदय से श्रद्धापूर्वक किया जाए। संकल्प का अर्थ है–निश्चय। अपने ऋण, रोग, दुःख, दारिद्र्य को दूर करने के लिए ऋणहर्त्ता गणेश स्तोत्र का पाठ और महामन्त्र के जप करने का निश्चय मन ही मन करने का नाम मानसिक संकल्प है। पवित्रता, शुचिता, श्रद्धा भावना की अपेक्षा सर्वत्र सिद्ध है।

विनियोग

ॐ अस्य श्री ऋण हरण कर्तृगणपति स्तोत्र मन्त्रस्य सदाशिव ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्री ऋण हरण कर्तृ गणेश देवता ग्लौं बीजम्, गः शक्तिः, गों कीलकम् मम सकल ऋणनाशने जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ॐ सदाशिवऋषये नमः शिरसि।
अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे।
श्री ऋणहर्त्तृ गणेशदेवतायै नमः हृदि।
ग्लौं बीजाय नमः गुह्ये। (मूलाधारे)
गः शक्तये नमः पादयोः।
गों कीलकाय नमः सर्वांगें।

करन्यास

ॐ गणेश अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ऋणं छिन्धि तर्जनीभ्यां नमः।
हुम् अनामिकाभ्यां नमः।
नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास

ॐ गणेश हृदयाय नमः।
ऋणं छिन्धि शिरसे स्वाहा।

वरेण्यं शिखायै वषट्।

हुं कवचाय हुम्।

नमः नेत्रत्रयाय वौषट्।

फट् अस्त्राय फट्।

ध्यान

सिन्दूरवर्णं द्विभुजं गणेशं
लम्बोदरं पद्मतलेनिविष्टम्।
ब्रह्मादिदेवैः परिसेव्यमानं
सिद्धैर्युतं तं प्रणमामि देवम्।।

महामन्त्र–(जप के लिए) ॐ गणेश ऋणं छिन्धि वरेण्यं हुं नमः फट्।

स्तोत्र पाठ और जप होने के बाद भगवान् गणपति से मंगल कामना के लिए प्रार्थना करे।

अविरल मदधारा धौतकुम्भः शरण्यः, फणिवरवृत्तगात्रः सिद्धसाध्यादि वन्द्यः।
त्रिभुवनजनविघ्नध्वान्तविध्वंसदक्षो, वितरतुगणवक्त्रः संततं मंगलं नः।



१२/सूर्यादि नवग्रह-साधना मन्त्र

विश्व के चराचर प्राणियों के जीवनदाता सूर्य हैं। सूर्य सम्बन्धी अनेक मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र तथा स्तोत्र और कवच हैं। यहाँ पर कतिपय तत्काल सफलता देने वाले मन्त्र, यन्त्र, स्तोत्र और कवच दिए जा रहे हैं।

ऐश्वर्य-आरोग्यप्रद सूर्य मन्त्र

ॐ ह्रीं घृणिः सूर्यः आदित्यः क्लीं ॐ

सुख-सौभाग्य की वृद्धि के लिए, दारिद्र्य-दुख को दूर करने के लिए रोग, दोष के शमन के लिए इस प्रभावकारी मन्त्र की साधना रविवार के दिन से करनी चाहिए। रविवार के दिन खुले आकाश में पूर्व की ओर मुँह करके शुद्ध ऊर्णासन या कुशासन में बैठकर काले तिल, जौ गूगल, कपूर और घी मिला हुआ शाकल्य तैयार करके आम की लकड़ियों से अग्नि को प्रदीप्त कर उक्त मन्त्र से १०८ बार हवन करके, सिद्धासन लगाकर इसी मन्त्र का १०० बार जप करे। जप करते समय दोनों भौहों को मध्य भाग में सूर्य का ध्यान करता रहे। इस तरह ११ दिन में यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। रविवार का व्रत अनिवार्य है।

इसके बाद प्रतिदिन स्नान के बाद इसी मन्त्र से ताम्र पात्र में जल भर कर नीचे जमीन पर ताम्र पात्र रखकर सूर्य को अर्घ्य दे तत्पश्चात् इस मन्त्र का १०८ बार जप करे।

मात्र इतना करने से आयुष्य, आरोग्य, ऐश्वर्य, सम्पत्ति और कीर्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

रोग नाशक सूर्य मन्त्र

ॐ ह्रीं तिग्मरश्मये आरोग्यदाय सूर्याय स्वाहा।

किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक रोग कष्ट साध्य हो या असाध्य इस मन्त्र से सूर्य को नित्य अर्घ्य देने से नष्ट हो जाता है। जल दान देने के बाद १०८ बार इसका जप अवश्य किया जाए। रविवार का व्रत साल भर तक करना आवश्यक है।

ग्रह दोष निवारण सूर्य मन्त्र

१. ॐ ह्रीं ह्रीं सूर्याय नमः।

वंशानुगत क्षेत्रिय रोग, महाव्याधियों तथा सूर्य ग्रह के अनिष्ट कारक होने पर सूर्य की अनिष्टकारी महादशा में एवं जन्म कुण्डली या वर्ष कुण्डली में लग्न से आठवें, दसवें स्थान के स्वामी यदि सूर्य हों और छठवें, आठवें या बारहवें स्थान में सूर्य बैठा हो तो सूर्य सम्बन्धी समस्त दोष इस मन्त्र की साधना से दूर हो जाते हैं।

प्रतिदिन स्नान के बाद ताम्र पात्र जल, लाल फूल रखकर नीचे जमीन पर ताम्र पत्र रखकर उक्त मन्त्र को पढ़ते हुए सूर्य को जल दे। जल धारा की ओर दृष्टि रखे। जल दान के बाद १०८ बार इसी मन्त्र का जप किया जाए। रविवार का व्रत रखा जाए। रोग-दोष चाहे कुछ ही दिन में दूर हो जाएँ किन्तु यह उपासना लगातार साल भर तक करते रहनी चाहिए।

२. **ॐ ह्रीं क्लीं आं ग्रहाधिराजाय**
आरोग्यदाय आदित्याय सूर्याय स्वाहा।

यह मन्त्र भी समस्त रोग, दोष, व्याधियाँ ९० दिन के अन्दर दूर करता है। विधि उपर्युक्त है।

आदित्य हृदय

वाल्मीकीय रामायण के अन्तर्गत आदित्य हृदय का पाठ मिलता है, उक्त रामायण से ज्ञात है कि रावण से युद्ध करते हुए राम जब उसे पराजित न कर सके तो युद्ध से थककर चिन्तित श्रीराम युद्ध क्षेत्र में चुपचाप खड़े हो गए। रावण युद्ध के लिए सामने उद्यत खड़ा था। राम-रावण का अभूतपूर्व युद्ध देखने के लिए देव-दानव ऋषि-मुनि भी गये थे। श्रीराम को चिन्तित और परिश्रान्त देखकर अगस्त्य ऋषि उनके पास जाकर बोले-''महाबाहो राम ! चिन्तिन न हों, मैं तुम्हें एक गोपनीय स्तवन बतलाता हूँ, जिसका पाठ तीन बार युद्ध क्षेत्र में ही करो तो महाबली, दुर्द्धर्ष योद्धा रावण पर विजय प्राप्त करोगे।''

अगस्त्य ने बताया कि इस गोपनीय स्तोत्र का नाम आदित्य हृदय है। इसके जप से, पाठ से शत्रु पर सहज ही विजय प्राप्त होती है। यह स्तोत्र नित्य है, मंगलमय है, परम कल्याणप्रद है। इससे चिन्ता और शोक मिट जाते हैं और दीर्घायुष्य प्राप्त होता है। आदित्य हृदय का पाठ करने से पहले जिस प्रयोजन के लिए पाठ करना हो, उस प्रयोजन का संकल्प करना चाहिए। संकल्प के बाद विनियोग, फिर न्यास करके पाठ आरम्भ करना चाहिए।

विनियोग– ॐ अस्य आदित्य हृदय स्तोत्रस्य अगस्त्य ऋषिः अनुष्टुप् छन्द आदि हृदय भूतो भगवान् ब्रह्म देवताः निरस्ताशेष विघ्नतया ब्रह्मविद्यासिद्धौ सर्व जय सिद्धौ च विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास– ॐ अगस्त्य ऋषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे। ॐ आदित्य हृदय भूत ब्रह्म देवतायै नमः हृदि। ॐ बीजाय नमः गुह्ये। ॐ रश्मिमते शक्तये नमः पादयोः। ॐ तत्सवितुरित्यादि गायत्री कीलकाय नमः नाभौ।

करन्यास– ॐ रश्मिने अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ समुद्यते तर्जनीभ्यां नमः। देवासुर नमस्कृताय। मध्यमाभ्यां नमः। ॐ विवस्वते अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भास्कराय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ भुवनेश्वराय करतल करपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास– ॐ रश्मने हृदयाय नमः। ॐ समुद्यते शिरसे स्वाहा। ॐ देवासुर नमस्कृताय शिखायै वौषट्। ॐ विवस्वते कवचाय हुम्। ॐ भास्कराय नेत्र त्रयाय वौषट् ॐ भुवनेश्वराय अस्त्राय फट्।

सूर्य का ध्यान, नमस्कार– ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

इसके बाद आदित्य हृदय का पाठ करना चाहिए।

आदित्य हृदय

रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुर नमस्कृतम्।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम्।।
सर्वदैवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः।
एष देवासुर गणांल्लोकान् पतिगभस्तिभिः।।
एष ब्रह्म च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्दो धनदःकालो यमः सोपो ह्यपोपतिः।।
पितरो वसवः साध्याः अश्विनौ मरुतो मनुः।
वायुर्वह्निः प्रजाः प्राण ऋतुकर्त्ता प्रभाकरः।।
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान्।
सुवर्ण सदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः।।
हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्त सप्तिर्मरीचिमान्।
तिमिरोमन्थनः शम्भुस्त्वष्टामार्तण्डकोंशुमान्।।
हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शंखः शिशिरनाशनः।।
व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुः सामपारगः।
धनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्य वीथी प्लवंगमः।।

आतपी मण्डली मृत्युः पिंगलाः सर्वतापनः।
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः।।
नक्षत्र ताराणामधिपो विश्वभावनः।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन् नमोऽस्तुते।।
नमः पूर्वायगिरये पश्चिमायाद्रये नमः।
ज्योतिर्गणानांपतये दिनाधिपतये नमः।
जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः।।
नमः उग्राय वीराय सारंगाय नमो नमः।
नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमो नमः।।
ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्रायवपुषे नमः।।
तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने।
कृतघ्नाघ्नाय देवाय ज्योतिषांपतये नमः।
तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्म्मणे।
नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे।।
नाशयत्येष वै भूतं तमेव सृजति प्रभुः।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः।।
एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिःष्ठितः।
एष चैवाग्नि होत्रं च पलं चैवाग्नि होतॄणाम्।।
देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः।।
एनमापत्सु कृच्छेषु कान्तारेषु भयेषु च।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव।।

इस स्तोत्र का तीन बार जप करने के बाद श्रीराम ने रावण से युद्ध किया और विजयी हुए। यह स्तोत्र तत्काल फलप्रद है।

सूर्यनमस्कार

सौरमत की तन्त्र-साधना में दीर्घायुष्य, वर्चस्व की वृद्धि के लिए तथा आरोग्य

लाभ के लिए सूर्य नमस्कार का प्रमुख स्थान है। सूर्यनमस्कार प्रातः सूर्याभिमुख खड़े होकर नौ आसनों द्वारा किया जाता है।

नमस्कार विधि– प्रातःकाल की क्रियाओं से निवृत्त होकर स्नान करके सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर २७ आहुतियाँ अग्नि में छोड़े। अर्घ्य और आहुति मन्त्र यह है–

ॐ ह्रीं घृणिः सूर्य आदित्योम्।

इसके बाद तीन बार गायत्री (ॐ भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्) का उच्चारण करते हुए सूर्य का ध्यान करे। तत्पश्चात् निम्नांकित आसन मुद्राओं द्वारा सूर्य को नमस्कार करे–

१. नमस्कार मुद्रा– पूर्व की ओर मुँह करके सीधे खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर सूर्य की ओर अभिमुख होकर **'महापापहरंदेव तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्'** कहे।

२. ऊर्ध्वनमस्कार मुद्रा– दोनों हाथों को ऊपर उठाकर तथा एड़ी उठा कर **'महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्'** कहे।

३. हस्तपादासन मुद्रा– दोनों हाथों को नीचे लाकर पैरों को भूमि में सटा कर दोनों हाथों की अंगुलियों से पृथ्वी को स्पर्श करते हुए सीधे झुककर **'सर्वपापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्'** कहे।

४. एकपाद प्रसारणासन मुद्रा– बायाँ पैर भूमि पर रखकर दायें पैर को जहाँ तक हो सके पीछे ले जाकर **'सर्वपापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्'** कहे।

५. द्विपादप्रसारणासन मुद्रा– दोनों हाथों में पृथ्वी से सटाकरा दोनों पैरों को जितना हो सके पीछे ले जाकर **'सर्वपापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्'** कहे।

६. भूधरासन मुद्रा-दोनों हाथों, दोनों पैरों को कुछ दूरी पर भूमि पर रखकर पेट को अन्दर सटाते हुए 'सर्वपापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्' कहे।

७. अष्टांगप्रणिपातासन मुद्रा– पेट के बल जमीन पर लेट जाएँ। मुख, हाथ, पैर सब जमीन को स्पर्श करें और **'सर्वपापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्'** कहे। साष्टांगदण्डवत की मुद्रा में लेटना चाहिए।

८. सर्पासन मुदा– हाथों, पैरों को भूमि पर रखकर सर्पाकार लेट जाएँ किन्तु छाती और मस्तक को ऊपर उठा रहना चाहिए और **''महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्'** कहे।

९. उपवेशासन मुद्रा– सुखासन से बैठकर **महापापहरंदेवं तं सूर्यं प्रणमाम्यह्** का जप करे।

असाध्य कुष्ठ रोग चर्मरोग नाशक सूर्य मन्त्र

किसी प्रकार का चर्मरोग या असाध्य कुष्ठरोग होने पर रोगी को मैनसिल, छोटी

इलायची, देवदारु, कुंकम (केसर), खुश, मुलहठी, मधु और लालचन्दन मिश्रित नदी या जल से स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र धारण कराकर पूर्वाभिमुख बैठाकर सूर्यअथर्वाशीर्ष अथवा आदित्यहृदय स्तोत्र द्वारा कुश और अपामार्ग से जलाभिषेचन कर इन्हीं मंत्रों से अभिमन्त्रित कर जल पिला देना चाहिए।

रोगी को चाहिए कि वह प्रतिदिन नीचे लिखे मन्त्र से ताम्रपात्र में जलभर कर लालफूल छोड़कर सूर्य को अर्घ्य दे फिर इसी मन्त्र को १०८ बार जपे।

मन्त्र

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्वप्न्यं सुव॥

–ऋग्वेद १०।३७।४

यह अनुभूत प्रयोग है। असाध्य से असाध्य रोग ९० दिनों में ठीक हो जाता है।

नेत्ररोग विनाशक यन्त्र

किसी भी प्रकार का नेत्र रोग हो और डाक्टरों, वैद्यों द्वारा असाध्य घोषित किया गया हो तो नेत्र रोगी स्वयं अथवा किसी के माध्यम से नीचे लिखा प्रयोग करे।

८	१५	२	७
६	३	१२	११
१४	९	८	१
४	५	१०	१३

नेत्ररोग-पीड़ित को चाहिए कि प्रतिदिन प्रातःकाल हल्दी को चन्दन की तरह घिस कर अनार की कलम से काँसे के पात्र में यह यन्त्र लिखे। फिर इसी यन्त्र के ऊपरे ताँबे के दीपक के चार बत्तियाँ चारों ओर रखकर घी डाल कर जलाकर रख दे। तदनन्तर गंध, अक्षत, पुष्प से यन्त्र का पूजनकर पूर्व की ओर मुँह करके हल्दी की माला से **ॐ ह्रीं हंसः** इस बीज मन्त्र का जप १२०० करे।

मम चक्षुरोगान् शमय-शमय

इस प्रयोग का अद्भुत लाभप्रद प्रभाव देखा गया है।

सर्वार्थ साधक यन्त्र

यह सूर्य यन्त्र हर प्रकार की कार्य सिद्धि में अमोघ सिद्ध हुआ है। यन्त्र की निर्माण विधि, धारण विधि इस प्रकार है–

जब गुरु अस्त हों, शुक्रास्त हो, गुर्वादित्य योग हो और मलमास (अधिकमास) का महीना हो तब इस यन्त्र का निर्माण करना, इसे धारण करना निषिद्धि है। इन्हें

छोड़कर किसी भी महीने के शुक्ल पक्ष के रविवार को जिस दिन कृत्तिका नक्षत्र हो उस रविकृत्तिका योग में आक (आक=मंदार) के दूध; केशर, गोरोचन और आक के पत्तों के रस से स्याही बनाकर आक की कलम से इस यन्त्र को भोजपत्र पर लिखे। फिर **ॐ ह्रीं हं यः घृणिः सूर्याय नमः** इस मन्त्र से यन्त्र को १०८ अष्ट गंध से हवन करके यन्त्र को अभिमन्त्रित करें। इसके बाद सोने या ताँबे की ताबीज में यन्त्र को रखकर लाल रेशमी धागा से दाहिनी भुजा में धारण करने से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। अथवा उपर्युक्त रवि-कृत्तिका योग में इस यन्त्र को सोने या ताँबे के ताम्रपत्र में अंकित कराकर उपर्युक्त मन्त्र से १०८ बार हवन कर अभिमन्त्रित कर पवित्र स्थान में स्थापित कर नित्य मन्त्र का पूजन और उक्त मन्त्र का १०८ बार जप करने से अनायास सभी समस्याओं का समाधान होता रहता है। हर कार्य सिद्ध होते हैं। सुख और शान्ति प्राप्त होती है। यह अनुभूत और परीक्षित यन्त्र है।

६	३२	३	३४	३५	१
७	११	२७	२८	८	३०
१९	१४	१६	१५	२३	२४
१८	२०	२२	२१	१७	१३
२१	२९	१०	९	२६	१२
३६	५	३३	४	२	३१

नवग्रह-कवच

नवग्रहकवच बहुत ही शक्तिशाली कवच है। इसमें सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन नवग्रहों के अतिरिक्त प्रत्येक तिथि, नक्षत्र, सातों बार, सत्ताईस नक्षत्रों तथा राशियों और योगों का न्यास है। प्रतिदिन इस कवच का पाठ करते हुए शरीर के अंगों का न्यास (स्पर्श) करके हर ग्रह नक्षत्र, तिथि, बार, राशि और योगों की शक्तियाँ शरीर में प्रविष्ट होकर रोग, दोष, भय, शक्ति को दूर करती हैं। संकल्प शक्ति, आत्मशक्ति बढ़ती है। सुख सौभाग्य की वृद्धि होती है। हर कार्य में सफलता मिलती है। दीर्घायुष्य श्री कीर्ति और विजय प्राप्त होती है।

हमारी जानकारी में जिन लोगों ने नियमपूर्वक इस कवच का पाठ किया है, उन्हें किसी यन्त्र-मन्त्र व्रत, उपवास के बिना उपर्युक्त फल-सफलताएँ प्राप्त हुई हैं। हम कवच और उसकी क्रिया एक साथ दे रहे हैं–

कवच		क्रिया
१. शिरो मे पातु मार्त्तण्डः	-	मेरे शिर की रक्षा मार्त्तण्ड (सूर्य) करें। शिर का स्पर्श करे।
२. कपालं रोहिणीपतिः	-	रोहिणीपति (चन्द्रमा) मेरे कपाल (माथे) की रक्षा करें। माथे का स्पर्श करे।
३. मुखमंगारकः पातु	-	मेरे मुख की रक्षा मंगल ग्रह करें। मुख का स्पर्श करे।
४. कण्ठं च शशिनन्दनः	-	बुध ग्रह मेरे कण्ठं की रक्षा करें। कण्ठं का स्पर्श।
५. बुद्धिं जीवः सदा पातु	-	जीव (गुरु) नक्षत्र मेरी बुद्धि की रक्षा करें। मस्तिष्क का स्पर्श।
६. हृदयं पातु भृगुनन्दः	-	भृगुनन्दन (शुक्र) मेरे हृदय की रक्षा करें। हृदय का स्पर्श।
७. जठरं च शनिः पातु	-	शनि ग्रह मेरे पेट में स्थित जठराग्नि की रक्षा करें। पेट का स्पर्श।
८. जिह्वां में दितिनन्दनः	-	दितिनन्दन राहु मेरी जीभ की रक्षा करें। जीभ का स्पर्श।
९. पादौ केतुः सदा पातु	-	केतु ग्रह मेरे दोनों चरणों की रक्षा करें। दोनों पैरों का स्पर्श।
१०. वाराः सर्वांगमेव च	-	सातों वार (दिन) मेरे सभी अंगों की रक्षा करें। सभी अंगों का स्पर्श।
११. तिथयोऽष्टौदिशः पान्तु	-	सभी तिथियाँ आठों दिशाओं की रक्षा करें। शरीर के चारों ओर हाथ घुमाना।
१२. नक्षत्राणिवपुः सदा	-	सभी नक्षत्र सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करें। सम्पूर्ण शरीर का स्पर्श।
१३. अंसौराशिः सदा पातु	-	सभी राशियाँ मेरे दोनों कन्धों की रक्षा करें। दोनों कन्धों का स्पर्श।
१४. योगाश्च स्थैर्यमेवच	-	और सभी योग मुझे स्थिरता प्रदान करें। स्थिर होकर ध्यानस्थ बैठ जाना।

नवग्रह यन्त्र

सूर्य-यन्त्र

६	१	८
७	५	३
२	९	४

चन्द्र-यन्त्र

७	२	९
८	६	४
३	१०	५

भौम-यन्त्र

८	३	१०
९	७	५
४	११	६

बुध-यन्त्र

९	४	११
१०	८	६
५	१२	७

गुरु-यन्त्र

१०	५	१२
११	९	७
६	१३	८

शुक्र-यन्त्र

११	६	१३
१२	१०	८
७	१४	९

शनि-यन्त्र

१२	७	१४
१३	११	९
८	१५	१०

राहु-यन्त्र

१३	८	१५
१४	१२	१०
९	१६	११

केतु-यन्त्र

१४	९	१६
१५	१३	११
१०	१७	१२

यन्त्र-धारण विधि– किसी व्यक्ति की जन्म कुण्डली में जिस ग्रह की दशा चल रही हो अथवा अकारक या नीच के ग्रह के कारण कार्य-जीवन में असफलता मिलती हो अथवा संकट संघर्ष झेलने पड़ रहे हों तो उस ग्रह का जो दिन हो उस दिन ऊपर लिखे हुए उस ग्रह का यन्त्र बनवाकर ताबीज में भरकर उस ग्रह का बीज मन्त्र से १०८ बार हवनकर यन्त्र का सिद्ध करें दाहिनी भुजा या गले में धारण करे। एक वर्ष तक उस ग्रह का जो दिन हो उस दिन व्रत किया जाए। यह अनुभूत प्रयोग है। बहुत ही फलदायक है।

यन्त्र-लेखन-सामग्री– अनार की कलम, अष्टगन्ध (केशर, कपूर, अगर, तगर, कस्तूरी, अम्बर, गोरोचन, सफेद चन्दन, लाल चन्दन) अष्टगंध की जो वस्तु अप्राप्य

हो अथवा महँगी हो तो उसकी जगह जायफल, जावित्री से काम चलाया जा सकता है।

ताबीज

सूर्य और मंगल के यन्त्र के लिए ताँबे की ताबीज।

चन्द्र और शुक्र के लिए चाँदी की ताबीज।

बुध और गुरु के लिए सोने की ताबीज।

शनि, राहु और केतु के लिए लोहे की ताबीज।

व्रत

सूर्य का व्रत ३० रविवारों तक।

चन्द्र का व्रत १० या ५४ सोमवारों तक।

मंगल का व्रत २१ या ४१ भौमवार

बुध का व्रत १७ या २१ या ४५ बुधवार

गुरु का व्रत १६ गुरुवार या १ वर्ष या तीन वर्ष तक

शुक्र का व्रत २१ शुक्रवार या ३१ शुक्रवार

शनि का व्रत १९ या ५१ शनिवार

राहु-केतु का व्रत १८ शनिवार राहु का और

५ शनिवार केतु का व्रत रखना चाहिए।

नवग्रहों के बीज मन्त्र तथा जप और दान

१. सूर्य मंत्र– ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं

जप संख्या–७०००

रत्नधारण–माणिक्य

दान–गेहूँ, जौ, गुड़, ताँबा, सोना, लाल कपड़ा, रक्त कमल, रक्त चन्दन मूँगा।

२. चन्द्रमा मन्त्र-- ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्राय नमः।

जप–संख्या ११०००

रत्नधारण–मुक्ता या चन्द्रकान्तमणि।

उपासना–शिव की

दान–चावल, श्वेतवस्त्र, चाँदी, शंख, श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, चीनी, मिश्री, घी, दही, मोती।

३. मंगल मन्त्र– ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः।

जप संख्या–१०,००० सन्ध्या काल में

उपासना–शिव की

रत्न धारण–प्रवाल (मूँगा)

दान–ताँबा, सीसा, गेहूँ, रक्तवस्त्र, रक्त चन्दन, रक्त पुष्प, गुड़, मसूर की दाल, मूँगा।

४. बुध मन्त्र– ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः।

जप संख्या–१९,०००

व्रत–अमावस्या के दिन।

रत्नधारण–पन्ना

दान–काँसा, हाथी दाँत, हरा वस्त्र, पन्ना, सोना, कपूर, षट्रस भोजन, जौ, घी।

५. गुरु मन्त्र– ॐ ग्रां ग्रीं गौं सः गुरवे नमः।

जप संख्या–१९,००० सन्ध्या काल में

व्रत–अमावस्या

रत्नधारण–पुखराज

दान–पीला वस्त्र, सोना, पुस्तक, मधु, शक्कर, छाता।

६. शुक्र मन्त्र– ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः शुक्राय नमः।

जप संख्या– ६,००० सूर्योदय काल में

उपासना–गोसेवा-पूजा

रत्नधारण–हीरा

दान–सोना चाँदी, चावल, घी, श्वेत वस्त्र, श्वेत चन्दन, दही, सुगन्धित पदार्थ, मिश्री।

७. शनि मन्त्र– ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः।

जप संख्या–२३००० सायंकाल में

उपासना–महामृत्युञ्जय स्तोत्र या हनुमान-चालीसा का नित्य पाठ

रत्नधारण–नीलम।

दान–काला वस्त्र, लोहा, काली उड़द, नीलम, सरसो (राई) का तेल,

कुलथी, काले पुष्प।

८. राहु मन्त्र– ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः।

जप संख्या–१८,००० रात में

रत्नधारण–पिरोजा

दान–अभ्रक, काला तिल, काला वस्त्र, कम्बल, तैल।

९. केतु मन्त्र– ॐ म्रां म्रीं म्रौं सः केतवे नमः।

जप संख्या–१७,००० रात में

रत्नधारण–लहसुनिया

दान–काला तिल, कालावस्त्र, ध्वजा सप्तधान्य, कम्बल, उड़द, काला पुष्प, लोहा।



१३ / विविध मन्त्र-साधना

श्रीकृष्ण-साधना

तांत्रिक ग्रन्थों में भगवान् श्रीकृष्ण को योगेश्वर और तन्त्रेश्वर कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्णपरक कई तन्त्र ग्रन्थ हैं। सौर, गाणपत्य, शैव और शाक्त तन्त्रों की अपेक्षा वैष्णव तन्त्र बहुत ही जटिल हैं। इनकी उपासना विधि, साधना विधि भी दुस्तर है। तांत्रिक वैष्णव परम्परा में वैष्णवमृत, लक्ष्मी कुलार्णव, विष्णुधर्मोत्तर तन्त्र आदि अनेक ग्रन्थ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण और उनके आदि रूप विष्णु की उपासना विषयक अनेक तन्त्र ग्रन्थ हैं। कुण्डलिनी की साधना में पीताम्बरधारी विष्णु स्वाधिष्ठान चक्र के अधिष्ठातृ देवता हैं। सहस्रार चक्र को शाक्त तन्त्रों में भी 'हरिहर' का स्थान माना है।

भगवान श्रीकृष्ण इसलिए तन्त्रेश्वर कहे जाते हैं कि वे सिद्ध भी हैं, साधक भी हैं, गुरु भी हैं, शिष्य भी हैं। उनके नवदूर्वादल श्याम वर्ण रूप का वर्णन सर्वत्र पाया जाता है। तन्त्र साहित्य में विभिन्न मन्त्रों के विभिन्न देवताओं की सिद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के ध्यान मिलते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण का ध्यान तन्त्र साधना में पूर्णता का प्रतीक है। उनका यह पूर्ण रूप सिद्ध, साधना और साधक सित्रः सब को धारण करता है, अतः वह तन्त्रेश्वर हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण के अनेक मन्त्र हैं, किन्तु उनके न्यासों की परम्परा जटिल है, प्राणायाम भी भिन्न हैं, साधना प्रक्रिया भी विशिष्ट प्रकार की है। भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्रों की साधना गुरु के सान्निध्य से ही की जानी चाहिए। पुस्तकें पढ़कर साधना करना प्रयोग करना उचित नहीं है। श्रीकृष्ण का एकाक्षर बीज **'क्लीं'** हैं। इस एकाक्षर बीज से यन्त्र की भी रचना की जाती है। श्रीकृष्णकवच तो बहुत ही प्रभावशाली है। स्तोत्र पाठ, कवच पाठ और मन्त्र जप—यही तीन श्रीकृष्ण की साधना के प्रमुख अंग हैं। स्तोत्र पाठ से भक्ति भाव बढ़ता है। स्तोत्र पाठ करते हुए नादध्वनि और छन्द की सहायता से स्तोत्र पाठक का अन्तर्बाह्य अम्लान हो जाता है। कवच तो साधक के समस्त योग क्षेम का वहन करता है। श्रीकृष्ण कवच (यन्त्र रूप

में) बहुत गोपनीय है। विशिष्ट, योग्य अधिकारी को ही गुरुजन बतला कर सिद्ध कराते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण की चेतना और राधा तत्त्व को समझने के लिए तन्त्र ही महत्त्वपूर्ण माध्यम है। राधा के अस्तिव को कल्पित बताने वाले और भगवान् श्रीकृष्ण की रास-लीलाओं पर आक्षेप करने वालों का खण्डन बहुत ही तार्किक ढंग से तन्त्र शास्त्रों में किया गया है। तन्त्र-साहित्य पुराण साहित्य से ही नहीं, बल्कि अधिकांश आगम के रूप में जो वैदिक साहित्य से भी प्राचीन है, इन आगम तन्त्रों में तन्त्रेश्वर श्रीकृष्ण को सगुण और कूटस्थ ब्रह्म के रूप में भी निरूपित किया गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण के कतिपय सर्वजनोपयोगी तन्त्र यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनकी साधना सहज, सरल और सबके लिए साध्य होने के साथ ही फलप्रद है।

साधना-मन्त्र

१. गोपीजन वल्लभाय स्वाहा।

इस मन्त्र को दस हजार जप करने से जो भी कामना रख कर जप किया जाए वह पूरी होती है। श्रीकृष्ण का स्वरूप बोध भी प्राप्त होता है। कम-से-कम एक माला निज्य जपना चाहिए।

२. क्लीं कृष्णाय नमः।

यह मन्त्र संकटनाशक है। इसका नित्य जप करने से कोई संकट नहीं आता और संकट काल में जपने से संकट दूर होता है।

३. श्रीकृष्णगोविन्दाय नमः स्वाहा।

यह मन्त्र बहुत ही लाभप्रद है। हर मनोरथ को पूरा करता है। एक माला नित्य जपते रहने से स्वतः सारी कामनाएँ पूरी होती हैं।

४. कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः

जैसे वेद की ऋचाएँ मन्त्र कही जाती हैं, वैसे ही श्रीमद्भागवत का यह श्लोक मन्त्र स्वतः सिद्ध है। इसे जपने या सिद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं है। जब भी कभी किसी प्रकार का संकट उपस्थित हो जाए मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन जाए। बुद्धि, मन, प्राण सब हताश हो जाएँ उस समय इस मन्त्र का आर्तस्वर से उच्चरण करने पर संकट, संघर्ष सब कुछ दूर हो जाते हैं। भगवान् तुरन्त विवेक बुद्धि देते हैं। कर्त्तव्य का बोध कराते हैं।

पंचामृत मन्त्र

ॐ अँ अच्युताय नमः।

ॐ सँ अनन्ताय नमः।

ॐ एँ गोविन्दाय नमः।

ॐ हें अमृताय नमः।

ॐ वं विष्णवे नमः।

१. इस मन्त्र का पाँच हजार जप करने से असाध्य रोग दूर होते हैं।

२. रात में ताँबे के पंचपात्र में गंगाजल और तुलसीदल रखकर प्रातःकाल उक्त पंचामृत मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जल-तुलसी रोगी को पिलाने से महारोग दूर होते हैं। तुलसी निगल जाना चाहिए। इससे शोक, मोह, मानसिक रोग और हृदय-रोग दूर होते हैं।

सन्तान गोपाल-मन्त्र

१. देवकीसुत गोविन्द, वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण, त्वामहं शरणं गतः।।

सन्तान के इच्छुक पति-पत्नी तुलसी के बिरवा के पास बैठकर तुलसी की माला से नित्य ११ माला ११ दिन तक इस मन्त्र का जप करें। ११ दिन तक दोनों ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए फलाहार करें। ११ दिन बाद शुद्ध सात्विक भोजन किया करें और एकादशी का व्रत किया करे। नित्य प्रति उक्त मन्त्र का जप करें। साल भर के अन्दर सन्तान उत्पन्न होने पर तुलसी का विविधत् पूजन करें नित्य गोग्रास निकाल कर गाय को खिलाया करें।

२. ॐ नमो भगवते जगत्प्रसूतये नमः।

इस मन्त्र की भी विधि पहले मन्त्र की तरह है। जप कर चुकने के बाद और जप के प्रारम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना और उनका ध्यान किया जाना चाहिए।

ध्यान

शंखं चक्रं गदापद्मं धारयन्तं जनार्दनम्।
अंके शयानं देवक्याः सूतिका मन्दिरे शुभे।।

रुक्मिणी वल्लभ-मन्त्र

ॐ नमो मगवते रुक्मिणी वल्लमाय स्वाहा।

यह मन्त्र कुमारी कन्या को अनुकूल वर प्राप्त करने में अमोघ सिद्ध है। कुमारी कन्या स्नान करके लाल वस्त्र धारण कर इस मन्त्र का जप दो माला प्रतिदिन नियमित रूप से करें। केवल ९१ दिन जप करने मात्र से अनुकूल वर की प्राप्ति होती है।

श्री लक्ष्मीनारायण मन्त्र

ॐ श्री ह्रीं क्लीं लक्ष्मीनारायणाय नमः।

भगवान् लक्ष्मीनारायण का यह सिद्ध मन्त्र है। इसे प्रतिदिन जपते रहने से अथवा इस मन्त्र से प्रतिदिन आहुति देने से पारिवारिक सुख, शान्ति, समृद्धि की वृद्धि होती है। घर में लक्ष्मी का निवास होता है। प्रतिदिन एक माला अवश्य जपा जाए। जप समाप्त होने पर भगवान् लक्ष्मीनारायण को निम्नांकित मन्त्र पढ़ते हुए प्रणिपात करना चाहिए–

लक्ष्मी चारु कुचद्वन्द्वं कुंकुमांकितवक्षसे।
नमो लक्ष्मीपते तुभ्यं सर्वाभीष्ट प्रदायिने।

महामन्त्र

ॐ नमो नारायणाय।

यह अमोघ मन्त्र है। सभी अभीष्ट सिद्ध करता है। दुःख-दैन्य, संकट, विपत्ति का नाशक यह मन्त्र अपनी तेजस्विता के कारण महामन्त्र कहा जाता है। जैसे भी बन पड़े; इस मन्त्र का जप, स्मरण कीर्तन करने से योग और भोग दोनों करतलगत होते हैं।

आपद्हर्त्ता श्रीराम मन्त्र

आपदामपहर्त्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्।।

इस स्तुतिमन्त्र का सोते, जागते, उठते-बैठते, किसी भी स्थिति में स्मरण, जप करने से विपत्तियों, संकटों का नाश होता है। रोगी को इस मन्त्र से अभिमंत्रित जल पिलाने से रोग दूर होता है; भूत, प्रेत की बाधा दूर होती है।

षड्वर्णात्मक श्रीराम मन्त्र-साधना

श्रीराम मन्त्र छह प्रकार के हैं–

१. रां रामाय नमः – इस मन्त्र में छह वर्ण हैं, इसलिए यह षड्वर्णात्मक कहलाता है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता श्रीराम हैं।

२. क्लीं रामाय नमः – इस मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र हैं। छन्द गायत्री है, और देवता श्रीराम है।

३. ह्रीं रामाय नमः – इस मन्त्र के ऋषि शक्ति हैं। छन्द गायत्री हैं और देवता श्रीराम हैं।

४. ऐं रामाय नमः – इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति हैं। छन्द गायत्री है और देवता श्रीराम हैं।

५. श्री रामाय नमः – इस मन्त्र के ऋषि अगस्त्य हैं। छन्द गायत्री है और देवता श्रीराम हैं।

६. ॐ रामाय नमः – इस मन्त्र के ऋषि शिव हैं। छन्द गायत्री है और देवता श्रीराम हैं।

'रां रामाय नमः' महामंत्र का पुरश्चरण

यह षडक्षर मन्त्र अधिक प्रचलित है। रामानन्दी वैष्णव सम्प्रदाय का यही दीक्षा मन्त्र है। अधिकतर इसी मन्त्र के सकाम पुरश्चरण किए जाते हैं। जो सद्यःफल प्रदान करते हैं। इस मन्त्र का बीज **रां** है। इस मन्त्र की उपासना, साधना या पुरश्चरण प्रारम्भ करने से पहले नित्य **'रा'** इसी बीज का दस बार जप करके जिह्वा शोधन करना चाहिए। इसके बाद जप करने की तुलसी की माला का संस्कार गंगाजल से परिमार्जित कर करना चाहिए। माला को गंगाजल से प्रक्षालन या मार्जन करते हुए यह मन्त्र पढ़ना चाहिए–

नमस्ते रामभद्राय, जगतामृद्धिहेतवे।
रामादि पुण्यनामानि, जपतां पाप हारिणे।।

तत्पश्चात् निम्नांकित रामगायत्री पढ़ते हुए माला में चन्दन लगाए–

ॐ दशरथाय विद्महे सीता वल्लभाय धीमहि तन्नोरामः प्रचोदयात्।

इसके बाद निम्नांकित प्रार्थना मन्त्र से माला की प्रार्थना कर मस्तक से स्पर्श कराए–

माले माले महामाये सर्वतत्त्व स्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्य न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।

प्रार्थना के बाद माला से अपने इष्ट देव का अथवा **रां रामाय नमः** का १०८ बार जप करे। इस प्रकार माला का संस्कार हो जाने पर मन्त्र जप करने से तत्काल सिद्धि मिलती है।

इसके बाद पीठासन पर पीलारेश्मीवस्त्र बिछाकर हल्दी या केशर में रँगे हुए

अक्षत रखकर उस पर भोज पत्र अथवा ताम्रपत्र अंकित षड्वर्णात्मक श्रीराम यन्त्र को स्थापित कर, विनियोग, अंगन्यास, करन्यास करके यन्त्र की पूजा करे।

विनियोग–अस्य षड्वर्णात्मक श्रीराम मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीरामदेवता रां बीजम् नमः शक्ति चतुविधपुरुषार्थ सिद्धये जपे विनियोगः। (हाथ में जल लेकर भूति पर छोड़ दे)

ऋष्यादिन्यास- **ॐ ब्रह्मर्षये नमः शिरसि।** (शिर का स्पर्श करे)

ॐ दैवी गायत्री छन्दसे नमः मुखे। (मुख का स्पर्श करे)

ॐ श्रीराम देवतायै नमः हृदि। (हृदय का स्पर्श करे)

ॐ विनियोगाय नमः सर्वांगे। (सभी अंगों का स्पर्श करे)

करन्यास - **ॐ रां अंगुष्ठाभ्यां नमः।** (दोनों हाथ में तर्जनी से अंगुष्ठ का स्पर्श)

ॐ रीं तर्जनीभ्यां नमः। (अंगुष्ठ से तर्जनी का स्पर्श)

ॐ रूँ मध्यमाभ्यां नमः। (अंगुष्ठ से मध्यमा का स्पर्श)

ॐ रैं अनामिकाभ्यां नमः। (अंगुष्ठ से अनामिका का स्पर्श)

ॐ रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। (अंगुष्ठ से कनिष्ठा का स्पर्श)

ॐ रः करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः। (दोनों हाथों की हथेलियों का स्पर्श)

हृदयविन्यास- **ॐ रां हृदयाम नमः।** (हृदय का स्पर्श)

ॐ रीं शिरसे स्वाहा। (शिर का स्पर्श)

ॐ रूँ शिखायै वषट् (दाएँ हाथ से बाएँ कन्धे का बाएँ हाथ से दाएँ कन्धे का एक साथ स्पर्श)

ॐ रौं नेत्रत्रयाय वौषट् (दोनों नेत्रों और त्रिपुटी का स्पर्श)

ॐ रः अस्त्राय फट् (अस्त्रायफट् कहने के साथ ही एक बार दाएँ हाथ की हथेली से बाएँ हाथ की हथेली पर आघात करे)।

मन्त्र वर्णन्यास

ॐ ॐ नम्ः ब्रह्मरन्ध्रे। (ब्रह्मरन्ध्रे सिर के तालु का स्पर्श)

ॐ रां नमः भ्रुवोर्मध्ये। (दोनों भौंहों का मध्य का स्पर्श)

ॐ मां नमः हृदि। (हृदय का स्पर्श)

ॐ यं नमः नाभौ। (नाभि का स्पर्श)

ॐ नं नमः लिंगे। (मूत्रेन्द्रिय का स्पर्श कर हाथ धो डाले)

ॐ मं नमः पादौ। (दोनों चरणों का स्पर्श)

तत्पश्चात् भगवान् श्रीराम का ध्यान करे-

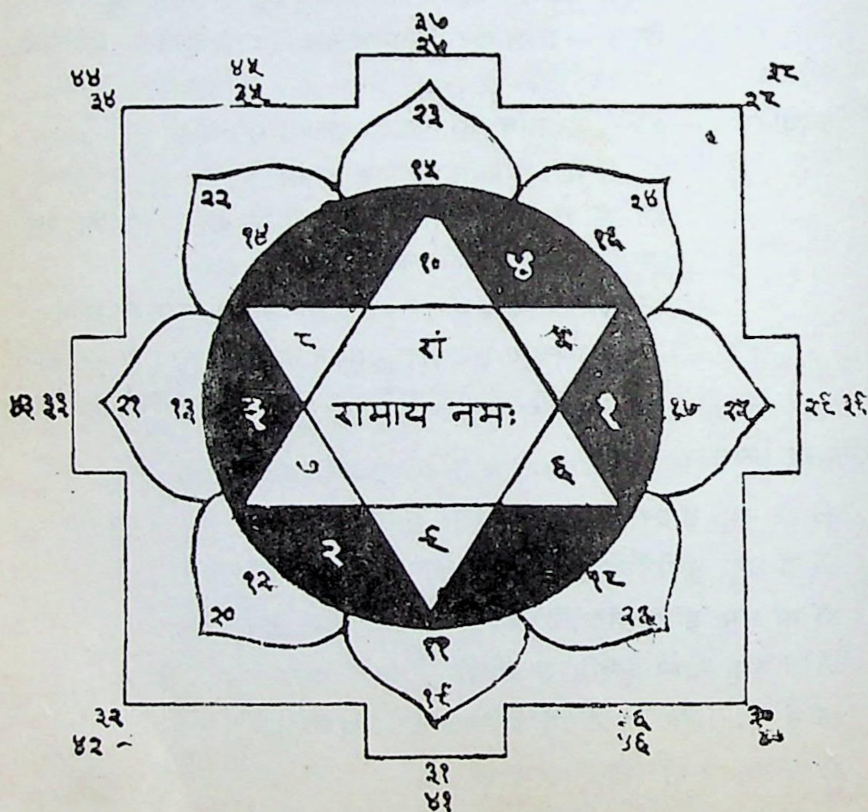
> नीलाम्भोधर कान्ति कान्तमनशिं वीरासनाभ्यासिनं।
> मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि।
> सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं।
> पश्यन्ती मुकुटांगदादि विविधा कल्पोज्ज्वलांगं भजे।।

इसके बाद ॐ नमो भगवते रामाय सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्म संयोगपद्मपीठात्मने नमः – इस मन्त्र को पढ़कर कमल पुष्प या अन्य सुगन्धि पुष्प का आसन देकर षड्वर्णात्मक श्री राम यन्त्र का षोडशोपचार पूजन करे। पूजन के बाद पुरुष सूक्त (सहस्रशीर्षा इत्यादि वेद मन्त्रों से) से अभिषेक करके निम्नांकित श्लोक पढ़कर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे-

> ॐ संविन्मयः परो देवः परमृतरसप्रियः।
> अनुज्ञां देहि मे राम ! परिवारार्चनाय ते।।

इसके बाद यन्त्र में प्रतिव्यापित अंकित छहों आवरणों की पूजा करे।

।। षड्वर्णात्मकं श्रीराममन्त्रयन्त्रम्।।



प्रथम आवरण पूजा–(अग्नि कोण में जहाँ यन्त्र में १ संख्या लिखी है) ॐ देववामपार्श्वे सीतायै नमः सीता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।

२. (दक्षिण पार्श्व में- यन्त्र में जहाँ (२) संख्या मिलती है) ॐ शार्गाय नमः शार्गं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२. वामवार्श्व में (३) शराय नमः शरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

४. चापाय नमः चाप श्रीपदुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (४)

इसके बाद प्रार्थना करे-

ॐ अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

द्वितीय आवरण पूजा – षट्कोण की पूजा केशर से करे। यन्त्र में लिखित अंकों को देखकर क्रमानुसार पूजा करे–

५. अग्नि कोण में **ॐ रां हृदयाम नमः।**

६. ॐ नैऋत्व कोण में **ॐ रीं शिरसे स्वाहा।**

७. वायव्य कोण में **ॐ रूँ शिखायै वषट्।**

८. ईशान कोण में **ॐ रैं कवचाय हुम्।**

९. **ॐ रौं नेत्र त्रायवौषट्** (यन्त्र और पूजक के बीच में)

१०. **ॐ रः अस्त्राय फट्** (यन्त्र के पश्चिम में)

इसके बाद प्रार्थना करे–

ॐ अभीष्टसिद्धिं में देहि, शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं, द्वितीयावरणार्चनम्।।

तृतीय आवरण पूजा – (बाह्य अष्टदल में यन्त्र और पूजक के मध्य प्राची दिशा की कल्पना करके पूजा करे)

११. ॐ हनुमते नमः हनुमच्छीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१२. ॐ सुग्रीवाय नमः सुग्रीव श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१३. ॐ भरताय नमः भरत श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१४. ॐ विभीषणाय नमः विभीषण श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१५. ॐ लक्ष्मणाय नमः लक्ष्मण श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१६. ॐ अंगदाय नमः अंगद श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१७. ॐ शत्रुघ्नाय नमः शत्रुघन श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१८. ॐ श्री जाम्बवते नमः जाम्बवच्छ्री श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

तत्पश्चात् प्रार्थना करे–

ॐ अभीष्ट सिद्धिं में देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्यये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

चतुर्थ आवरण पूजा – (अष्टदल की अग्रकर्णिका में पूजा करे)

१९. ॐ स्रष्टे नमः स्रष्टृ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२०. ॐ जयन्ताय नमः जयन्त श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२१. ॐ विजयाय नमः विजय श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२२. ॐ सुराष्ट्राय नमः सुराष्ट्र श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२३. ॐ राष्ट्रवर्द्धनाय नमः राष्ट्रवर्द्धन श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२४. ॐ अकोपाय नमः अकोप श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२५. ॐ धर्मपालाय नमः धर्मपाल श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२६. ॐ सुमन्त्राय नमः सुमन्त्र श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इसके बाद प्रार्थना करे–

ॐ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थवरर्णाचनम्।।

पंचम आवरण पूजा – (भूपुर में पूर्व आदि क्रम से पूजा करे)

२७. ॐ लं इन्द्राय नमः इन्द्र श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२८. ॐ रं अग्नये नमः अग्नि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२९. ॐ यं यमाय नमः यम श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३०. ॐ क्षं निर्ऋतये नमः निर्ऋति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३१. ॐ वं वरुणाय नमः वरुण श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३२. ॐ यं वायवे नमः वायु श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३३. ॐ कुं कुबेराय नमः कुबेर श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३४. ॐ हं ईशानाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(इन्द्र और ईशन के बीच पूजा करें)

३५. ॐ अं ब्रह्मणे नमः ब्रह्म श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३६. वरुण और निर्ऋति के बीच पूजा करे।

ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः अनन्त श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

षष्ठ आवरण पूजा–(उसके बाहर पूर्व आदि क्रम में पूजा करे)

३७. ॐ वं वज्राय नमः।

३८. ॐ शं शक्तये नमः।

३९. ॐ दं दण्डाय नमः।

४०. ॐ खं खड्गाय नमः।

४१. ॐ पं पाशाय नमः।

४२. ॐ अं अंकुशाय नमः।

४३. ॐ गं गदायै नमः।

४४. ॐ त्रिं त्रिशूलाय नमः।

४५. ॐ पं पद्माय नमः।

४६. ॐ चं चक्राय नमः।

इसके बाद प्रार्थना करे–

ॐ अभीष्टसिद्धिं मे देहि, शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम्।।

आवरण पूजा के पश्चात् भगवान् श्रीराम से प्रार्थना करे–

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः।
श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम।
श्रीराम राम भरताग्रज राम राम।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम।
श्रीराम राम शरणं भव राम राम।।
श्रीरामचन्द्र चरणौ मनसा स्मरामि।
श्रीरामचन्द्र चरणौ वचसा स्मरामि।
श्रीरामचन्द्र चरणौ शिरसा नमामि।
श्रीरामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये।

इसके बाद षडवर्णात्मक श्रीराम मन्त्र **रां रामाय नमः** का जप करे। इस साधना में कुल जपसंख्या ६ लाख है। ६ लाख जप संख्या जब पूरी हो जाए तब जप संख्या का दसमांश तिल, जव, चावल, गूगुल, घी, कपूर से हवन करे। हवन का मन्त्र **रां रामाय नमः** यही है। यह साधना सकाम है, निष्काम नहीं, इसलिए

कामना के अनुसार हवन सामग्री में निम्नांकित वस्तुएँ अपेक्षित हैं–

१. लोकप्रियता प्राप्त करने के प्रयोजन में हवन समाग्री में नीलोत्पल अधिक मात्रा में मिलाया जाए।

२. राज सम्मान के प्रयोजन में चमेली और चन्दन मिलाया जाए।

३. धन-मान्य समृद्धि के प्रयोजन में कमलपुष्पों से हवन किया जाए।

४. लक्ष्मी प्राप्ति के प्रयोजन में बिल्व फल से हवन किया जाए।

५. दीर्घायुष्य के निमित्त दूर्वा दल से हवन किया जाए।

६. मेघा शक्ति संवर्द्धन के निमित्त पलाशपुष्प से हवन किया जाए।

७. कुशल-क्षेम के लिए अष्टांग हवन सामग्री से हवन किया जाए।

विशेष

१. यदि **रां रामाय नमः** से अभिमन्त्रित भोजन किया जाए तो शरीर और मन में कभी कोई रोग पैदा नहीं होता है।

२. यदि वाणी का वैभव, वाक्पटुता अथवा कवित्व शक्ति प्राप्त करनी हो तो **रां रामाय नमः** से अभिमन्त्रित जल का पान नित्य करना चाहिए।

त्रयोदशाक्षर श्रीराम मन्त्र

श्रीराम जयराम जय जय राम

इसका जप कीर्तन सुख, समृद्धि, शान्तिपुष्टिवर्द्धक है और असाध्य रोगों को दूर करता है।

हरिमन्त्र

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

असाध्यकष्ट, असह्य पीड़ा में तन्मय होकर इस मन्त्र का उच्चारण किया जाए तो अद्भुत लाभ और अनुभव होता है। बहुत ही तेजस्वी मन्त्र है। हर प्रयोजन को सिद्ध करता है। नियमित अनुष्ठान करने से वाणी सिद्ध होती है। भविष्य दर्शन होता है।

नृसिंह मन्त्र

ॐ नमो नरसिंहाय हिरण्यकशिपु वक्षःस्थलविदारणाय
त्रिभुवन व्यापकाय भूतप्रेतपिशाच डाकिनी कुलोन्मूलनाय

स्तम्भोदमवाय समस्तदोषान् हर हर विसर विसर पच पच हन हन कम्पय कम्पय मथ मथ ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट् फट् ठः ठः एह्येहि रुद्र आज्ञापय स्वाहा।

यह मन्त्र समस्त रोग, दोष, भूत, पिशाच, बाधाओं को तत्काल नष्ट करता है।

साधना विधि – किसी भी दिन रात दस बजे से १२ बजे के बीच इस मन्त्र से १०८ बार आहुतियाँ आम की लकड़ी और अष्टांग हवन सामग्री से देने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद ५१ दिन तक ११ माला नित्य जपने से मन्त्र जाग्रत हो जाता है। अष्टांग हवन समाग्री ने मिलने पर लोबान से हवन किया जाए।

रोगी या प्रेतबाधाग्रस्त व्यक्ति पर कुश से जल छिड़कते हुए मन्त्र को पढ़ा जाए अथवा उसके सामने हवन किया जाए या मोर पंख से झाड़ दिया जाए।

शैवमन्त्र

भगवान् शिव की साधना नहीं, आराधना की जाती है। समस्त विद्याओं, कलाओं, यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र के द्रष्टा, स्रष्टा, प्रवक्ता भगवान् शिव हैं। केवल शिव-शिव कहने मात्र से सभी संकट, रोग, दोष, भव, बाधाएँ दूर होती हैं। उलटा सीधा, टेढ़े-मेढ़े, उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, भागते-दौड़ते हर स्थिति में शिव-शिव कहने मात्र से सारे पाप और सारी अपवित्रताएँ दूर होती हैं।

शिव के पंचाक्षर (**नमः शिवाय**) और षड्क्षर (**ॐ नमः शिवाय**) मन्त्रों की अपार महिमा है। शिवार्चन करके इनमें से कोई एक मन्त्र जपने से अमित लाभ होता है। भौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिए पंचाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिए। और ज्ञान, मोक्ष प्राप्त करने के लिए षड्क्षर मन्त्र का जप करना चाहिए। शिवार्चन और मन्त्र जप करने पर ही फल मिलता है।

श्रीहनुमत्साधना

रुद्रावातार श्री हनुमान उग्र देवता हैं। इनकी साधना, उपासना तत्काल फल देती है। किन्तु संयम, नियम, ब्रह्मचर्य पालन करने में तनिक-सी भूल भंयकर परिणाम घटित करती है। इसलिए हनुमान जी की साधना-उपासना बड़ी सावधानी और निष्ठा से की जानी चाहिए। हनुमान जी को सिद्ध करने का मूल मन्त्र है–

ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।

विधि – एकान्त में नदी तट या गाँव के बाहर एकान्त मन्दिर अथवा गिरि में जाकर शनिवार के दिन से ब्राह्ममुहूर्त में या आधी-रात से आराधना प्रारंभ करनी

चाहिए। कुशासन पर पद्मासन लगाकर बैठना चाहिए। शरीर और मन से पूर्णतया पवित्र होकर तत्त्व शुद्धि और भूतशूद्धि करे, फिर संकल्प करे, विनियोग करे, तत्पश्चात् मूलमन्त्र के बीजों से करन्यास करे।

विनियोग–ॐ अस्य श्रीअष्टादशाक्षर मन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः पवनकुमार हनुमानदेवता हं बीजं स्वाहा शक्ति जपे विनियोगः।

करन्यास

ॐ	नमो	भगवते	आञ्जनेयाय	अंगुष्ठाभ्यां	नमः।
ॐ	नमो	भगवते	रुद्रमूर्त्तये	तर्जनीभ्यां	नमः
ॐ	नमो	भगवते	मरुत्सुताय	मध्यमाभ्यां	नमः
ॐ	नमो	भगवते	अग्निगर्भाय	अनामिकाभ्यां	हुं
ॐ	नमो	भगवते	रामदूताय	कनिष्ठिकाभ्यां	वौषट्
ॐ	नमो	भगवते	ब्रह्मास्त्रनिवारणाय	करतलकरपृष्ठाभ्यां	नमः

इसके बाद ध्यान करे–

तत्र काञ्चन संकाशं हृदये निहिताञ्जलिम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं ध्यायेद् वानरनायकम्।।

ध्यान के बाद रुद्राक्ष की माला से मूलमन्त्र का जप करना चाहिए। ध्यान और जप से पूर्व हनुमान जी का पूजन षोडशोपचार से करे। घी का दीपक साधना काल तक जलता रहे। प्रतिदिन एक हजार मन्त्र जपने से हनुमान जी की सिद्धि २१ दिन में होती है। ग्यारहवें दिन हनुमान जी स्वयं प्रकट होते हैं। यह उग्र साधना किसी विशेषज्ञ की देखरेख में की जाए। केवल पुस्तक पढ़ कर साधना करना खतरानाक है।

प्रेतबाधानाशक मन्त्र

१. **प्रनवउँ पवनकुमार, खलबन पावक ग्यान घन।**
जासु हृदयँ आगार, बसहिं राम सर चाप धर।।

११ माला नित्य ४९ दिन तक जपने से प्रेत बाधा दूर होती है।

२. हनुमान जी की मूर्ति या चित्र की पंचोपचार पूजा करके सात शनिवार तक प्रत्येक शनिवार को हनुमान चालीसा के सौ पाठ करने से प्रेत बाधा दूर होती है।

(३)

ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	
ॐ	२४	३१	२	७	
ॐ	६	३	२८	२७	ॐ
ॐ	३०	२५	८	१	ॐ
ॐ	४	५	२६	२९	ॐ
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	

इस मन्त्र को शनिवार को भोजपत्र पर लिखकर और मढ़ाकर घर के सभी कमरे में टाँग देने से प्रेतबाधा दूर होती है।

मन्त्रराज

हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्सौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः।

विनियोग – अस्य मन्त्रराजस्य श्रीरामचन्द्रः ऋषिर्जगती, छन्दः हनुमान देवता ह्सौं बीजं हस्फ्रें शक्तिः जपे विनियोगः।

उपर्युक्त हनुमान जी के मन्त्र में हौं हस्फ्रें ख्फ्रें ह्सौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौ– ये छह बीज हैं। इन छहों बीजों में क्रमशः मस्तक ललाट, दोनों नेत्र, मुख, कान, दोनों बाहु, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिंग, दोनों जानु, दोनों चरणों पर अंगन्यास करना चाहिए।

इसके बाद मन्त्रराज के बारह अक्षरों का न्यास करे। तत्पश्चात् छह बीज और दो पद इन आठों का क्रमशः मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, उरु, जंघा और चरणों का न्यास करे, फिर ध्यान करे।

ध्यान

उद्यत्कोट्यर्क संकाशां, जगत्प्रक्षोभ कारकम्।
श्रीरामाङ्घ्रि ध्याननिष्ठं, सुग्रीवप्रमुखार्चितम्।।
वित्रासयन्तं नादेन, रक्षसां मारुतिं भजे।।

ध्यान के बाद ११००० जप करना चाहिए। यदि ११ हजार नित्य जप करना

संभव न हो तो ११०० जप नित्य किया जाए। एक लाख जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। शनिवार के दिन से प्रारम्भ कर मंगलवार को समाप्त करना चाहिए। जिस दिन जप समाप्त हो, उसी दिन दही, दूध, घी और ध्यान से दस हजार आहुति देनी चाहिए।

मन्त्र सिद्ध हो जाने के बाद

१. इस मन्त्र से १०८ बार पानी फूँक कर पिलाने से महाविष दूर हो जाता है। भूत अपस्मार, कृत्याज्वार दूर करने के लिए इस मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म या जल से क्रोधपूर्वक रोगी के ऊपर प्रहार की मुद्रा में छोड़े, तीन दिन में रोग दूर हो जाते हैं। नित्य अभिमन्त्रित जल पीने से भी २१ दिन में महारोग दूर हो जाते हैं।

२. उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म अंगों में लगा कर युद्ध क्षेत्र में जाने से मल्ल युद्ध, द्वन्द्व युद्ध अथवा शस्त्रास्त्र युद्ध में विजय प्राप्त होती है।

३. शस्त्राघात, लूता, विस्फोट, मकरी, अर्द्धांगी, कारबंकल, कंठमाला आदि में तीन बार मन्त्र पढ़कर फूँक मार कर भस्म लगा देने से तुरन्त आराम मिलता है। तीन दिन में रोग दूर हो जाते हैं।

४. करंजमवृक्ष की जड़ लाकर अँगूठा के बराबर हनुमान जी की प्रतिमा बना कर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करके उस पर घी मिश्रित सिन्दूर लगा दिया जाए। फिर उस प्रतिमा का मुख घर के द्वार पर घर की ओर करके मन्त्रोच्चार पूर्वक गाड़ दिया जाए तो उस घर में ग्रह दोष, अभिचार, रोग दोष, अग्निभय, चोरभय राजभय कभी नहीं होता। आधि-व्याधि दूर होती है और सुखसमृद्धि की वृद्धि होती है।

५. भूमि पर हनुमान जी का चित्र बनाकर चित्र के सामने के भाग में उपर्युक्त मन्त्र लिख दे फिर साध्य व्यक्ति या वस्तु का द्वितीयान्त (जैसे राम द्वितीयान्त राम) नाम लिखकर उसके आगे 'विमोचय विमोचय' लिखे फिर बाएँ हाथ से मिटाये। इस तरह दाहिने हाथ में मन्त्र और नाम के आगे विमोचय विमोचय १०८ बार लिखे और बाएँ हाथ से मिटाये तो उस व्यक्ति को कारागार से मुक्ति मिल जाती है।

६. मूल मन्त्र के अंतिम अंश **हनुमते नमः** और आदि बीज **ह्रौं** को जोड़कर शेष अक्षरों से पंचाक्षर मन्त्र बनता है। यह मन्त्र सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध करता है।

७. विनियोग में इस मन्त्र के ऋषि रामचन्द्र, छन्द गायत्री, देवता हनुमान हैं। सम्पूर्ण कामना की पूर्ति के लिए इसका विनियोग किया जाता है।

षडंगन्यास में इस मन्त्र से पाँच बीजों और सम्पूर्ण मन्त्र से षडंगन्यास किया जाता है। रामदूत, सीताशोक विनाशन, लंकाप्रासाद भजन–इन नामों से पहले

हनुमान यह नाम और है। हनुमान आदि पाँच नामों में पाँच बीज और अन्त में 'ङे' विभक्ति लगा दी जाती है। अंतिम नाम के साथ पाँचों बीज जुड़ते हैं। ध्यान पूजन पूर्ववत् है।

सर्वदुष्टग्रह-निवारण मन्त्र

ॐ नमो हनुमते पाहि-पाहि एहि-एहि सर्वग्रहभूतानां शाकिनी-डाकिनीनां विषम दुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय छेदय छेदय मृत्युं मारय मारय भयं शोषय शोषय प्रज्वल-प्रज्वल भूतमण्डल पिशाचमण्डल निरसनाय भूतज्वर प्रेतज्वर चातुर्थिकज्वर विष्णुज्वर माहेश्वर ज्वरान् छिन्धि-छिन्धि भिन्धि भिन्धि अक्षिशूल पक्षशूल शिरोऽभ्यन्तरशूल गुल्मशूल पित्तवातशूल ब्रह्मराक्षसकुल पिशाचकुल प्रबलनागकुलच्छेदनं विषं निर्विषं कुरु कुरु झटिति झटिति ॐ ह्रां सर्वदुष्ट -ग्रहान्निवारणाय स्वाहा।

ॐ नमो हनुमते पवनपुत्राय वैश्वानरमुखाय पापदृष्टि - पाषण्डदृष्टि हनुमदाज्ञा स्फुर ॐ स्वाहा।

इन मन्त्रों का जप, अनुष्ठान पूर्ण होने पर दशांश जप या हवन करके ब्राह्मण भोजन भी कराना चाहिए।

न्यासविधि

ॐ ह्रीं अञ्जनीसुताय	अंगुष्ठाभ्यां नमः
ॐ ह्रीं रुद्रमूर्तये	तर्जनीभ्यां नमः
ॐ ह्रूं रामदूताय	मध्यमाभ्यां नमः
ॐ ह्रैं वायुपुत्राय	अनामिकाभ्यां नमः
ॐ ह्रौं अग्निगर्भाय	कनिष्ठिकाभ्यां नमः
ॐ ह्रः ब्रह्मास्त्र निवारणाय	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः
ॐ अञ्जनीसुताय	हृदयाय नमः
ॐ रुद्रमूर्तये	शिरसे स्वाहा
ॐ रामदूताय	शिखायै वषट्
ॐ वायुपुत्राय	कवचाय हुम्
ॐ अग्निगर्भाय	नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ ब्रह्मास्त्र निवारणाय	अस्त्राय फट्

अन्य अमोघ प्रयोग

१. **हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्** – इस मन्त्र का एक लाख जप करने से मनुष्य शत्रु पर विजयी होता है। अर्जुन इसी मन्त्र की साधना करके अजेय और प्रसिद्ध हुआ है।

२. वाल्मीकीय रामायण या रामचरितमानस के प्रत्येक श्लोक या चौपाई में इस मन्त्र का संपुट लगाकार पाठ करने से सारी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं।

३. **रां रामाय नमः** या **ॐ हनुमते नमः** का संपुट लगाकार रामायण का नवाह्न पाठ से हनुमान जी की प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह प्रकट होकर वरदान देते हैं। तुलसीदास जी ने इन्हीं का संपुट लगा कर वाल्मीकीय रामायण का पाठ किया था और हनुमान जी से श्रीराम के दर्शनों का वरदान माँगा था।

४. मूलरामायण में नीचे श्लोक का संपुट लगाकर पाठ करने से विवाह होता है अथवा बिछुड़ी हुई पत्नी प्राप्त होती है–

स देवि नित्यं परितप्यमान–
स्त्वामेव सीत्येत्यभिभाषमाणः
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा
तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः।

५. शत्रु निवारण, आत्मरक्षार्थ खोई हुई प्रतिष्ठा की पुनः प्राप्ति के लिए तथा कठिन से कठिन कार्य की सफलता के लिए नीचे लिखे चार श्लोकों का ५१००० जप करना चाहिए। ५१००० जप संख्या पूरी होते-होते असम्भव कार्य सम्भव होकर सफलता मिलती है। जप के बाद दशमांस हवन किया जाए। नित्य हनुमान जी का षोड्शोपचार पूजन कर जप करना चाहिए। पूर्ण ब्रह्मचर्य और संयम, नियम का पालन निष्ठापूर्वक किया जाए। यह अमोघ प्रयोग है। कभी भी विफल होने वाला नहीं है।

मन्त्र

ॐ जयत्यति बलो रामो, लक्ष्मणश्च महाबलो।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः।।
दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्ट कर्मणः।
हनूमान् शत्रुसैन्यानां, निहन्ता मरुतात्मजः।।
न रावण सहस्रं मे, युद्धे प्रतिबलं भवेत्।।
शिलाभिश्च प्रहरतः, पादपैश्च सहस्रशः।।

अर्दयित्वा पुरीं लंकाममिवाद्य च मैथिलीं।
समृद्धार्थे गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्।। ॐ

हनुमत्साधना के प्रयोग

१. किसी मास के शुक्ल पक्ष के मंगल के दिन से नीचे लिखा प्रयोग इस प्रकार किया जाए-

एक दिन पहले अर्थात् सोमवार को सवा पाव उत्तम गुड़, एक छटाँक भुने हुए अच्छे चने और सवा पाव गाय का शुद्ध घी रख दिया जाए। गुड़ के छोटे-छोटे इक्कीस टुकड़े कर लिए जाएँ। २१ टुकड़ों के बाद जो बुड़ बच जाय उसे अलग पवित्रपात्र में रख दिया जाए। साफ रुई की २२ फूलबत्तियों को अलग-अलग स्वच्छ पात्र में रखकर किसी ऐसे शुद्ध स्थान में रखा जाए। जिसे प्रयोगकर्त्ता के अलावा कोई और स्पर्श न कर सके और चींटी, कीड़े-मकौड़े लग सकें। वहीं पर एक दियासलाई रख दी जाए और एक खाली पात्र रख दिया जाए, जिसमें रखकर उक्त वस्तुएँ प्रतिदिन पूजा के लिए रखी जाएँ।

अब किसी ऐसे मन्दिर में नित्य पूजन की व्यवस्था की जाए, जहाँ हनुमान जी का स्थान हो और यदि नगर या गाँव से बाहर हो तो सर्वोत्तम है अन्यथा प्रयोगकर्त्ता के निवास से एक दो फर्लांग दूर अवश्य हो। घर पर यह प्रयोग नहीं हो सकता है। जितना निर्जन और एकान्त स्थान होगा, उतनी ही जल्दी सफलता मिलती है।

अब मंगलवार को ब्राह्ममुहूर्त में या सूर्योदय से पूर्व उठ कर मौनव्रत धारण कर स्नान आदि करके तीनों पात्रों से एक टुकड़ा गुड़, एक फूलबत्ती और ग्यारह चने लेकर खाली रखे हुए पात्र में रखकर उसी में दियासलाई रख ली जाए और किसी स्वच्छ वस्त्र से ढाँक दिया जाए। फिर हनुमान जी के मन्दिर में जाते हुए दाएँ-बाएँ, पीछे बिना देखे हुए और मौन धारण किए हुए, नंगे पाँव हनुमान जी के मन्दिर में पहुँच कर पहले घी की बत्ती जलाए, फिर ११ चने और गुड़ की एक डली हनुमान जी में चढ़ाए। इसके बाद हनुमान जी के सामने लेटकर साष्टांग दण्डवत् करके हाथ जोड़कर अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए मन-ही-मन प्रार्थना करे। इसके बाद स्तुति, प्रणाम कर जब घर की ओर लौटे तब उसी तरह मौन रहे और इधर-उधर न देखे। घर पहुँच कर निश्चित स्थान पर पूजन-सामग्री का पात्र रखकर सात बार **'राम'**, **'राम'** का उच्चारण कर मौन को तोड़े। रात में सोने से पहले ११ बार हनुमान चालीसा का पाठ करे और अपनी कामना की सिद्धि के लिए हनुमान जी से प्रार्थना कर सो जाए। इस तरह २१ दिन तक लगातार इसी क्रम से

आराधना करने के बाद बाईसवें दिन मंगलवार को प्रातःकाल स्नान आदि करके सवासेर का एक रोट पकाने में असुविधा हो तो पाव-पाव भर विभक्त करके पाँच रोट बनाकर उसमें पहले से रखा हुआ गाय का घी आवश्यकतानुसार मिलाकर पहले का बचा हुआ मिलाकर चूरमा बना लें। चूरमें को थाली में रखकर बचे हुए सारे चने और शेष घी सहित २२ वीं फूलबत्ती लेकर पूर्व दिनों की भाँति मौन रहकर दाएँ-बाएँ, पीछे देखे बिना मन्दिर में जाकर पहले फूलबत्ती जला दे फिर चने और चूरमा का भोग रख कर दण्डवत् प्रणाम कर घर वापस आए। पवित्र स्थान में भोग-प्रसाद रख कर सात बार 'राम', 'राम' कर मौन भंग करे। प्रयोग काल में पूर्ण ब्रह्मचर्य रखे।

प्रयोगकर्त्ता उस दिन दोनों समय चने और चूरमा के प्रसाद का भोजन करे। शेष चूरमों का प्रसाद बाँट दिया जाए। इस प्रयोग से निश्चय ही मनोरथ सिद्ध होता है। इस प्रयोग को यदि स्त्री करना चाहे तो वही स्त्री कर सकती है, जिसका मासिक ध ार्म बन्द हो गया हो।

२. प्रातःकाल नित्य क्रिया से निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र पहन कर शुद्ध पात्र में कुएँ या नदी का जल लेकर हनुमान जी के मन्दिर में जाकर हनुमान जी को जल चढ़ाए, फिर एक दाना उड़द का लेकर हनुमान जी के सिर पर रखकर ११ प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा के बाद साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए निवेदन करे और हनुमान जी के सिर पर चढ़ाए हुए उड़द के दाने को लेकर घर आकर उसे अलग एक पात्र में शुद्ध स्थान पर रख दे। इस तरह प्रति-दिन एक-एक उड़द का बढ़ाते जाना चाहिए। ४१ वें दिन ४१ दाने रखकर बाद में ४२ वें दिन से एक-एक उड़द का दाना कम करते जाना चाहिए और उसी प्रकार अलग रखते जाना चाहिए। इस तरह ८१ वें दिन एक दाना चढ़ाकर अनुष्ठान पूरा करना चाहिए। ८१ दिन के ८१ दाने लेकर नदी में प्रवाहित कर दिए जाएँ। रात में हनुमान जी स्वप्न में दर्शन देकर मनोकामना पूरी करते हैं।

३. यदि किसी व्यक्ति को किसी काम में दुविधा या असमंजस हो अथवा भय और घबराहट हो, कार्य की सफलता में सन्देह हो। ग्रह-नक्षत्र का प्रयोग हो अथवा भूत-प्रेत की बाधा हो। काम बिगड़ता हो, सफलता न मिलती हो तो उसे बजरंग बाण का पाठ करना चाहिए। पाठ पूरा होते ही आत्मबल, संकल्प शक्ति आ जाती है। भय, आशंका घबराहट दूर हो जाती है। तत्काल फल मिलता है। यदि नित्य पाठ करे तो भय, आशंका असफलता कभी निकट नहीं आती है।

नित्य अनुष्ठान विधि– हनुमान जी के मन्दिर में जाकर या घर पर ही हनुमान जी की मूर्ति या चित्र सामने रखकर आत्मविश्वास पूर्वक हनुमान जी का ध्यान करे। ध्यान करते हुए धारणा मन में करे कि हनुमान जी की दिव्य शक्तियाँ धीरे-धीरे शरीर के अंग-अंग में प्रवेश कर रही हैं। शरीर के हर परमाणु दिव्य शक्तियों

से उत्तेजित होते हैं। इसके बाद स्नान, चन्दन, पुष्प, आरती और फल के भोग द्वारा हनुमान जी का पूजन कर प्रणाम पूर्वक यह स्तुति करे–

अतुलित बलधामं हेम शैलाभदेहं
दनुज वन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकल गुणनिधानं वानराणमधीशं
रघुपति प्रियभक्तं, वातजातं नमामि।।

इसके बाद बजरंग बाण का पाठ करना चाहिए। इस अनुष्ठान को मासिक धर्म के दिनों को छोड़ कर स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। बजरंग-बाण कण्ठस्थ हो जाने पर इससे भूत, नजर, टोना, भय अनिद्रा रोग आदि बाधाएँ दूर की जा सकती हैं।

४. (क) **हनूमन्नञ्जनीसूनो वायुपुत्रो महाबल।**
अकस्मादागतोत्पातं नाशयाशु नमोऽस्तुते।।

इसका जप करने से अथवा हनुमानजी के सामने दीप ज्योति जला कर जप करने से असाध्य रोग दूर होते हैं।

(ख) **नासै रोग हरै सब पीरा, जपत निरंतर हनुमत वीरा।**

(ग) **बुद्धि हीन तनु जानिके, सुमिरौं पवन कुमार।**
बल बुधि विद्या देहु मोहि हरहु कलेस विकार।

इनका जपन करने से रोग, क्लेश, गृहकलह, स्नायुदौर्बल्य दूर होते हैं।

(घ) **ॐ यो यो हनुमन्त फलफलित धगधगित आयुराष परुडाह।।**

इस मन्त्र का ११०० रोज जप ११ दिन तक करे। प्रतिदिन जप करने के बाद प्लीहा रोग से पीड़ित व्यक्ति को सीधा लिटाकर उसके पेट पर नागरबेल के पत्ते रखे। पत्तों से ऊपर आठ तह किया हुआ कपड़ा रखे और कपड़े के ऊपर सूखे बाँस के छोटे-छोटे, पतले-पतले टुकड़े रख दे। इसके बाद बेर की सूखी लकड़ी लेकर उसे जंगली पत्थर से उत्पन्न आग से जलाए और रोगी के पेट पर रखे हुए बाँस के टुकड़ों को उपर्युक्त मन्त्र को पढ़ते हुए जली हुए लकड़ी से सात बार ताड़ित करे। इससे प्लीहरा रोग दूर हो जाते हैं।

प्रत्येक प्रयोजन की सिद्धि के लिए तथा समस्त विघ्नों के निवारण के लिए और शत्रु भय दूर होने के लिए उपर्युक्त तीन मन्त्र बहुत ही अमोघ हैं। तीनों की अनुष्ठान विधि एक है, किन्तु मन्त्र भिन्न-भिन्न हैं।

तीन में से किसी भी मन्त्र को सिद्ध करने अथवा उसका अनुष्ठान करने के लिए पहले न्यास किया जाए, फिर ध्यान किया जाए और मन्त्र को पढ़ते हुए १०८ बार हवन किया जाए अथवा पाठ या जप इसके बाद किया जाए।

ध्यान

ध्यायेद् बालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पाहं
देवेन्द्रप्रमुखं प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा।
सुग्रीवादि समस्त वानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालंकृतम्।।

कार्य-सिद्धि के लिए मन्त्र

ॐ नमो हनुमते सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् दूरस्थ समीपस्थान् छिन्धि-छिन्ध भिन्धि-भिन्धि सर्वकाल दुष्टबुद्धानुच्चाटयोच्चाटय परबलान् क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय। ॐ नमो हनुमते ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं फट्। देहि ॐ शिव सिद्धिं ॐ ह्रां ॐ ह्रीं ॐ ह्रूं ॐ ह्रैं ॐ ह्रः स्वाहा।

विधि– गाँ से बाहर हनुमान जी के मन्दिर में जाकर हनुमान जी की पंचोपचार पूजा करके घृत-दीप जलाकार भिगोई हुई चना की दाल और गुड़ का भोग लगाकर उक्त मन्त्र का जप सात्विक कार्य के लिए १०८ बार नित्य ११ दिन तक करे और अन्त में दशमांश हवन करे। तामसी कार्यों (मारण, उच्चाटन आदि) के लिए रात १० बजे के बाद से लाल वस्त्र पहनकर संयम-नियम पूर्वक ९ दिन तक १००० जप नित्य किया जाए।

शिर रोग दूर करने के लिए

लंका में बैठ के माथ हिलावे हनुमन्त।
सो देखिके राक्षसगण पराय दूरंत।
बैठी सीतादेवी अशोक वन में।
देखि हनुमान को आनन्द भई मन में
गई उर विवाद देवी स्थिर दरशाय।
'अुमक' के सिर व्यथा पराय।।
'अमुक' के नहीं कछु पीर नहीं भार।
आदेश कामाख्या हरिदासी चण्डी की दोहाई।।

विधि– जिसके शिर में पीड़ा हो उसे दक्षिण की ओर मुँह करा कर बैठा दे फिर सिर को हाथ से पकड़ कर मन्त्रोच्चारण करते हुए झाड़े। जहाँ 'अमुक' है वहाँ रोगी का नाम लिया जाए।

---

१. जिसके सिर में दर्द हो उसका नाम 'अमुक' की जगह ले।

आधा सीसी दूर करने के लिए

१. वन में ब्याई अंजनी कच्चे वनफल खाए।
हाँक मारी हनुमन्त ने इस पिंड से आधासीस उतर जाए।।

२. ॐ नमो वन में ब्याई वानरी उछल वृक्ष में जाए।
कूद-कूद शाखामरी कच्चे वनफल खाए।।
आधा तोड़े आधा फोड़े आधा देय गिराय।
हंकारत हनुमान जी आधासीसी जाए।।

इन दो में से किसी एक मन्त्र को पढ़ते हुए भस्म को फूँक मार कर झाड़ना चाहिए।

बटुक भैरव की साधना

बटुक भैरव के मन्त्र को सिद्ध करने से साधक के हर कार्य निर्विघ्न पूरे होते हैं। प्रतिदिन नियमित रूप से जपते रहने से जैसे-जैसे जप-संख्या बढ़ती है वैसे ही साधक को प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ होती हैं। बटुक भैरव का मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक की बुद्धि निर्मल हो जाती है। हर प्रयोजन की सफलता के लिए मूलमन्त्र का जप परम लाभदायक सिद्ध हुआ है।

मूलमंत्र

ह्रीं बटुकाय आपदुद्धरणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं

विधि– रात में पवित्र, एकान्त स्थान पर अथवा भैरव के मंदिर में घी का दीपक जलाकर रुद्राक्ष की माला से कुशासन पर पद्मासन से बैठकर उक्त मूलमन्त्र का १०८ बार नित्य जप करना चाहिए। २१ दिन में मन्त्र सिद्ध हो जाता है। यदि नियम और निष्ठापूर्वक इस मन्त्र का जप १ लाख किया जाए और दशमांश हवन किया जाए तो बटुक भैरव साक्षात् प्रकट होकर साधक का अभीष्ट पूरा करते हैं। बटुक भैरव के सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार के ध्यान हैं। तीनों प्रकार के ध्यान विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होते हैं। मूलमन्त्र का जप करने से पूर्व प्रयोजन के अनुसार ध्यान करना चाहिए।

सात्विक ध्यान

वन्दे बालं स्फटिकसदृशं कुण्डलोद्भासिवक्त्रं,
दिव्या कल्पैर्नवमणिमयैः किंकिणीनूपुराद्यैः।
दीप्ताकारं विशदवदनं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रम्,
हस्ताब्जाभ्यां वटुकमनिशं शूलदण्डौ दधानम्।।

राजसिक ध्यान

उद्यद्भास्करं त्रिनयनं रक्तांगरागास्रजं,
स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः।
नीलग्रीवमुदारभूषणशतं शीतांशू चूडोज्ज्वलम्,
बन्धूकारुणवासरसं भयहरं देवं सदा भावये।

तामसिक ध्यान

ध्यायेन्नीलकान्तिं शशिकलधरं मुण्डमालं महेशम्,
दिग्वस्त्रं पिंगलाक्षं डमरुमथसृणिं खड्गशूलाभयानि।
नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्विभ्रतं भीमदंष्ट्रम्,
सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमयबिलसत् किंकिणीनूपुराढ्यम्।।

शिशु बाधा निवारण भैरव मन्त्र– प्रायः जन्म से लेकर पाँच वर्ष की आयु तक शिशुओं को अनेक रोग लगा करते हैं। ऐसे बालकों को जितने भी प्रकार के रोग, दोष, टोटका, टोना लगते हैं उन सब का निवारण नीचे लिखे सिद्ध भैरव-मन्त्र से होता है।

मन्त्र– ॐ भैरवाय वं वं वं ह्रां क्ष्रौं नमः।

विधि– रोग, दोष, टोना, टोटका से पीड़ित बच्चे की माँ के बाएँ पैर के अँगूठे को एक ताम्रपात्र नीचे रखकर जल से धो लेना चाहिए। फिर उस जल को उक्त मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित कर मन्त्र को पढ़ते हुए पान के पत्ते से जल को बालक पर छिड़कता जाए। सामान्यतया एक ही बार के प्रयोग में बालक स्वस्थ हो जाते हैं। कठिन बाधा हो तो ३ दिन, ७ दिन या ९ दिन तक लगातार प्रयोग करना चाहिए। यदि बालक की माता न हो तो पिता को अँगूठे को धोना चाहिए और पिता भी न हो तो साधक स्वयं अपना अँगूठा धोकर मन्त्र से अभिमन्त्रित करे।

यक्ष और यक्षिणी-साधना

मञ्जुघोष यक्ष की साधना– मञ्जुघोष यक्ष के मन्त्र की साधना से साधक की मेधाशक्ति, स्मृतिशक्ति, संकल्पशक्ति, और विवेकशक्ति बढ़ती है। स्नायुदौर्बल्य, स्मृतिभ्रंश, [illegible]भ्रंश, मानसिक असंतुलन आदि रोग, दोष दूर होते हैं। सुर[illegible] भाग्य पद-प्रतिष्ठा की वृद्धि होती है। घी का दीपक जलाकार, मञ्जुघोष का ध्यानकर इस मन्त्र का जप नित्य नियमपूर्वक ११०० जपते हुए १ लाख जप संख्या पूरी होने पर दशांश हवन करने से यक्ष-सिद्धि होती है। मञ्जुघोष साक्षात् प्रकट

होकर अभीष्ट पूरा करते हैं।

मन्त्र

१. **अ र ब च ल धीं।**

२. **क्रों-ह्रीं-श्रीं**

द्वितीय प्रकार के मन्त्र की साधना करने से उच्चकोटि की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। त्रिकाल दर्शन की क्षमता प्राप्त होती है।

३. **ह्रीं श्रीं क्लीं**

तीसरे प्रकार का मन्त्र जैनमतावलम्बी साधना के अन्तर्गत है। यह बहुत गोपनीय और उपयोगी साधना मानी गई है। इस मन्त्र की साधना से साधक श्रुतधर और शतावधानी बनता है। वह एक ही साथ सौ प्रश्नों को सुनकर उन सब के उत्तर क्रमशः देने की क्षमता प्राप्त करता है और एक घड़ी में सौ श्लोक बनाने की क्षमता प्राप्त करता है।

घण्टाकर्ण यक्ष-साघना– घण्टाकर्ण यक्ष-साघना का जैन धर्म में अत्यधिक महत्त्व है। इसे जैनतांत्रिक बहुत ही गोपनीय मानते हैं।

मन्त्र

१. **ॐ ह्रीं श्रीं घण्टाकर्ण नमोऽस्तुतु ठः ठः स्वाहा।**

साधना विधि– १. भोजपत्र या ताम्रपत्र में लाल चन्दन से अष्टदल कमल बनाकार घण्टाकर्म के मूलमन्त्र के अक्षरों को क्रम से कमल के दलों में लिखे। आठ अक्षर लिखने के बाद मन्त्र करे जो अक्षर शेष रह जाएँ उन्हें कमल के दलों के शेष स्थानों पर लिख दिया जाए। मन्त्र-लिखित भोजपत्र या ताम्रपत्र पर ताँबे के दीपक में ऊर्ध्वबत्ती का धृत दीप जलाकार यन्त्र का पूजन पंचोपचार से करे। तदनन्दर मूलमन्त्र का जप ११ हजार प्रतिदिन नियमपूर्वक ब्राह्म मुहूर्त्त में करे। सवा लक्ष जप पूरा होने पर दशांश हवन किया जाए। मन्त्र सिद्ध हो जाता है। फिर प्रतिदिन १०८ बार मन्त्र को जपते रहना चाहिए।

२. जमीन पर गड़े हुए धन को अथवा दीवार में चुने हुए धन का पता लगाने के लिए घण्टाकर्म के उक्त मूलमन्त्र का उपर्युक्त विधि से रात ग्यारह बजे से प्रतिदिन १०८ बार जप किया जाए तो निश्चिय ही दस दिन के अन्दर यक्ष प्रकट होकर निधि का स्थान बतला देता है। यक्ष द्वारा दिए गए निर्देश का पालन यथावत् करना आवश्यक है।

३. इस मन्त्र की साधना जब तक की जाए, तब तक साधक शौचाचार, संयम

पूर्व रहे। केवल एक समय खीर का भोजन करे। इस मन्त्र को दीपावली, सूर्य ग्रहण, या चन्द्रग्रहण में यदि ११००० जप करके सिद्ध कर लिया जाए तो बहुत आसानी से सिद्धि प्राप्त होती है।

२. **सर्वसिद्धिप्रद घण्टाकर्ण मंत्र**– घण्टाकर्ण का यह मन्त्र सभी प्रकार के कार्यों, कामनाओं की पूर्ति करता है। दीपावली या सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण में इस मन्त्र को सिद्ध करना चाहिए। एक चौरस ताम्रपत्र या भोजपत्र में सोलह पंखुड़ियों वाला कमल पुष्प बना कर प्रत्येक पंखुडी में निम्नांकित मन्त्र का प्रत्येक अक्षर अनार की कलम और अष्टगंध से लिखे।

ॐ ह्रीं श्रीं घण्टाकर्ण महावीर सर्वव्याधि नाशक ठः ठः स्वाहा लिखने के बाद इस मन्त्र को पढ़ते हुए षोडशोपचार से यन्त्र का पूजन कर यक्षराज का ध्यान करना चाहिए।

ध्यान

रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः।
सेवितो यक्ष कन्याभिर्वेष्टितश्चन्द्रशेखरः।।
एवं ध्यात्वां महावीरं जपेद् रुद्र सहस्रकम्।
पायसान्नेन जुहुयाद गुग्गुलेन घृतेन वा।।

ध्यान के बाद मूलमन्त्र का जप ११००० किया जाए। जप समाप्त होने पर गुगूल और घी से अथवा गाय के दूध से बनी खीर से ११० बार हवन करे। विधिवत् संयम, नियमपूर्वक साधना करने से मन्त्र एक ही दिन में सिद्ध हो जाता है, किन्तु प्रत्येक दीपावली, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण में मन्त्र को जाग्रत करते रहना चाहिए। हवन जप समाप्त होने पर पुष्पांजलि अर्पित करते हुए निम्नांकित प्रार्थना करनी चाहिए–

ॐ ह्रीं घण्टाकर्ण महावीर सर्वव्याधिविनाशक।
विस्फोटकभये प्राप्ते रक्ष रक्ष महाबल।
यत्र त्वं तिष्ठसे देव लिखितोऽक्षर पंक्तिभिः।
रोगस्तत्र प्रणश्यन्ति वातपित्त कफोद्‌भवाः।
तत्रराजभयं नास्ति याति कर्णजपात् क्षयम्।
शाकिनी भूतवेतालराक्षसाः प्रभवन्ति न।
नाकाले मरणं तस्य न च सर्पेण दंश्यते।

अग्नि चोरभयं नास्ति ॐ ह्रीं श्रीं घण्टाकर्ण नमोऽस्तुते
ठः ठः ठः स्वाहा।।

विभिन्न प्रयोग

१. किसी प्रकार की आधि-व्याधि से ग्रस्त रोगी हो तो घण्टाकर्ण मन्त्र को अष्टगंध और अनार की कलम से भोजपत्र पर लिखकर ताँबे के ताबीज में भर कर मूलमन्त्र से १०८ बार हवन करके इस ताबीज को पहना देने से असाध्य रोग दूर होते हैं।

२. ताम्रपत्र पर मन्त्र को अंकित करा कर, उसकी प्राणप्रतिष्ठा और अभिषेक कर घर पर ताम्रयंत्र रखने से रोग, दोष, भय संकट आदि कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती।

३. मामला, मुकदमा जीतने के लिए, फाँसी की सजा से मुक्ति पाने के लिए इस मन्त्र का यंत्र बनवाकर धारण करना चाहिए।

४. इस मन्त्र से भूत-प्रेत-पिशाच बाधाग्रस्त व्यक्ति को कुश और अपामार्ग से अभिसेचन करने से प्रेतादि बाधा दूर होती है।

५. इस मन्त्र से सर्पविष तुरन्त दूर होता है।

६. पशुओं के रोग को दूर करने के लिए इस मन्त्र से सात बार झाड़ा देने मात्र से पशु नीरोग होते हैं।

७. कुत्ता काटने पर मिट्टी की छोटी-छोटी गोलियाँ बना कर सात बार **'ठः ठः ठः स्वाहा'** पढ़ते हुए गोलियों से झाड़ने से कुत्ते का विष दूर होता है। कुत्ते के काटने पर विष में कुत्ते के रोम पैदा हो जाते हैं। वे रोम झड़ते समय मिट्टी की गोलियों में आकर समा जाते हैं। ९ रोएँ होते हैं। जब तक नौ रोएँ न दिखाई पड़ें, झाड़ते रहना चाहिए।

सुरसुन्दरी यक्षिणी-साधना

मूलमन्त्र– ॐ आगच्छ सुरसुन्दरी ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

साधना विधि– ब्राह्ममुहूर्त में शुद्ध, एकान्त स्थान में बैठ कर सन्ध्यादि नित्य कर्म करके **'ॐ ह्रौं'** इस बीज मन्त्र को पढ़ते हुए तीन बार आचमन करे, और **ॐ सहस्रार हुँ फट्'** पढ़ कर अपने चारों ओर सरसों फेंक कर दिग्बन्ध करा ले, फिर उपयुक्त मूलमन्त्र से तीन बार प्राणायाम करे इसके बाद **'ॐ ह्राँ अंगुष्ठाभ्यां नमः** आदि क्रम से करन्यास करे।

करन्यास, अंगन्यास करने के बाद अनार की कलम और लाल चन्दन से चौरस

चौरस ताम्रपत्र पर अष्टदल कमल बनाकर प्रत्येक दल पर मूल मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को लिखे। जो अक्षर शेष रह जाएँ उन्हें कमल दलों के मध्य में लिखे। तत्पश्चात् यक्षिणी का ध्यान करे–

पीठदेवीं समावाह्य, ध्यायेद्देवीं जगत्प्रियाम्।
पूर्णचन्द्रनिभां गौरीं, विचित्रावरण धारिणीम्।।
पीनोत्तुंग चन्द्रनिभां गौरीं, सर्वकामार्थ सिद्धये।

तत्पश्चात् वेदिका में स्थित ताम्रपत्र पर अधिष्ठित सुरसुन्दरी को षोडशोपचार पूजन मूलमन्त्र पढ़ते हुए किया जाए।

तदनन्तर मूलमन्त्र का जप लाल चन्दन की माला से ११०० किया जाए। इस तरह पूजन, आवाहन, ध्यान और जप आदि ३१ दिन तक करने से यक्षिणी प्रकट हो कर अभीष्ट सिद्ध करती है। ३१ दिन का अनुष्ठान पूरा होने पर दशांश हवन, तर्पण अवश्य किया जाए।

कर्णपिशाचिनी साधना

मूलमन्त्र– ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं सर्व मे कर्णे कथय कथय क्लीं ह्रीं श्रीं स्वाहा।

साधना विधि– कृष्णपक्ष की अष्टमी से इस साधना को प्रारम्भ करना चाहिए। पवित्र नितान्त एकान्त स्थान पर लाल वस्त्र पहन कर लाल रेशमी वस्त्र के आसन पर बैठ कर सरसों के तेल का दीपक जला कर उक्त मन्त्र का जप ४००० प्रतिदिन ३१ दिनों तक किया जाए। प्रतिदिन रात बारह बजे से साधना में बैठना अनिवार्य है।

जप करते समय नया मोर पंख पास रख लेना चाहिए। प्रतिदिन जप समाप्त होने पर मोरपंख की जड़ को दीपक के तेल में डुबोकर सात बार अपने दोनों पैरों पर तेल लगाना चाहिए।

३१ दिन तक साधना पूरी होने पर कर्णपिशाचिनी सिद्ध हो जाती है। सिद्ध होने पर भूत भविष्य, वर्तमान की कोई बात पूछने पर वह कान में उत्तर दिया करती है।

संगीत साधना मंत्र

गीत– संगीत और वाद्य में निपुणता, दक्षता, सफलता, यश और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए दो प्रार्थना गीत एक सौन्दर्यलहरी का, दूसरा दुर्गासप्तशती का सिद्ध हुए हैं। जो संगीताचार्य सद् गुरुओं से इस साधना को प्राप्त कर मूर्धन्य संगीतकार बन उन्होंने गुरुओं के आदेश के बिना किसी दूसरे को नहीं बताया है। संगीत द्वारा सुयश प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति नित्य प्रातःकाल ४ बजे वीणा या सितार वाद्य के

माध्यम से १५ मिनट इस प्रार्थना मंत्रों की साधना अनवरत साल भर तक करके स्वयं अनुभव करें।

१. शबदात्मिका सुविमलर्ग्य जुषां निधान–
मुद्गीथ रम्यपदपाठवतां च साम्नां।
देवी त्रयी भगवती भव भावनाय,
व्रार्त्ता व सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री। (सप्तशती)

२. गले रेखास्तिस्रो गति गमक गीतैकनिपुणे
विवादव्यानद्धप्रगुणगुणसंख्या प्रतिभुवः।
विराजन्ते नानाविधमधुररागाकर भुवां,
त्रयाणां ग्रामाणं स्थितिनियम सीमान इव ते।। (सौन्दर्यलहरी)

राग से रागान्तर अवस्था का प्रतिपादन गति और गति की अवस्था अलंकार बनती है। वे अलंकार अठारह प्रकार के होते हैं।

आसन्न १. सा रि ग म प धनि सा ।।

परावृत्त २. सनि धप मग रिसा सारि सारि।।

निवृत्त ३. गसा रिगम सरिगम पसारिगम पधासारिगम
पधनिसारिगम पधनिसा।

परिवर्तक ४. सानि सानि धमा निध पसानिध
पमा सानि धपम धपध सनधिपगरि
सनिधप गगिरिसा।।

आक्षिप्त ५. निसा धनि सा पधनि सा
मपधनिसा गमकधनि सारिगमक।।

सम्प्रदान ६. निसा सारि गमक धनिसा

आवा ७. रिसा गरी गमक धसनी।।

उपलख ८. सासा नीनी नीधधध पपप गगग
रीरीरी सा।।

क्रामक ९. सारी रीगग मम पप धधध निनि सा।।

बहुमान १०. सा निनि धध पप मम गग रीरी सा।।

घातक ११. साग सारिगम मग पध पनीधा सानि सा।।

गलिन १२. सानि साधनी पधम पगम गरी सारी सा।।

हुँकार १३. सारि गम मग गरी सासा निध पाधनिसा।।

द्योत १४. सा सा रिनि धगम पप मग धप धारिनिसा।।

विद्योत १५. साम पसा सारि गधनि सनिगरी सा सापमसा।।

सुबाहु १६. सारि सासा सासा सामनिसा सापधसा।।

प्रौढ़ १७. मम मधरिनी सासा सासा निरि धग मम।।

सम्मुख १८. सा गपनि सासारीध सासा परिध मनि मसा सार गरीसा गम पम गप सरि मम मप धनिसा।।

संगीत साधक को चाहिए कि उपर्युक्त दोनों प्रार्थना मंत्रों के बाद रोग, रागान्तर गति और अलंकारों का अभ्यास (साधना) करे। एक वर्ष की साधना से सिद्धि मिलती है और वाणी की समृद्धि होती है।



१४ / आथर्वण-तन्त्र

अथर्ववेद में पदार्थविज्ञान, मनोविज्ञान, अक्षरविज्ञान, कर्मजव्याधिविज्ञान, चिकित्सा -विज्ञान के विषय और उनके प्रयोग – आधियों, व्याधियों को दूर करने के लिए विशद रूप से लिखित हैं। आयुर्वेद विषयक ९ सूक्त, विविध औषधि-भैषज़न्य विषयक २५ सूक्त, रोगादिनिवारण विषयक ३२ सूक्त, विष-नाशन विषयंक – जिनमें विष, विशदूषण-निवारण सम्बन्धी सभी प्रकार के प्रयोग हैं –९ सूक्त हैं। जितने प्रकार के कृमि, कीटाणु हैं और वे शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो विविध रोग-दोष उत्पन्न करते हैं, उनको दूर करने के विविध उपाय ३ सूक्तों में हैं। आसुर प्रभाव कृत्यादूषण, प्रेत-पिशाचप्रभाव, दस्युपीड़ा ईर्ष्या, अलक्ष्मी, आदि नाना प्रकार के जो अरष्टि होते हैं, उन सब के निवारण के लिए उपाय और प्रयोग अथर्ववेद के १२ सूक्तों में बताए गये हैं। अथर्ववेद से ही मन्त्रविद्या का प्रादुर्भाव हुआ है। अथर्ववेद में उल्लिखित मन्त्र-विद्या का यदि वर्गीकरण किया जाए तो वह पाँच प्रकार की होती है–

१. संकल्प, आवेश

२. अभिमर्श और मार्जन

३. आदेश

४. मणिबन्धन

५. कृत्या और अभिचार

१. संकल्प, आवेश– दुःस्वप्न, दुरित, पाप, शाप और दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए 'संकल्प' अथवा आवेश मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इसका मन्त्र है–

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।

परेहि न त्वां कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः। ६।४५।१

यह मन्त्र दुःस्प्ननाशन सूक्त का पहला मन्त्र है। इस सूक्त में तीन मन्त्र हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक। पापजन्य व्याधियों को दूर करने के लिए रोगी के शिर पर हाथ रख कर उपर्युक्त मन्त्र अथवा सूक्त के तीनों मन्त्रों को पढ़ते हुए निर्विकार होने का संकल्पमात्र करने से रोगी व्याधिमुक्त हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति निरन्तर

श्रम-साधना करने पर भी अपने कार्य-व्यापार में असफल होता है, अथवा दुष्टों, धूर्तों, द्वारा बना-बनाया काम बिगाड़ दिया जाता है तो सफलता प्राप्त करने के लिए अथर्ववेद (६।४५।१) के निम्नांकित मन्त्र से संकल्प करके कार्य करने से निश्चय ही सफलता मिलती है–

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः

संकल्प-शक्ति द्वारा, शक्तिसंपात् द्वारा विविध प्रकार के रोगों का निवारण अथर्ववेद के केवल एक ही मन्त्र से सम्भव है–

अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर।
परो निर्ऋतया आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः। २० ।९६ ।२४

इस मन्त्र का दृढ़ संकल्पूर्वक जप करने मात्र से सब प्रकार के रोग दूर होते हैं। जो व्यक्ति कायर, कुटिल, कामी, कमजोर और हीनभावना ग्रस्त हो, वह अपने को वर्चस्वी, तेजस्वी बनाने के लिए अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के २२ वें सूक्त के छह मन्त्रों का जप करे। केवल २१ दिन के अन्दर ही उसे तेजस्विता का अनुभव होने लगेगा।

२. **अभिमर्श–** अभिमर्श का तात्पर्य शरीर का संस्पर्श करना है। अभिमर्श करने से शरीरगत रोग दूर होते हैं। प्रेतबाधा, कृत्यादूषण, ग्रहदोष दूर होते हैं। अभिमर्श विद्या के मूल मन्त्र ये हैं–

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः।
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचा पुरोगवी।
अनामायित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभिभृ शामसि।। – ४ ।१३ ।६,७

दोनों हाथों की दस अँगुलियों से रोगी के सर्वांग शरीर को ऊपर से नीचे संस्पर्श कराते हुए उपर्युक्त मन्त्र जप पढ़ा जाता है तो रोगी के शरीर के अन्दर सन-सनाहट पैदा होती है, रोमांच होता है, कम्पन होने लगते हैं और फिर वह स्वस्थ हो जाता है।

हस्ताभिमर्श द्वारा शारीरिक, मानसिक रोग दूर करने की और भी विधियाँ हैं। जैसे–पुरश्चरण करना, चमरीगाय की पूँछ से, मोरपंख से झाड़ना, अपामार्ग और कुश से जलाभिसेवन करना, जल से छींटे देना।

३. **आदेश–** मन्त्रों का प्रयोग मानसिक विकार, मस्तिष्क विकार दूर करने के लिए किया जाता है। आदेश को संवशीकरण भी कहा जाता है। भावना द्वारा विकार दूर करने की यह प्रक्रिया है।

मन्त्र

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।

तद्ध आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः।। ७।१२।४

जो चंचल वृत्ति के व्यक्ति होते हैं, एक काम को छोड़कर दूसरा, तीसरा काम करने लगते हैं अथवा मन लगाकर काम नहीं करते हैं। बिना सोचे-समझे हानिकारक काम कर बैठते हैं, किसी का कहना नहीं मानते हैं, उद्दण्ड, लापरवाह, दुर्विनीत, असमीक्ष्यकारी, उन्मत्त, पागल व्यक्तियों पर इस मन्त्र का प्रयोग करने से तुरन्त लाभ होता है। यह संवशीकरण है। और आदेश का मन्त्र यह है–

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत।

मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मनि एत। ।३।८।६

रोगी को सम्बोधित करते हुए प्रयोक्ता उक्त मन्त्र पढ़ते हुए उसे यह आदेश दे। इस प्रकार मन्त्र द्वारा आदेश देते हुए प्रयोक्ता उन्मादी (पागल) उद्दण्ड, डाकू, हत्यारा, चिन्तातुर, आलसी, लापरवाह, ईर्ष्यालु व्यक्ति को जब अपना अनुगत बना ले, तब निम्नांकित मन्त्र का प्रयोग उस पर करे–

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम्।

कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽसि।। ६।१११।२

इसकी प्रयोग विधि इस प्रकार है–

आम की लकड़ी में अग्नि प्रज्वलित कर कर्पूर, चन्दन, तुलसी के बीज से उपर्युक्त मन्त्र पढ़ते हुए १०८ आहुतियाँ दें। रोगी को सामने बैठा लिया जाए और हवन के बाद धुएँ से उसका अभिमर्शन करे तो रोगी तुरन्त ठीक हो जाता है।

आदेश विद्या के अनेमकानेक मन्त्र अथर्ववेद में हैं। जीर्णज्वर, एकान्तरा, तिजारी, चौथिया, मन्थरज्वर, आंत्रिकज्वर, काला ज्वर, शीतज्वर, राजयक्ष्मा, स्नोफीलिया, स्नायुदौर्बल्य, लकवा, हृदय-रोग आदि दूर करने के लिए अथर्ववेद (५।३०।८-९) के मन्त्रों का विधिवत् प्रयोग करे और उन्नतशीलजीवन, यशस्वीजीवन, पदोन्नति के लिए अथर्ववेद के ८।१।६ मन्त्रादेश का प्रयोग करना चाहिए।

४. मणि-बन्धन का प्रयोग युद्धादि विषयों में विजय प्राप्त करने तथा रोग, शोक, भय, ग्लानि के निवारण के लिए किया जाता है। अथर्ववेद (४।९), अञ्जनमणि (४।१०), शंखमणि, (१।२९), अभीवर्तमणि, (८।३), प्रतिसरमणि (१०।३), वरणमणि, (१९।३६), शतवारमणि, (२।११ और ८।५), स्त्राक्यमणि, और (१९।३१), औदुम्बरमणि आदि के मन्त्र -प्रयोग हैं।

इनमें शंखमणि (मोती) को छोड़ कर शेष वनस्पतियाँ हैं। वनस्पतियों की जड़, पत्तियाँ, पुष्प बीज आदि को बाँधा जाता है।

५. कृत्यादूषण और अभिचार कर्म के प्रभाव को दूर करने के लिए अथर्ववेद (१०।१।१-३२) के ३२ मन्त्रों द्वारा हवन, अनुष्ठान किया जाता है। कृत्यापरिहरण के लिए अथर्ववेद ५।१४ सूत्र के १३ मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। कृत्या और अभिचार कर्म का परिगणन अरिष्ट में किया जाता है।

मणि बन्धन प्रयोग

पूर्वजन्म और इस जन्म के कर्मों से उत्पन्न असाध्य रोग को दूर करने में तथा घर, परिवार में घटने वाली अद्‌भुत घटनाओं के निवारण के लिए और भूत-प्रेत आदि विविध प्रकार के अरिष्टों को दूर करने के लिए अथर्ववेद में उल्लिखित मणियों को बाँधने से तत्काल लाभ होता है। यहाँ कुछ मणियों के प्रयोग लिखे जाते हैं। अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा के मत से मणियाँ केवल रत्न की ही नहीं होती हैं, अपितु वनस्पतियों से निर्मित, वनस्पतियों के रसों के पुट से सम्पुटित भेषज भी मणि कही गई हैं। इस प्रकार की मणियों का उल्लेख इस प्रकार है–

१. जंगिड़मणि, २, शंखमणि, ३. प्रतिसरमणि, ४. अञ्जनमणि, ५. हरुर्मणि, ६. हरिणमणि, ७. दर्भमणि, ८. औदुम्बरमणि, ९. शतवरोमणि, १०. अस्तृतमणि, ११. त्रिसन्ध्यमणि, १२. वरणमणि, १३. स्राक्तमणि, १४. अभीवर्तमणि, १५. यवमणि, १६. अर्कमणि, १७. खदिरमणि, १८. फालमणि, १९. लोममणि, २०. पाठामूलमणि, २१. गोदामणि, २२. आयमगनपर्णमणि और २३. तलाशमणि।

प्रयोग विधि– जिस प्रयोजन के लिए जो मणि बाँधनी हो, उसका अथर्ववेद के उस मणि के संदर्भित मन्त्र से विनियोग करके तत्सम्बन्धी सूत्र से कुश, अपामार्ग से जलाभिसेचन द्वारा अभिमन्त्रित कर लाल रेशम के कपड़ें में बाँध कर अथवा सोने के ताबीज में भर कर बाँध देने से तत्काल लाभ होता है। जैसे कृत्यादोष (किसी व्यक्ति पर उसके अभ्युदय को क्षीण करने के लिए कृत्या का प्रयोग) किसी के द्वारा किए जाने पर जंगिड़मणि बाँधने में कृत्या का दोष दूर होता है।

१. जंगिड़मणि– जगिड़ की पहचान वृक्ष से की गई है। अर्जुन वृक्ष की जड़ को विनियोगपूर्वक अथर्ववेद काण्ड २।४ **'दीर्घायुत्वाह' 'जंगिडोऽसि'** काण्ड १९।३४ के **इन्द्रस्यनाम** तथा काण्ड १९।३५ के सूक्तों से अभिमन्त्रित मणि पहना देने से कृत्यादोष, अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि) जन्य विकार, प्रेतपिशाच जन्य प्रभाव, क्रूर-दृष्टि (नजर, टोना) नैर्ऋतिदोष, महाव्याधियाँ, राजयक्ष्मा, भगंदर आदि, सब प्रकार के पीड़ाजनक रोग, उत्पात, कैन्सर, गण्डमाला, दुष्ट ब्रण आदि

समस्त रोगदोष, पापशाप मणि बाँधने से दूर होते हैं।

२. तलाशमणि– इसकी पहचान बृहत्पलाश से की गई है। बृहत्पलाश एक विशेष प्रकार का पीपल का वृक्ष है जो हिमालय की तराई में बहुत होता है। गूलर के फल के समान इसके फल होते हैं।

प्रयोग– बृहत्पलाश के पत्तों के रस गर्भधारण के तीन महीने बाद विनियोग पूर्वक अथर्ववेद के मन्त्र से अभिमन्त्रित कर गर्भिणी को पिला देने से सुन्दर, स्वस्थ, मेधावी पुत्र का जन्म होता है और यदि कोई स्त्री बन्ध्या हो तो उसे पलाश पीपल की जड़ अभिमन्त्रित कर बाँधने से वह निश्चय ही पुत्रवती होती है। इस प्रयोग के विनियोग और मन्त्र इस प्रकार हैं–

विनियोग– अस्य आथर्वण मन्त्रस्य उद्दालक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः, वनस्पतिः देवता तलाशमणि धारणे विनियोगः।

अभिमन्त्रणमन्त्र

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति।।१।।
सबन्धुश्चासबन्धुश्चयो अस्माँ अभिदासति।
तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः।।२।।
यथासोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः।
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः।।३।।

३. यवमणि– कैसी भी जड़ता बुद्धिहीनता, मस्तिष्क विकार हो वह यवमणि के प्रयोग से दूर होकर स्मृतिशक्ति, मेधाशक्ति बढ़ाकर परम मेधावी बनाती है। यवमणि की पहचान इन्द्रजौ बूटी से की गई है।

प्रयोग– इन्द्रजौ की जड़ लेकर पहले यह विनयोग किया जाए।

अस्य मन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिः वायुदेवता, अनुष्टुप् छन्दः यवमणि धारणे अनुमन्त्रणे च विनियोगः।

अभिमन्त्रणमन्त्र

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसायव।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वां दिव्याशनिर्वधीत्।।१।।
आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः।।२।।

अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वाक्षिताः।।३।।

४. फालमणि[1]– फाल की पहचान तमिलनाडु में उत्पन्न रुद्राक्ष है। फालमणि धारण करने से धन-धान्य, श्री, वर्चस्व की वृद्धि होती है। व्यापार-व्यवसाय, कृषि गो-पशु संवर्द्धन होता है, देश-देशान्तर में भ्रमण से लाभ होता है तथा यह मणि सर्वरोग हर है। नपुंसकता को दूर करने में यह अमोघ सिद्ध हुई है।

विनियोग– अस्य फालमणेः। अथर्वा ऋषि, सोमदेवता पुरोऽनुष्टुप्छन्दः फालमणि अनुमन्त्रणे अवधारणे विनियोगः।

विनियोग के बाद फाल की नोक को कुश अपामार्ग से जल द्वारा अथर्ववेद के काण्ड १० सूक्त ६ की ऋचाओं से अभिमन्त्रित कर बाँधना चाहिए।

५. वरणमणि– वरण को भाष्यकार दारिल-केशव 'वरणो विल्वः' कहकर विल्व (बेल के वृक्ष) वृक्ष से पहचान बतलाते हैं। 'वरण' एक प्रकार का विल्व ही है किन्तु सामान्तया प्रसिद्ध और व्याप्त बेल वृक्ष से सर्वथा भिन्न है। वरण वृक्ष कश्मीर में शिवपुर छावनी से आगे टिक्कड़ गाँव में स्थित भगवती रागना देवी के मन्दिर के आस-पास काफी मात्रा में है। रागना देवी का मन्दिर पहाड़ पर है। उस पहाड़ में वरण वृक्ष अधिकाधिक पाए जाते हैं। वहाँ के निवासी उसे वरण-वरन ही कहते हैं।

वरण वृक्ष के पुष्प अभिमन्त्रित करके उन्निद्र रोगी के सिरहाने में रख जाएँ तो तुरन्त गहरी नींद आती है। दस वर्ष से एक मिनट भी न सोने वाले व्यक्ति पर इसका अनुभव किया गया तो उसका उन्निद्र रोग एक ही दिन में चला गया। वरण वृक्ष के पुष्प अभिमन्त्रित कर चारपाई के सिरहाने में बाँध देने से दुःस्वप्न दूर हो जाते हैं।

अभिमन्त्रित वरण वृक्ष की छाल और जड़ श्वेत कुष्ट, गलिक कुष्ट को दूर कर नया जीवन प्रदान करती है। मस्तिष्क विकार, और पागलपन को भी यह मणि दूर करती है। गले में मणि धारण करने से मेधा शक्ति, स्मरण शक्ति बढ़ती है। एकमुखी-रुद्राक्ष और वरण वृक्ष के फलों के बीज को सीसा, लोहा और सोने के तारों में १०१ बार मढ़कर (लपेट कर) बीज के छिद्र को सोने से मढ़कर विनियोग पूर्वक मन्त्र से अभिमन्त्रित दाहिनी भुजा में धारण करने से भी विजय-विभूति प्राप्त होती है और दीर्घायुष्य, आरोग्य की वृद्धि होती है।

वरणमणि धारण करने से स्त्रियों को सौतों (सपत्नी) का भय नहीं रह जाता। यह मणि शत्रुओं का दमन करती है, मरण-मोहन-उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण, आदि अभिचारों से रक्षा करती है। राजयक्ष्मा वशीकरण दुःस्वप्न, नैर्ऋतिदोष का

१. फालं बदरी फलं। केयदेव मिघण्टु।

शमन करती है। अपमृत्यु का निवारण करती है। जिस स्त्री को रजोधर्म न होता हो, वह इसे धारण कर रजोवती बनती है। सिंह-व्याघ्र आदि हिंसक जीवों से तथा सर्प आदि सरीसृपों के विष से रक्षा करती है।

विनियोग– अस्य वरणमणेर्मंत्रस्य बृहस्पतिर्ऋषिः आपोदेवता वनस्पतिः शक्तिः अनुष्टुपछन्दः सप्तपदा विराट् शक्वरी त्र्यवसाना अष्टपता शक्वरी, त्र्यवसाना षट्पदा जगती, पञ्चपदा अनुष्टुप्गर्भा जगती सकलाभीष्ट सिद्ध्यर्थे अभिसेचने विनियोगः।

अभिमंत्रण– अथर्ववेद काण्ड १० सूक्त ३ के ३५ मन्त्रों से कुश, अपामार्ग से अभिसेचना कर वरणमणि धारण करना चाहिए।

६. शतवारोमणि– शतवार की पहचान शतावर से की गई है। शतवार मणि शक्तिवर्द्धक, वीर्यस्तभनकारी, गर्भपुष्टिकर, बहुदुग्धप्रद, ओज तेज-वर्चस्ववर्द्धक और कुलक्षय दोष निवारक है। शतवार के अग्रभाग की मणि धारण करने से भूतप्रेत, पिशाच, राक्षस आदि का भय, प्रकोप दूर होता है। मध्यभाग की मणि ध ारण करने से समस्त चर्म रोग, फेफड़ों और यकृत के रोग दूर होते हैं और मूल भाग की मणि धारण करने से नासूर, भगन्दर, बाघी, कर्णमूल, कारबंकल, अर्श, अपस्मार, मृगी-मूर्च्छा आदि रोग दूर होते हैं।

विनियोग– अस्य शतवारो मणिर्मंत्रस्य शतवारः ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः शतवारमणिम् अनुमन्त्रणेः विनियोगः।

अभिमंत्रण– कुश अपामार्ग से जल द्वारा अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त ६ के ६ मन्त्रों से काण्ड १ सूक्त ४ से ४ मन्त्रों से और काण्ड १ से सूक्त ३ के ३ मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर शतवार मणि दक्षिण बाहु मूल में धारण करनी चाहिए।

दर्भमणि– दर्भमणि एक प्रकार का कुश है, जो अधिकतर हरिद्वार में पैदा होता है। इसे हरिद्वारी कुश भी कहते हैं। दर्भमणि, भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, कृत्या-दोष, अभिचार कर्म, पाप-शाप के दोषों, प्रकोपों के निवारण करने में सर्वश्रेष्ठ और अमोघ सिद्ध है। इस मणि के लगभग १०० प्रकार के प्रयोग हैं। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के रोगों दोषों को यह मणि दूर करती है।

१. शान्तिकल्प में बताए गए 'याम्यी' शान्ति में इसके विभिन्न प्रयोजनों के विभिन्न प्रयोग हैं और विनियोगों के बाद अथर्ववेद के काण्ड ९ सूक्त २८, २९, ३० तथा ३२, ३३ एवं सूक्त २७ से अभिमन्त्रित कर मणि धारण करने से एक सौ प्रकार के मृत्युभव से निवारण होता है।

दर्भमणि का एक ऐसा प्रयोग है तो मृतक श्राद्ध को बकवास मानते हैं, उनको इस चुनौती का प्रत्यक्ष प्रमाण दर्भमणि द्वारा किया जा सकता है। प्रायः ऐसा होता है

कि किसी के घर का कोई प्राणी मर कर प्रेत बनकर या असंतुष्ट पितर बनकर घर की शान्ति, सुख समृद्धि को विनष्ट करता रहता है। उसे प्रत्यक्ष करने के लिए अथर्ववेद श्राद्ध का विधान दर्भमणि द्वारा बतलाता है। विधि यह है–

श्मशान भूमि से चिता से अधजली लकड़ी या जली हुई लकड़ी का कोयला लाकर उस कोयले में अथर्ववेद के काण्ड ५ सूक्त ३० के **'ऐतु प्राण ऐतु मन'** इत्यादि १३, १४, १५ मन्त्रों से मृतक आत्मा का आवाहन उसका नाम लेकर करे। फिर अथर्ववेद के बैतान सूत्र के तीसरे अध्याय में बताए गए नान्दी श्राद्ध के मन्त्रों से कोयलों को अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मणों के बैठने के आसन के नीचे दर्भ (कुश) रख कर उन पर ब्राह्मणों को बैठाकर भोजन कराने का संकल्प करे। उस समय ही वह मृतक आत्मा जिस बीमारी से मरा होगा, उसी तरह की बीमारी से ग्रस्त प्रत्यक्ष प्रकट होकर श्राद्ध-भोजी ब्राह्मणों के पत्तलों से थोड़ा-थोड़ा भोजन निकालता हुआ पत्तल पर रखता हुआ दिखाई पड़ता है।

एक दूसरा प्रयोग वाद-विवाद में विजय प्राप्त करने का है। पाठा के मूल और दर्भों की बनी माला को निम्नांकित विनियोग द्वारा विनियुक्त करे–

विनियोग –अस्य दर्भमणेः मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः दर्भमणिदेवता वाद-विवादे विजय श्री प्राप्त्यर्थं विनियोगः।

इसके बाद अथर्ववेद के काण्ड १ सूक्त ९५ के १० से तथा काण्ड १ सूक्त १२ १० मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर माला को गले में धारण कर वाद-विवाद सभा में जाए। निश्चय ही विजय होती है।

७. आयमगन्पर्णमणि– इसकी पहचान पलाश (ढाक) वृक्ष के पत्तों से की गई है। पलाशमणि धारण करने से धन-मान्य की वृद्धि, स्वस्त्ययन, आयुष्यवृद्धि होती है। कुचक्रों, षड्यन्त्रों का दमन होता है। सम्मोहन और वशीकरण करता है। बुद्धिवर्द्धक और पुष्टिकारक है। यह मणि चित्र, संगीत, शिल्प-विशेषज्ञों, नर्तकों और जन सेवकों के लिए श्रीकीर्ति, सिद्धिप्रदाता है।

इसका विनियोग बरण मणि की भाँति है। अभिमान्त्रण अथर्ववेद के काण्ड ३ सूक्त ५ से पूर्ववत् करना चाहिए।

मणि बन्ध के ये कतिपय प्रयोग बहुत ही लाभदायक, सरल और साध्य हैं। अब कुछ प्रयोग शान्ति, पुष्टि कर्मों के लिखे जा रहे हैं। इनका प्रयोग अति सरल है। पढ़ कर ही नहीं, स्वयं करके देखना चाहिए।

शान्ति पुष्टि कर्म

अथर्ववेद मुख्यतया शान्ति-पुष्टि कर्मों से सम्बन्धित है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अथर्ववेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद से भिन्न है। ऋग्वेद आदि में शान्तिपुष्टि कर्म का विधान है। हाँ, अथर्ववेद में उनकी अपेक्षा अधिक है। चारों वेदों को भली भाँति पढ़ने से यह विश्वास होता है कि अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए जो स्तुतियाँ की जाती हैं, जो यज्ञ अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि किये जाते हैं, उनके अन्तराल में कोई रहस्यमयी शक्ति अवश्य निहित है। देवता भी उस शक्ति की सहायता की अपेक्षा रखते हैं। ऋग्वेद में ऋषि विश्वामित्र कहते हैं कि–

'अपनी स्तुतियों से वह आदि शक्ति भारत की जनता की रक्षा करे।' उस आदि शक्ति का उपासना के अतिरिक्त एक और निम्न कोटि की उपासना का 'धर्म' और यातु को महती शक्ति मानकर अथर्ववेद में उल्लेख किया गया है।

अथर्ववेद में दानवों को भी अपने अनुकूल बनाने के लिए उपासना पद्धति मिलती है। जिस प्रकार दानवों से भय प्रकट किया गया है, उसी प्रकार रुद्र, वरुण सदृश देवताओं से भी इसलिए भय प्रकट किया गया है कि ये देवता भी क्रुद्ध होने पर दानवों की भाँति क्षति पहुँचाने में समर्थ हैं।

वेदों में 'यातु' की उपासना का एक आधार है। यह तीसरे प्रकार की उपासना अथर्ववेद में प्रायः धर्म के साथ संयुक्त मिलती है। 'धर्म' और 'यातु' के विषय एक ही सूक्त में कहीं-कहीं एक ही मन्त्र में सम्पृक्त मिलते हैं। (अथर्व १-९, ३-११, ४-४०, १९-३४, ४४ इत्यादि)।

यातुकर्म– आधिदैविक, आधिभौतिक व्याधियों को दूर करने में 'यातु' प्रयोग बहुत ही लाभदायक और अमोघ है। अथर्ववेद में 'यातु' और 'धर्म' को एक साथ सम्पृक्त कर 'यातुकर्म प्रयोग' और 'धर्मानुष्ठान' को प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य विद्वान् एवं अधिकतर भारतीय विद्वान् 'यातु' का अर्थ 'जादु', 'इन्द्रजाल', 'टोटका', 'टोना' लगाते हैं। किन्तु यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए तो पार्थिव पदार्थों की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले अथर्ववेदीय प्रयोग 'यातु' हैं और ध्यान योग, भक्ति योग तथा ज्ञान योग द्वारा किये जाने वाले प्रयत्न 'धर्म' हैं। तात्पर्य यह कि अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कर्म 'यातुकर्म' और मोक्ष के लिए किया जाने वाला कर्म 'धर्म' है।

व्याधियों के विनाश के लिए शान्तिपुष्टि कर्म– विविध प्रकार की व्याधियों, मानसिक रोगों और भूतावेश के कारण मनुष्य का जीवन हीन और हेय बन जाता है। उसके कार्य-व्यापार असफल होते हैं और वह अभागा, दरिद्री बन कर हताश और

निराश बन जाता है। इस के दोषों को दूर करने के लिए अथर्ववेद में मणिबन्धन, मन्त्रोपचार, ओषधि और तन्त्रोपचार का विधान बताया गया है। मणिबन्धन का संक्षिप्त परिचय इसी अध्याय में दिया गया है। मणिबन्धन की भाँति अथर्ववेद रक्षाकरण्ड का विधान बतलाता है। जिस प्रयोजन को सिद्ध करना हो उस प्रयोजन के मन्त्र से रक्षासूत्र को अभिमन्त्रित कर बाँध देना रक्षाकरण्ड है। अथर्ववेद के मन्त्रों के द्वारा सिद्ध की गई ओषधियों का प्रयोग ओषधोपचार के अन्तर्गत है और विविध प्रकार के तन्त्र तन्त्र-विधान के अन्तर्गत हैं। अथर्ववेद के इन मुख्य विषयों के कतिपय प्रयोग यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

अथर्ववेदीय चिकित्सा– यह ध्यान रखा जाए कि किसी भी रोग को दूर करने के लिए अथर्ववेद में तीन प्रकार की विधियाँ हैं–

१. रोगी को बैठाकर या लिटाकर मन्त्र पढ़ते हुए कुश-अपामार्ग से उसके सिर पर जल से अभिसेचन करना।

२. रोगी के सामने मन्त्रों द्वारा हवन करना।

३. मन्त्रों को पढ़ते हुए रोगी के शरीर में हाथ फेरना।

इन तीन प्रकार की विधियों में किसी एक विधि से रोग शमन किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के रोगों के शमन के लिए निम्नांकित अथर्ववेदीय मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है–

तक्म (ज्वर) नाश के लिए अथर्ववेद के काण्ड १,२५, ५-४; ६-२०, ७-२१; और १९-३९ सूक्तों के मन्त्र।

जलोदर रोग के लिए – अथर्ववेद १-१०; ६-२४; ७-८३।

आस्राव दूर करने के लिए – अथर्ववेद १-२; २-३; ६-४४।

आनुवंशिक रोग दूर करने के लिए – अथर्ववेद २-८; १०; ३-७।

विष का प्रभाव दूर करने के लिए – अथर्ववेद ५-१३; १६; ६-१२; ७; ५६; ८८।

उन्माद रोग दूर करने के लिए – अथर्ववेद ६-१११।

कृमि रोग दूर करने के लिए – अथर्ववेद २-३१; ३२; ५-३३।

व्रण (नासुर, भगन्दर) रोग दूर करने के लिए–अथर्ववेद ४-१३; ५-५।

टूटी हुई हड्डियाँ जोड़ने के लिए – अथर्ववेद ४-; ५-५।

कृत्या प्रतिहारकर्म– दैत्यों, भूतों, प्रेतों, पिशाचों, राक्षसों और शत्रुओं के शमन के लिए किए जाने वाले अभिचार कर्म या कृत्यापरिहार कर्म कहे जाते हैं। कृत्या प्रतिहार के उद्देश्यों का यदि वर्गीकरण किया जाए तो सभी प्रयोजनकों का समाहार निम्नांकित पाँच वर्गों में होता है–

१. प्रेत, दैत्य-बाधा निवारण

२. राजकर्म

३. शत्रुओं के प्रति

४. स्त्री-प्राप्ति

५. उच्च पद प्राप्ति

१. भूतों, प्रेतों, पिशाचों और शत्रुओं के शमन के लिए अथर्ववेद (२-१४, ३-९, ५-७-८-२८-२९; ६-२-३-४; ७-११०) के अभिचार मन्त्रों का प्रयोग पूर्वोक्तविधि से करना चाहिए। इन अभिचार कर्मों से प्रयुक्त रक्षाकरण्ड अथवा मणियाँ तत्काल फल देती हैं।

२. अभिचार कर्मों के अन्तर्गत स्त्रियों को सम्मोहित करना, कुमारी कन्याओं के विवाह की समस्याओं को हल करना, बन्ध्या स्त्रियों को पुत्रवती बनाना, सौतों से परेशान स्त्रियों को सौतों से मुक्ति दिलाना, अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्रियों का वन्ध्याकरण करना और पुरुषों को नपुंसक बनाना।

३. विवाह, गर्भधारण आदि प्रयोजनों के लिए अथर्ववेद (३-२३, ६-११-१६-८१;२, १४,३,१८,७,३५,११३,११४ तथा १-३४; २-३०; ३-२५; ६-८, ९, ८९, १०२, १२९; १३०-१३२, १३९; ७-३८) के मन्त्रों द्वारा प्रयोग करना चाहिए।

४. स्त्री सम्मोहन के लिए अथर्ववेद (६-१३८, ७-९० तथा १-१४) के मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

५. अथर्ववेद का सौमनस्य सूक्त आपसी कलह, मन-मुटाव, पारिवारिक विद्वेष को दूर कर सहचित्तत्व, हार्दिकता, लोकप्रियता, लोकप्रतिष्ठा, सामाजिक श्रेय, आर्थिक उन्नति और सफलता प्राप्त कराने में अमोघ है।

इस सूत्र के (३-३०) मन्त्र को पारिवारिक एकता, सुख सौहार्द बढ़ाने में प्रयुक्त करना चाहिए। दुर्भावना और कलह शमन के लिए अथर्ववेद के ६-४२-४३; ६४, ७३, ७४, ७, ५२) मन्त्रों से प्रयोग करना चाहिए। समाज में अपना वर्चस्व कायम करने के लिए अथर्ववेद के (७-१२) मन्त्र का किसी को भी अपने अनुकूल बनाने के लिए (६-९४) मन्त्र से प्रयोग करना चाहिए।

६. प्रशासनिक कार्यकलाप क्रिया-विधियों को अथर्ववेद में 'राज्यकर्मणि' कहा गया है। राजकर्म के अन्तर्गत राजा या राष्ट्रपति के निर्वाचन, निष्कासित, पदच्युत सत्ताधिकारी को पुनः सत्तारूढ़ कराना, अन्योन्य राष्ट्राध्यक्षों पर अपना वर्चस्व कायम करना इत्यादि विषय मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त प्रभाव यश और राजनीतिक-प्रतिद्वन्द्विता में विजय प्राप्त कराने के विषय में 'राज्यकर्म' के अन्तर्गत

आते हैं। उपर्युक्त प्रयोजना के लिए अथर्ववेद के निम्नांकित मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए–

- राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के निर्वाचन के लिए–अथर्ववेद ४-८, ३-४।
- पदच्युत सत्ताधिकारी को पुनः सत्तारूढ़ कराने के लिए – अथर्ववेद ३-३।
- दूसरे राष्ट्राध्यक्षों पर प्रभाव जमाने के लिए – अथर्ववेद ४-२२।
- शासन सत्ता को सुदृढ़ रखने के लिए – अथर्ववेद ३-५।
- ओज और प्रभाव स्थापित करने के लिए – अथर्ववेद ६-३८।
- यश, मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए – अथर्ववेद ६-३९।
- युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए – अथर्ववेद १-१९ ३-१, ३-२, ५, २२-२१, ६-९७-९९, ८८; ११, ९, १० मन्त्रों से प्रयोग करना चाहिए।

७. ऐश्वर्यप्राप्ति, सन्तति लाभ, पशु प्राप्ति, व्यापार-वृद्धि, सर्पभय निवारण, बाधाओं, विपत्तिओं के निवारण के लिए क्रम से अथर्ववेद के १-१३, ३-१२, १३-१५, १६, १७, २४, ४, ३, ३८;, ६-५५, ५६, ९२, १०६, १२८, ७, ९, ५०, १०, ४ सूक्तों और मन्त्रों के प्रयोग करना चाहिए।

८. जिन पुराकृत पापों से बनते हुए काम बिगड़ते हैं, नेकी के बदले बदी मिलती है। मिथ्या आरोप और कलंक लगते हैं, चिन्ता, भय, शोक घेरे रहते हैं; उनके निवारण के लिए अथर्ववेद (६-११४, ४५, ११५, २६, २७, २९, ११२, ४६; ७-११५) सूत्रों और मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

आथर्वण-तन्त्र

धनधान्य, सन्तान-सुख, यश, ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए उदुम्बर (गूलर) की जड़ रवि-पुष्य योग में लाकरा अथर्ववेद के अपांसूक्त से उस जड़ को गंगाजल से अभिमन्त्रित कर सोने की ताबीज में भर कर पुनः अथर्ववेद के अर्थोत्थापनगण के मन्त्रों से गंगाजल द्वारा अभिसिंचित, अभिषिक्त कर नीचे लिखे मन्त्रों से आम की लकड़ी की अग्नि में अष्टांग हवन सामग्री में १०८ आहुतियाँ देकर ताबीज को हवन के धुएँ से धूपित कर दाहिनी भुजा या गले में बाँधने से विपुल धन-मान्य, ऐश्वर्य, सुख की वृद्धि होती है।

आहुति मन्त्र

ॐ पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः।
सर्ववीरं नियच्छ रायस्पोषाय प्रतिमुञ्जे अहं त्वाम्।।

आहुतियाँ देने के बाद लालरंग के रेशम के धागे में पिरोई हुई सोने की ताबीज को उपर्युक्त आहुति मन्त्रों को पढ़ते हुए धूपित कर धारण करना चाहिए।

अष्टांग हवन समाग्री

सफेद चन्दन २५० ग्राम, लाल चन्दन १०० ग्राम, काले तिल २५० ग्राम, अगर ५० ग्राम, तगर ५० ग्राम, नागरमोथा ५० ग्राम, कपूर ५० ग्राम, शुद्ध केशर ५ ग्राम, जौ ५० ग्राम, चावल ५० ग्राम, पंचमेवा १२५ ग्राम, शुद्ध घी (जितना मिलाया जा सके) और शक्कर ५० ग्राम।

पारिवारिक सुख–सौहार्द-शान्ति के लिए

जिस परिवार का विघटन हो रहा हो, कलह, विद्वेष व्याप्त हो। आपसी तनाव में एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए षड्यन्त्र किए जा रहे हैं। उस परिवार में एकता, सौहार्द, शान्ति, प्रेम और सुख उत्पन्न करने के लिए आथर्वण तन्त्र अमोघ है।

विधि– श्रावणी पूर्णिमा से लेकर आषाढ़ी पूर्णिमा तक एक वर्ष पर्यन्त स्वयं गृहपति नीचे लिखे अथर्ववेद के मन्त्रों से १०८ आहुतियाँ अष्टांग हवन सामग्री से आम की लकड़ी की अग्नि में दिया करे। स्वयं न कर सके तो किसी विशेषज्ञ द्वारा कराए।

आहुति-मन्त्र

स हृदयं सौमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यतवत्सं जातमिवाध्न्या।।
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमना।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचम् वतदु शान्तिवाम्।।

यदि पारिवारिक वैर कई पीढ़ियों से चला आ रहा है तो इस तन्त्र को पूरे एक वर्ष तक किया जाए और यदि वैर-भाव नया हो अथवा भरा-पूरा परिवार आपसी कलह, घृणा, शंका से टूट रहा हो तो केवल ४१ दिन तक उपर्युक्त मन्त्रों से हवन करने पर पारिवारिक सुख, सौहार्द, समृद्धि की वृद्धि होती है।

और यदि किसी व्यक्ति विशेष के कारण परिवार बिगड़ रहा हो अथवा किसी और के क्रोध के कारण परिवार में मतभेद हो रहा हो तो ऐसे व्यक्तियों के क्रोध और उनकी दुरभिसंधि को शान्त करने के लिए नीचे लिखे मन्त्रों से उपर्युक्त विधि से २१ दिन तक हवन करने से सुख-शान्ति की वृद्धि होती है। पारिवारिक सौमनस्य बढ़ता है।

आहुति मन्त्र

अव ज्यातिव धन्वनो मन्यु तनोमि ते हृदः।
यथा समनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै।।
अधस्ते अश्मनो अन्युमुपास्यामसि यो गुरुः।
अभितिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च।
यथा वशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि।।

रोग-दोष शामक तन्त्र

कैंसर, कारबंकल, नासूर, भगन्दर जैसे असाध्य रोगों को दूर करने तथा शत्रु का दमन करने के लिए अथर्ववेद के रणसूक्त के मन्त्र अमोघ सिद्ध हैं, कभी विफल नहीं होते हैं।

रोगशमन करना हो तो रोगी के जिस अंग में रोग या घाव हो, उस अंग पर नई गूंज को कूट कर भिगोकर रस्सी बनाकर बाँध दिया जाए। इसके बाद अपामार्ग को जड़ रोगी के शरीर को स्पर्श कराते हुए नीचे लिखे मन्त्रों को पढ़े–

मन्त्र

ॐ विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम्।।
ज्या के परिणोनमाश्मानं तन्वं कृधि।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि।
वृक्षं यद्गावः परिषस्वजानां अनुस्फुरं शरमर्चयन्त्यृभुम्।
शरुमस्मद्यावयदिद्युमिन्द्र।।
यथा द्यां च पृथिवी चान्तस्तिष्ठति तेजनम्।
एवा रोगं चास्त्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत्।।

२१ दिन तक प्रतिदिन यह क्रिया की जाए। अपामार्ग का संस्पर्शन समाप्त होने के बाद रोगी को काली तुलसी की ३६ पत्तियाँ गाय के पाव भर दही में मथ कर नित्य पिलाया जाए।

यदि कोई व्यक्ति ज्वरातिसार अथवा मूत्रातिसार से पीड़ित हो तो उसकी कमर में मूँज बाँधकर गंगा जी की रेणुका मिट्टी अथवा बाँबी की मिट्टी घोलकर उपर्युक्त मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर पिला दिया जाए और रोगी के पेट में पेडू में घी मल दिया

जाए। तुरन्त रोग दूर हो जाता है।

आयु, वर्चस्व, पराक्रम वर्द्धक तन्त्र– दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए, आत्मशक्ति, संकल्पशक्ति बढ़ाने के लिए, पराक्रम और आयुष्य की वृद्धि के लिए निम्नांकित आथर्वण तन्त्र बहुत ही लाभदायक है–

हिरण्यमणि (कनक लहसुनिया) को सोने की अँगूठी में जड़वा कर नीचे लिखे अथर्ववेद के मन्त्रों के लहसुनिया को दूध से अभिमन्त्रित किया जाए। फिर इन्हीं मन्त्रों से १०८ बार हवन करके हवन के धूम में लहसुनिया को दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली में धारण करने से आयु-वर्चस्व-पराक्रम की वृद्धि होती है।

अभिमन्त्रण, आहुति-मन्त्र

यदा बन्धन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।।
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं सतीवेषु कृणुते दीर्घमायुः।।
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मितन्तद्दक्षमाणे विभरदहिरण्यम्।।
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि।
इन्द्राग्नी विश्वे देवोस्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः।।

श्वेत कुष्ठ और गलिक कुष्ठ के निवारण के लिए– प्रारम्भ में रोगी को सात दिन तक पंचगव्य पान कराया जाए। गोमूत्र और गोमय शरीर में मलकर स्नान कराया जाए। सात दिन बाद रोगी प्रतिदिन सायंकाल अमरबेल को पैरों के नीचे रखकर उसे तब तक कुचलता रहे, जब तक दोनों पैर अमरबेल के रस से भीग न जाएँ। पंचगव्य पान करते हुए, स्नान करते हुए और अमरबेल कुचलते हुए अथर्ववेद के निम्नांकित मन्त्रों से चिचिड़ा की जड़ गंगा जल में डुबो कर रोगी का मार्जन करते रहना चाहिए।

मार्जन-मन्त्र

ॐ नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्।।
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय।

असिते ते प्रलय नामास्थानमसितं तव।
अस्क्निम्योषधे निरितो नाशया पृषत्।।
अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्वचि।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेत मनीनशम्।।

लगातार ६४ दिन तक यह तन्त्र करते रहने से हर प्रकार के कुष्ठ रोग दूर होते हैं।

आनुवंशिक रोगनाशक तन्त्र– कुछ रोग वंश परम्परा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी परिवार के लोगों को हुआ करते हैं। चिकित्सा असफल रहती है। ऐसे लोग असाध्य कहे जाते हैं। ऐसे रोगों का उपचार अथर्ववेद में इस प्रकार है–

रोगी को अपने सामने बैठाकर प्रयोक्ता हरिणश्रृंग को दाहिने हाथ में लेकर यह मन्त्र पढ़े–

नाति दूरस्यो य एकश्छदिरिव प्रकाशमानो भवति।
तेनाऽहं तवाङ्गेभ्यः क्षेत्रियम् अपसरयामि।।

इतना कह कर प्रयोक्ता ताम्रपात्र में जल लेकर जल से रोगी को रोग मुक्त करने की प्रार्थना अथर्वाऋषि से करे, फिर उस जल को नीचे लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करे–

मन्त्र

अपावसे नक्षत्राणामपवास उषसामुत।
अपात् सर्वां दूर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु।।

जल को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके इसी मन्त्र को पढ़ते हुए प्रयोक्ता हरिणश्रृंग को उसी जल में डुबा कर मन्त्र पढ़ते हुए २१ बार श्रृंग से जल का आलोडन कर उस जल को रोगी को पिला दे और हरिणश्रृंग ताबीज में भरकर रोगी के गले में पहना दे। मात्र इतनी ही क्रिया से सैकड़ों वर्ष से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आने वाला आनुवंशिक रोग चुटकी बजाते दूर हो जाता है।

दमा-कास-श्वास दूर करने के लिए– रोगी स्वयं नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ते हुए अपने दोनों हाथ की हथेलियों से सिर से लेकर पाँव तक सर्वांग शरीर का स्पर्श २१ बार मन्त्र पढ़ कर २१ बार संस्पर्श कर नित्य नियमानुसार ४१ दिन तक यह तन्त्र करने से वर्षों पुराना दमा रोग ४१ दिन में दूर हो जाता है। यदि कोई स्वयं न कर सके तो किसी विशेषज्ञ द्वारा यह तन्त्र कराया जाता है।

मन्त्र

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत मगसोऽनु प्रवाय्यम्।
यथा बाणः सुशंसितः परापतत्यशुमतः।
एवां त्वं कासे प्रपतत्पृथिव्या अनुसंवतम्।।
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम्।।

सर्वज्वरहरण तन्त्र– किसी भी प्रकार का ज्वर हो, छूटता न हो, ओषधि काम न करती हो तो नीचे लिखे मन्त्र से रोगी के शिर पर कुशअपामार्ग और गंगाजल से अभिसेचन करे। तीन दिन में रोगी स्वस्थ हो जाता है।

मन्त्र

अथर्वाङ्गिरसे नमः ॐ अथर्वाऋषये नमः। नमः अङ्रिसे ह्रीं क्लीं ठः ठः भो-भो ज्वर भृणु भृणु हं हं गर्ज गर्ज एकाहिकं द्वयाहिकं त्रयाहिकं चतुराहिकं साप्ताहिकं मासिकं अर्द्धमासिकं वार्षिकं द्विवार्षिकं मौहूर्तिकं नैमिषिकं अट अट भट भट हुँ फट् अमुकस्य (यहाँ पर रोगी का नाम लिया जाए) ज्वरं हन हन मुंच मुच भूम्यां गच्छ स्वाहा।

आथर्वण सर्वज्वरशान्ति-विधान

विनियोग– अस्य मन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः कालिका देवता सर्व ज्वरस्य सद्यः शान्त्यर्थे विनियोगः।

मूलमन्त्र– ॐ शान्ते शान्ते सर्वारिष्ट नाशिनि स्वाहा।

इस मंत्र का दस हजार जप करने से तथा जप के बाद आम के पत्तों से इसी मन्त्र द्वारा १०८ आहुतियाँ रोगी की शय्या के पास देने से उसी दिन अरिष्टजन्य सब प्रकार के ज्वर शान्त होते हैं।

आथर्वणोक्त ज्वर निदान

१. **घनिष्ठा** नक्षत्र में यदि किसी को ज्वर चढ़े तो उसे दस दिन तक जवर रहता है।

२. **शतभिषा** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर छह दिन या दस दिन तक रहता है।

३. **पूर्वाभाद्रपद** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर मृत्युकारक होता है।

४. **उत्तराभाद्रपदा** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर चौदह दिन तक रहता है।

५. **रेवती** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर पाँच या छह दिन तक रहता है।

६. **अश्विनी** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर छह दिन तक रहता है।

७. **भरणी** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर पाँचवें दिन में मार डालता है।

८. **कृत्तिका** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर एक सप्ताह या २१ दिन तक रहता है।

९. **रोहिणी** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर आठ दिन तक रहता है।

१०. **मृगशिरा** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर नौ दिन तक रहता है।

११. **आर्द्रा** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर पाँच दिन में अथवा ४५ दिन में मार डालता है।

१२. **पुनर्वसु** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर १३ दिन अथवा २७ दिन तक रहता है।

१३. **पुष्य** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर ३ दिन, अधिक से अधिक सात दिन तक रहता है।

१४. **अश्लेषा** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर बहुत दिनों तक रहने के बाद मार डालता है।

१५. **मघा** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर १२ दिन तक मृत्यु से लड़ता है। यदि १२ दिन तक रोगी न मरा तो बच जाता है।

१६. **पूर्वा** फाल्गुनी में चढ़ा हुआ ज्वर मृत्युदायक होता है।

१७. **उत्तरा** फाल्गुनी में चढ़ा हुआ ज्वर आठ या नौ दिन तक रहता है।

१८. **हस्त** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर आठ दिन के अन्दर उतर जाता है यदि नहीं उतरता तो चित्रा नक्षत्र के लगते ही उतर जाता है।

१९. **स्वाती** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर दस दिन या ४५ दिन तक रहता है।

२०. **विशाख** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर २१ दिन के अन्दर मार डालता है।

२१. **अनुराधा** नक्षत्र में चढ़ा हाुअ ज्वर आठ दिन रहने के बाद असाध्य हो जाता है।

२२. **ज्येष्ठा** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर यदि पाँच दिन में नहीं मारता है तो १२ दिन में ठीक हो जाता है।

२३. **मूल** नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर यदि १० दिन तक बना रहा तो उसके बाद उसके लिये कोई चिकित्सा कारगर नहीं होती है।

२४. **पूर्वाषाढ़** में चढ़ा हुआ ज्वर [illegible] दिन तक रहता है, इससे अधिक रह गया तो असाध्य हो जाता है।

२५. उत्तराषाढ़ नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर एक महीने तक कष्ट देता है। यदि आगे रह गया तो ९ महीने तक कष्ट देता रहता है।

२६. श्रवण नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक पीड़ित करता है।

आथर्वण व्यक्ति को चाहिए कि ज्वर शमन का तन्त्र प्रयोग इस ज्वर निदान को समझ कर करे।

रोग या ज्वर शान्त्यर्थ आथर्वण-विधान

१. कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न रोग के शमन के लिए **अग्निमूर्द्धा०** मन्त्र पढ़ते हुए पीपल की लकड़ी की आग में दही से हवन करना चाहिए।

२. रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न रोग की शान्ति के लिए **हिरण्यगर्भः०** इस मन्त्र से सर्वबीजमयी १०८ आहुतियाँ वट की लकड़ी की आग में देनी चाहिए।

३. आर्द्रा नक्षत्र-जन्य रोगों की शान्ति के लिए **ॐ इमारुद्राय तव से कपर्दिनः** मन्त्र से मधु (शहद) १०८ आहुतियाँ आम की लकड़ी की आग में देनी चाहिए।

४. पुनर्वसु नक्षत्र-जन्य रोग की शान्ति के लिए **ॐ महीमूव्यु०** मन्त्र से चावल की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

५. पुष्य नक्षत्र-जन्य रोग की शान्ति **ॐ बृहस्पते अति०** इस मन्त्र से घी और खीर मिलाकर १०८ आहुतियाँ देना चाहिए।

६. अश्लेषा नक्षत्र-जन्य दोष की शान्ति के लिए **ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो०** मन्त्र की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

७. मघा नक्षत्र-जन्य दोष की शान्ति के लिए **ॐ इदं पितृभ्यो मनोस्त्वद्य०** मन्त्र से शालिधान की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

८. पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र-जन्य दोष के लिए **ॐ प्रातर्जितम्०** मन्त्र से कंकु (काकुन) की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

९. उत्तराफाल्गुनी जन्य रोग-दोष निवारण के लिए **ॐ पुरो यमस्य०** मन्त्र द्वारा घी की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१०. हस्त नक्षत्र-जन्य दोष निवारण के लिए **ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्०** मन्त्र द्वारा दधि की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

११. चित्रा नक्षत्र-जन्य दोष के निवारण के लिए **ॐ द्यावापृथ्वी वरुणस्य०** मन्त्र द्वारा मधुमिश्रित खीर की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१२. स्वाती नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ वायुरग्रेगा यज्ञप्री०** मन्त्र द्वारा घृत-तिल की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१३. विशाखा नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ इन्द्राग्नी आगतेसुतं०** मन्त्र

द्वारा चावल के भात से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१४. अनुराधा नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ महीभूपाम्०** मन्त्र द्वारा लहसुन की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१५. ज्येष्ठा नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ फल्गु नामो०** मन्त्र द्वारा करिहारी (इन्द्रायण) की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१६. मूल नक्षत्र जन्य दोष-निवारण के लिए **अयं ते योनिर्ऋत्वियो०** मन्त्र द्वारा अनन्तमूल की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१७. पूर्वाषाढ़ नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ इदमापः प्रवतताघप०** मन्त्र द्वारा शालिधान की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१८. उत्तराषाढ़ नक्षत्र-जन्य दोष निवारण के लिए **ॐ विश्वेभ्यो मारुत०** मन्त्र द्वारा नगौरी असगन्ध की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

१९. श्रावण नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे०** मन्त्र द्वारा लाल वर्ण के पुष्प से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२०. धनिष्ठा नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ वायुरग्निर्वसुः श्रवाः०** मन्त्र से बरगद की बर्रोह की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२१. शतभिषा नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ तत्वायामि ब्रह्मणा०** मन्त्र द्वारा कमल पुष्पों से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२२. पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ उत्तराहिब्रन्धः०** मन्त्र द्वारा चावल के भात से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२३. उत्तराभाद्रपद नक्षत्र-जन्य दोष निवारण के लिए **ॐ अहिरिव भोगै०** मन्त्र द्वारा शालि चावल के भात से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२४. रेवती नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ शस्तो तारश्च इहष्ठासि०** मन्त्र से अक्षत और फल से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२५. अश्विनी नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ उभा पिबतमश्विनोभामः०** मन्त्र द्वारा दुधारु (गूलर, वट, पीपल, पाकड़) वृक्षों की लकड़ियों से १०८ आहुतियाँ इमली की लकड़ी की कोयले की आग में देनी चाहिए।

२६. भरणी नक्षत्र-जन्य दोष-निवारण के लिए **ॐ मासं यमः** मन्त्र द्वारा चावल से १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

□□□

१५ / शाबरमंत्र-साधना

शाबर मंत्रों की विशिष्टता, उनकी शब्द-योजना, ध्वनि-प्रभाव और उत्पत्ति के संबंध में गोस्वामी तुलसीदास जी ने थोड़े में ही सम्पूर्ण परिचय दे दिया है।

अनमिल आखर अरथ न जापू।।

प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू।।

शाबर मंत्र भगवान् शंकर द्वारा प्रकट किए गए हैं। इनकी अक्षर योजना, शब्द-योजना बेमेल रहती है, मंत्रों का कोई अर्थ नहीं निकलता है, इन्हें जप कर, अनुष्ठान, पुरश्चरण करके सिद्ध नहीं करना पड़ता है, ये मंत्र जीवन के हर क्षेत्र में, हर प्रयोजन में व्याप्त हैं और अपना अमिट प्रभाव रखते हैं।

शाबर मंत्र के प्रयोग कभी निष्फल नहीं होते हैं। इसमें विद्वान्, विशेषज्ञ, ज्ञाता, गुरु की और दीक्षा-संस्कार की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। न्यास, मुद्रा आदि से इन मंत्रों का कोई प्रयोजन नहीं है। यह सामान्य व्यक्ति से लेकर महान् विद्वान् के लिए समान भाव से उपयोगी होते हैं।

शाबर मंत्र छोटे से छोटे प्रयोजन से लेकर मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण, वशीकरण तक अपना व्यापक क्षेत्र बनाए हुए हैं। बर्रे, ततैया के दंश को झाड़ने से लेकर महाविषधर सर्पदंश तक के विष को फूँक मारकर निकाल देते हैं। विषधर जन्तु साँप से लेकर हिंसक जीव सिंह तक को उत्कीलित करने, वशीभूत करने का सामर्थ्य रखते हैं। शाबर मंत्र बहुत ही चमत्कारपूर्ण भी होते हैं। किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में बदल देना, नजर बाँध कर वस्तु की वास्तविक स्थिति पर परदा डाल कर उसे उसकी विपरीत स्थिति को दिखाना। रोग, दोष, भूत-प्रेत बाधा आदि बाधाएँ शाबर मंत्र चुटकी बजाते ही दूर कर देते हैं।

शाबर मंत्र की भाँति शाबर तंत्र (टोटका) और शाबर यन्त्र भी होते हैं। टोटका और ताबीज भी बहुत ही प्रभावशाली और चमत्कारी होते हैं। ये मंत्र, यंत्र, तंत्र सबके लिए सुगम, साध्य और उपयोगी होते हैं, किन्तु इनकी सरलता निश्छलता का नाजायज फायदा भी उठाया जाता है, इस अनैतिक कृत्य से भी शाबर मंत्र कभी भी अपने पद और प्रभाव से च्युत नहीं होते देखे गये हैं। परहित में, पर पीड़ा में, शुभ कार्य में, अशुभ कार्य में, कहीं भी इन्हें प्रयुक्त करें, अपना प्रभाव दिखायेंगे।

यहाँ ऐसे लोकोपयोगी कुछ शाबर मंत्र प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनसे परहित हो, किसी को हानि, पहुँचाने, पीड़ा देने वाले न हों।

विशेष–(१) शाबर मंत्र जैसे लिखें हों, उन्हें उसी प्रकार पढ़ना चाहिए, भाषा, व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध मानकर उन्हें शुद्ध करने की चेष्टा कथमपि न की जाए।

(२) कोई भी शाबर मंत्र हो, उसे प्रथम बार रविवार या मंगलवार को अथवा दीवाली, होली या चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण के दिन १०८ बार हवन करके सिद्ध कर लिया जाए, फिर सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती है। हाँ, प्रतिवर्ष दीपावली की रात में शाबर मंत्रों को हवन द्वारा जाग्रत अवश्य कर लेना चाहिए।

(१)

गुरु सठ गुर सठ गुर है बीर
गुरु साहब सुमरों बड़ी भाँत
सिंगी टोरों बन कहों
मन नाऊँ करतार
सकल गुरुन की हर भजे
घट्टा पकर उठ जाग
चेत सम्भार श्रीपरमहंस

निर्देश– यह शाबर मंत्र माला के सुमेरु की तरह है किसी शाबर मंत्र को सिद्ध करना हो, किसी भी प्रयोजन के लिए किसी शाबर मंत्र का प्रयोग करना हो तो पहले इस मंत्र को पढ़कर जब कोई मंत्र जगाया या प्रयुक्त किया जाए।

इसे छोड़ देने से प्रयुक्त मंत्र शक्तिहीन रहता है। यह मंत्रों में शक्ति और स्फूर्ति भरता है।

(२)

ॐ नमो आदेश गुरन को ईश्वर बाचा
अजरी बजरी बाड़ा बज्जरी मैं बज्जरी बाँधा दशौ दुवारछवा
और के घालों तो पलट हनुमन्त वीर उसी कों मारे
पहली चौकी गनपती दूजी चौकी हनुमन्त तीजी चौकी में
भैरों चौथी चौकी देत रक्षा करन कों आवें श्रीनरसिंहदेव जी
शब्द साँचा पिंड सांचा चले मंत्र ईश्वरी बाचा।

निर्देश– (१) यह बड़ा उपयोगी मंत्र है। घर, बाहर, देश, परदेश, जंगल या

श्मशान में जहाँ कहीं भी रहें, इस मंत्र को पढ़कर बैठ जाए या रात में सो जाए तो विषैले जीव, हिंसक जीव, वध करने वाले, लूटने वाले अथवा कोई भी आघात करने वाला ही दूर खड़ा रहेगा, देह को स्पर्श नहीं कर सकता। इस मंत्र को पढ़ते हुए अपने चारों ओर रेखा खींच ले या जल छिड़कने से सुरक्षा कवच बन जाता है।

(२) इस मंत्र का दूसरा प्रयोग यह है कि कोई व्यक्ति किसी व्याधि से पीड़ित हो, पीड़ा के मारे छटपटा रहा हो अथवा अज्ञात कारणों से शरीर अकड़ने लगे, मूर्च्छा आ जाये तो इस मंत्र से झाढ़ देने पर वह व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ, प्रसन्न हो जाता है।

(३) जिस घर में धन, संतान, पशु की वृद्धि न हो, कोई न कोई आधि-व्याधि लगी रहती हो और लोग उस घर को अशुभ मानकर उसे छोड़ने के लिए तैयार हों तो उस घर में जितने दरवाजे हों, उतने लोहे की कील लेकर और एक मुट्ठी उड़द लेकर कीलों और उड़द के दानों को अलग-अलग इस मंत्र को पढ़कर अभिमंत्रित कर लिया जाये। फिर मंत्र पढ़ते हुए सबसे अंदर वाले कमरे में घुसकर यह मंत्र पढ़ते हुए उड़द के दाने फेंकते हुए कमरे से बाहर निकल कर चौखट पर एक लोहे की कील इस मंत्र को पढ़कर गाड़ दे। इसी तरह क्रमशः हर कमरों के अंदर जाकर उड़द फेंकते हुए उनके चौखटों पर कील गाड़ते हुए मकान के बाहरी मुख्य द्वार में आकर कील ठोंक दे। आँगन और बरामदों में सिर्फ उड़द के दाने ही बिखेरना चाहिए। मात्र इतनी ही क्रिया से ग्रहदोष सदा के लिए दूर हो जाता है।

(३)

अय हनुमान बारा बर्स को ज्वान
हाथ में लड्डू मुख में पान
हाँक मारत आव बाबा हनुमान
मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरे मंत्र ईश्वरी बाचा

निर्देश—यह हनुमान जी का शाबर मंत्र है। शाबर मंत्रों के सिद्ध शाबरी लोग इसे बीर को चलाना कहते हैं। भूत-प्रेत अथवा किसी भी प्रकार की बाधा दूर करने में प्रयुक्त किया जाता है। ऐसे मौके पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव देखा गया है कि एक आदमी को ४०/५० आदमियों ने घेर कर मारना चाहा, वह इस मंत्र का साधक रहा। जोर-जोर से मंत्र को तीन बार पढ़कर वह निहत्था व्यक्ति पैतरा बदलकर खड़ा हो गया तो किसी की भी हिम्मत न हुई कि वह निहत्थे को छू सके। ५ मिनट तक सब निस्तब्ध खड़े रहे, इसके बाद चले नहीं गए बल्कि भागते हुए उन्हें धरती नहीं मिल रही थी।

(४)

हाथ बसें हनुमान भैरों बसे लिलार
जो हनुमन्त को टीका करे मोहे जग संसार
ओ आवे छाती पाँव धरे बजरंग बीर रक्षा करै
महम्मदा वीर छाती टोर जुगुनियाँ बीर शिर फोर
उगुनिया बीर मार मार भास्वन्त करे भैरो बीर की
आन फिरती रहे बजरंग बीर रक्षा करे जो हमारे ऊपर
घाब छाले तो पलट हनुमान बीर उसी को मारे
जल बाँधे थल बाँधे आर्या आसमान बाँधे
कुदवा और कलवा बाँधे चक चक्की असमान
बाँधे बाचा साहिब साहिब के पूत धर्म के नाती
आसरा तुम्हारा है।

निर्देश– यह मंत्र शत्रु और प्रतिद्वंद्वी को परास्त कर अपनी रक्षा और विजय के लिए प्रयोग में लाया जाता है। किसी दूसरे की रक्षा विजय के लिए इस मंत्र का गंडा या ताबीज बनाकर देना चाहिए। शत्रु को नीचा दिखाने के लिए प्रतिद्वंद्वी को परास्त करने के लिए यह मंत्र बहुत ही कारगर सिद्ध हुआ है।

(५)

आगे दो झिलमिली पीछे दो नन्द
रक्षा सीताराम की रखवारे हनुमन्त
हनुमान हनुमन्ता आवत मूठ करौ नौखण्डा
साँकर टोरो लोह की फारो बजर किवार
अज्जर कीलें बज्जर कीलें ऐसे रोग हाथ से ढीलें
मेरी भक्ति गुरु की भक्ति फुर मंत्र ईश्वरी बाचा।

निर्देश– यह मंत्र हर प्रयोजन में चलाया जाता है। अधिकतर रोग-दोष, भूत-प्रेत, बाधा, भय, आशंका, मनोरोग दूर करने में यह प्रयुक्त किया गया है। शत्रु भय निवारण, रोगनाशन में यह अद्वितीय है। इसे पढ़कर झाड़ा भी जाता है, इसका गण्डा ताबीज भी बनाकर पहनाया जाता है।

(६)

ॐ ह्रीं भ्रीं फट् स्वाहा परबतहंस परबत स्वामी आत्मरक्षा सदा भवेत् नौ नाथ चौरासी सिद्धया की। दोहाई हाथ में भूत पाँव में भूत भमूत मेरा धारण माथे राखो अनाड की जोत सबको करो सिंगार गुरु की भक्ति मेरी भक्ति फुरो ईश्वरी बाचा दोहाई भैरव के

निर्देश– यह मंत्र भूत रोग दूर करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। कुछ ऐसे कीटाणु होते हैं जिन्हें भूत कीटाणु कहा जाता है और जब वे कीटाणु किसी के शरीर के अंदर प्रविष्ट हो जाते हैं अथवा दूषित परमाणुओं के कारण शरीर के अंदर उत्पन्न हो जाते हैं तो आदमी उसी तरह की हरकतें करने लगता है, जैसे भूत-प्रेत बाधा होने पर। यह रोग अक्सर मासिक धर्म के दूषण के कारण स्त्रियों को अधिक होता है। यह भूतरोग जब किसी स्त्री को लग जाता है तो वह मूर्च्छित हो जाती है, अनाप-शनाप बकने लगती है, अवचेतन मन में गृहीत पुरानी से पुरानी बातें उसे स्मरण हो आती हैं और वह उन्हें बताने लगती है, तो लोग उसे देवबाधा, प्रेतबाधा अथवा पागलपन समझकर उसका उपचार करते हैं।

पुरुष या स्त्री किसी को भी भूत-रोग हो जाए तो उसे सामने बैठाकर अथवा चारपाई पर लिटाकर इस मंत्र से हवन करके मंत्र पढ़ते हुए भस्म से फूँक मारकर माथे में, हृदय में भस्में लगा देनी चाहिए।

अथवा भोज-पत्र पर चंदन और अनार की कलम से यंत्र-मंत्र लिखकर इसी मंत्र से हवन करके यंत्र को हवन के धुँए से धूपित कर ताँबे की ताबीज में भरकर पहना देनी चाहिए।

(७)

ॐ दमुंदनी शाह दुग्धं कुरु कुरु स्वाहा

निर्देश– सन्तानवती अथवा जिनकी गोद में दूध पीता बच्चा हो ऐसी स्त्रियों के थन का दूध किसी कारणवश सूख जाए, तो दूध उतारने में यह मन्त्र बहुत ही सफल है।

दूध या मट्ठा को इस मन्त्र से २१ बार फूँक कर पिला देने से दूध आ जाता है। अधिक से अधिक तीन दिन तक यह प्रयोग करना पड़ता है, फिर आवश्यकता नहीं पड़ती है।

निर्देश– इतवार या मंगल को इस मंत्र से १०८ बार हवन कर इसे सिद्ध कर लिया जाए। इसके बाद जिसके नेत्र विकार दूर करना हो तो इतवार और मंगलवार को २१ बार मंत्र पढ़कर झाड़ देने से उठी हुई आँखें, रोहा तथा अन्य नेत्रविकार दूर हो जाते हैं।

(९)

ॐ नमो आदेश गुरु की धरती में बैठ्या लोहे का पिंडराव
लगाता गुरुगोरखनाथ आवन्ता जावन्ता धावन्ता हांक
देत धार मार मार शब्द साँचा फुरो बाचा।

निर्देश– सर्वोपद्रव निवारण के लिए यह मंत्र बहुत प्रभावशाली है, कभी-कभी कुछ कारणों से किसी घर में अनेक प्रकार के उपद्रव, कलह, भय, अघटित घटनाएँ घटने लगती हैं। ऐसे उपद्रवों की शांति के लिए मृगचर्म पर बैठकर इस मंत्र से खीर की १०८ आहुति देने से उपद्रवों का शमन होता है।

(१०)

ॐ छाई छुई छलक छलाई आहुम् आहुम् क्लं क्लां क्लीं हूँ

निर्देश– खूनी या बादी किसी प्रकार की बवासीर को जड़ मूल से नष्ट करने के लिए इस मंत्र से जल को फूँक कर इतवार और मंगलवार को आबदस्त लिया जाये। ७ इतवार ७ मंगल तक यह प्रयोग करना चाहिए।

(११)

ॐ घट घट बैठी शीतला फेरत आवै हाथ।
ॐ श्रीं श्रीं श्रीं शब्द साँचा फुरोबाच।।

निर्देश– किसी को भयंकर चेचक का प्रकोप हो तो इस मंत्र से पढ़ते हुए रोगी के शरीर में ७ बार हाथ फेरने से प्रकोप शांत होता है। तीन दिन तक वह प्रयोग किया जाए।

(१२)

ॐ आहुता मंदरश्म यजाज्वत्यं जम जम जम
ॐ गाहि गाहि गाहि।

निर्देश– तंत्रशास्त्र में जिसे कृत्या या अभिचार का प्रयोग कहते हैं, उसी को शाबर तंत्र में जादू कहा जाता है। अर्थववेद में जादू को 'यातु' और जादूगर को 'यातुधान' कहा गया है।

प्रायः देखा जाता है कि किसी को खाने पीने की चीज में जादू करके खिला

पिला दिया जाता है, अथवा उसके वस्त्रों में या अनेक साधनों से जादू करके आदमी की बुद्धि भ्रष्ट कर दी जाती है। वह अपने सामान्य स्वभाव और अपने कुलाचार के विपरीत आचरण करने लगता है। ऐसी अवस्था में जादू का प्रभाव हटाने के लिए इस मंत्र को पढ़ पढ़ कर धतूर के बीजों से ७ दिन आहुति देनी चाहिए। वह बहुत ही प्रभावकारी मंत्र है।

(१३)

ॐ श्रीं श्रीं श्रीं परमां सिद्धि श्रीं श्रीं श्रीं

निर्देश– जब कोई आदमी पुरुषार्थ करते हुए व्यापार, व्यवसाय न बढ़ा सके, घाटा घाटा ही होता रहे तो यह मंत्र उसका परम सहायक बनता है।

जिस दिन प्रदोष हो उस दिन व्रत रखा जाए। व्रत का तात्पर्य है फलाहार करना और अल्प मात्रा में ही। प्रदोष काल (संध्या समय) में पहले शिव जी का पूजन करे फिर इस मंत्र की तीन माला जपे तत्पश्चात् अष्ट गंध मिश्रित नागौरी असगंध के फूलों से इस मंत्र द्वारा १०८ आहुति दे। इस प्रकार सात प्रदोष तक यह प्रयोग करने से दिन दूनी रात चौगुनी व्यापार वृद्धि होती है।

(१४)

न चाहते हुए भी एक शाबर मंत्र उन अविश्वासी लोगों के लिए लिखा जा रहा है, जिनका यह कथन है कि भूत-प्रेत का अस्तित्व नहीं है। कल्पना मात्र है। ऐसे लोग अनुभव करने के लिए मंत्र का प्रयोग करके देखें।

ॐ साल सलीता सोसलबाई कान पढ़ता धाई आई ॐ लं लं लं ठः ठः ठः।

निर्देश– पहले इस मंत्र को इसी रूप में रट करके याद कर लिया जाए। फिर शनिवार को आधीरात के समय बबूल के पेड़ के नीचे नग्न होकर आम की लकड़ी जलाकर काले तिल और उड़द की आहुति इस मंत्र को पढ़ते हुए दी जाए। आहुति देने के समय ही प्रेत जब सामने उपस्थित हो जाए तो निर्भय होकर अपने बाएँ हाथ की कनिष्ठा अँगुली काटकर सात बूँद रक्त जमीन पर गिराए तो प्रेत वशीभूत हो जाता है।

(१५)

ॐ नमो बने बिआई बनरी, जहाँ-जहाँ हनुवन्त।
आँख पीड़ा कषावरि गिहिया, थनै लाइ चरिउ जाइ।
भस्मन्तन गुरु की शक्ति मेरी भक्ति फुरो मंत्र ईश्वरो बाचा।

मंगलवार या दीपावली, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण में इस मंत्र से १०८ बार हवन

करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है। प्रतिवर्ष इन्हीं पर्वों में मंत्र जाग्रत कर लेना चाहिए।

(क) इस मंत्र को पढ़ते हुए प्रातःकाल सात बार आँखों पर हाथ फेरते हुए मंत्र की फूँक देने से नेत्र के सभी रोग, विकार दूर हो जाते हैं।

(ख) रविवार को चिचिड़ा उखाड़ कर ले आएँ, जिस व्यक्ति को करखौरी, बद बाघी या थनों में थनैला हो, उसके उस अंग पर चिचिड़ा को फेरते हुए २१ बार मंत्र पढ़ना चाहिए। तीन दिन में ये रोग दूर हो जाते हैं।

(१६)

वनरागाँठि वानरी तो डाँटे हनुमान कंठ।
बिलारी बाघी, थनैली कर्णमूल सम जाइ।
श्री रामचन्द्र की बानी पानी पथ होइ जाइ।

इस मंत्र को उपर्युक्त विधि से सिद्ध करके जिस व्यक्ति के बाघी, विलारी (आँख की गुहेरी), थनैली (स्तन का फोड़ा), कर्णमूल (कान की लहर के नीचे फोड़ा) हो, उसे मंत्र पढ़ते हुए भस्म से झाड़ा जाए। मंत्र पढ़कर भस्म की फूँक फोड़े पर छोड़ी जाए। तुरंत आराम होता है।

(१७)

कारो बिछिया कंगन हारो हरी सोंठ सोने को नारो।
मारो डंक फाटिगै देह विष बिखरो सारी देह।
उतर-उतर बिछिया राजा रामचन्द्र की दुहाई।

(१८)

परबत की सुरही गाइ कारी गाइ की चमरी पूछी
तेकरे गोबरे बिछी बिछाइ बिछी तोरे कार अठारह जाति।
छ कारी छ पीअरी छ भूमाधारी छ रत्नपवारी।
छ कुं हुं कुं हुं छारि उतरु बिछी हाड़-हाड़ पोर-पोर ते
कसमारै लीलकंठ गरमोर महादेव की दुहाई
गौरा पार्वती की दुहाई अनीत टेहरी शहार बन छाइ
उतरहिं बीछी हनुमन्त की आज्ञा दुहाई हनुमन्त की।

ये दोनों मंत्र बिच्छू का विष उतारने के लिए है। इन्हें पूर्ववत् सिद्ध कर ले। जिसे बिच्छु ने डंक मारा हो, उसके उस अंग पर ऊपर से नीचे चिचिड़ा या मदार (आक) की जड़ फेरते हुए मंत्र पढ़ना चाहिए। पाँच मिनट में विष उतर जाता है।

(१६)

ॐ गेरिठः।

चूहा काटने पर इस मंत्र से भस्म फूँक कर झाड़ने से चूहा का विष उतर जाता है।

(२०)

ॐ हां ह्रीं हं ॐ स्वाहा ॐ गरुड़ सं हुं फट्।

इस मंत्र से भस्म फूँक कर मकड़ी, मकोड़ों के विष को दूर किया जाता है।

(२१)

ॐ नमो भगवते विष्णवे सर सर हर हर हुं फट् स्वाहा

इस मंत्र से भस्म फूँक कर झाड़ने से सब प्रकार के कीड़ों का विष दूर होता है।

(२२)

सर्प को भगाने के लिए

ॐ नमो आदेश गुरु को जैसे के लेहु रामचन्द्र
कबूत ओसई करहु राध बिनि कबूत पवनपूत हनुमंत
धाव हन-हन रावन कूट मिलावन श्रवइ अण्ड खेतहि श्रवइ
अण्ड-अण्ड विहण्ड खेतहि श्रवइ वाजं गर्भ हि श्रवइ स्त्री
चीलहि श्रावइ शाप हर-हर जंबीर हर जंबीर हर-हर-हर।

प्रयोग– (क) जहाँ से कहीं से साँप को निकलना हो, मिट्टी के एक ढेले को इस मंत्र से अभिशप्त कर उस स्थान या बिल के द्वार पर रख देने से साँप निकल जाता है।

(ख) जिस व्यक्ति के अण्डकोष बढ़े हुए हों उसे इस मंत्र से अभिमंत्रित जल पिलाने से अण्डकोष वृद्धि दूर हो जाती है अथवा अण्डकोश पर मंत्र पढ़ते हुए फूँक मारी जाए।

(२३)

प्रेत बाधा दूर करने के लिए

बाँधो भूत जहाँ तु उपजो छाड़ो गिरे पर्वत चढ़ाइ
सर्ग दुहेली तु जभि झिलिमिलाहि हुंकारे हनुवन्त

पचारइ सीमा जारि-जारि भस्म करे जौं चापें सींउ

इस मंत्र को पढ़ते हुए मोर पंख से झाड़ा जाए या इस मंत्र से अभिमंत्रित कर जब छिड़का जाए या इस मंत्र से हवन किया जाए।

(२४)

खेत खलिहान से चूहा भगाने के लिए

पीत पीताम्बर मूशा गाँधी ले जाइए हनुवन्त तु बाँधी
ए हनुवन्त लंका के राउ उहि कोणे पैसेहु एहि
कोणे जाऊ।

स्नान करके हल्दी की पाँच गाँठ और अक्षत को लेकर इस मंत्र को पढ़ते हुए चूहों के स्थान में छोड़ दे। चूहें भाग जाएँगे।

(२५)

बवासीर रोग दूर करने के लिए

ॐ काकाकता क्रोरी कर्त्ता ॐ करता से होय
यरसना दश हंस प्रकटे खूनी बादी बवासीर न होय
मंत्र जान के न बतावे द्वादश ब्रह्म हत्या का ३ाप होय
लाख जपकरे तो उसके वश में न होय शब्द साँचा पिंड काँचा तो
हनुमान का मंत्र साँचा फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा।

इस मंत्र को यदि कोई एक लाख बार जप कर ले तो उसे जीवन भर बवासीर का रोग नहीं होता है। जिसे बवासीर हो उसे चाहिए रात में रखे हुए पानी को प्रातःकाल शौच के समय इस मंत्र से अभिमंत्रित कर उस पानी से आबदस्त ले। बवासीर दूर हो जाती है।

(२६)

आत्मरक्षा के लिए

ॐ नमो वज्र का कोठा जिसमें पिंड हमारा पैठा।
ईश्वर कुंजी ब्रह्म का ताला मेरे आठो याम का यती हनुवन्त रखवाला

प्रयोग– प्राणों का भय, संकट, बाधा, उपस्थित होने पर इस यंत्र का तीन बार उच्चारण कर लेने से आत्मरक्षा होती है।

(२७)

आकर्षण मंत्र

ॐ कं हां हूँ

इस मंत्र को ११०० बार दीपावली या ग्रहण में जप करके या हवन करके सिद्ध कर लेना चाहिए। किसी प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति के पास जाते समय इस मंत्र का मन-ही-मन जाप कर लेने से वह व्यक्ति जप करने वाले पर आकृष्ट होकर उसके मनोऽनुकूल काम करता है।

(२८)

ॐ स्त्री स्त्रीं फट्

यह तारिणी आकर्षण शाबर मंत्र है। उपर्युक्त विधि से इसे सिद्ध कर लेने से जिसके सामने इसे मन-ही-मन जपे, वही आकर्षित और मोहित हो जाता है।

(२९)

ॐ नं नां निं नीं नुं नूं नें नैं नों नौं नं नः (अमुकं) आकर्षय ह्रीं स्वाहा

यह मातृका शाबर मंत्र है। उपर्युक्त विधि से सिद्धकर लेने के बाद गूलर की ६ अंगुल लकड़ी की कील बनाकर उस कील के ऊपर जिस कील को आकर्षित करना हो, गेरु से उसका नाम लिखकर उक्त मंत्र से फूँक मारकर अभिमंत्रित कर ले और फिर मंत्र पढ़ते हुए अमुक की जगह उस व्यक्ति का नाम लेकर कील को उसके मकान की दीवार में गाड़ दे तो वह आकर्षित ओर वशीभूत होता है।

कोई व्यक्ति भाग गया हो या परदेश जाकर लौटता न हो, अथवा दूर-दराज रहने वाले व्यक्ति से कोई कार्य-साधना करनी हो तो काले धतूरे के पत्ते का रस और गोरोचन मिलाकर कनेर की जड़ की कलम से भोजपत्र पर नीचे लिखे हुए मंत्र के साथ उस व्यक्ति का नाम लिखे, जिसे बुलाना हो या वशीभूत करना हो। फिर उस भोजपत्र को जलती हुई कत्था की लकड़ी के अँगारे पर डाल देने से वह व्यक्ति कहीं भी होगा अवश्य आ जाएगा।

मंत्र

ॐ नमः आदि पुरुषाय ....(जिसे बुलाना हो उसका नाम लिया जाए) आकर्षण कुरु-कुरु स्वाहा।

(३१)

ॐ झां झां झां हां हां हां हैं हैं हैं

इस मंत्र को दीपावली या ग्रहण में ५००० बार जप करके या हवन करके सिद्ध कर लेना चाहिए। फिर उसे वशीभूत करना हो, उसके नाम, रूप का ध्यान कर इस मंत्र का जप ५०० बार करने से वह निश्चित ही साधक के वश में हो जाता है।

(३२)

यदि कोई स्त्री अपने पति या प्रेमी को वश में करना चाहे अथवा कोई पुरुष अपनी पत्नी या प्रेमिका को अपने वश में क़रना चाहे तो किसी भी दिन रात ११ बजे के बाद जल में काले तिल छोड़कर वह स्नान करे। स्नान के बाद वह पहले से बिछाए गए आसन पर सर्वथा नग्न होकर पश्चिम की ओर मुँह करके बैठ जाए तथा पहले से ही तैयार रखे हुए दीपक को जला दे फिर सामने रखे हुए कांस्यपात्र पर अनार की कलम और रोली से यह यंत्र बना दे–

ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं

(यहाँ पर जिसे वश में करना हो उसका नाम लिख दे)

फिर उस कांस्यपात्र से दीपक को ढक दे। कांस्यपात्र बड़ा हो जिससे दीपक बुझे नहीं। तदनन्तर नीचे लिखे मंत्र को तीन मालाएँ फेरे–

ॐ क्लीं कामाय क्लीं कामिन्यै क्लीं

तीन माला जप पूरा हो जाने पर निकाल कर अपनी जीभ में लगा ले। फिर कांस्यपात्र में जमे हुए काजल पर नई सींक से उपर्युक्त यंत्र को बना दे और उस पात्र को फिर दीपक के ऊपर ढक दे तथा नीचे लिखे मंत्र को ११ मालाएँ फेरे।

मंत्र– ॐ नमः कालिकायै सर्वाकर्षिण्यै (जिसे वश में करना हो उसका नाम)

आकर्षय आकर्षय शीघ्रमानय आनय ॐ ह्रीं क्री भद्रकाल्ये नमः।

जप समाप्त होने पर कांस्यपात्र में जमे हुए काजल को निकालकर किसी डिबिया में बंद कर रख ले। इस काजल को जरा सा निकालकर पानी में या किसी खाने पीने की चीज में डालकर जिसे पिला दिया जाए या खिला दिया जाए अथवा जरा सा काजल उस व्यक्ति के पहने हुए वस्त्र में लगा दिया जाए तो वह तुरंत वश में हो जायेगा।

यदि उस स्त्री या पुरुष से साक्षात्कार संभव न हो, जिसे वश में करना हो तो घर पर बैठ कर कांसे की कटोरी में थोड़ा सा काजल डालकर उसमें मक्खन मिलाकर नीचे लिखे मंत्र को पढ़ते हुए मक्खन और काजल को मथा जाए। मथते-मथते ही वह व्यक्ति कहीं भी हो वश में हो जाता है।

मंत्र– ॐ नमो यक्षिण्यै अमुकं (यहाँ पर उसका नाम ले जिसे वश में करना हो) में **वश्यं कुरु-कुरु स्वाहा।**

यह शाबरमंत्र अमोघ है, कभी विफल नहीं होता है।



१६ / लोक-जीवन में तंत्र की अभिव्याप्ति

लोक-संस्कृति, लोक-जीवन का अध्ययन करने पर पता चलता है कि लोक-मानस में टोटका, टोना के रूप में तंत्र समाया हुआ है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मंगल-कामना के लिए टोटका और टोना का प्रयोग देखा जाता है। पाश्चात्य तथा भारतीय मनीषियों का मत है कि टोटका-टोना का उद्गम अथर्ववेद से हुआ है, किन्तु गहराई से वेदों का अध्ययन करने से वेदों से ही यह रहस्य उद्घाटित होता है कि जब संस्कृति, सभ्यता विकसित नहीं हुई थी, वाङ्मय का निर्माण, विकास नहीं हुआ था, उससे भी पहले आदिम मानव-समाज में टोटका टोना (तंत्र) बीज रूप में ही नहीं, व्यवहार में प्रचलित और प्रयुक्त था। वाङ्मय का जब निर्माण और विकास हुआ तो अथर्ववेद, आगमनशास्त्र, तंत्र-शास्त्र और पुराणों ने आदिम मानव-समाज के टोटकों, टोना को शास्त्रीय रूप देकर उनका उद्धार और प्रचार किया, विकास के साथ विकार भी बढ़ते हैं। जैसे-जैसे मनुष्य समाज की इच्छाएँ, आवश्यकताएँ बढ़ती गयीं, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या का क्षेत्र बढ़ता गया, वैसे ही टोटके-टोने भी विभिन्न परिवेशों में, विभिन्न रूप-विधानों में प्रचलित और परिवर्द्धित होते गए।

प्रारंभ काल से लेकर आज तक टोटका-टोना मुख्यतः मंगल-कामना रखकर अनिष्ट-निवारण के लिए किए जाते हैं, गर्भावस्था में गर्भ की रक्षा से लेकर शिशु उत्पन्न होने पर जब तक वह किशोरवय का रहता है, स्त्रियाँ टोटका से उसके रोग-दोष का निवारण करती हैं। स्त्रियाँ प्रारंभ से ही टोटका-टोना का प्रयोग करती आयी हैं इसलिए टोटका अब शास्त्रीय न रहकर केवल स्त्री-जाति द्वारा बोला जाने वाला शब्द मात्र रह गया है। इसके विपरीत टोना अमंगल कार्यों—रोग-दोष उत्पन्न करने, मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण वशीकरण आदि के लिए किया जाता है। ऐसे अमांगलिक कार्यों में पशु बलि भी दी जाती है, कहीं-कहीं नर-बलि की भी दूषित, हेय और जघन्य पद्धति है।

टोटका अधिकतर स्त्रियाँ करती हैं और टोना करने वाले पुरुष प्रादेशिक बोलियों के अनुसार ओझा, औघड़, सयाने कहे जाते हैं तथा स्त्रियाँ डाकिनी, डाइन और टोनहिन कही जाती हैं। ऐसे पुरूषों और स्त्रियों से सामान्य जन भयभीत रहा करते हैं।

टोटका और टोना दोनों में बहुत अंतर है। टोटका में किसी शास्त्र का विधान या मंत्र के जप, हवन का विधान नहीं रहता है। किन्तु टोना तो एक प्रकार का अनुष्ठान है, उसके भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के विभिन्न मंत्र होते हैं और उन मंत्रों को उनके प्रयोजन के अनुसार जगाया जाता है तथा किसी पर जब उनका प्रयोग किया जाता है, तब भी उसकी एक विशिष्ट प्रयोग-विधि होती है। टोटके अधिकतर रोग-निवारण, अनष्टि और बाधाएँ दूर करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। अथर्ववेद में टोटका को तंत्र कहकर प्रतिष्ठापित किया गया है। लोक जीवन में जिसे टोना कहा जाता हे, उसी को तंत्रशास्त्र में षट्कर्म (मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण, वशीकरण) कहा जाता है, अथर्ववेद में षट्कर्मों का भी विधान बताया गया है। लोक-जीवन में मारण को 'मूठ' की संज्ञा दी गयी है।

तंत्र-शास्त्र में मंत्र को सिद्ध करने के लिए मुख्यतया तीन शर्तें हैं–

१. काल– प्रत्येक तांत्रिक अनुष्ठान के लिए प्रातःकाल, गोधूलिवेला, मध यरात्रि या मध्याह्न का जो भी समय निश्चित होता है, उसे काल कहते हैं।

२. द्रव्य– मंत्र की साधना के लिए मंत्र के अधिष्ठातृ देवता के स्वरूप, स्वभाव और कार्य-प्रयोजन के अनुकूल पूजन सामग्री को द्रव्य कहा गया है।

३. शब्द– अनुष्ठान या साधना के मंत्र का शुद्ध आचरण शब्द है। तंत्र-शास्त्र प्रत्येक मंत्र के चार भाग बतलाता है।

१. प्रणव (ॐ), **२. बीज** (बीजाक्षर-देवता का नाम), **३. मंत्र** और **४. पल्लव** (मंत्र के अंत में लगा हुआ नमः या स्वाहा आदि शब्द) जिसका उच्चारण कर आहुति दी जाती है।

अथर्ववेद में अनेक ऐसे तंत्र (टोटका) हैं, जिनमें मंत्र के जप, हवन आदि की आवश्यकता नहीं होती है। जैसे पाण्डु रोग (पीलिया) ग्रस्त रोगी को लाल बैल के बाल पानी में मिलाकर पिला देने से पीलिया रोग दूर हो जाता है तथा अतिसार रोग से ग्रस्त रोगी की कमर में मूँज की रस्सी बाँध कर साँप की बाँबी की मिट्टी पानी के साथ पिला देने से तत्काल अतिसार रोग दूर हो जाता है, हिक्का (हिचकी) रोग में सेंधव (सेंधानमक) पीसकर पानी के साथ पिला देने से रोग दूर हो जाता है। वात-व्याधि (साइटि पेन) में वरुण वृक्ष की जड़ कमर में बाँधने से पुराना से पुराना वात-व्याधि रोग दूर हो जाता है। टोटके शास्त्रीय भी होते हैं, किन्तु उनके व्यवहार के लिए काल और द्रव्य दो ही शर्तें हैं, कहीं कहीं काल भी नहीं, केवल द्रव्य ही प्रधान होता है। जैसे अथर्ववेद का एक तंत्र (टोटका) है, जो मारण, मोहन, वशीकरण और आकर्षक प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है,

इसमें काल, मंत्र और द्रव्य की शर्त है।

बेर के काँटे और कूट अक्ष की जड़ लाकर बेर के २१ काँटे एक साथ घी में डुबोकर अथर्ववेद के तृतीय कांड के २५वें सूक्त के ५वें अनुवाद को पढ़ते हुए सभी इक्कीस काँटों की आहुति स्वाहा कहकर एक साथ दे दी जाए और कूट वृक्ष की जड़ को मक्खन से तर करके हवन की आग में दूर से तपाए। यह प्रयोग प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल दिन में तीन बार किया जाता है। २१ दिन में यह तंत्र साधना पूरी होती है । प्रयोक्ता को पहले तीन दिनों तक उत्तरी खाट में सोना चाहिए। जिस किसी का नाम लेकर कूट की जड़ तपायी जाती है, वह वशीभूत होता है और यदि किसी का नाम लेकर जड़ की आहुति आग मे छोड़ी जाए तो वह व्यक्ति मर जाता है तथा किसी व्यक्ति विशेष का नाम लिए बिना २१ दिन तक उपर्युक्त विधि से अनुष्ठान कर तपाई हुई जड़ को रखा लिया जाए तो फिर उसे भी वह जड़ दिखायी जाए, वही वश में हो जाता है।

प्रत्येक टोना-टोटका के लिए यह आवश्यक है कि उसमें मंत्र-सिद्धि की तरह द्रव्य और काल का समावेश करके टोटका-टोना को दूर करने का प्रयोग किया जाता है। जप, हवन आदि अपेक्षित नहीं हैं।

१. जैसे गर्भिणी स्त्री का प्रसवकाल निकट आने तक सूतिका गृह (सोवर) के बाहर द्वार के दोनों ओर दीवार पर गोबर से चक्रव्यूह का आकार बना दिया जाता है और गर्भिणी के कमर में काले सूत से बहेड़ा बाँध कर लटका दिया जाता है। सूतिकागृह की शय्या के सिरहाने लोखर (छूरी,चाकू) रख दिया जाता है। इस प्रकार टोटका करने से प्रसव निर्विघ्न हो जाता है।

बच्चा जब तक साल भर का नहीं हो जाता है, तब तक उसके सिरहाने में छूरी-चाकू बराबर रखा जाता है। इससे सोता हुआ बच्चा चौंकता नहीं, डरता नहीं।

२. बच्चा जब ६ महीने का हो जाता है, तो उसका अन्नप्राशन किया जाता है। अन्न प्राशन के समय बच्चे के सामने आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ तरह-तरह की चीजें फैला कर रख दी जाती हैं। बच्चा जिस वस्तु पर पहले हाथ लगाता है, उसी से उसके जीवन का भविष्य समझा जाता है; जैसे यदि कलम, दवात, कागज उठा लेता है तो बच्चा लिखने-पढ़ने का काम करेगा ऐसा विश्वास करके माता-पिता उस दिशा में उसे आगे बढ़ाने की चेष्टा करते रहते हैं।

३. बच्चे की आँखों में काजल लगा कर उसके माथे में दिठौना लगा दिया जाता है। इससे बच्चे को बुरी नजर नहीं लगती है। भूत, प्रेत की बाधा से, नजर,

दीठ से बचाए रखने के लिए बच्चे के गले में बजर बट्टू (काले रंग के धागे में रुद्राक्ष घुँघची, चाँदी का चन्द्रमा, ताँबे का सूर्य, रावटी, शेर का नाखून पिरो कर बनाई गई माला), हाथों में कलाई में कमर और में काली ऊन का बनाया गया धागा पहनाया जाता है।

४. अगर बच्चा रोता है, चीखता है, चौंकता है, दूध उलट देता है, हरे-पीले दस्त करता है तो उसकी माता गोधूली वेला में गन्धक, चोकर, नमक सात लाल मिर्च और झाडू का तिनका दाहिने हाथ में लेकर रसोई घर के चूल्हे की ओर पीठ करके खड़ी हो जाती है और दोनों हाथ में लिए हुए साधनों को बच्चे के ऊपर सात बार घुमाकार टाँगों के बीच से चूल्हें फेंक देती है। इससे रोग-दोष, टोना, नजर, दीठ का शमन होता है।

५. बच्चा जब २ वर्ष का हो जाता है। घर से बाहर खेल कर जब आता है तो उसकी माँ घर से निकलते हुए बच्चे के सिर पर जमीन पर मिट्टी उठा कर सात बार उतार कर उस मिट्टी को लगा देती है; और फिर उसे नहलाती है या हाथ पैर धो देती है, इससे नजर, दीठ का कुप्रभाव मिट जाता है।

६. अगर बच्चे को सूखारोग हो जाता हैं तो रात के बारह बजे चमेली के नीचे जाड़े में गर्म पानी, गर्मी में ठण्डे पानी से बालक को स्नान कर दिया जाता है तो सूखा रोग दूर हो जाता है।

७. अथवा धोबी की भट्टी का एक लोटा पानी चुराकर घर में उसी में अन्य पानी मिला कर बच्चे का स्नान कराने से सूखारोग दूर होता है। स्नान किसी बड़े बरतन में बैठकर कराया जाता है। स्नान का वह पानी चौराहे में छोड़ दिया जाता है।

८. इसके अतिरिक्त सूखारोगग्रस्त बालक की पीठ पर रविवार और मंगल के दिन मकोय की पत्तियाँ चबाकर थूक दिया जाता है, फिर पीठ पर हाथ से जब मला जाता है तो सूखारोग के रोएँदार, भूरे रंग के छोटे-छोटे कीड़े ऊपर आ जाते हैं, उन्हें निकाल कर बाहर कर दिया जाता है, बच्चा नीरोग हो जाता है।

९. बच्चों के अलावा बड़े लोगों को जब संक्रामक रोग हो जाता है या बलोदर, पीलिया, कण्ठमाला हो जाता है तो मिट्टी के एक शकोरे में एक अण्डा, एक लड्डू, दो पैसे और सिन्दूर रख कर मरीज के सिर पर सात बार उतार कर गोधूलि बेला में या दिन के १२ बजे चौराहे पर रख दिया जाता है। मरीज नीरोग हो जाता है।

१०. पहलवान लोग पैर में, गले में या हाथ में गुरु का दिया हुआ काले डोरे का गण्डा पहनते हैं। इसके अलावा उनके अखाड़े में अगर कोई बाहरी पहलवान

लड़ने लगता है तो चमेली के सात फूल सीने में और दोनों भुजाओं में लगाकर उन्हें अखाड़े के चारों कोनों में और अखाड़े के मध्य में गाड़ देते हैं तो उसकी ही विजय होती है।

११. जिन पुरुषों का विवाह काफी उम्र तक नहीं होता है, वे गुरुवार को कुम्हार के चाक को घुमाने वाले डंडे को चुरा कर घर ले जाते हैं। और उसी दिन घर में लीप-पोत कर डंडे को लहँगा, चुनरी पहना कर उसको सिंदूर, महावर आदि लगा कर दुलहिन के रूप में एक कोने में खड़ा करके गुड़ चावल से पूजते हैं। इस तरह सात बार सात डंडे चुराकर पूजे जाते हैं। कुम्हार जितनी अधिक गालियाँ देगा, कोसेगा उतनी ही जल्दी विवाह होता है।

१२. और अविवाहित अधिक उम्र की कन्या का विवाह शीघ्र होने के लिए देवोत्थान एकादशी (कार्तिक शुक्ल पक्ष) में कच और देवयानी की मिट्‌टी की मूरतें बना कर उन मूर्तियों में ऐपन (हल्दी, चावल, आटा का पिसा हुआ घोल) लगाकार उनकी पूजा करके उन्हें एक लकड़ी के पटे ढक देते हैं। फिर उस पटे पर कुमारी कन्या को बैठा दिया जाता है तो उसका विवाह हो जाता है।

१३. गरीबी, अभाव से मुक्ति पाकर धनवान बनने के लिए पहली बार ब्याई हुई काली बिल्ली की आँवर (जेल या खेड़ी) किसी प्रकार प्राप्त करके उसे सुखाकर रुपये रखने की थैली या संदूक, तिजोड़ी में रखा जाए। प्रत्येक मंगलवार को धूप दिया जाए तो धन, समृद्धि अनायास बढ़ती है।

१४. पीलिया रोग हो जाने पर काँसे के कटोरे में सरसों का तेल भर कर सात दिन तक रोगी को रोज दिखाने से रोग दूर हो जाता है।

१५. दाढ़ पर चकत्ते निकल आएँ या दाग पड़ जाएँ तो जब भंगिन मलमूत्र की सफाई या घर, सड़क की सफाइ कर रही हो तो उसका प्रगाढ़ आलिंगन किया जाए। ंगिनि जितना अधिक बुरा-भला कहेगी, उतनी ही जल्दी रोग दूर होता है।

१७. एकान्तरा ज्वर (एक दिन छोड़ कर आने वाला ज्वर) जिसे आती हो, जिस दिन ज्वर आने की पारी हो उस दिन वह अपनी लम्बाई के नाप का कच्चा सूत लेकर प्रातः काल पीपल के वृक्ष के पास जाकर उसमें सूत को बाँधते हुए वह कहे–'मेरा मेहमान आए तो तुम संभाल लेना। दूसरा प्रयोग मदार (आक) का भी है। ज्वर की पारी के दिन मदार के पास जाकर उसे भेंटते हुए कहे–'मेरे मेहमान का आज तुम्हारे घर निमंत्रण है।' बुखार फिर नहीं आता है।

संख्या-शब्द तंत्र

लोक-जीवन में टोटका, टोना की तरह जन्तर (यन्त्र) का भी विशेष महत्त्व है। ये यन्त्र गणितीय संख्याओं और शब्दों से बनाए जाते हैं। इन यन्त्रों का प्रभाव मन्त्रों से

किसी कदर कम नहीं होता है। तन्त्रशास्त्र का एक अंग तन्त्र है, जिसे लोक-जीवन ने भी अपनाया है। मन्त्रों की रचना विधि शास्त्रीय है। लोक जीवन में दो प्रकार के यन्त्र प्रचलित हैं–एक लाभकारक और दूसरा हानिकारक है। अधिकतर यन्त्रों के प्रयोग रोगों का शमन करने के लिए अथवा अपने घर की बला दूसरों के घर के पहुँचाने के लिए किए जाते हैं। जैसे कोई आदमी बीमार है तो यंत्र बनाने वाला ओझा स्नान करके अपने देवता का ध्यान करके यह यन्त्र पीपल के पत्ते पर सिन्दूर से लिखता है–

		ॐ		
	३	३	३	
ॐ	३	३	३	ॐ
	३	३	३	
		ॐ		

यद्यपि ओझा लोग यह यन्त्र बनाकार रोगी को पहनाकर उसे रोग मुक्त करके प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, किन्तु उन्हें इस यन्त्र में गर्भित तात्विक विज्ञान का शायद ही बोध हो। वस्तुतः यह यन्त्र त्रितत्त्वों की समता की प्रार्थना का संसूचक है। त्रितत्त्वों की प्रार्थना का बोधक ९ वर्गों में स्थित अंक ३ है। यन्त्र के तीन मध्य स्थानों पर ॐ का प्रयोग त्रितत्त्वों के प्रतीक के रूप में किया गया है और यन्त्राधिष्ठित देवता का आवाहन करने के लिए प्रणव रूप ॐ है।

बौद्धधर्मावलम्बी जनता में एक सामान्य व्यक्ति से लेकर आचार्य, महास्थविर और लामा तक सभी वर्ग के लोगों का कण्ठहार मन्त्र है–

ॐ ह्री मणिपद्मे हुम्

इस मन्त्र में **ॐ** प्रणव है। **ह्रीं** बीज है, **मणिपद्मे** मन्त्र है और हुम् पल्लव है।

यह मन्त्र बहुत ही चमत्कारिक और उच्चकोटि की सिद्धियाँ प्रदान करने वाला है। इस मन्त्र की साधना करके लामा लोग सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहते हैं और जब वह चाहते हैं तभी मरते हैं। इस मन्त्र का प्रयोग शुभ और अशुभ सभी कार्यों में क्रिया भेद से किया जाता है। इस मन्त्र के द्वारा लामा लोग एक वज्र दण्ड सिद्ध करके रखते हैं ऐसे सिद्ध लामा वज्रपाणि या वज्राचार्य कहलाते हैं। उनके द्वारा सिद्ध किए हुए दण्ड को यदि कोई छू लेता है तो वह मर जाता है।

इस मन्त्र की एक सरल साधना इस प्रकार है–

राज में या ब्राह्ममुहूर्त में किसी गुफा में या बन्द कमरे में वज्रासन से बैठकर दोनों हाथों को घुटने में रखे। हाथ खुले रहें, मुट्ठियाँ न बाँधी जाएँ। मन-ही-मन इस मन्त्र का जप करते हुए दोनों भौंहों के बीच एक ज्योति का ध्यान किया जाए। ९० दिन की साधना के बीच ही अद्भुत चमत्कार देखने को मिलते हैं। इसके बाद घोर अन्धकार एक देदीप्यमान प्रकाश में परिणत हो जाता है, ज्यों-ज्यों साधना बढ़ती है, वैसे ही साधक को अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त होती जाती हैं।



१७ / यन्त्र साधना

यन्त्र दिव्य एवं अलौकिक शक्तियों और देवताओं के निवास स्थान हैं। यन्त्रों में चौदह प्रकार की शक्तियाँ निहित रहती हैं। उन शक्तियों की सीमा के अनुसार यन्त्र अपने-अपने फल दिया करते हैं। प्रत्येक यन्त्र चौदह प्रकार की शक्तियों में से किसी न किसी शक्ति के अधीन रहा करते हैं। इन्ही शक्तियों की चौदह संख्या के आधार पर यन्त्रों की रेखाओं और कोष्ठों का निर्माण होता है। यन्त्र जिन चौदह शक्तियों के वशीभूत रहते हैं, उनकी नामावली इस प्रकार है–(१) सर्वसंक्षोभिणी, (२) सर्वविद्राविणी, (३) सर्वाकर्षिणी, (४) सर्वाह्लादकारिणी, (५) सर्वसम्मोहिनी, (६) सर्वस्तम्भनकारिणी, (७) सर्वजृम्भणी, (८) सर्वशंकरी, (९) सर्वरंजी, (१०) सर्वोन्मादकारिणी, (११) सर्वार्थसाधिनी, (१२) सर्वसम्पतप्रपूरिणी, (१३) सर्वमन्त्रमयी और (१४) सर्वद्वन्द्वक्षयंकारी।

यन्त्रों में जिन संख्याओं को निहित किया जाता है वे सभी ३६ यन्त्रों के अन्तर्गत रहती हैं। ३६ की संख्याओं के अन्दर ही उलट-पुलट कर संख्याएँ यन्त्रों में लिखी जाती है।

३६ की संख्या का रहस्य यह है कि जिस प्रकार बिन्दु रूप परावाक् सकल शब्दों को जननी है, उसी प्रकार यह सकल अर्थ रूप ३६ तत्त्वों की भी जननी है। ५ महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ इन्द्रियों के विषय, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, कला, अविद्या, राग, काल, नियति, माया, शुद्ध, विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव–ये ३६ तत्त्व हैं।

जैसे मन्त्रों के बीजाक्षर होते हैं, वैसे यन्त्रों में भी १ से लेकर ३६ तक की संख्या बीच संख्या मानी जाती है। ये बीज संख्याएँ १४ शक्तियों पर आश्रित होकर ३६ तत्त्वों के भावों को अलग-अलग कर रेखाओं, कोष्ठों के आकार प्रकार और बीजाक्षरों से अधिष्ठातृ देवताओं का प्रतिनिधित्व करती हुई उन देवताओं की शक्तियों को स्थान विशेष पर प्रकट कर संकल्प की सिद्धि प्रदान करती हैं।

इन ३६ तत्त्वों के अन्तर्गत, पृथ्वी, जल, वायु आदि जो २५ तत्त्व हैं वे वर्णमाला के २५ वर्ण बीजों से सम्बन्ध रखते हैं।

अंकगणित के अनुसार १ से ९ तक की संख्या मूल संख्या मानी गई है। इस मूल संख्या के संश्लेषण, विश्लेषण, संयोग और वियोग से तथा 'शून्य' के सहयोग से अगणित संख्याएँ बनती हैं। १,९ और ० का तन्त्र विद्या में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार एकाक्षरी बीजों के अनेक अर्थ होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक संख्या बीज कई-कई अर्थों के बोधक होते हैं।

यन्त्रों में निहित रहस्य विज्ञान को हृदयंगम कर लेने पर ही यन्त्रों का निर्माण और उनकी साधना सही और सफल होती है। यन्त्र तत्त्व को न समझ कर मनमानी रेखाएँ खींचकर उनसे कोष्ठों में संख्या-बीज, वर्ण बीज भर कर यन्त्र बनाना यन्त्रों के साथ अन्याय करना है। ऐसे यन्त्र निष्फल तो होते ही हैं, यन्त्र निर्माता भी अभिशप्त हो जाता है। प्रत्येक यन्त्र की रचना-विधि और रेखांकन प्रणाली तथा उसकी पूजन विधि भिन्न हुआ करती है। यन्त्रों की साधना और उनकी सिद्धि संख्या बीजों वर्ण बीजों के नियमन, आकलन और संयोजन पर निर्भर रहती है। यन्त्र निर्माण एक कला है, यन्त्र निर्माता को आध्यात्मिक कलाकार होना चाहिए।

यन्त्रों की हर रेखा की एक माप होती है, रेखाओं द्वारा निर्मित कोष्ठों का आयतन समान होना चाहिए और कोष्ठों के मध्यमान में संख्या बीज, वर्ण बीज लिखने चाहिए।

सामान्यतया यन्त्र स्वर्णपत्र, ताम्रपत्र और रजतपत्र पर अंकित किए जाते हैं। यन्त्र-साधना में सोना, ताँबा, चाँदी यही तीन धातुएँ ग्राह्य हैं अन्य नहीं। इन धातुओं पर अंकित यन्त्र स्थायी साधना के लिए हुआ करते हैं, उनका प्रतिदिन पूजन किया जाता है। श्रीयन्त्र और कवच आदि जिनकी गणना महायन्त्रों में होती है। जिन्हें शरीर में धारण करना सम्भव नहीं है। उन्हें धातु-पत्र में अंकित कराकर, उनका संस्कार कर, प्राण प्रतिष्ठा कर देव प्रतिमाओं की तरह पूजन किया जाता है और उनके बीज मन्त्रों का जप, हवन आदि किया जाता है।

किन्तु हमारा अनुभव है कि धातुओं पर अंकित यन्त्रों की अपेक्षा भोजपत्र पर लिखे गये चाहे वे स्थायी साधना के लिए नित्य पूजन के निमित्त हों, चाहे शरीर में धारण करने के लिए हों, अधिक प्रभावशाली होते हैं। इसका कारण यह है कि धातु की अपेक्षा भोजपत्र में कास्मिक किरणें उत्पन्न करने और ग्रहण करने की शक्ति अधिक होती है।

हम यहाँ पर महायन्त्रों का विवरण न देकर उन यन्त्रों को ही प्रस्तुत करेंगे जो सर्वसाधारण के लिए साध्य हों, अल्प व्यय और अल्प श्रम में तत्काल लाभ देने वाले हों। न तो सभी लोग साधक होते हैं और न सभी निष्ठावान् होते हैं, यन्त्र ऐसे

ही दिये जा रहे हैं कि बिना साधन के, बिना निष्ठा, विश्वास के इन्हें धारण किया जाए और वह अपना फल दें।

सर्वाभीष्ट फलप्रद सूर्य यन्त्र

६–	३२–	३	३४	३५	१
७	११	२७	२८	८	३०
१९	१४	१६	१५	२३	२४
१८	२०	२२	२१	१७	१३
२५	२९	१०	९	२६	१२
३६	५	३३	४	२	३१

धारण विधि–(१) रविवार के दिन जब कृत्तिका नक्षत्र हो, उस दिन मदार (आक) की लेखनी और अष्टगन्ध की स्याही से सफेद भोजपत्र पर इस मन्त्र को लिखा जाये। इसके बाद **ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः** इस बीज मन्त्र से १०८ बार हवन कर यन्त्र को हवन के धुँएँ से बीज मन्त्र पढ़ते हुए धूपित किया जाए तदनन्तर ताँबे की ताबीज में भर कर लाल रेशमी धागे से गले या दाहिनी भुजा में बाँधने से धन, सम्पत्ति की वृद्धि होती है और सभी कामनाएँ पूर्ण होती रहती हैं।

(२) उपर्युक्त विधि से यन्त्र को लिखकर मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित कर इस यन्त्र को लाल रंग के रेशमी धागा से आवेष्टित कर कुमारी कन्या के हाथ से काते गये सूत को लाल चन्दन से रँग कर बन्ध्या स्त्री ऋतु स्नान के बाद कमर में बाँधे तो निश्चय ही गर्भ धारण करती है।

(३) आधि-व्याधि युक्त, ऋणी, दरिद्री, कोढी, ब्रह्महत्या और भ्रूणहत्या दोषों में सन्तप्त व्यक्ति यदि रवि-पुष्य रोग के दिन अथवा रवि और तीनों उत्तरा नक्षत्रों के

योग के दिन या मेष राशि पर स्थित सूर्य की ऋतु में मध्याह्नकाल में यन्त्र को उक्त मन्त्र द्वारा हवन, जप से अभिमन्त्रित कर गले में धारण करे और एक वर्ष तक नित्य उक्त बीज मन्त्र का १०८ बार जप करता रहे तो सभी दोषों, अभिशापों से मुक्त होकर अभ्युदय प्राप्त करता है।

(४) जिस स्त्री की सन्तान जीवित न रहती हो, जिसके नेत्रों में विकार रहते हों, जिसे असाध्य चर्म रोग हो और जो कठिन परिश्रम करने पर भी, योग्यता और ईमानदारी होने पर भी दरिद्री रहता हो उसे चाहिए कि वह इस यन्त्र को ताम्रपत्र पर अंकित कराकर उपर्युक्त बीज मन्त्र से प्राण-प्रतिष्ठा करके नित्य प्रति यन्त्र का पूजन कर बीज मन्त्र से १०८ बार हवन या जप साल भर तक करे तो सभी दोषों और अभावों से उसे मुक्ति मिलती है।

बन्ध्यापुत्रप्रद यन्त्र

दः तं

छुं	क्रुं	ॐ	क्रुं	छुं
छुं	क्रुं	देव	दत्त	छुं
छुं	क्रुं	क्रुं	क्रुं	छुं

धारण विधि– जो स्त्री वन्ध्या हो, गर्भ धारण न करती हो उसे यह यन्त्र लाल भोज पत्र पर अनार की कलम और लाल चन्दन से लिखकर लाल रेशमी धागा से आवेष्टित कर ताँबे की ताबीज में भरकर रविवार के दिन यन्त्र में लिखे हुए प्रत्येक बीजाक्षर से २१ बार हवन कर यन्त्र को हवन के धुएँ से धूपित कर कमर में धारण कर लेना चाहिए। साल भर के अन्दर बन्ध्या गर्भवती होती है।

विशेष– यन्त्र में जिन दो कोष्ठों पर देवतत्त लिखा हुआ है, उन कोष्ठों में उस स्त्री का नाम लाल चन्दन और अनार की कलम से लिखा जाना चाहिए।

गर्भ-स्तम्भन यन्त्र

२	२	१	१
२	१	१	१
१	१	१	१
१	१	१	१

धारण विधि– जिस स्त्री का गर्भस्राव हो जाता है, उसके जब दो मास का गर्भ हो जाए तो यह यन्त्र अनार की कलम और सफेद चन्दन, लाल चन्दन, कपूर, केसर, कस्तूरी की स्याही से भोजपत्र पर लिखकर मंगलवार के दिन ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ग्लौं, गं इस बीज मन्त्र से १०८ बार हवन करके हवन के धुएँ से यन्त्र को धूपित कर लाल रेशमी धागा और ताँबे की ताबीज मे भर कर कमर में धारण करना चाहिए। जब बच्चा पैदा होने का समय आ जाए तब उतार कर यन्त्र को नदी या कुएँ में डाल देना चाहिए।

लज्जा बीज यन्त्र

ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं

धारण विधि– यह लज्जा बीज यन्त्र बहुत ही शक्तिशाली और अभीष्ट फलप्रद है। अनार की कलम और अष्टगंध से भोजपत्र पर इसे नवरात्र की अष्टमी के दिन अथवा दीपावली के दिन लिखकर ताँबे की ताबीज में लाल रेशमी धागे के साथ गले या दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिए।

ह्रीं इस बीजाक्षर से १०८ बार आहुति देकर यन्त्र को (ताबीज सहित) हवन के धुएँ से धूपित, अभिमन्त्रित करने के बाद ह्रीं बीज मन्त्र को १०८ बार जप करके यन्त्र को धारण करना चाहिए। इस यन्त्र को हर व्यक्ति आत्मरक्षा और अभ्युदय की कामना से बाँध सकता है।

सर्वार्थ सिद्धिदायक शिव यन्त्र

वं	पं	दं	लं
वं	पं	दं	ल
वं	पं	दं	ल
वं	पं	दं	ल

धारण विधि– योग-क्षेम, कल्याण को वहन करने वाले इस यन्त्र को अष्टगंध और अनार की कलम से भोजपत्र पर सोमवार या पूर्णमासी के दिन लिखकर यन्त्र के बीजाक्षरों से १०८ बार हवन कर ताँबे की ताबीज में भर कर गले या भुजा में बाँधने से सदा मंगलमय जीवन व्यतीत होता है।

शत्रु शमनकारी पंचदशी यन्त्र

६ ॐ	१ हं	८ प
७ व	५ न	३ न
२ न्द	९ ना	४ य

धारण विधि–शनिवार या मंगल के दिन अनार की कलम और अष्टगंध की स्याही से लाल भोजपत्र पर लिखकर नीचे लिखे बीज मन्त्र से १०८ बार हवन करे।

मन्त्र– ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहा ॐ ह्रीं पंचदशी सर्व सिद्धिं दर्शय स्वाहा।

हवन के बाद यन्त्र को हवन के धुएँ से धूपित कर ताँबे की ताबीज में भर कर दाहिनी भुजा या गले में धारण करना चाहिए।

न्यायालय में विजयार्थ पंचदशी यन्त्र

४ ॐ	९ ह्रीं	२ श्रीं
३ ऐं	५ क्लीं	७ चामुंडा
८ देव्यै	१ नमः	६ स्वाहा

धारण विधि—इस यन्त्र को शनिवार या मंगलवार को अनार की कलम और अष्टंगध से भोजपत्र पर लिखकर **'ॐ ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं चामुण्डा देव्यै नमः स्वाहा'** इस मन्त्र से १०८ बार हवन कर हवन के धुएँ से यन्त्र को धूपित कर ताँबे की ताबीज में भर कर दाहिनी भुजा या गले में धारण करना चाहिए।

चतुर्वर्णात्मक पंचदशी यन्त्र

ब्राह्मण (खाकी)

भोजपत्र पर अनार की कलम और अष्टगंध से लिखा जाए।

८	१	६
३	५	७
४	९	२

वृष, कन्या और मकर राशि वाले व्यक्तियों के लिए।

क्षत्रिय (वादी)

भोजपत्र पर अनार की कलम और लाल चन्दन से लिखा जाए।

८	३	४
१	५	९
६	७	२

मिथुन, तुला और कुम्भ राशि वाले व्यक्तियों के लिए।

वैश्य (आबी)

भोजपत्र पर अनार की कलम और काली स्याही से लिखा जाए।

२	७	६
९	५	१
४	३	८

कर्क, वृश्चिक और मीन राशि वाले व्यक्तियों के लिए।

शूद्र (आतसी)

भोजपत्र पर अनार की कलम से नील और भीमसेनी कपूर से लिखा जाए।

४	९	२
३	५	७
८	१	६

मेष, सिंह और धनु राशि वाले व्यक्तियों के लिए।

विशेष– शुभ कार्य के लिए उत्तर की ओर मुँह करके यंत्र को लिखकर सिद्ध किया जाए। अशुभ कार्य के लिए दक्षिण की ओर मुँह करके लिखा जाए। शुक्ल पक्ष में शुभ कार्य के लिए और कृष्ण पक्ष में अशुभ कार्य के लिए यन्त्र लिखकर सिद्ध किया जाए।

षट्कर्मों में पंचदशी यन्त्र विधान

(१) रविवार के दिन आक के पत्ते पर आक के दूध और श्मशान की राख की स्याही और आक की कलम से यंत्र लिखकर जलती हुई चिता में छोड़कर पंचदशी मन्त्र का १०८ बार शत्रु का नाम लेकर जप करने से शत्रु विक्षिप्त हो जाता है।

(२) सोमवार के श्वेत दूर्वा के रस से भोज-पत्र पर अनार की कलम से लिखकर ताँबे की ताबीज में यन्त्र भर कर दाहिनी भुजा या गले में धारण करने से जिस सभा में जाए, यह सभा सम्मोहित हो जाती है।

(३) भौमवार को कौआ के रक्त और कौआ के पंख से भोजपत्र पर लिखकर जिसके दरवाजे पर गाड़ दिया जाए; उसका उच्चाटन होता है।

(४) बुधवार को नागकेसर, गोरोचन, सरसों के तेल में मिलाकर आदमी की खोपड़ी पर लिखकर काजल पार लिया जाए और उस काजल को आँखों में लगाकर जहाँ जाये वहाँ उसे देखकर लोग सम्मोहित होते हैं।

(५) आकर्षण के लिए गुरुवार को अगबारी हरदी, दारुहरदी, गोरोचन, तगर और गाय के घी से भोजपत्र पर लिखकर यन्त्र को अपने आसन के नीचे दबाकर पंचदशी मन्त्र का जप किया जाए। जिसका नाम यन्त्र में लिखा जाए उसका आकर्षण होता है।

(६) शुक्रवार को भोजपत्र पर अनार की कलम और कपूर, बच, कूट तथा शहद से यन्त्र लिखकर जिस स्त्री को दिखाया जाये वही वशीभूत होती है।

(७) शनिवार को चिता के काष्ठ की लेखनी और मुर्गा के रुधिर से लाल भोजपत्र पर यन्त्र लिखे जिसका नाम यन्त्र में लिखा हो उसका नाम लेकर श्मशान में यन्त्र गाड़ने पर उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

अन्य विधान

(१) धर्म, अर्थ काम की कामना रखकर वटवृक्ष के नीचे पृथ्वी पर पंचदशी यन्त्र को बटशाला लेखनी से कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को दस हजार लिखने से सब कामना पूरी होती है।

(२) अनार की कलम से पृथ्वी पर दस हजार लिखने से कैदी कैदखाने से छूट जाता है। यन्त्र के नीचे कैदी का नाम भी लिखना चाहिए।

(३) २१ दिन तक नित्य नियम से ५ हजार यन्त्र धरती पर लिखने से दरिद्रता दूर होती है।

(४) वाणी की सिद्धि प्राप्त करने के लिए बेल की लेखनी और बेल के रस में हर ताल और मैंसिल मिली स्याही से पृथ्वी पर दो हजार नित्य यन्त्र को २१ दिन लिखा जाए।

(५) शत्रु-भय दूर करने के लिए आक के पत्ते पर आक की लेखनी और आक के दूध से १०८ बार यन्त्र लिखकर बबूल की डाल में बाँध दिया जाए। ४१ दिन तक लगातार करने से शत्रु बाधा निर्मूल होती है।

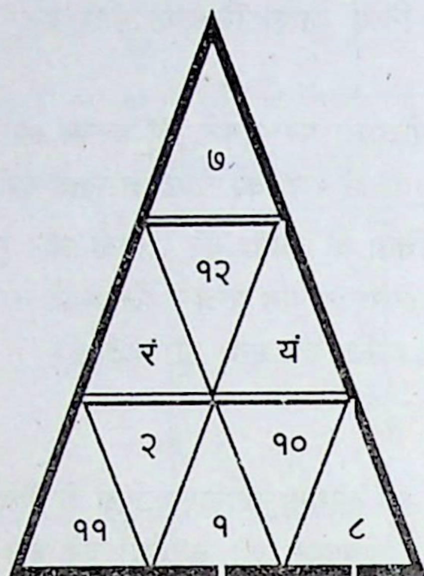
(६) अजाझारे की लेखनी और उसी के रस से भोज-पत्र पर यन्त्र लिखकर बाँधने से अँतरा, चौथिया, मियादी आदि सभी प्रकार के ज्वरों का शमन होता है।

पंचदशी मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहा। ॐ ह्रीं पंचदशी सर्वसिद्धिं दर्शय दर्शय स्वाहा ॐ ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं चामुण्डादैव्ये नमः।

विशेष– अपनी राशि का ही यन्त्र विविध प्रयोजनों के लिए उपयोग में लिया जाना चाहिए।

सर्व सिद्धिप्रद यंत्र



महाविद्या भवानी ह्रीं

धारण विधि– यह यन्त्र अनेक प्रकार के कामनाओं को पूर्ण करता है भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए भिन्न-भिन्न धारण करने की विधियाँ हैं। कतिपय प्रमुख प्रयोजनों की धारण विधि इस प्रकार है–

(१) भोज-पत्र पर अनार की कलम और अपामार्ग (चिचिड़ा) की पत्तियों के रस से इस यन्त्र को लिखकर ताँबे की ताबीज या लाल रेशमी कपड़े में भर कर गले में धारण करने से काल ज्वर, भूत ज्वर, महा ज्वर कैसे भयंकर से भयंकर ज्वर दूर हो जाते हैं।

(२) इस यन्त्र को अनार की कलम और अष्टगंध की स्वाही से लाल भोज-पत्र पर लिखकर ताबीज धारण करें तो रात में स्वप्नों के माध्यम से समस्याओं का समाधान तथा भविष्यत् की घटनाओं की चेतावनी मिलती है।

(३) अनार की कलम और अगर, गोरोचन, केसर से कृष्ण पक्ष की अष्टमी की रात में भोज-पत्र पर लिखकर ताबीज धारण करने से सभी कार्यों में सफलता मिलती है।

(४) भोज-पत्र पर अनार की कलम और पीपल या ढाक की लाह के इस यन्त्र को लिखकर धारण करें तो तीव्र आकर्षण होता है और यदि गोरोचन से लिखा जाए तो वशीकरण होता है। जिसका आकर्षण करना हो या वशीकरण करना हो उसका नाम भी लिख देना चाहिए।

सर्व रोगहार यंत्र

ॐ ॐ

७।।	।।४	६।
ॐ:	माई जाज रख	ॐ
८!	१।।।	६:

ह्रीं क्रीं

धारण विधि–इस यन्त्र को केशर, गोरोचन, पीसे हुए साठी के चावल की स्याही और अनार की कलम से लाल भोज-पत्र पर लिखा जाए। मंगलवार को निराहार व्रत रखकर रात १२ बजे इसे लिखना चाहिए। लिखते समय दृढ़ आसन रहे, आसन बदलना नहीं चाहिए।

यन्त्र लिख लेने के बाद यन्त्र का पूजन दूध के खोआ, गुलाब के इत्र, महुआ के फूल और सफेद पुष्प की माला से पूजन किया जाए। यन्त्र का पूजन करके चमेली के तेल में भींगी हुई बरगद की लकड़ियों से हवन किया जाए। हवन के बाद

यन्त्र को हवन के धुएँ से धूपित कर ताँबे की ताबीज में भरकर काले रंग के रेशमी धागे में पिरो कर गले में धारण करने से सभी प्रकार के असाध्य से असाध्य रोग दूर होते हैं।

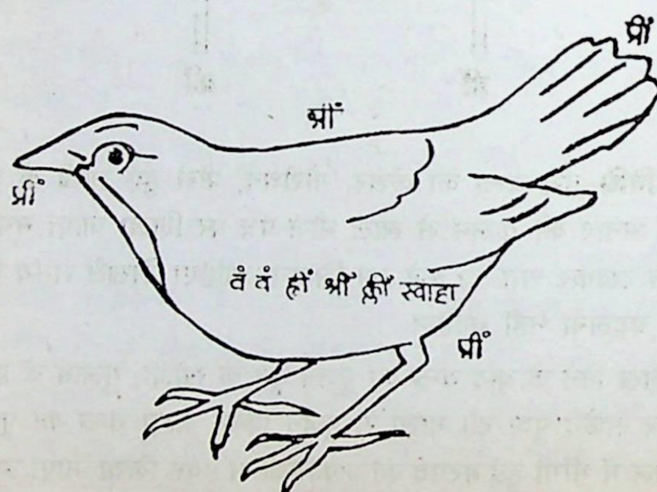
धन-सम्पत्ति प्रदायक यंत्र

ॐ १३	क्लीं २७	ठं २३
जूं २४	जूं ३२	लूं ३५
जूं ११ ह्रीं	ह्रीं २२ह्रीं	ऐं २६

दुहाई कुबेर की

धारण विधि– इस यन्त्र को मंगलवार की मध्य रात्रि में गोरोचन, लाल चन्दन, नागौरी असगन्ध के फूल, कस्तूरी–इन सबको एक में मिलाकार उसका चन्दन बना लिया जाए। फिर हरसिंगार की कलम से सफेद भोज-पत्र में लिखकर **ॐ ऐं ह्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं क्लीं नमः** इस बीज मन्त्र से यन्त्र का पूजन कर इसी बीज मन्त्र से १०८ बार हवन कर यन्त्र को हवन के धुएँ से धूपित कर साने या ताँबे की ताबीज में भर कर गले में ही धारण किया जाए। विपुल धन सम्पदा की प्राप्ति होती रहती है।

महालक्ष्मी यंत्र



धारण विधि—इस महालक्ष्मी सिद्ध यन्त्र को अनार की कलम और अष्टगंध

धारण विधि– इस महालक्ष्मी सिद्ध यन्त्र को अनार की कलम और अष्टगंध की स्याही के लाल भोज-पत्र पर लिखकर पश्चिम दिशा में एक ताम्र-पत्र के ऊपर रख दिया जाए। तत्पश्चात् पीले वस्त्र, पीला जनेऊ धारण कर यन्त्र का पूजन श्रीं प्रीं प्रीं प्रीं इन बीजाक्षरों से किया जाए, खीर या रेवड़ी का नैवेद्य अर्पित किया जाए। पूजन में सफेद पुष्प ही अर्पित किए जाएँ। पूजन के बाद **वं वं ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहा–** इन बीज मन्त्रों से १०८ बार हवन किया जाए। इस प्रकार नित्य पूजन, हवन ४१ दिन तक करने पर यन्त्र सिद्ध होता है। ४१ दिन बाद यन्त्र को सोने की ताबीज में भर कर धारण किया जाए। यन्त्र धारण करने से व्यक्ति श्रीसम्पन्न बनता है।

कामना सिद्धिप्रद यन्त्र

१६	९	४	५
३	६	१५	१०
१३	१२	१	८
२	७	१४	११

धारण विधि– जिस दिन रविवार को पुष्य नक्षत्र हो, उसी दिन सफेद भोज-पत्र पर अनार की कलम और अष्टगंध की स्याही से इस यन्त्र को लिखा जाए। पश्चात् **ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं मम कामना सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा** इस मन्त्र से ९ बार हवन कर हवन के धुएँ से यन्त्र को धूपित कर ताँबे की ताबीज में भरकर लाल रेशमी धागे से बाँधकर दाहिनी भुजा में धारण किया जाए।

व्यापार में लाभदायक यन्त्र

८ ॐ	१ ऐं	६ ह्रीं
३ क्लीं	५ चामुण्डायै	७ लं
४ लं	९ लं	२ नमः

धारण विधि– इस यन्त्र को अनार की कलम और अष्टगंध की स्याही से सफेद भोज-पत्र पर कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन लिखा जाए। लिखने के बाद हवन (लाल चन्दन, सफेद चन्दन, अगर, तगर, देवदारु का बुरादा, नागरमोथा, काले तिल, जौ कपूर, सुगन्ध बाला, छड़-छड़ीला, केसर, पंचमेवा और घी से आम की लकड़ी पर) किया जाए। हवन में **क्रौं ह्रीं श्रीं यक्षापितये नमः** इस मन्त्र द्वारा १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए। हवन के बाद यन्त्र को धूपित कर सोने की ताबीज में धारण करने से व्यापार में अपूर्व सफलता मिलती है।

आजीविका प्राप्ति के लिए यन्त्र

१८	२०	३९	५०
१०	३७	४२	६
२२	५२	२५	१९
३ १०२	९०	८२	७२

धारण विधि– इस यन्त्र को लाल चन्दन, कपूर की स्याही और लाल चन्दन की कलम से लाल भोज-पत्र पर लिखकर **ॐ ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं** इस बीज मन्त्र से रविवार, सोमवार और मंगलवार तीन दिन तक लगातार प्रतिदिन २१ बार अष्टांग हवन सामग्री से हवन करके मंगलवार को ताँबे की ताबीज में रखकर गले या भुजा में लाल रेशमी धागा से पिरोकर धारण किया जाए। बेकार, निरुत्साही व्यक्ति को यह यन्त्र उत्साह और जीविका प्रदान कराता है।

संतानदायक यन्त्र

श्रीं ९१	ठं १२	सं १९
रं क्षं १७	वं लं ६२	रं रं १३
ज्ञं ५२	मं ५२	चं १२
२४३२	२४३२	२४३२

धारण विधि– सन्तान प्राप्ति के लिए इस यन्त्र को सफेद भोज-पत्र पर लाल चन्दन और अनार की कलम से सोमवार को लिखकर नौ दिन तक **क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा-** इस मन्त्र को प्रतिदिन १०८ बार अष्टांग हवन सामग्री से हवन कर, यन्त्र को धूपित कर सफेद रेशमी धागे में चाँदी की ताबीज पिरोकर यन्त्र उसी में भर कर गले में धारण करने से साल भरके अन्दर सन्तान सुख प्राप्त होता है।

मानसिक रोग निवारण यंत्र

ॐ	धों	च्रों
ह्रों	आं	क्रां
१४॥३	६|||७१	३|=५
१३|	६=३	४=३

धारण विधि– इस यन्त्र को लाल चन्दन, दूर्वारस, केशर की स्याही और अपामार्ग की कलभ से लाल भोजपत्र पर रविवार के दिन लिखकर घी का दीपक जला कर लाल रंग के फूल, गुलाब के इत्र और दूध के खोआ से पूजाकर लोहबान से इस मन्त्र द्वारा १०८ बार हवन किया जाए-

ॐ ह्रौं जूं सः स्वाहा तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॐ।

हवन के बाद ताँबे की ताबीज में यन्त्र को भर कर हवन के धुएँ से धूपित कर लाल रेशमी धागा में पिरो कर ताबीज को गले में धारण किया जाए।

मुकदमा में विजयप्रदायक यंत्र

यः	५ कं	यं
यं		७ हूं
यं	२ हं	१ यं

धारण विधि– इस यन्त्र को जब पुष्य नक्षत्र रविवार के दिन पड़े, उस दिन लाल भोजपत्र पर सफेद चन्दन, गजकेशर, इन्द्रजव और नारंगी के रस की स्याही तथा भृंगराज की कलम से प्रातः काल ३ बजे से ५ बजे के बीच लिखकर ताँबे या चाँदी की ताबीज में भर कर लाल रेशमी धागे में पिरोकर गले में धारण करने से भयंकर से भयंकर बिगड़े हुए मुकदमें में विजय होती है। मुकदमा जीतने के बाद इस यन्त्र को नदी में प्रवाहित कर देना चाहिए।

सम्मोहन यंत्र

११	८	१	१४
२	१३	१२	७
१६	३	६	९
५	१०	१५	४

प्रयोग विधि–इस यन्त्र को लाल भोजपत्र पर लाल चन्दन, गोरोचन, कपूर की स्याही और अनार की कलम से रविवार या मंगलवार को रात में लिख कर घी का दीपक जला कर दीपक की लौ में यन्त्र को जलाते हुए यह मन्त्र पढ़े–

ॐ ह्रीं ऐं श्री क्लीं (जिसे सम्मोहित करना हो उसका नाम) **मोहय मोहय क्लीं श्रीं ऐं ह्रीं ॐ स्वाहा** यन्त्र जल जाने के बाद जिस स्त्री या पुरुष को सम्मोहित करना है, उसका घर जिस दिशा में हो उसी दिशा की ओर दीपक का मुँह करके रख देन. च.हिए। मात्र इतने से ही सम्मोहन हो जाता है।

वशीकरण यंत्र

८	९	३	४
६	४	७	५
५	७	१०	६
९	६	५	७

प्रयोग विधि– लाल भोजपत्र पर चम्पा या चमेली की कलम से अपने आँसुओं को पानी में मिला कर यह यन्त्र रविवार को आधी रात के समय लिखना चाहिए। यन्त्र के नीचे उस व्यक्ति का नाम भी लिखना चाहिए। जिसे वश में करना है। आँसुओं की स्याही से लिखे गये यन्त्र को उस व्यक्ति के घर से मुख्य द्वार पर गाड़ देना चाहिए, जिसे अपने वश मे करना हो।

विशेष– इस यन्त्र का प्रयोग वही स्त्री या पुरुष कर सकते हैं जो विरह-व्यथा से पीड़ित हों, जिनकी आँखों से विरहजन्य आँसू निकलते हैं। पिपरमेण्ट या ग्लिसरीन लगा कर कृत्रिम आँसुओं से यन्त्र को हरगिज नहीं लिखना चाहिए। विरही पुरुष स्त्री को और विरहिणी स्त्री पुरुष को वशीभूत करने के लिए यह प्रयोग कर सकती है।

अर्श (बवासीर) नाशक यंत्र

ॐ	भ्रां
भ्रीं	भ्रः

धारण विधि– इस यन्त्र को सफेद दूब के रस और अनार की कलम से भोज पत्र पर लिख कर ताँबे की ताबीज में भर कर मंगलवार को कमर में बाँधने से साल भर के अन्दर ही पुराना से पुराना हर प्रकार का बवासीर रोग दूर हो जाता है।

बालकों का सूखा रोग नाशक यंत्र

१ कालिकायै नमः	२ कालिकायै नमः	७ कालिकायै नमः
५ कालिकायै नमः	६ कालिकायै नमः	९ कालिकायै नमः

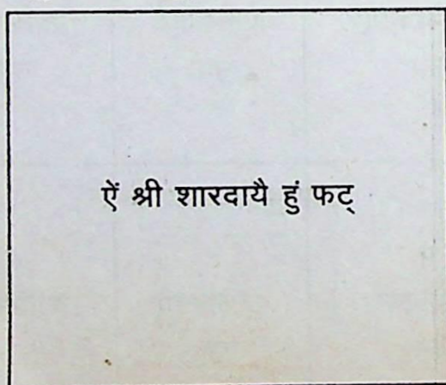
प्रयोग विधि– जिस दिन सूर्य की संक्रान्ति हो अथवा रविवार के दिन साँप की बाँबी की मिट्टी लाकर जमीन पर उसे बिछा दे और बिछी हुई मिट्टी पर यह यंत्र आक या बेल की लकड़ी से लिख कर रोगी बालक को यन्त्र के ऊपर चित, पट, करवट करके ५ बार लेटा दे तो सूखा रोग दूर हो जाता है।

पीनस रोग नाशक यंत्र

११	९१	५१	४८
६१	२१	८१	४१
२६	७१	३८	१८

प्रयोग विधि– हल्दी को पीस कर घोल दिया जाए। हल्दी के घोल और कचनार की कलम से काले धतूरे के पत्ते पर (काले रंग, काले फूल का धतूरा कानपुर-झाँसी रेलवेब्रिज लाइन के समथर स्टेशन से ४ मील पश्चिम समथर के किले की खाई में पैदा होता है) लिख कर जिस व्यक्ति की नाक पर पीनस का रोग हो उसे यन्त्र को आग में छोड़कर सुँघाया जाए। शनिवार से मंगलवार तक प्रतिदिन तीन धतूरे के पत्ते पर लिखे गये यन्त्र को जलाकार सूँघने से पीनस में सभी कीटाणु मरकर बाहर निकल आते हैं और कीटाणुओं का क्षय हो जाता है।

मूकता, मूढ़ता निवारण यंत्र



धारण विधि– कुछ बच्चों के मस्तिष्क और चेतना का विकास नहीं हो पाता। उम्र अधिक हो जाने पर भी वह अबोध, निःस्पृह बने रहते हैं, कुछ बच्चों की वाक-ग्रंथियाँ कुण्ठित हो जाने के कारण वह गूँगे-बहरे हो जाते हैं। ऐसे लोगों की मूकता, मूढ़ता दूर करने के लिए अनार की कलम और ब्राह्मी के रस से भोजपत्र पर **ऐं** बीज को कमर तक पानी में खड़े होकर लिखा जाए और १०८ बार इसी बीज का जप करके यन्त्र को ताँबे की ताबीज में भर कर कण्ठ में धारण किया जाए। बढ़ती हुई नदी की धारा या समुद्र में नाभि पर्यन्त जल में खड़े होकर यन्त्र लिखने और जपने से अधिक और शीघ्र लाभ होता है। तालाब में नहीं।

नकसीर नाशक यंत्र

८	२	६	४
१	७	३	४

धारण विधि– अक्सर कुछ लोगों की नाक से खून गिरने लगता है, दवा करने से रुक जाता है और कुछ दिन बाद फिर शुरू हो जाता है। इस रोग को दूर करने के लिए श्यामा तुलसी के पत्तों के रस और श्यामा तुलसी के डण्ठल की कलम से श्यामा तुलसी की पत्ती में यह यंत्र लिख कर इतवार के दिन ताँबे की ताबीज में भर कर गले में धारण करने से यह रोग समूल नष्ट होता है।

संग्रहणी, अतिसारनाशक यंत्र

२	५	८
९	७	६
४	३	१

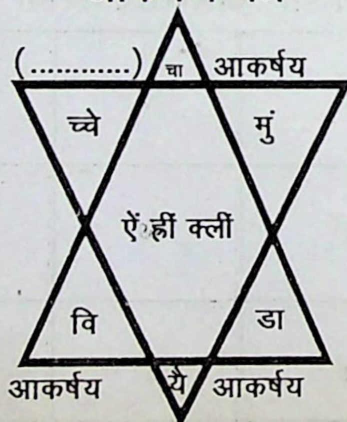
धारण विधि– कुछ लोगों को संग्रहणी या अतिसार रोग हो जाता है और ओषधियों से ठीक नहीं हो पाता। ऐसे असाध्य या कष्टसाध्य रोग को दूर करने के लिए इस यन्त्र को कचनार की कलम और कस्तूरी से भोज पत्र पर लिखकर कमर में धारण करना चाहिए। यदि इस यन्त्र को बालक की कमर में बाँध दिया जाए। तो उसे उदर विकार नहीं होता।

गुल्म यकृत, प्लीहा रोग निवारण मंत्र

अ	ग	स्त्य	ऋ
ष	य	न	मः
प	च	प	च

प्रयोग विधि– पेट की हर बीमारी के लिए इस उपयोगी यन्त्र का प्रयोग लाभदायक है। प्रातःकाल स्नान करके घीकुवॉर के रस और महुआ की लेखनी से लोहे के पत्र पर इस तन्त्र को लिखकर अगरबत्ती जला दी जाए। इसके बाद **अच्युताय नमः अनन्ताय नमः गोविन्दाय नमः** का ११ बार जप करके जल को अभिमंत्रित किया जाए। उसी जल से लोहे के पत्र पर लिखित यन्त्र को धोकर पीने से पुराना से पुराना असाध्य उदर रोग ४१ दिन में समूल नष्ट हो जाता है।

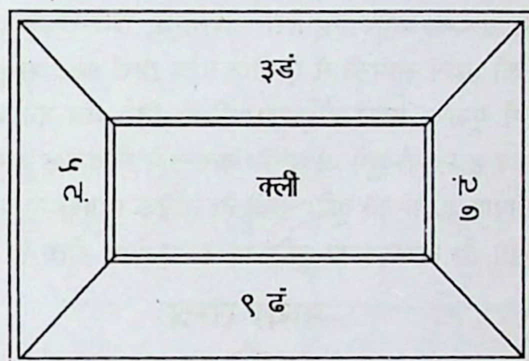
आकर्षण यंत्र



प्रयोग विधि– कोई व्यक्ति लापता हो गया है, घर से लड़कर भाग गया हो या परदेश में जाकर फिर लौट न रहा हो, ऐसे व्यक्ति को वापस बुलाने में यह यन्त्र अमोघ साबित हुआ है। जिस घर के कमरे में लापता व्यक्ति रहता हो उसे कमरे के ईशान कोण में बैठकर अनार की कलम या लाल चन्दन की कलम और लाल चन्दन की स्याही से भोज-पत्र पर यह यन्त्र लिखा जाए। जिस स्थान पर नाम.........है, वहाँ उस लापता व्यक्ति का नाम लिख देना चाहिए।

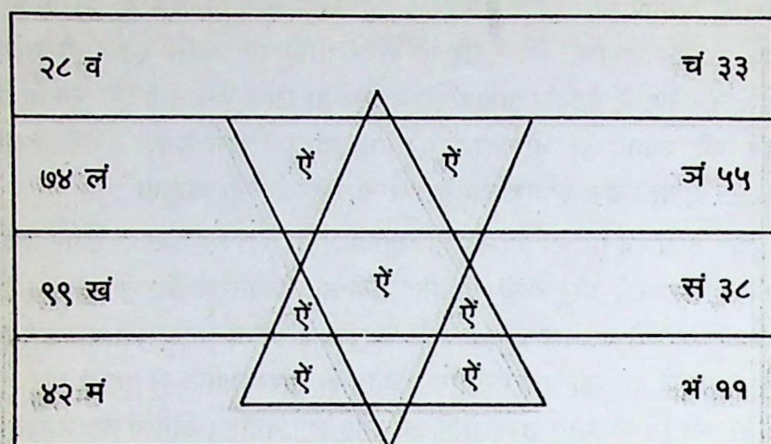
फिर यन्त्र को मिट्टी की नई हँड़िया के अन्दर रखकर यन्त्र के ऊपर ताँबे के नौ पैसे रख दिए जाएँ और हाँड़ी को मिट्टी के नए ढक्कन से ढँक कर ईशान कोण में कमरे के कोने में रखकर **ऐं ह्रीं क्लीं चामुंडायै विच्चे** मन्त्र से ९ बार हवन किया जाए। हवन के बाद हाँडी को उठाकर हवन के ऊपर दाहिने से बाएँ ९ बार घुमाकर कोने में रख दिया जाए। उस हाँडी को कोई छुए नहीं। ९ दिन में वह व्यक्ति या तो वापस आ जाता है या उसका पता ठिकाना का पता मिल जाता है। काम पूरा होने पर हाँडी को नदी में प्रवाहित कर देना चाहिए।

शक्ति यन्त्र



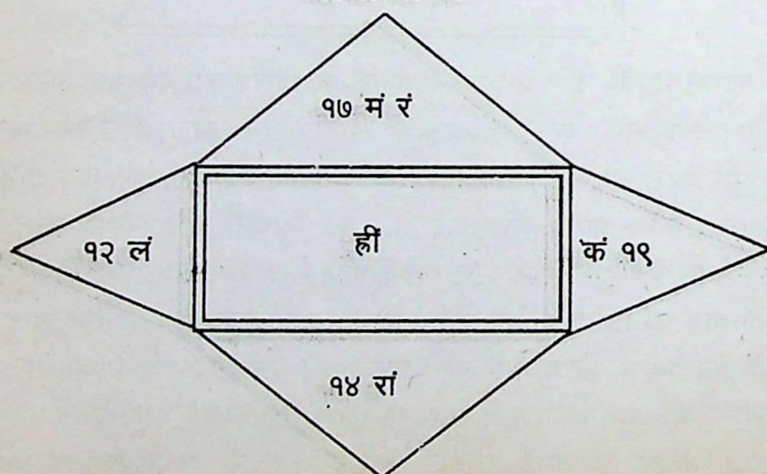
धारण विधि– इस यंत्र को दीपावली को विशेष रूप में अथवा अमावस्या को आधी रात के समय काले भोजपत्र पर लाल चन्दन अथवा कनिष्ठिका अँगुली के रक्त और बबूल की कलम से लिख कर कौआ ठोंठी के पुष्प, धूप, दीप से पूजनकर खोआ का नैवेद्य अर्पित कर काले तिल, जौ, चावल, नागर मोथा, कपूर, गूगुल, घी, शक्कर की हवन सामग्री से **क्लीं** बीज मन्त्र द्वारा १०८ आहुतियाँ दी जाए। इसके बाद प्रतिदिन ४१ दिन पर्यन्त इसी क्रम से हवन कर अन्तिम दिन ताँबे या चाँदी का ताबीज को गंगा जल से पवित्र कर यंत्र और ताबीज को हवन से धुएँ से धूपित कर यंत्र को गले में लाल या काले रेशमी धागे में पिरोकर धारण करने से शत्रु शक्तिहीन होता है, उसकी सभी षडयंत्रकारी चेष्टाएँ विफल होती हैं।

सरस्वती यन्त्र



धारण विधि– इस यंत्र को सफेद भोजपत्र पर सफेद चन्दन, कपूर, मैनसिल, गजेकशर की स्याही और कुन्द पुष्प की कलम से रात ३ बजे लिख कर यंत्र का पूजन सफेद चन्दन, सफेद पुष्प, धूप, दीप से करके खीर का नैवेद्य अर्पित करे। तत्पश्चात् सफेद चन्दन, कपूर, नागौरी, असगन्ध, छड़-छड़ीला, नागरमोथा, घी, शक्कर, गूगूल की हवन सामग्री में ऐं बीज मन्त्र द्वारा १०८ आहुतियाँ दे। ५१ दिन तक इसी क्रम में पूजन, हवन के बाद अन्तिम दिन यंत्र को सोने या चाँदी की ताबीज में भर कर हवन के धुएँ से धूपित कर गले में धारण करने से वाक् शक्ति, भाषण शक्ति, स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। तनिक प्रयास मात्र से अनेक भाषाओं का ज्ञान हो जाता है। असाधारण बुद्धि चमत्कार पैदा होता है।

माया तन्त्र



धारण विधि–श्री कीर्ति, विभूति की कामना की पूर्ति इस यंत्र से निश्चित हुआ करती है। जिस रविवार को पुष्य नक्षत्र हो अथवा रविवार को अमृत सिद्धि योग हो उसी रविवार को रात दस बजे भोजपत्र पर अष्टगन्ध से अनार की लेखनी द्वारा यह यंत्र लिखना चाहिए। यन्त्र का पूजन सोने चम्पा के पुष्प, लाल चन्दन, गुड़, नारियल, सिन्दूर से किया जाए। धूप, दीप देकर यंत्र को सोने की ताबीज में भर कर गाय के दूध से स्नान कराया जाए। इसके बाद ह्रीं बीज मन्त्र से १०८ बार आहुति दी जाए। इस तरह प्रतिदिन इसी क्रम से पूजन हवन ५१ दिन तक करने के बाद यंत्र को बायीं भुजा में बाँध लिया जाए। बहुत ही फलदायक यंत्र है।

इस यंत्र की सिद्धि में हवन सामग्री में निम्नांकित द्रव्य हैं–सफेद तिल, कमलगट्टा बेलगिरि, कपूर, गूगुल, सफेद चन्दन का बुरादा, लाल चन्दन का बुरादा, केशर, घी और आम की लकड़ी।

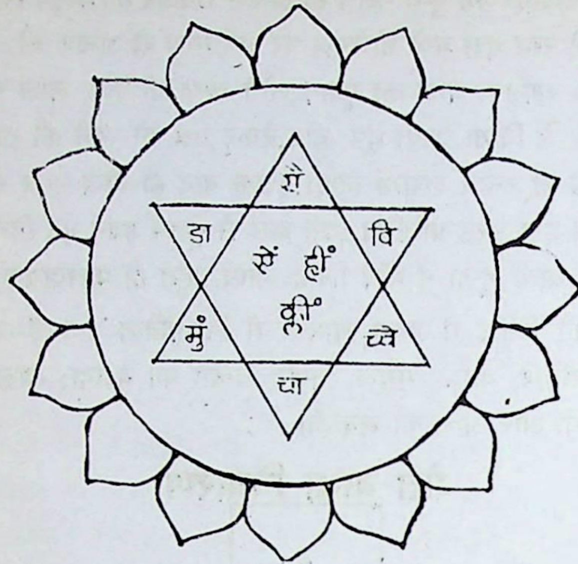
प्रेत बाधा निवारण

		१		
	२	९	८	
३	१२	१०	१३	७
	४	११	६	
		५		

धारण विधि–जिससे प्रेत बाधा हो उसे अथवा प्रेत बाधा के भय से सुरक्षित रखने के उद्देश्य से किसी नवजात शिशु या बालक को यह बाँधना बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

कमलिनी के पत्ते पर चमेली की कलम से चमेली के रस से यन्त्र को लिख कर ताँबे की ताबीज में भर कर गले में बाँधना चाहिए।

अभ्युदय यंत्र



प्रयोग विधि– मंगलवार, सोमवार या शुक्रवार के दिन अथवा कृष्ण पक्ष की अष्टमी की रात में एक ताम्रपत्र पर लाल चन्दन से इस यन्त्र को अनार की कलम से लिखा जाए। यन्त्र के मध्य में दीपक जलाकार रख दिया जाए। तदनन्तर पूजन करें–

ॐ दीपाधारयन्त्राय नमः पढ़ते हुए यन्त्र की पूजा चन्दन, अक्षत, लाल पुष्प से की जाए। इसके बाद **ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे** यह बीज मन्त्र पढ़ते हुए दीपक की ज्योति में भगवती महाशक्ति का आवाहन किया जाए। तदनन्तर–

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्म ताम्।।

द्वारा द्वीप ज्योति में स्थित भगवती का पूजन गन्ध, अक्षत, धूप, दीप, नेवैद्य से किया जाए।

पूजन, आवाहन के बाद नवार्णमन्त्र **(ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे)** का जप किया जाए। जप के बाद इस नवार्णमन्त्र से १०८ बार हवन किया जाए फिर प्रार्थनापूर्वक विसर्जन किया जाए।

इस तरह प्रतिदिन ताम्रपत्र का और दीप ज्योति का पूजन आदि उपर्युक्त क्रम से किया जाए। कम से कम १० दिन में १ लाख संख्या नवार्ण मन्त्र का जप हो जाने से यन्त्र सिद्ध हो जाता है और अभ्युदय, श्री सम्पत्ति की वृद्धि होती है।

चतुःषष्ठि योगिनी तन्त्र

२७	१८	१५	८
११	१२	१९	२२
१७	२४	८	१४
१३	१०	२१	२०

चौंसठ योगिनियों का यह तंत्र यदि सिद्ध कर लिया जाए तो संघर्ष में, संकट में, राजभय राष्ट्र विद्रोह, राज्य क्रान्ति बड़े-बड़े संकट से रक्षा करता है। हर कार्य में सफलता मिलती है। यह सर्वसिद्धिदायक तंत्र है। इसकी साधना श्रमसाध्य है, इसलिए जीवन के हर काम में सफलता प्राप्त करने के लिए इस यंत्र को सिद्ध करके दाहनी भुजा में बॉधने से सही अमित लाभ होता है।

केसर, गोरोचन, अम्बर, जायफल, जावित्री, लाल चन्दन की स्याही और अनार की कलम से भोजपत्र पर यन्त्र लिखकर योगिनी मन्त्र से ६४ बार हवन कर यंत्र को धूपित करके भुजा में बाँधे फिर लाल चन्दन की माला से ६५ बार मंत्र का जप करें। नित्य मंत्र का जप ६४ बार करने से योगिनी सिद्ध होती है।

मंत्र–ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं ह्षौः चतुःषष्ठि योगिनीभ्यो नमः।



एकमात्र विक्रेता



ए टू जेड पब्लिकेशन

२२५ चक, जीरो रोड, इलाहाबाद

